दरियाग्रन्थावली
(प्रथम ग्रन्थ)

सन्तकवि दरिया : एक अनुशीलन

डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री,
एम० ए०, पी-एच० डी०



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक—
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलन-भवन
पटना–३

प्रथम संस्करण; संवत् २०११; सन् १९५४ ई०

मूल्य अजिल्द १२॥) : सजिल्द १४)

मुद्रक—
मोहन प्रेस
पटना–३

प्रस्तावना

'दरिया-ग्रन्थावली' के प्रथम सुमन 'सन्त-कवि दरिया : एक अनुशीलन' नामक इस ग्रन्थ का लक्ष्य बिहार के शाहाबाद जिले के धरकंधा ग्राम में ईसा की [illegible] में आविर्भूत निर्गुण सन्त-कवि दरियासाहब के जीवन, दर्शन और साहित्य का प्रस्तवन एवं विवेचन है । इस विवेचन का मुख्य आधार उन महात्मा के रचे हुए बीस ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ है। इन बीस में अठारह हिन्दी में हैं, एक (ब्रह्म चैतन्य) संस्कृत पदों में तथा एक (दरियानामा) फारसी में है । दरिया साहब की इन बीस पुस्तकों में से केवल तीन ही—अर्थात् 'दरियासागर'[1], 'ज्ञानदीपक'[2] और 'प्रेममूल'[3]—छपी है। उनकी कुछ कविताओं का एक संग्रह 'दरिया साहब बिहारवाले के चुने हुए पद और साखी'[4] नाम से प्रकाशित हुआ है । 'दरिया-दर्पण' नाम से एक अन्य संग्रह भी छपा है ।[5]

दरिया-साहब के ग्रंथों की हस्तलिपियों को सारन और शाहाबाद जिलों में अवस्थित दरिया-पंथ के मठों से ढूँढ़ निकालने में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है । मठों के अतिरिक्त 'मन्नूलाल लाइब्रेरी', गया; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी और आरा; कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर; बेलवेडिअर प्रिन्टिंग वर्क्स, इलाहाबाद; इम्पीरियल लायब्रेरी तथा रायल एसियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, कलकत्ता आदि संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। इस अनुसंधान में पूरे आठ वर्ष लगे । मुझ-जैसे 'अनधिकारी' व्यक्ति को इस पंथ के साधु-महात्माओं से हस्तलिखित ग्रन्थों को अपने पास रखने और पढ़ने की अनुमति प्राप्त करना भी सरल काम नहीं था; विशेषतः ऐसी स्थिति में जबकि अनेक ग्रन्थों के मुख-पृष्ठ पर आदेश रूप में निम्नांकित आशय के वाक्य लिखे मिलते थे—

"केवल दरियापंथी साधु या भक्त ही इस ग्रन्थ को पढ़े, समझे, बूझे या रखे । दरियापंथी से इतर अनधिकृत व्यक्ति इसे 'बाँचे' या रखे तो उसे सौगंध ! इस आदेश को न माननेवाला, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, फिरंगी हो या बैरागी, निस्संतान मरेगा अथवा विनाश को प्राप्त होगा । सत्तनाम ! सत्तनाम[6] !!"

---

१. बेलवेडिअर मुद्रणालय, इलाहाबाद, सन् १९१० ई० ।

२. सन् १९३६ ई० में साधु चतुरीदास द्वारा दरियापंथियों में वितरणार्थ मुद्रित ।

३. शान्ति-प्रिंटिंग प्रेस सहारनपुर, द्वारा संवत् १९९१ में मुद्रित, परन्तु अब अप्राप्य ।

४. बेलडियर प्रेस में मुद्रित, १९१३ ई० ।

५. ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना ।

६. 'ब्रह्मचैतन्य' शीर्षक

कुछ चुने हुए संक्षिप्त संकेत

तु०	=	तुलना कीजिए
दासगुप्त	=	History of Indian Philosophy by Dasgupta
भण्डारकर	=	Vaisnavism, Saivism and Minor Religious Systems of India by Bhandarkar
मैकडोनेल	=	History of Sanskrit Literature by Macdonell
राणाडे	=	Constructive Survey of the Upanisadic Philosophy by Ranade
राधाकृष्णन्	=	Indian Philosophy by Radhakrishnan
रायचौधरी	=	Early History of the Vaisnava Sects by Raychaudhari
विन्टरनिज	=	History of Indian Literature by Winternitz

दरियासाहब के ग्रन्थों के संक्षिप्त संकेतों के लिए देखिए—प्रस्तावना की मूलसामग्री स्तम्भ ३ ।

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : जीवन, पंथ और रचनाएँ

द्वितीय खण्ड : दर्शन और अध्यात्म

तृतीय खण्ड : कवित्व

चतुर्थ खण्ड : भाषा

परिच्छेद



पंचम खण्ड

(मूल ग्रंथों के उद्धरण)



सन्तकवि दरिया : एक अनुशीलन

प्रथम खण्ड

प्रथम परिच्छेद

दरिया साहब का जीवनचरित

जीवन तिथि

सम्वत् १७२७ में दलदास ने मूलग्रंथ 'ज्ञानदीपक' की एक हस्तलिपि तैयार की थी। उसी के आधार पर मुद्रित 'ज्ञानदीपक' के आरंभ में साधु चतुरीदास ने दरिया साहब की जो वंशावली दी है उसके पृष्ठ पर हम ग्यारह पद[1] पाते हैं जिनसे निम्नलिखित बातों का पता चलता है—

(१) दरिया साहब का जन्म कार्तिक पूर्णिमा सं० १६६१ में हुआ;

(२) सं० १८३७ के भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी को शुक्रवार के दिन उनकी मृत्यु हुई;

(३) सं० १८३६ में उन्होंने 'गुनादास' को महन्थ बनाया;

(४) रायमती[2] दरिया साहब की प्रधान शिष्या थी तथा टेकादास उनके पुत्र (धर्मपुत्र) थे;

(५) फकीरदास और बस्तीदास उनके अपने सम्बन्धी थे;

(६) केवलदास, खरगदास, मुरलीदास और दलदास उनके प्रमुख शिष्य थे।

यदि जन्म तथा मृत्यु की उक्त तिथियाँ मान ली जायँ तो दरिया साहब का जीवनकाल १४६ वर्ष (१८३७–१६६१=१४६) माना जाना चाहिए। परन्तु 'दरियासागर' (बेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग) के सम्पादक का कहना है कि दरियापंथियों की यह धारणा है कि महात्मा दरिया साहब १०६ वर्ष तक ही जीवित रहे और १८३७ को अन्तिम तिथि

---

१. ये पद हस्तलिपि में सं० १८३६ के बाद ही जोड़े गये होंगे, क्योंकि इनमें उस तिथि की चर्चा है, और अनुमानतः सं० १८६७ (ई० सन् १८१०) के पहले, जब कि बुकानन साहब ने उस स्थान का भ्रमण किया और टेकादास को धरकन्धा की गद्दी पर पाया, क्योंकि टेकादास की चर्चा इन पदों में इस प्रकार की गई है जिससे ज्ञात होता है कि ये उस समय महन्थ नहीं थे।

२. 'ज्ञानदीपक' की भूमिका में साधु चतुरीदास 'रायमती' को उनकी पत्नी बतलाते हैं। यह संभवतः भूल है।

मानकर वे सं० १७३१ (१८३७-१०६=१७३१) को उनकी जन्मतिथि बताते हैं। सं० १८३७ ही उनकी मृत्यु तिथि है, इस विषय में सन्देह का कोई अवकाश नहीं है और उसका उल्लेख अनेक हस्तलिपियों में भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ सं० १८७० में लिपिबद्ध की गई 'सहसरानी' में अन्तिम पद इस प्रकार है—

भादो बदी और चौथि को बार रह्यो सुक्रवार।
सवा जाम जब रैनि गयो दरिया गवन बिचार ।।

इस पद की तिथि उक्त 'ज्ञानदीपक' की तिथि से मिलती है; अन्तर केवल इतना ही पड़ता है कि 'ज्ञानदीपक' में पक्ष शुक्ल है जब कि 'सहसरानी' में कृष्णपक्ष है। मैंने साधु चतुरीदास से इस अन्तर के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया तो उन्होंने बताया कि कृष्ण पक्ष को संभवतः जानबूझ कर ही शुक्ल-पक्ष में बदल दिया गया हो, क्योंकि यह बात अच्छी नहीं जँचती कि दरिया साहब जैसे महात्मा ने कृष्णपक्ष में इहलोक लीला समाप्त की हो। बात तो यह मनोरंजक है, किन्तु इससे यह पता लगता है कि किस तरह समय-समय पर धार्मिक अन्धभावुकता की वेदी पर ऐतिहासिकता की बलि चढ़ाई जाती है। पदों की पंक्तियों से भी यह ज्ञात होता है कि उनमें फेरबदल किया गया है। यथा—

संबत् अठारह सौ सैंतिस भादो चौथि अंजोर ।
सवा जाम (जब) रैनि गयो दरिया गौन बिचार ।।

वस्तुतः प्रथम पंक्ति का अन्तिम शब्द मूल रचना में 'अँधार' था जिसका तुक 'बिचार' से ठीक बैठ जाता है, किन्तु उसे बदल कर 'अंजोर' कर दिया गया जिसका 'बिचार' से तुक नहीं मिलता। इस प्रकार शुक्रवार के दिन सं० १८३७ (सन् १७८० ई०) के भादो मास की चतुर्थी को दरिया साहब की मृत्यु तिथि निर्धारित करनी चाहिए।[3] प्रायः तीस वर्ष बाद जब बुकानन साहब भ्रमण करते हुए उस स्थान पर अर्थात् धरकन्धा (शाहाबाद) पहुँचे तो दरिया साहब की स्मृति वहाँ उस समय तक ताजा थी और उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में उन महात्मा का वर्णन किया है —

'इस जिले में एक मुसलमान दर्जी ने हाल ही में मुक्ति का एक नवीन मार्ग ढूँढ़ निकाला है। उन्होंने पैगम्बर को नहीं माना और हिन्दुओं को पंथ में सम्मिलित किया। उन्होंने अपना नाम दरियादास रखा।..............परन्तु उस घर को जो (करञ्जा डिवीजन) धरकन्धा ग्राम में है और जहाँ वे रहते थे तख्त (गद्दी) कहते ह, जिसपर अब उन दर्जी महात्मा के प्रिय शिष्य गुनादास के उत्तराधिकारी टेकादास विराजमान हैं।'[4]

---

३. पटना सिटी के ज्योतिषी पं० राममूर्ति पाण्डेय उस दिन और उस तिथि में सामंजस्य बताते हैं।

४. शाहाबाद रिपोर्ट (सन् १९०९-१० ई०) पृ० २२०-२२१।

गुनादास के गद्दी पाने की घटना उक्त 'ज्ञानदीपक' की तीसरी बात से अनुमोदित और पुष्ट होती है। इसके अतिरिक्त मेरे पास एक असली सनद भी है जो सं० १८३६ में दरिया साहब के उत्तराधिकारी महंथ के रूप में उन्हें धरकन्धा की गद्दी का मिलना प्रमाणित करती है।[५] उस सनद की प्रतिलिपि निम्नलिखित है —

सतनाम

साखी

समत अठारह सैं छतीस में : महंथ कीन्ह हीत जा
नी: गुनादास नीजु बंस है : दरीआ काहा बखा
नी: सुक्रीत नीज मुख आपु सैं: कीन्हं ब्रचन
प्रकासः राएमती कुल आगरी: सुत भौ टेका
दासः नाद गादी का बंस दुई: थापेवो नीस्चै
साचः आगे पीछै जो करे, : सोई बचन है काचः
फकीर दास बस्ती दासः इअ्ह सभ दफा हमा
रः ब्रींद गादी एह बंस हैः सबद चलै टकसारः
बेबाहा नाम का हुकुम हैः दरीआ काहा पुकारः
मीः अगहन पुरनवासी बार सुक दसखत
दलदास कानगोएः साखीः केवल दास
नीज दास हैः खरग दास नीजु ब्रींदः मुरली
दास नीजु पुत्र हैः दलदास नीजु ब्रींद

अब जन्म तिथि को लीजिए। प्रश्न है कि मुद्रित 'दरियासागर' (बेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग) के सम्पादक द्वारा अनुमोदित सं० १७३१ में दरिया साहब का जन्म हुआ अथवा 'ज्ञानदीपक' में दिये हुए सं० १६६१ में? इन दोनों तिथियों में पिछली तिथि का उत्तरदायित्व साधु चतुरीदास पर है और उन्होंने मुझे पीतल की दो मुहरें भी दी हैं जिन पर अरबी लिपि में निम्नलिखित बातें खोदी हुई हैं —

मुहर नं० १

ऊपर से पढ़न पर मूललिपि —

बादशाह ए हर दो आलम बेबहा तख्त दीन फ़रमूद दरबार अंस जान् ।—सं० १७११

५. मूल सनद की तिथि संवत् १८३६ है और उसम अक्षर कैथी के हैं और पंक्ति में विभिन्न शब्दों के बीच रिक्त स्थान नहीं है; सभी अक्षरशीर्ष एक ही सीधी रेखा से जुटे हैं। इन्हें यहाँ सुविधा क लिए अलग-अलग कर दिया गया है। किन्तु मूलपत्र के मात्रादि ज्यों-के-त्यों ही रखे गये हैं। यह साधु चतुरीदास से प्राप्त हुई थी।

अर्थात् --

बेबहा (ईश्वर) जो कि दोनों लोकों का स्वामी है, उसने धर्म की गद्दी उस आत्मा के लिए प्रदान की है जो उसी (ईश्वर) का अंश है।[६] --सं० १७११

मुहर नं० २

मूललिपि -- --सं० १७११

बेबहा सत्पुर्ख साहब तख्त अमर अजर रेखा जाँ-पनाह टकसार करदह सतनाम अज हुक्म अंस सुक्रित दरिया शाह।

अर्थात् --

बेबहा, जो कि सत्पुरुष और परमात्मा है--अमर, अजर रेखा जीवनरक्षक की गद्दी--सतनाम की इस मुहर को सुक्रित और ईश्वर के अंश दरिया शाह की आज्ञा से बनाया।[७]

मुझे मुहरों के प्रामाणिक होने में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता है, क्योंकि महन्थ भी एक राजा ही माना जाता था जो आध्यात्मिक साम्राज्य की गद्दी पर बैठ कर अथवा अपने आध्यात्मिक गुरु द्वारा प्रदत्त शक्ति और अधिकार का उपयोग करता था। अतएव उसके लिए यह स्वाभाविक था कि वह किसी आदेशपत्र आदि की प्रामाणिकता जताने के लिए किसी प्रमुख घटना के स्मारक के रूप में मुहर बना दे। अब हमारे अनुसन्धान का विषय है १७११ की संख्या, अर्थात् वह साल जिसमें ये मुहरें बनी थीं। साधु चतुरीदास के विचार से १७११ विक्रमीय सम्वत् है और यह दरिया साहब के धरकन्धा की गद्दी पर आसीन होने की तिथि है। यह बात 'ज्ञानदीपक' के वर्णन से भी ठीक-ठीक मिलती है, जिसमें कवि कहता है कि अपनी बीसवें वर्ष की आयु में उन्होंने पूर्ण साधुत्व प्राप्त कर लिया था --

बरस बीस वीतेउ जानि।
इमि खुलेउ घट में खानि।।[८]

६,७. साधु प्रभुदास मुहरों को नीचे से पढ़ने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार मुहर नं० १ का अर्थ होगा--'जीव के धर्म के संबंध में--दोनों लोकों की राजगद्दी से स्वामी बेबहा (ईश्वर) द्वारा प्रदत्त--१७११' तथा मुहर नं० २ का अर्थ होगा--'ईश्वर अंश सुक्रित दरिया शाह ने इस मुहर का निर्माण किया जिसमें सतनाम है और जो अजर-अमर-अविनाशी, आत्मा के रक्षक, सत्पुरुष साहब बेबहा की आज्ञा से बनी'। मुहरों का ऐसा अर्थ लगाना दरिया साहब के दीर्घजीवन-संबंधी साधु चतुरीदास के विचारों की पुष्टि करता है।

८. ज्ञानदीपक, १६२.१



(मुहर संख्या २ की प्रतिलिपि)

यहाँ ज्ञानप्राप्ति का अभिप्राय यदि गद्दी पाना मान मिला जाय और 'ज्ञानदीपक' में दी हुई उनकी जन्मतिथि सं० १६६१ में २० वर्ष जोड़ दिये जायँ तो सं० १७११ का मेल मिल जाता है। इस प्रकार की विचारसरणि दरिया साहब की १४६ वर्ष की असाधारण लम्बी जीवनी के पक्ष में पड़ती है।

परन्तु मुहर न० २ में 'सन् १७११' खुदा है, न कि 'सम्वत् १७११'; और चूँकि विक्रम सम्वत् के आगे 'सन्' नहीं लिखा जाता, अतएव मेरे विचार में 'सन् १७११' को शक (शाके) वर्ष मानना ठीक है।[९] शक वर्ष १७११ के अनुकूल विक्रम सं० १८४६ पड़ेगा, जब दरिया साहब जीवित नहीं थे, क्योंकि उनकी मृत्यु सं० १८३७ में ही हो गई थी। अतः मैं अनुमान करता हूँ कि ये मुहरें दरिया साहब के उत्तराधिकारी गुनादास और यदि ये (गुनादास) मर गये थे, तो उनके बाद गद्दी पानेवाले टेकादास ने बनवाई। हम लिख आये हैं कि बुकानन साहब ने ईसवी सन् १८१० (सं० १८६७) में धरकन्धा की गद्दी पर टेकादास को पाया। मुहर नं० २ से यह स्पष्ट है कि यह मुहर दरियासाहब ने नहीं, बल्कि उनकी अनुमति द्वारा (अजहुक्म) उनके उत्तराधिकारियों में से किसी ने, सम्भवतः गुनादास ने, बनवाई।

मुहरों की इस प्रकार की व्याख्या के आधार पर, प्रचलित धारणा के अनुसार तथा बेल्वेडियर प्रेस द्वारा मुद्रित 'दरिया साहब' में दी हुई जीवनी के अनुसार, दरिया साहब का जीवनकाल १०६ वर्ष मान लेने मे कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। अतएव सं० १७३१ (सन् १६७४ ई०) उनकी जन्म तिथि तथा सं० १८३७ (सन् १७८० ई०) उनकी मृत्यु तिथि मानी जानी चाहिए। उनके धार्मिक तथा साहित्यिक जीवन की प्रगति १८ वीं सदी के प्रथम तीन चरणों में हुई होगी---ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

ईसा की १८ वीं शताब्दी के आसपास ही दरिया साहब का जीवनकाल मानना चाहिए, इस बात की पुष्टि उनके द्वारा की गई अपने पूर्ववर्ती सन्तों और कवियों की चर्चा से भी होती है। जिन संतों एवं कवियों का उल्लेख उन्होंने किया है उनके नाम निम्नलिखित ह---

१. जयदेव (ई० सन् ११७०)[१०]।

२. मत्स्येन्द्र नाथ[११]---(मछन्दर) जो गोरखनाथ के गुरु थे।

---

९. पुराने पंचांगों में शक सं० की प्रसिद्धि और लोकप्रियता का पता चलता है।

१०. (क) व्यक्ति एवं जीवन सम्बन्धी प्रसंगवाली कविताएँ इस पुस्तक के अन्त में दिये गये 'उद्धरणों' में सम्मिलित नही की गई हैं।

(ख) 'शब्द' १८.२८, ४२.३; जयदेव राजा लक्ष्मण सेन (सन् ११७० ई०) के राजकवि थे। वे विद्यापति की प्रतिभा के प्रेरक भी थे। उनका प्रसिद्ध गीतिकाव्य 'गीतगोविन्द' है।

११. 'शब्द' १८.१५, ५०.१; 'ज्ञानरत्न' ७२.१--८---दरिया साहब ने बहुधा 'गोरख के गुरु महामछीन्द्रा' की बड़ी प्रशंसा की है।

३. **गोरख नाथ**[१२] —(ईसा की १२वीं ? शताब्दी)।
४. **नामदेव**[१३] —(ई० सन् १३६८–१५१८)।
५. **कबीर**[१४] —(ई० सन् १३६८–१५१८)।

१२. 'शब्द' १८.१५, १८.२८; ५०·१ 'ज्ञानरत्न' ७२.१-८—राहुल सांकृत्यायन जी गोरख का समय ईसा की १०वीं शताब्दी बताते हैं, परन्तु श्री रामचन्द्र शुक्ल अपने सबसे पीछे मुद्रित इतिहास में गोरख के ईसा की ११वीं शताब्दी में होने क पक्ष में हैं। दरिया साहब ने 'नौ नाथ' और 'चौरासी सिद्धों' की चर्चा की है। सन्तमत के प्रसार म गोरखनाथ की देन के प्रश्न पर द्वितीय खण्ड के प्रथम परिच्छेद में विचार किया गया है।

१३. 'शब्द' ४.१०, १२.६, १८.४१, ५०.१; 'सहसरानी' २६३, २६५; 'ज्ञानरत्न' ७२.१–८—दरिया साहब ने 'नामदेव भगत' की बड़ी ही प्रशंसा की है। वे दक्षिण के रहने वाले थे। उनका जन्म ई० सन् १२७० में सतारा जिले के करसी वामनी नामक स्थान में हुआ था। उन्होंने मराठी तथा हिन्दी दोनों ही में पुस्तकें लिखीं।

१४. 'शब्द' १.१०८,४.११, ७.५, ७.८, ७.१०, ७.१५, १२.६, १४.१२, १८.३८, १८.४१,२०.८, २७.१, ४२.३, ५०.१; 'सहसरानी' १२३, १२४, २६२, २६५, ६२७, १०३०, १०३४, 'दरियासागर' ८२·३, ६८.२, ६८.८, आदि। कबीर के विषय में अनेकानेक उल्लेख मिलते हैं। इस पुस्तक के तृतीय खण में एक अलग परिच्छेद ही 'कबीर और दरिया' पर दिया गया है। इस परिच्छेद में अनेक सिद्धान्तों तथा मतों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दरिया अपने को कबीर का ही एक अवतार मानते थे। कबीर के विषय में 'ज्ञानदीपक' में जो कुछ भी उन्होंने लिखा है उसका सारांश उनकी 'जीवनी-संबंधी विशेषताओं' के प्रसंग में दिया गया है। निम्नलिखित परम्परासंगत कथाएँ अथवा चर्चाएँ अन्य पुस्तकों में पाई जाती हैं—(क) 'मूर्ति उखाड़' (पद सं० ३५७, ३५८) में बिजली खाँ और वीर सिंह राय बघेल की चर्चा आई है। वे कबीर के शिष्य थे। बिजली खाँ ने उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में खिरनीपुर नामक स्थान में कबीर का एक स्मारक बनवाया। वीर सिंह ने उनकी भक्ति का प्रतिरोध करना चाहा, किन्तु उनको स्वप्न में एक दिव्य आदेश मिला जिससे यह संघर्ष रुक गया। (देखिये–रा० कु० वर्मा का 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृ० सं० २२१–२२)।

(ख) 'शब्द' ४.११ में कबीर पर शाह सिकन्दर के अत्याचारों की चर्चा की गई है। शाह ने सन्त कबीर को हाथी के पैरों तले कुचलवाना चाहा तथा उन्हे गंगा में हाथ-पैर बांधकर फेंक देना चाहा, किन्तु ईश्वरीय प्रकोप से उनके सारे

६. कमाल ७. कमाली	(ईसा की १६वीं शताब्दी ?)
८. नानक[१६]	(ई० सन् १४६९–१५३८)
९. मीरा[१७]	(ई० सन् १४९८–१५४६)
१०. तुलसी[१८]	(ई० सन् १५३२–१६२३)
११. मलूक[१९]	(सन १५७४–१६८२ ई०) ।

प्रयत्न विफल हो गए । सिकन्दर लोदी (ई० सन् १४८९–१५१७) ही उक्त शाह सिकन्दर थे । वड़थ्वाल कबीर का जीवनकाल ई० सन् १३७०–१४४८ बताते है (निर्गुण स्कूल आव हिन्दी पोएट्री पृष्ठ सं० २५३) । ऐसी अवस्था में सिकन्दर वाली घटना कबीर के किसी शिष्य के साथ घटी होगी। 'शब्द' १.१०८ में सुलतान (अर्थात सिकन्दर) के पंजों से कबीर के आश्चर्यजनक ढंग से बच निकलने की प्रचलित कथा का उल्लेख है।

१५. 'सहसरानी' १०३४, १०३६। कमाल और कमाली कबीर के पुत्र और पुत्री माने जाते हैं।

१६. 'शब्द' ४२.३; 'सहसरानी' २९२, २९५। दरिया साहब नानक की चर्चा सम्मानपूर्वक करते हैं । दरिया साहब के समय में शाहाबाद जिले में नानक के बहुसंख्यक मतानुयायी थे और वे निश्चय ही उनलोगों के निकट सम्पर्क में आये होंगे। नानक सिख संप्रदाय के प्रवर्त्तक थे।
बुकानन साहब (ई० सन् १८०९–१०) के समय में शाहाबाद के विभिन्न थानों में नानक के अनुयायियों की प्रतिशत सापेक्ष जनसंख्या जानने के लिए देखिये––द्वितीय परिच्छेद 'दरिया और उनका समय' ।

१७. 'शब्द' २.२०, २२.६, ५०.१ । जन्म और मृत्यु की तिथियाँ प्रो० कानूनगो साहब के लेख ('प्रवासी' ज्येष्ठ १३३८ वंग सम्वत्) से ली गई हैं । दरिया साहब ने मीरा के कृष्णप्रेम में पागल होने का उल्लेख किया है । उन्होंने उस प्रचलित कहानी का भी उल्लेख किया है जिसमें कहा गया है कि मीरा को एक विष का प्याला दिया गया, जिसे उसने सहर्ष पी लिया ।

१८. 'शब्द' २०.१७, ४२.३; 'सहसरानी' १२०,३४८, ३५६, ७१३ । तुलसी और उनके 'रामचरितमानस' का जो महान् प्रभाव दरिया पर पड़ा, यह उनकी कविताओं से स्पष्ट प्रकट होता है । ऐसे अनेक उद्धरणों के अतिरिक्त जिनमें तुलसी का अनुकरण अथवा अनुसरण किया गया है एक सारी पुस्तक 'ज्ञानरत्न' ही 'रामचरितमानस' के सांचे में ढाली गई है। तृतीय खण्ड में दरिया और तुलसी के सम्बन्ध में एक पूरा परिच्छेद दिया गया है ।

१९. 'शब्द' ४२.३, 'सहसरानी' १२०; मलूक का जन्म ई० सन् १५७४ में कड़ा (इलाहाबाद) में हुआ था। अभी भी उनके पन्थ की गद्दियाँ सारे भारत में वर्तमान हैं।

पितृपरिचय तथा जाति

फ्रांसिस बुकानन ने ई० सन् १८०६-१० में शाहाबाद जिले का भ्रमण किया तथा दरिया साहब का एक मुसलमान दर्जी[२०] कहकर उल्लेख किया है। इस उक्ति की पुन: पुष्टि 'मूर्ति उखाड़' के एक पद से होती है जिसमें यह बताया गया है कि 'एक उदासी का जन्म धरकन्धा निवासी पीरू दर्जी के परिवार में हुआ था।[२१] पं० सुधाकर द्विवेदी लिखते हैं कि दरिया का जन्म एक मुसलमान माँ के गर्भ से हुआ था। वह औरंगजेब की प्रिय रानी की दर्जिन की पुत्री थी। उनके पिता पूरन शाह (पीरन शाह) को अपने भाइयों को फाँसी से बचाने के लिए बाध्य होकर उससे विवाह करना पड़ा था।[२२] किन्तु 'दरियासागर' के सम्पादक इस विचारधारा के पक्ष में हैं कि दरिया का जन्म उनके पिता की प्रथम पत्नी से ही हुआ था जो हिन्दू थी। इस पंथ के साधु भी प्राय: इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं कि दरिया साहब के माता-पिता मसलमान थे। जो भी हो, बुकानन के लेख की प्रामाणिकता पर सन्देह करना कठिन है, क्योंकि उन्होंने ई० सन् १८१० में अर्थात् दरिया साहब के निधन के लगभग ३० वर्ष बाद ही इस पंथ के तीन साधुओं के साक्ष्य के आधार पर अपना वृत्तान्त लिखा था। इसके अतिरिक्त 'मूर्तिउखाड़'[२३] में दरिया साहब ने अपने को पीरू दर्जी का पुत्र कहा है। अत: हम उनके माँ-बाप को असंदिग्ध रूप में मुसलमान मान सकते हैं। यदि हम यह मान भी लें कि उनका जन्म एक हिन्दू माँ से हुआ था तो इससे कोई विशेष अन्तर नहीं होता, क्योंकि हिन्दू समाज की व्यवस्था में वह व्यक्ति हिन्दू नहीं रहने पाता जिसके कुल के मुखिया ने इस्लाम धर्म ग्रहण करके एक मुसलमान स्त्री से विवाह कर लिया हो। डा० बी० बी० मजुमदार[२४] की यह धारणा है कि दरिया साहब संभवत एक सूफी सन्त थे तथा अपने धार्मिक विचारों की उदारता के चलते ही उन्होंने एक मुसलमान कन्या से विवाह किया था; किन्तु इस धारणा की अन्य कोई पुष्टि नहीं मिलती। दरिया साहब के हिन्दू होने की धारणा प्राय: इस कारण बद्धमूल हुई कि उनके अधिकांश शिष्य जन्म से हिन्दू हैं और ये शिष्य अपने को प्रकट रूप से एक मुसलमान का अनुयायी घोषित करने में हिचकते हैं। जहाँ तक दरिया साहब का संबंध है, उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाति और संप्रदाय का खण्डन किया है और इस दृष्टि से उन्हें हिन्दू या मुसलमान न मानकर इन दोनों से परे मानना ही ठीक होगा।

---

२०. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० सं०.२२०।

२१. 'मूर्तिउखाड़' १४७।

२२. 'दरियासागर' (वेल्वेडियर प्रेस) की भूमिका।

२३ 'ज्ञानदीपक' की भूमिका के अनुसार 'मूर्ति उखाड़' दरिया के एक भाई फक्कड़ द्वारा लिखी गई थी।

२४. 'सर्चलाइट' (११-६-१९३५) में दरिया साहब पर एक लेख।

साधु चतुरीदास[२५] बताते हैं कि दरिया साहब के पिता पीरन शाह उज्जैन के एक संभ्रान्त क्षत्रिय थे और उनके पूर्वज बहुत पहले बक्सर के निकट जगदीशपुर में राज्य करते थे। किन्तु सोनपुर मठ के साधु फौजदार दास ने बताया कि पीरन शाह के चार भाई थे; हीरन शाह, गिरिधर शाह, शाहजादा शाह तथा एक और जिसका नाम उन्हें स्मरण नहीं था। उनके कथनानुसार हीरन् के वंशज अब रघुनाथपुर (ई० आई० आर०) के निकट चौगाईं में बसते हैं; गिरिधर के वंशज डुमराँव के राजपरिवार हैं तथा शाहजादा के वंशज जगदीशपुर में बस गये थे और इसी वंश में पीछे चलकर प्रसिद्ध कुंवर सिंह हुए। संभव है, दरिया साहब के पूर्वज उज्जैन के क्षत्रिय रहे हों, पर उनका संबंध उज्जैन-क्षत्रियों के तीन प्रमुख स्थानों—डुमराँव, जगदीशपुर तथा दिलीपपुर—के परिवारों से मिलाना मेरे लिए संभव न हो सका। जगदीशपुर की वंशपरम्परा में शाहजादा सिंह का नाम आता तो अवश्य है, पर यह कुंवर सिंह के पिता थे तथा इनकी मृत्यु ई० सन् १८३० (सं १८८७) में हुई। अतः ये दरिया साहब के चाचा हो ही नहीं सकते, क्योंकि स्वयं दरिया साहब का जन्म ई० सन् १६७४ (सं० १७३१) में हुआ था। बाद को साधु चतुरीदास ने बताया है कि दरिया के निकटतम पूर्वज राजपुर के निवासी थे।[२६] उनकी दी हुई वंशावली नीचे दी जाती है[२७]—

रणजीत नारायण सिंह

- सुरतचन्द्र सिंह
  - सुमेर सिंह
    - पृथुदेव सिंह उर्फ पूरनशाह
      - दरिया[२८]
      - बस्ती
      - दल
      - फक्कड़ (फकीर)
      - उजियार
      - बुद्धिमती (बहन)
- शिवमंगल सिंह
- कृष्णदेवकुमार सिंह

२५. 'ज्ञानदीपक' की भूमिका में।

२६. साधु रामव्रत दास के अनुसार हेठुआ राजपुर जो धरकन्धा से ५ कोस पर है, दरिया का पैतृक स्थान हो सकता है। अब भी दरिया के वंशजों का कुछ सम्बन्ध वहाँ पड़ता है।

२७. साधु चतुरीदास का कहना है कि यह वंशावली मिति ३० अगहन सं० १८८१ के एक कागज से ली गई है। मैंने प्रतिलिपि तो देखी, पर मूलपत्र नहीं देखा है।

२८. 'मूर्तिउखाड़' में तेग बहादुर को उनका भाई बताया गया है। संभवतः वे चचेरे या मौसेरे भाई रहे हों।

इस हिसाब से पृथुदेव सिंह का ही इस्लाम ग्रहण करने के बाद दूसरा नाम पूरनशाह पड़ा। पूरनशाह (पीरन या पीरू) अपने एक मित्र प्रबोध नारायण सिंह की संरक्षा में अपनी सास के घर धरकंधा में बस गये। वहीं ननिहाल में दरिया का जन्म हुआ।[२९]

दरिया साहब के वंशजों में सबसे बूढ़े जीवित व्यक्ति अब मेघबरन दास जी हैं। यद्यपि मुझे उन्होंने बताया कि वे सन्त दरिया के वंशज हैं, पर अपनी पूरी वंशावली ठीक-ठीक नहीं बता सके। चौथी पीढ़ी पीछे तक की जो वंशावली उन्होंने मौखिक रूप से बताई, वह नीचे दी जाती है—

---

२९. धरकन्धा में जो कोठरी मुझे दरिया साहब का जन्मस्थान कहकर दिखाई गई, वह मठ के निकट ही है। यह एक छोटी-सी अंधेरी कोठरी है जो खपड़ों से छाई हुई है।

दरिया के माँ-बाप के विषय में एक किंवदन्ती भी है। कहा जाता है कि यह किंवदन्ती रायमती ने छत्रपति साहब को, उन्होंने मनदास को तथा उन्होंने [illegible] को और उन्होंने रामव्रतदास (मुझे बताने वाले) को बताई। वह इस प्रकार है—शाहाबाद जिले के बरांव (चरभुजी, डाकघर–पीरो) नामक ग्राम में कुंवर धीर सिंह नामक एक राजपूत सरदार रहते थे। मुसलमानों द्वारा डोला की माँग को अस्वीकार करने पर उनपर आक्रमण किया गया तथा उनका किला जीत लिया गया। कुंवर धीर की अधिकांश रानियाँ या तो डूब मरीं या अपने आपको चिता में जला डाला। किन्तु उनमें एक गर्भवती थी, उसे पकड़कर दिल्ली लाया गया। ऐसी ही घटना बक्सर में भी हुई। वहाँ की भी एक रानी पकड़कर दिल्ली लाई गई। दिल्ली में बरांव की रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा बक्सर की रानी ने एक कन्या को जन्म दिया। कारागार में रहते हुए भी उन्होंने अपने सीने-पिरोने तथा बेल-बूटे काढ़ने की कला से राजाधिराज को प्रसन्न कर लिया। राजाधिराज ने उन्हें वरदान मांगने को कहा। बक्सर की रानी ने अपनी पुत्री का विवाह बरांव रानी के पुत्र से हो—यही वरदान मांगा। ऐसा हो जाने पर बरांव की रानी ने पुनः घर लौट जाने की प्रार्थना की। यह भी स्वीकार कर लिया गया। पर जब वे बरांव पहुँचीं तो अपने किले को ध्वस्त पाया। अतः वे जगदीशपुर और तब डुमरांव गईं; पर उन्हें कहीं भी आश्रय नहीं मिला क्योंकि वे मुसलमान के घर रह चुकी थीं। अन्त में वे धरकन्धा पहुँचीं जहाँ निहालसिंह के पिता ने उन्हें आश्रय दिया और वे अपनी जीविका सीने-पिरोने से उपार्जन करने लगीं। समयक्रम से उनके पुत्र पूरन ने दरिया को जन्म दिया।

बानू दास
|
नौतन दास
|
कुंजबिहारी दास
|
मेघबरन दास

स्पष्ट है कि ये सभी हिन्दू नाम हैं। इनके परिवारवालों का रहन-सहन भी हिन्दुओं जैसा है, किन्तु मुझे बताया गया कि उनका वैवाहिक संबंध मुसलमान दर्जियों के साथ ही होता है। फिर भी सर्वदा ऐसा नहीं होता है और परिवार की कुछ स्त्रियों की भुजाओं पर गोदना के चिह्नों से यह सूचित होता है कि उनके हिन्दू स्त्रियाँ भी होती हैं। वे मुस्लिम त्योहारों तथा रोजा, नमाज या ताजिया से जितने उदासीन हैं उतने ही एकादशी, होली या दशहरा आदि हिन्दू पर्वों से। वे मुर्गी या बकरियाँ नहीं पालते तथा मांस-मछली भी नहीं खाते। वे अपने आध्यात्मिक गुरु दरियापंथी साधुओं का सम्मान करते हैं।

इस संबंध में यह बात ध्यान देने की है कि भारत में बहुत-सी ऐसी जातियाँ हैं जो इस्लाम धर्म में पूर्णतया घुलमिल नहीं सकी हैं। उदाहारणार्थ, युक्त प्रदेश की 'मलकाना' नामक जाति। इसके सदस्यों के विषय में १९११ ई० की युक्त प्रदेशीय जनगणना के अफसर ब्लण्ट साहब लिखते हैं—'ये हिन्दुओं की विभिन्न जातियों से धर्म-परिवर्तन द्वारा मुसलमान बने हैं। ये आगरा और उसके आस-पास के जिलों में, मुख्यतः मथुरा, एटा और मैनपुरी में बसते हैं। ये राजपूत, जाट और बनियों के वंशज हैं। ये अपने को मुसलमान बताने में बहुत संकोच करते ह और प्रायः अपनी भूतपूर्व जाति के नाम ही बताते हैं। ये 'मलकाना' नाम भी नहीं मानते। इनके नाम प्रायः हिन्दू हैं तथा ये प्रायः हिन्दू मंदिरों म ही पूजा करते ह। ये 'राम-राम' कहकर प्रणाम-वंदना करते हैं और प्रायः अपनी ही जाति में विवाह-सम्बन्ध करते हैं। इनमें से कुछ कभी-कभी मस्जिदों में भी चले जाते हैं, 'सुन्नत' कराते हैं, अपने शवों को गाड़ते हैं और कोई मित्र मुसलमान हो तो उसके साथ भोजन भी कर लेते हैं। ये 'मियाँ ठाकुर' कहलाना पसंद करते हैं। ये मानते हैं कि ये न तो हिन्दू हैं, और न मुसलमान, बल्कि उभय हैं।'[३०] इसी प्रकार कच्छ के मोमिन भी नाममात्र को ही शिया ह, क्योंकि व हिन्दुओं क त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—की पूजा करते ह और इमामशाह को, जिन्होंने कोई ३०० वर्ष पहले उनका धमपरिवर्त्तन किया, एक स्वर्गीय दूत तथा ब्रह्मा का अवतार मानते हैं।[३१] निकट पश्चिम

---

३०. सी० आई० आर० १९११, भाग–१, खण्ड–१, पृ० ११८

३१. सी० आई० आर० (भारतीय जनगणना की रिपोर्ट) १९११ बम्बई, पृष्ठ ५९

इस हिसाब से पृथुदेव सिंह का ही इस्लाम ग्रहण करने के बाद दूसरा नाम पूरनशाह पड़ा। पूरनशाह (पीरन या पीरू) अपने एक मित्र प्रबोध नारायण सिंह की संरक्षा में अपनी सास के घर धरकंधा में बस गये। वहीं ननिहाल में दरिया का जन्म हुआ।[२९]

दरिया साहब के वंशजों में सबसे बूढ़े जीवित व्यक्ति अब मेघबरन दास जी हैं। यद्यपि मुझे उन्होंने बताया कि वे सन्त दरिया के वंशज हैं, पर अपनी पूरी वंशावली ठीक-ठीक नहीं बता सके। चौथी पीढ़ी पीछे तक की जो वंशावली उन्होंने मौखिक रूप से बताई, वह नीचे दी जाती है—

---

२९. धरकन्धा में जो कोठरी मुझे दरिया साहब का जन्मस्थान कहकर दिखाई गई, वह मठ के निकट ही है। यह एक छोटी-सी अंधेरी कोठरी है जो खपड़ों से छाई हुई है।

दरिया के माँ-बाप के विषय में एक किंवदन्ती भी है। कहा जाता है कि यह किंवदन्ती रायमती ने छत्रपति साहब को, उन्होंने मनदास को तथा उन्होंने रामकिसुन दास को और उन्होंने रामव्रतदास (मुझे बताने वाले) को बताई। वह इस प्रकार है—शाहाबाद जिले के बरांव (चरभुजी, डाकघर–पीरो) नामक ग्राम में कुंवर धीर सिंह नामक एक राजपूत सरदार रहते थे। मुसलमानों द्वारा डोला की माँग को अस्वीकार करने पर उनपर आक्रमण किया गया तथा उनका किला जीत लिया गया। कुंवर धीर की अधिकांश रानियाँ या तो डूब मरीं या अपने आपको चिता में जला डाला। किन्तु उनमें एक गर्भवती थी, उसे पकड़कर दिल्ली लाया गया। ऐसी ही घटना बक्सर में भी हुई। वहाँ की भी एक रानी पकड़कर दिल्ली लाई गई। दिल्ली में बरांव की रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा बक्सर की रानी ने एक कन्या को जन्म दिया। कारागार में रहते हुए भी उन्होंने अपने सीने-पिरोने तथा बेल-बूटे काढ़ने की कला से राजाधिराज को प्रसन्न कर लिया। राजाधिराज ने उन्हें वरदान मांगने को कहा। बक्सर की रानी ने अपनी पुत्री का विवाह बरांव रानी के पुत्र से हो—यही वरदान मांगा। ऐसा हो जाने पर बरांव की रानी ने पुनः घर लौट जाने की प्रार्थना की। यह भी स्वीकार कर लिया गया। पर जब वे बरांव पहुँचीं तो अपने किले को ध्वस्त पाया। अतः वे जगदीशपुर और तब डुमरांव गईं; पर उन्हें कहीं भी आश्रय नहीं मिला क्योंकि वे मुसलमान के घर रह चुकी थीं। अन्त में वे धरकन्धा पहुँचीं जहाँ निहालसिंह के पिता ने उन्हें आश्रय दिया और वे अपनी जीविका सीने-पिरोने से उपार्जन करने लगीं। समयक्रम से उनके पुत्र पूरन ने दरिया को जन्म दिया।

बानू दास
|
नौतन दास
|
कुंजबिहारी दास
|
मेघबरन दास

स्पष्ट है कि ये सभी हिन्दू नाम हैं। इनके परिवारवालों का रहन-सहन भी हिन्दुओं जैसा है, किन्तु मुझे बताया गया कि उनका वैवाहिक संबंध मुसलमान दर्जियों के साथ ही होता है। फिर भी सर्वदा ऐसा नहीं होता है और परिवार की कुछ स्त्रियों की भुजाओं पर गोदना के चिह्नों से यह सूचित होता है कि उनके हिन्दू स्त्रियाँ भी होती हैं। वे मुस्लिम त्योहारों तथा रोजा, नमाज या ताजिया से जितने उदासीन हैं उतने ही एकादशी, होली या दशहरा आदि हिन्दू पर्वों से। वे मुर्गी या बकरियाँ नहीं पालते तथा मांस-मछली भी नहीं खाते। वे अपने आध्यात्मिक गुरु दरियापंथी साधुओं का सम्मान करते हैं।

इस संबंध में यह बात ध्यान देने की है कि भारत में बहुत-सी ऐसी जातियाँ हैं जो इस्लाम धर्म में पूर्णतया घुलमिल नहीं सकी हैं। उदाहारणार्थ, युक्त प्रदेश की 'मलकाना' नामक जाति। इसके सदस्यों के विषय में १९११ ई० की युक्त प्रदेशीय जनगणना के अफसर ब्लण्ट साहब लिखते हैं—'ये हिन्दुओं की विभिन्न जातियों से धर्म-परिवर्तन द्वारा मुसलमान बने हैं। ये आगरा और उसके आस-पास के जिलों में, मुख्यतः मथुरा, एटा और मैनपुरी में बसते हैं। ये राजपूत, जाट और बनियों के वंशज हैं। ये अपने को मुसलमान बताने में बहुत संकोच करते ह और प्रायः अपनी भूतपूर्व जाति के नाम ही बताते हैं। ये 'मलकाना' नाम भी नहीं मानते। इनके नाम प्रायः हिन्दू हैं तथा ये प्रायः हिन्दू मंदिरों म ही पूजा करते ह। ये 'राम-राम' कहकर प्रणाम-वंदना करते हैं और प्रायः अपनी ही जाति में विवाह-सम्बन्ध करते हैं। इनमें से कुछ कभी-कभी मस्जिदों में भी चले जाते हैं, 'सुन्नत' कराते हैं, अपने शवों को गाड़ते हैं और कोई मित्र मुसलमान हो तो उसके साथ भोजन भी कर लेते हैं। ये 'मियाँ ठाकुर' कहलाना पसंद करते हैं। ये मानते हैं कि ये न तो हिन्दू हैं, और न मुसलमान, बल्कि उभय हैं।'[३०] इसी प्रकार कच्छ के मोमिन भी नाममात्र को ही शिया ह, क्योंकि व हिन्दुओं क त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—की पूजा करते ह और इमामशाह को, जिन्होंने कोई ३०० वर्ष पहले उनका धमपरिवर्त्तन किया, एक स्वर्गीय दूत तथा ब्रह्मा का अवतार मानते हैं।[३१] निकट पश्चिम

३०. सी० आई० आर० १९११, भाग—१, खण्ड—१, पृ० ११८

३१. सी० आई० आर० (भारतीय जनगणना की रिपोर्ट) १९११ बम्बई, पृष्ठ ५९

में गोरखपुर जिले के लक्ष्मीपुर गाँव में बहुत-से मुसलमान ऐसे हैं जो चोटी या शिखा रखते हैं तथा जिनका रहन-सहन हिन्दुओं का-सा है।

अतः हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि दरिया साहब का जन्म एक दर्जी के कुल में हुआ था जो पूर्णतया इस्लाम में परिवर्त्तित न हो पाया था और जिसपर हिन्दुत्व की छाप सदा बनी रही। यही कारण है कि दरिया साहब हिन्दुओं की परम्पराओं और गाथाओं से पूर्णतया परिचित थे।[३२]

दरिया की कृतियों में जीवन-चरित-सम्बन्धी निर्देश

ज्ञानदीपक में दरिया साहब (सुक्रित) ने जो आत्मचरित लिखा है उसमें कुछ तो कल्पित है और कुछ सत्य। उसका निम्नलिखित सारांश[३३] प्रधानतः 'ज्ञानदीपक' के आधार पर दिया जाता है यद्यपि अन्य पुस्तकों से भी कुछ बातें जहाँ-तहाँ ली गई हैं।

सुक्रित के जन्म की कहानियाँ

सृष्टि-निर्माण के बहुत काल बाद सत्पुरुष को उन जीवों पर दया आई जो इस मृत्युलोक में आकर सदा के लिए अभिशप्त हो गये। उन्होंने अपने पुत्र (अंश) सुक्रित (संस्कृत-सुकृत) को बुलाया, उसे मरणशील प्राणियों की दुरवस्था बताई और जम्बू द्वीप में अवतार लेकर 'सतनाम' की आस्था बढ़ाने तथा हंसों (आत्माओं) का उद्धार करने की आज्ञा दी।[३४]

सुक्रित ने बड़ी नम्रता से आज्ञा ग्रहण की तथा उनपर जो उत्तरदायित्व सौंपा गया था, उसकी पूर्त्ति करने की प्रतिज्ञा की।[३५]

उन्होंने अमरलोक से अपनी यात्रा आरंभ की और क्रमशः दया द्वीप, पुहुपद्वीप, अम्बू द्वीप, सहज द्वीप, तथा पायर द्वीप होते हुए मानसरोवर पहुँचे। उनके आने की सूचना तत्क्षण यम को दे दी गई।[३६]

---

३२. दरिया साहब की जाति के बारे में एक अप्रत्यक्ष संकेत संभवतः उनके शब्द १८·५६ में मिलता है जिसमें वे लोगों को उस दर्जी की आराधना करने की आज्ञा देते हैं जिसने इस शरीर रूपी सुन्दर परिधान का निर्माण किया है।

३३. अन्य परिच्छेदों में लिखी विशेषताएँ इसमें नहीं दी गई हैं।

३४. 'ज्ञानदीपक' ७६·१–७७·० के ये तथा अन्य पद जिनका उल्लेख इस सारांश में किया गया है, इस पुस्तक के अंत में जो 'उद्धृत पद' दिये गए हैं उनमें नहीं हैं। वे मुद्रित 'ज्ञानदीपक' में देख लिये जा सकते हैं। इस सारांश में जो क्रम दिया गया है वह मूल के छन्दों के क्रम के अनुसार है। यद्यपि पूर्व जन्म की कहानियाँ काल्पनिक हैं तथापि उनमें दरिया के वास्तविक जीवन की ओर अऋजु संकेत मिलते हैं।

३५. 'ज्ञानदीपक' ७७·१—७८.०

३६. 'ज्ञानदीपक' ७८.१—७९.०

परिणामस्वरूप सुक्ति और यम के दूतों में घोर युद्ध हुआ जिसमें सुक्रित विजयी रहे। तब निरंजन[३७] आये और उनसे उनके परिचय तथा अधिकार के संबंध में पूछा। सुक्ति ने उन्हें डाँट बताई और जम्बू द्वीप की ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक रानी के गर्भ में प्रवेश किया तथा कालक्रम से बालक रूप में अवतीर्ण हुए। पण्डितों ने उनका नाम सुक्ति रखा। बारह वर्ष की अवस्था के बाद से ही उनके विचार औरों से न्यारे होने लगे।[३८]

उन्होंने यज्ञों में जीव-हत्या करने के लिए तथा सच्चा आत्मज्ञान प्राप्त न करके अनेक देवताओं और उनकी मूर्तियों की पूजा करने के लिए अपने कुल-पुरोहित की भर्त्सना की।[३९]

पुरोहितों ने उत्तर दिया कि आखेट भी राजा के कर्त्तव्यों में से है। अतः उससे यह आशा नहीं की जाती कि वह जीव-हत्या न करे। उसे वेदोक्त मार्गों का ही अनुसरण करना चाहिए।[४०]

सुक्ति ने पुनः एक बार उस ब्राह्मण की सुबुद्धि जाग्रत करने की चेष्टा की और कहा कि अल्प अवस्था होने के कारण उनके शब्दों की अवहेलना करनी उचित नहीं; क्योंकि यदि पुरोहित जी अपने पुराने मार्ग पर ही रहें तो निश्चय ही उन्हें यम की यातना भुगतनी होगी।[४१]

पुरोहित ने राजकुमार के इन 'राक्षसी' आचार की सूचना राजा को दी तथा उसे घर से निकाल देने का आग्रह किया।[४२]

राजा ने सारी बातें रानी को बताई और घर से निकाल देने की बात का समर्थन किया। परन्तु रानी ने इसका विरोध किया और कहा--'मेरे पुत्र के बदले मेरे ही प्राण क्यों न ले लो।'[४३]

जब सुक्ति ने अपने माता-पिता को दुखी देखा और यह जाना कि उनकी चिन्ताओं के कारण व ही हैं तो उन्होंन पिता को यह समझाने का प्रयत्न किया कि पुरोहित दुष्ट हैं। परन्तु पिता पुत्र की बातें क्यों सुनते ? उन्होंनें उसे कुल-गुरु के मार्ग पर चलने की आज्ञा दी।[४४]

---

३७. दरिया की विचारधारा में निरंजन का क्या स्थान था, इसे द्वितीय खण्ड के तृतीय परिच्छेद में देखिए।

३८. 'ज्ञानदीपक', ७९.१—८०.०

३९. 'ज्ञानदीपक', ८०.१—८१.०

४०. 'ज्ञानदीपक', ८१.१—८२.०

४१. 'ज्ञानदीपक', ८२.१—८३.०

४२. 'ज्ञानदीपक', ८३.१—८४.०

४३. 'ज्ञानदीपक', ८४.१—८६.०

४४. 'ज्ञानदीपक', ८६.१—८८.०

इसके अतिरिक्त उन्होंने राजकुमार के भोग-विलास का पूरा सामान तैयार किया और अपने हठ से डिगान का प्रयत्न किया। परन्तु सुक्रित अपने निश्चय पर दृढ़ थे। उन्होंने कहा कि भोग-विलास क्षणभंगुर है, मुक्ति तो सद्गुरु की आज्ञाओं का पालन करने में ही है।[४५]

किन्तु राजा को कुल-गुरु की आज्ञा भंग करने का साहस न हुआ।[४६]

जब सुक्रित ने २० वर्ष की अवस्था प्राप्त की, तो उन्होंने सभी संबंधियों के रोते-कलपते अपना घर-द्वार छोड़ दिया और जहाँ-तहाँ भटकते रहे। जनता ने उनका और उनकी शिक्षाओं का स्वागत मिश्र भाव से किया—कुछ लोगों ने उनका सम्मान किया तथा कुछ लोगों ने उनकी अवहेलना भी की। धीरे-धीरे वे हस्तिनापुर (आधुनिक दिल्ली) पहुँचे और कुछ दिनों तक वहाँ ठहरे।[४७]

वहाँ से वे अयोध्या (अयोध्यापुरी) गये और सरयू नदी के तट पर ठहरे। नगर धन-धान्य-सम्पन्न और सजावट से शोभायमान था। राजा हरिश्चन्द्र पूरे ठाट-बाट के साथ यहाँ राज करते थे।[४८]

सुक्रित ने राजा से भेंट करके उन्हें सद्गुरु का मार्ग अनुसरण करने की शिक्षा दी।[४९]

एक हजार वर्ष के बाद सुक्रित पुनः अपने महल में आये। मंत्री ने तत्कालीन राजा कनक सिंह को सुक्रित का पर्व इतिहास और परिचय बताया। राजा ने उनका बड़ा ही सम्मानपूर्ण स्वागत किया, तथा उन्हें अपनी भक्ति का विश्वास दिलाया।[५०]

परन्तु उनके सामने एक कठिनाई आई। बहुत समझाने-बुझाने पर भी उनकी रानियाँ सुक्रित के सम्मुख आने को तैयार न हुईं। सच है, "स्त्री और जल सदा नीचे ही गिरते हैं"। किन्तु एक रानी जिसे वे सबसे कम प्यार करते थे, राजा की बात मानने को तैयार हुई।[५१] वह अपने पति के साथ सुक्रित के सम्मुख आई और बड़ी नम्रता के साथ दीक्षा ग्रहण की। 'माया' और सांसारिकता के विरुद्ध जो शिक्षाएं उन्होंने पाई उनसे वे इतने प्रभावित हुए कि राजभार राजकुमार के कन्धों पर सौंप कर त्याग का मार्ग ग्रहण कर 'सतनाम' की उपासना में लग गये।

जनता के बीच अपनी शिक्षाओं का प्रचार करने के बाद सुक्रित ने इस शरीर का परित्याग कर दिया तथा पुनः एक राज-परिवार में जन्म-ग्रहण किया। पर इस जन्म

---

४५. 'ज्ञानदीपक' ८८.१—९०.०
४६. 'ज्ञानदीपक' ९०.१—९२.०
४७. 'ज्ञानदीपक' ९२.१—९५.० । मूल में 'हंसनापुर'।
४८. 'ज्ञानदीपक' ९५.१—९७.०
४९. 'ज्ञानदीपक' ९७.१—१०१.०
५०. 'ज्ञानदीपक' १०१—१०२.०
५१. 'ज्ञानदीपक' १०२.१—१०६.०

में वे अप्रकट रूप में ही रहे। त्रेता युग में राजा धरमसेनी के घर वे पुनः गर्भ में आये और जन्म धारण करने पर उनका नाम 'करुनामा' पड़ा।[५२]

उन्होंने राजा-रानी को बताया कि उनका वास्तविक घर अमरपुर (स्वर्ग) है, वे ही 'सतयुग' में भी उनके माता-पिता थे परन्तु उस समय उनकी बात न मानकर राजा ने अपने आपको पुनर्जन्म की बेड़ियों में ला जकड़ा। राजा-रानी यह सब सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और सुक्रित की बातें हृदय से लगाईं। समय आने पर माता-पिता के अनुनय-विनय के होते हुए भी उन्होंने महल का परित्याग कर दिया और वशिष्ठ मुनि से मिले।[५३]

वशिष्ठ से उनका घोर वाद-विवाद हुआ। वशिष्ठ ने वेद तथा कर्मकाण्ड का पक्ष समर्थन किया पर सुक्रित ने उनकी निस्सारता दिखाकर सद्गुरु के उच्चतर मार्ग की स्थापना की।[५४] × × × × ×[५५]

त्रेतायुग बीता, और द्वापर आया। सुक्रित का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका नाम मुनीन्द्र पड़ा। उनके पिता एक महान् पण्डित थे। वे वेद और पुराण-विहित कर्मकाण्ड में दक्ष थे। आस्तिक पिता तथा नास्तिक पुत्र के बीच एक द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ। पुत्र मूर्त्ति-पूजा का परित्याग कर सद्गुरु का मार्ग अपनाने के पक्ष में थे।[५६]

कुछ दिन बाद मुनीन्द्र घर छोड़कर काशी चले गये जो कि पाषण्ड का गढ़ था।[५७]

---

५२. 'ज्ञानदीपक' १०६.१—११०.०

५३. 'ज्ञानदीपक' ११०.१—११८.०

५४. 'ज्ञानदीपक' ११८.१—१२६.०

५५. 'ज्ञानदीपक' १२६.१—१३३.२६; इस स्थान पर आकर कवि ने उपकथा के रूप में एक कहानी जोड़ दी है। मनु और उनकी रानी ने घोर तपस्या की तथा दशरथ और कौशल्या के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण किया। एक बार उनके राज्य में घोर अनावृष्टि हुई। राजा को श्रृंगी ऋषि को प्रधान पुरोहित बनाकर यज्ञ करने की सलाह दी गई। परन्तु श्रृंगी ऋषि जंगल में रहते थे और नगर में आने को तैयार न थे। ऋषि को डिगाने और मनाकर लाने के लिए नौका में गान-वाद्य की पूरी सामग्री के साथ एक नर्तकी गई। यह उपाय सफल हुआ। श्रृंगी ने आकर यज्ञ किया जिससे वर्षा हुई। उन्होंने तीनों रानियों को यज्ञावशेष चरु दिया जिससे वे गर्भवती हुईं तथा समय पूरा होने पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। वे वास्तव में क्रमशः निरंजन, विष्णु, शिव और ब्रह्मा के अंश थे।

५६. 'ज्ञानदीपक' १३३.२७—१३९.०

५७. काशी में प्रचलित पूजा तथा तपस्या की विभिन्न विधियों का दरिया साहब ने बड़ा स्पष्ट वर्णन किया है।

वहाँ उन्होंने दुर्वासा के दर्शन किये। दुर्वासा अन्न-जल तक परित्याग करके घोर तपस्या में लीन थे।[५८] ×××××× [५९]

सुकृत का कबीर के रूप में जन्म

सुकृत ने इस नाशवान् शरीर का परित्याग किया तथा पुनः एक राजपरिवार में जन्म-ग्रहण किया, पर अप्रकट रूप में रहे।[६०] इस प्रकार बिना किसी उल्लेखनीय घटना के उनके दस जन्म बीते। और तब उनका जन्म पुनः काशी में हुआ।[६१] किसी ने उन्हें पहचाना नहीं। चन्दन साहु की स्त्री ने उन्हे एक पोखरे के किनारे पड़ा पाया। जब चन्दन को इस बात का पता चला, तो उसने अपनी स्त्री को परिवार में एक बच्चा सम्मिलित करने के लिए डाँट-फटकार बताई। फलतः उस बच्चे को उसी स्थान पर फिर फेंक दिया गया जहाँ से उठाया गया था। तब नीरू जुलाहे की पत्नी आई। उसने इन्हें लाकर बड़े यत्न से इनका लालन-पालन किया क्योंकि उसे कोई दूसरा बच्चा न था। चमत्कार की बात है कि उस माता की छाती में दूध भर आया, और उसे शिशु के पालन में कोई कठिनाई न हुई। वे बड़े हुए तो उन्होंने सतनाम के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की। पण्डितों से अनेक संघर्ष हुए जिनमें सर्वदा वे ही विजयी रहे।[६२]

कुछ लोग उनसे द्वेष करते रहे। वे इन्हें अपढ़ व्यक्ति समझते। माँ-बाप इन्हें त्याग के मार्ग से हटाना चाहते थे। पर वे वैवाहिक जीवन के सुखों का परित्याग करने पर दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्होंने माता-पिता को बताया कि पूर्वजन्म में वे एक ब्राह्मण दम्पती थे, पर 'सतनाम' की आराधना न करने के कारण ही उनका जन्म जुलाहे के छोटे कुल में हुआ।[६३]

---

५८. 'ज्ञानदीपक', १३६.१—१४२.८

५९. 'ज्ञानदीपक', १४२.६—१४७.०; इस स्थान पर आकर कबीर ने बताया है कि दुर्वासा भी उर्वशी द्वारा मोहित कर लिये गये। उन्होंने कुछ दिन उसके संग बिताया और तब उसके किसी अपराध पर उसे शाप दे दिया। फलतः वह दिनभर घोड़ी बनी रहती थी और रात में कन्या बन जाती थी। दंगवे के राजा तब उस घोड़ी से आनन्द उठाने लगे। हजारों स्त्रियाँ रहने पर भी कृष्ण उस घोड़ी को पाने के लिए उत्सुक थे। माया का ऐसा ही बन्धन है।

६०. 'मूर्त्ति उखाड़' में अगस्त्य, नामदेव, लोमस, बलभद्र और शेष को भी सुकृत का अवतार बताया गया है। ३५१—३५४।

६१. कबीर के रूप में;

६२. 'ज्ञानदीपक', १४२.६—१४६.०

६३. 'ज्ञानदीपक', १४६.१—१५१.०

कबीर को ज्ञात हुआ कि गुरु अनिवार्य है और उन्होंने स्वामी रामानन्द के प्रति अपनी भक्ति स्थिर करनी चाही। पर कठिनाई यह थी कि कबीर जैसे 'तुर्कों' की पहुँच रामानन्द तक कैसे हो।[६४]

नित्य प्रति उषाकाल में रामानन्द स्नान करने जाया करते थे। कबीर उसी समय उनके मार्ग में पड़ गये और रामानन्द के पैर उनके शरीर से छू गये। रामानन्द ने उन्हें उठाकर आश्वासन दिया और कहा कि 'पुत्र, रामनाम का जप करो।' काशी में यह बात फैल गई कि कबीर ने रामानन्द से दीक्षा ली है। जब यह समाचार स्वामी जी के कानों में पड़ा तो उन्होंने कबीर को बुलवाया। कबीर बाहर बैठे रहे, स्वामी जी मन्दिर में पूजा कर रहे थे। वे इस कठिनाई में थे कि माला मूर्त्ति के गले में कैसे पहनाई जाय, क्योंकि माला छोटी थी और सिर पर से नीचे नहीं उतरती थी।[६५]

कबीर ने बाहर से ही पुकार कर कहा कि 'कृपया गाँठ ढीली कर दीजिए जिससे माला की परिधि बढ़ जाय।' रामानन्द को इस अद्भुत लीला पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कबीर को बगल में बुलाया और कहा कि विधिपूर्वक दीक्षा न होने के कारण तुम पूर्ण अर्थ में मेरे शिष्य नहीं हो। पर कबीर अपनी टेक पर अड़े रहे और रामानन्द को ही अपना गुरु घोषित किया।[६६]

तब गुरु तथा नवदीक्षित शिष्य में विचार-विमर्श होने लगा। गुरु सगुण उपासना के पक्ष में थे और शिष्य निर्गुण उपासना के पक्ष में।[६७]

गुरु की सम्यक् अभ्यर्थना करने के पश्चात् कबीर वहाँ से चल दिये और घूम-घूम कर प्रचार करने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही भटक रहे हैं। कालोपरान्त वे मगहर पहुँचे जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। हिन्दू तथा तुर्क दोनों ने ही कबीर को अपना समझा; हिन्दुओं ने उन्हें अपना गुरु तथा मुसलमानों ने उन्हें अपना पीर बताया। वे सत्पुरुष (ईश्वर) के सोलह पुत्रों में से क हैं जो पुनः-पुनः अवतार ग्रहण करते हैं।[६८]

दो सौ वर्ष के बाद उनका धर्मदास के रूप में पुनः जन्म हुआ। धर्मदास ने कंठी तोड़कर फेंक दी और अपना एक पंथ स्थापित किया जिसका नाम उन्होंने कबीर पंथ रखा और जिसमें आगे चलकर बारह उपशाखाएँ हुईं।[६९]

दरिया के प कालक्रम से सत्पुरुष ने सुक्रित को अवतार ग्रहण करने का आदेश दिया। फलतः में सुक्रित सुक्रित माता के गर्भ में आए। ईश्वर फकीर के वेश में प्रकट हुए और बालक का

६४. ज्ञा० दी०, १५१.१—१५२.०

६५. ज्ञा० दी०, १५२.१—१५३.०

६६. ज्ञा० दी०, १५३.१—१५४.०

६७. ज्ञा० दी०, १५४.१—१५७.०

६८. ज्ञा० दी०, १५७.१—१५६.०

६९. ज्ञा० दी०, १५६.१—१६०.०

कबीर को ज्ञात हुआ कि गुरु अनिवार्य है और उन्होंने स्वामी रामानन्द के प्रति अपनी भक्ति स्थिर करनी चाही। पर कठिनाई यह थी कि कबीर जैसे 'तुर्कों' की पहुँच रामानन्द तक कैसे हो।[६४]

नित्य प्रति उषाकाल में रामानन्द स्नान करने जाया करते थे। कबीर उसी समय उनके मार्ग में पड़ गये और रामानन्द के पैर उनके शरीर से छू गये। रामानन्द ने उन्हें उठाकर आश्वासन दिया और कहा कि 'पुत्र, रामनाम का जप करो।' काशी में यह बात फैल गई कि कबीर ने रामानन्द से दीक्षा ली है। जब यह समाचार स्वामी जी के कानों में पड़ा तो उन्होंने कबीर को बुलवाया। कबीर बाहर बैठे रहे, स्वामी जी मन्दिर में पूजा कर रहे थे। वे इस कठिनाई में थे कि माला मूर्त्ति के गले में कैसे पहनाई जाय, क्योंकि माला छोटी थी और सिर पर से नीचे नहीं उतरती थी।[६५]

कबीर ने बाहर से ही पुकार कर कहा कि 'कृपया गाँठ ढीली कर दीजिए जिससे माला की परिधि बढ़ जाय।' रामानन्द को इस अद्भुत लीला पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कबीर को बगल में बुलाया और कहा कि विधिपूर्वक दीक्षा न होने के कारण तुम पूर्ण अर्थ में मेरे शिष्य नहीं हो। पर कबीर अपनी टेक पर अड़े रहे और रामानन्द को ही अपना गुरु घोषित किया।[६६]

तब गुरु तथा नवदीक्षित शिष्य में विचार-विमर्श होने लगा। गुरु सगुण उपासना के पक्ष में थे और शिष्य निर्गुण उपासना के पक्ष में।[६७]

गुरु की सम्यक् अभ्यर्थना करने के पश्चात् कबीर वहाँ से चल दिये और घूम-घूम कर प्रचार करने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही भटक रहे हैं। कालोपरान्त वे मगहर पहुँचे जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। हिन्दू तथा तुर्क दोनों ने ही कबीर को अपना समझा; हिन्दुओं ने उन्हें अपना गुरु तथा मुसलमानों ने उन्हें अपना पीर बताया। वे सत्पुरुष (ईश्वर) के सोलह पुत्रों में से क है जो पुनः-पुनः अवतार ग्रहण करते हैं।[६८]

दो सौ वर्ष के बाद उनका धर्मदास के रूप में पुनः जन्म हुआ। धर्मदास ने कंठी तोड़कर फेंक दी और अपना एक पंथ स्थापित किया जिसका नाम उन्होंने कबीर पंथ रखा और जिसमें आगे चलकर बारह उपशाखाएँ हुईं।[६९]

दरिया के प कालक्रम से सत्पुरुष ने सुक्रित को अवतार ग्रहण करने का आदेश दिया। फलतः
में सुक्रित सुक्रित माता के गर्भ में आए। ईश्वर फकीर के वेश में प्रकट हुए और बालक का

६४. ज्ञा० दी०, १५१.१—१५२.०
६५. ज्ञा० दी०, १५२.१—१५३.०
६६. ज्ञा० दी०, १५३.१—१५४.०
६७. ज्ञा० दी०, १५४.१—१५७.०
६८. ज्ञा० दी०, १५७.१—१५६.०
६९. ज्ञा० दी०, १५९.१—१६०.०

नाम दरिया रखने का आदेश दिया। माँ ने वसा ही किया। जब दरिया नौ वर्ष के हुए तो उनका विवाह कर दिया गया। पन्द्रहवाँ वर्ष पूरा होते-होते वे सांसारिक जंजालों से पूर्णतया उदासीन हो गये तथा उनके हृदय में भीषण अन्तर्द्वन्द्व आरम्भ हुआ।[७०]

सोलह की अवस्था में ही वे सपनों में 'शब्द' (दिव्य उपदेश के पदों) का उच्चारण करते तथा जागने पर भी उन्हें स्मरण रखते।[७१] उन्हें पूर्व जन्म की स्मृतियाँ हो आईं।[७२]

बीस वर्ष की अवस्था पहुँचने पर उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे प्रत्यक्ष रूप से सगुण उपासना के विरुद्ध प्रचार करने लगे। मांस-मछली और अन्य दुर्गुणों का निषेध किया तथा सद्गुरु और सत्पुरुष के मार्ग के अनुसरण का प्रचार किया। दरिया साहब के माता-पिता और भाइयों ने भी उनका अनुसरण किया। 'दरियासागर' उनकी प्रथम रचना थी।[७३] संत दरिया की प्रसिद्धि ने धरकन्धा के पास ही नोखागढ़ के जमींदार शुजाशाह का ध्यान आकर्षित किया। वे सन्त के शिष्य हो गये और अनेक विषयों पर उनसे शिक्षा ग्रहण की। राम की कथा का वास्तविक अर्थ भी उन्होंने समझा।[७४]

उस ग्राम में गणेश पण्डित नाम के एक ब्राह्मण विद्वान् थ। वे मूर्त्ति-पजा, बलि-प्रथा तथा तीर्थयात्रा आदि का समर्थन करते थे। दरियासाहब के विरुद्ध उन्होंने पूर्ण शक्ति से प्रचार किया। पर दरिया उनकी कोई चिन्ता न कर अपने शिष्यों में प्रचार करते रहे।[७५] 'मूर्त्तिउखाड़' में इन दोनों के बीच जो शास्त्रीय विवाद हुआ उसका विशद वर्णन है। विवाद मूर्त्ति-पूजा आदि अनेक विषयों पर हुआ। एक बार दरियासाहब आदि भवानी (दुर्गा) की वह मूर्त्ति जो धरकन्धा से कुछ ही दूर पर थी, कहीं हटवाकर छिपवा दी।[७६] थोड़े दिनों के बाद बात खुल गई, पर दरियासाहब ने तबतक मूर्त्ति का पता बताना अस्वीकार कर दिया जबतक कि लोग बलिप्रथा उठा देने की प्रतिज्ञा न करें। उनके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर मूर्त्ति यथास्थान रख दी गई। परन्तु दरियासाहब ने देवी की मूर्त्ति का जो अपमान किया, इससे सनातनवादी उनके शत्रु हो गये। यहाँ तक कि उनलोगों ने उन्हें देवी की वेदी पर बलि चढ़ा देना चाहा। एक बार इस

---

७०. ज्ञा० दी०, १६०.१—१६२.०

७१. ज्ञा०, दी०, १६१.६

७२. ज्ञा० दी०, १६२.०

७३. ज्ञा० दी०, १६२.१—१६२.३१

७४. गुरु और शिष्य का विशद वार्तालाप ही 'ज्ञानरत्न' का विषय है।

७५. ज्ञानदीपक, १६३.०—१६६.०; । इन्हीं शिक्षाओं का प्रचार 'गणेश-गोष्ठी' का विषय है।

७६. मूर्त्तिउखाड़, ४१; संभवतः वही मूर्त्ति धरकन्धा के निकट एक मन्दिर में अब जखनी भवानी (यक्षिणी भवानी) के नाम से प्रसिद्ध है।

भयावह लक्ष्य की पूर्त्ति के हेतु बलात् पकड़कर ले जाने के लिए एक झुण्ड ने उनका स्थान घेर भी लिया।[७७] पर भीखम खाँ, दुन्द खां, तैयब, दलन, अजीज तथा उनके अन्य अनुयायियों ने तुरत वहाँ पहुँचकर भीड़ को भगा दिया और उनकी रक्षा की। कुछ दिनों के बाद सकरवार देश के 'गाँव मुकद्दम'[७८] (गाँव के राजा) का एक दूत उन्हें बुलाने आया। जब दरियासाहब उसके साथ वहाँ पहुँचे, तो राजा ने तलवार खींचकर क्रोध से बातें करते हुए उन्हें मृत्युदण्ड की धमकी दी। उसी समय एक अचरज हुआ। सिंहनाद जैसी एक भीषण गर्जना सुनकर सभी विरोधी भाग-खड़े हुए।[७९]

कुछ समय के बाद दरियासाहब गंगा के तीर पर अवस्थित बहादुरपुर गये जहाँ निहाल सिंह रहते थे।[८०] वहाँ पुनः इनके और गणेश पण्डित के बीच वाद-विवाद हुआ। अन्त में यही निश्चित हुआ कि यदि गंगा दरियासाहब के स्थान तक बढ़ आये और इनके चरणों को पखारे तो इनकी बात सत्य मानी जायगी। आश्चर्य, गंगा सन्त के पैरों को पखारने चली आई। इस घटना के बाद उनका बड़ा ही सम्मान हुआ तथा उन्हें ईश्वर का अंश माना जाने लगा।

फिर दरियासाहब बीरबल नामक एक ब्राह्मण के साथ 'उत्तरापंथ' की ओर बढ़े। उन्होंने नौका पर गंगा पार किया और हरदी (जिला बलिया) पहुँचे। वहाँ के नगर-नृप ने उनका बड़ा सम्मान किया और वे वहाँ एक महीना ठहरे। वहाँ से वे मगहर गये। वे और आगे अयोध्या तक जाना चाहते थे, परन्तु साहब (ईश्वर) ने उन्हें दर्शन दिया और अपनी जन्मभूमि पर लौट आने का आदेश दिया। इस प्रकार पाँच महीनों के प्रवास के बाद आषाढ़ मास में दरियासाहब अपने हित-कुटम्बों की आनन्द-वृद्धि करते हुए अपने गांव लौट आए। उनकी पत्नी (जिसे वे 'दासी' कहकर पुकारते थे) ने चरणामृत लिया। आश्विन मास में जाड़ा आने पर सत्पुरुष ने अनेक बार

---

७७. मूर्त्तिउखाड़, १३७

७८. मूर्त्तिउखाड़, १७७

७९. मूर्त्तिउखाड़, १८६–८७; दूसरी पुस्तकों में जो इसका प्रसंग आया है, उसमें दरियासाहब की रक्षा के हतु एक बड़ी सेना का अचरजरूप में उपस्थित होना बताया गया है।

८०. मूर्त्तिउखाड़, १९१—९२; प्रसंगवश दरियासाहब ने अपने भाई तेगबहादुर, एक भतीजा, बली क्षत्रिय, बीरबल, फक्कड़ शाह, बस्तीदास और गुनादास का भी उल्लख किया है।

नाम दरिया रखने का आदेश दिया। माँ ने वैसा ही किया। जब दरिया नौ वर्ष के हुए तो उनका विवाह कर दिया गया। पन्द्रहवाँ वर्ष पूरा होते-होते वे सांसारिक जंजालों से पूर्णतया उदासीन हो गये तथा उनके हृदय में भीषण अन्तर्द्वन्द्व आरम्भ हुआ।[७०]

सोलह की अवस्था में ही वे सपनों में 'शब्द' (दिव्य उपदेश के पदों) का उच्चारण करते तथा जागने पर भी उन्हें स्मरण रखते।[७१] उन्हें पूर्व जन्म की स्मृतियाँ हो आईं।[७२]

बीस वर्ष की अवस्था पहुँचने पर उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे प्रत्यक्ष रूप से सगुण उपासना के विरुद्ध प्रचार करने लगे। मांस-मछली और अन्य दुर्गुणों का निषेध किया तथा सद्गुरु और सत्पुरुष के मार्ग के अनुसरण का प्रचार किया। दरिया साहब के माता-पिता और भाइयों ने भी उनका अनुसरण किया। 'दरियासागर' उनकी प्रथम रचना थी।[७३] संत दरिया की प्रसिद्धि ने धरकन्धा के पास ही नोखागढ़ के जमींदार शुजाशाह का ध्यान आकर्षित किया। वे सन्त के शिष्य हो गये और अनेक विषयों पर उनसे शिक्षा ग्रहण की। राम की कथा का वास्तविक अर्थ भी उन्होंने समझा।[७४]

उस ग्राम में गणेश पण्डित नाम के एक ब्राह्मण विद्वान् थ। वे मूर्त्ति-पजा, बलि-प्रथा तथा तीर्थयात्रा आदि का समर्थन करते थे। दरियासाहब के विरुद्ध उन्होंने पूर्ण शक्ति से प्रचार किया। पर दरिया उनकी कोई चिन्ता न कर अपने शिष्यों में प्रचार करते रहे।[७५] 'मूर्त्तिउखाड़' में इन दोनों के बीच जो शास्त्रीय विवाद हुआ उसका विशद वर्णन है। विवाद मूर्त्ति-पूजा आदि अनेक विषयों पर हुआ। एक बार दरियासाहब आदि भवानी (दुर्गा) की वह मूर्त्ति जो धरकन्धा से कुछ ही दूर पर थी, कहीं हटवाकर छिपवा दी।[७६] थोड़े दिनों के बाद बात खुल गई, पर दरियासाहब ने तबतक मूर्त्ति का पता बताना अस्वीकार कर दिया जबतक कि लोग बलिप्रथा उठा देने की प्रतिज्ञा न करें। उनके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर मूर्त्ति यथास्थान रख दी गई। परन्तु दरियासाहब ने देवी की मूर्त्ति का जो अपमान किया, इससे सनातनवादी उनके शत्रु हो गये। यहाँ तक कि उनलोगों ने उन्हें देवी की वेदी पर बलि चढ़ा देना चाहा। एक बार इस

---

७०. ज्ञा० दी०, १६०.१—१६२.०

७१. ज्ञा०, दी०, १६१.६

७२. ज्ञा० दी०, १६२.०

७३. ज्ञा० दी०, १६२.१—१६२.३१

७४. गुरु और शिष्य का विशद वार्तालाप ही 'ज्ञानरत्न' का विषय है।

७५. ज्ञानदीपक, १६३.०—१६६.०; । इन्हीं शिक्षाओं का प्रचार 'गणेश-गोष्ठी' का विषय है।

७६. मूर्त्तिउखाड़, ४१; संभवतः वही मूर्त्ति धरकन्धा के निकट एक मन्दिर में अब जखनी भवानी (यक्षिणी भवानी) के नाम से प्रसिद्ध है।

भयावह लक्ष्य की पूर्त्ति के हेतु बलात् पकड़कर ले जाने के लिए एक झुण्ड ने उनका स्थान घेर भी लिया।[७७] पर भीखम खाँ, दुन्द खां, तैयब, दलन, अजीज तथा उनके अन्य अनुयायियों ने तुरत वहाँ पहुँचकर भीड़ को भगा दिया और उनकी रक्षा की। कुछ दिनों के बाद सकरवार देश के 'गाँव मुकद्दम'[७८] (गाँव के राजा) का एक दूत उन्हें बुलाने आया। जब दरियासाहब उसके साथ वहाँ पहुँचे, तो राजा ने तलवार खींचकर क्रोध से बातें करते हुए उन्हें मृत्युदण्ड की धमकी दी। उसी समय एक अचरज हुआ। सिंहनाद जैसी एक भीषण गर्जना सुनकर सभी विरोधी भाग-खड़े हुए।[७९]

कुछ समय के बाद दरियासाहब गंगा के तीर पर अवस्थित बहादुरपुर गये जहाँ निहाल सिंह रहते थे।[८०] वहाँ पुनः इनके और गणेश पण्डित के बीच वाद-विवाद हुआ। अन्त में यही निश्चित हुआ कि यदि गंगा दरियासाहब के स्थान तक बढ़ आये और इनके चरणों को पखारे तो इनकी बात सत्य मानी जायगी। आश्चर्य, गंगा सन्त के पैरों को पखारने चली आई। इस घटना के बाद उनका बड़ा ही सम्मान हुआ तथा उन्हें ईश्वर का अंश माना जाने लगा।

फिर दरियासाहब बीरबल नामक एक ब्राह्मण के साथ 'उत्तरापंथ' की ओर बढ़े। उन्होंने नौका पर गंगा पार किया और हरदी (जिला बलिया) पहुँचे। वहाँ के नगर-नृप ने उनका बड़ा सम्मान किया और वे वहाँ एक महीना ठहरे। वहाँ से वे मगहर गये। वे और आगे अयोध्या तक जाना चाहते थे, परन्तु साहब (ईश्वर) ने उन्हें दर्शन दिया और अपनी जन्मभूमि पर लौट आने का आदेश दिया। इस प्रकार पाँच महीनों के प्रवास के बाद आषाढ़ मास में दरियासाहब अपने हित-कुटम्बों की आनन्द-वृद्धि करते हुए अपने गांव लौट आए। उनकी पत्नी (जिसे वे 'दासी' कहकर पुकारते थे) ने चरणामृत लिया। आश्विन मास में जाड़ा आने पर सत्पुरुष ने अनेक बार

---

७७. मूर्त्तिउखाड़, १३७

७८. मूर्त्तिउखाड़, १७७

७९. मर्त्तिउखाड़, १८६–८७; दूसरी पुस्तकों में जो इसका प्रसंग आया है, उसमें दरियासाहब की रक्षा के हतु एक बड़ी सेना का अचरजरूप में उपस्थित होना बताया गया है।

८०. मूर्त्तिउखाड़, १९१––९२; प्रसंगवश दरियासाहब ने अपने भाई तेगबहादुर, एक भतीजा, बली क्षत्रिय, बीरबल, फक्कड़ शाह, बस्तीदास और गुनादास का भी उल्लख किया है।

दरिया साहब को दर्शन दिया तथा उनका आतिथ्य ग्रहण किया। सत्पुरुष ने उन्हें बताया कि कबीर और धर्मदास उनके ही पूर्वावतार थे।[८१]

एक बार देश में अनावृष्टि हुई। दरिया ने प्रार्थना की और तब वर्षा हुई।[८२]

× × ×

सत्पुरुष ने पुनः दर्शन दिया और विधिवत् दरिया साहब को गद्दी (तख्त) देकर जीवों का उद्धार करने का आदेश देकर चले गये।[८३]

जब सत्पुरुष दरियासाहब के राज्य के सीमान्त तटपर पहुँचे तो अबदुल्ला खां[८४] से भेंट हुई। उन्होंने अबदुल्ला को दरियासाहब के अधिकारों को छीनने से मना किया और उसे 'तन्तागिर' की सीमा में ही रहने को कहा।[८५] अबदुल्ला मान गया, पर पीछे चलकर उसने भगवानदास को उकसा दिया जिसने अपनी सेना लेकर दरियासाहब की सीमा पर आक्रमण किया। दरिया साहब ने वीरता से उसका सामना किया।[८६]

सत्पुरुष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने दरियासाहब को सिद्धांत और सदाचार की विस्तारपूर्वक शिक्षा दी और दलदास को सदा उनके साथ रहने और लेखक का कार्य करने को कहा। उन्होंने दरियासाहब की पत्नी (शाहजादी) को भी उनकी सेवा करने को कहा। फिर वे धरकन्धा से चले गए।[८७] एक महीने बाद धर्मदास के एक वंशज (वस्तुतः उपर्युक्त भगवानदास) उस गाँव में आये। उन्होंने गाँव के मुखिया निहाल सिंह तथा कुछ व्यक्तियों का सहारा पाकर यह घोषित किया कि राम और कबीर एक ही हैं। दरिया साहब ने प्रकट रूप से इस कथन का विरोध किया और यह भी

---

८१. ज्ञा० दी०, १६६.१—१७४.३४; मैंने एम्० ए० कक्षा के छात्र श्री सूरज-प्रसाद सिंह (आजकल प्रिंसिपल, अनुग्रह नारायण सिंह कालेज, बाढ़) को दरिया साहब के विषय में गवेषण करने को भेजा। उनसे बैसगाँव (फफदर) के एक मुख्तार बाबू राजकुमार सिंह ने उस स्थान के सनातनियों की एक यह धारणा बताई कि दरिया साहब बरहमपुर (रघुनाथपुर, ई० आई० आर० के निकट) भी गये थे जहाँ उन्हें अपनी हार माननी पड़ी थी, क्योंकि उनके सबल प्रतिरोध के होते हुए भी एक मन्दिर का द्वार रातभर में पूर्व से उत्तर की ओर हो गया था।

८२, ज्ञा० दी०, १७५.०—१७५.५;

८३. ज्ञा० दी०, १७७.१—१७८.२०; दरिया के ईश्वर से अनेक बार साक्षात्कार की बात प्रायः नास्तिकों को विश्वास दिलाने के हेतु ही कही गई है।

८४. ज्ञा० दी०, १७८.२५—अबदुल्ला=निरंजन (देखिये—खण्ड २, परिच्छेद ३ में)

८५. ज्ञा० दी०, १७८.२६ ; तन्तागिर=छत्तीसग ।

८६. ज्ञा० दी०, १७८.२१—१८१.१२ ;

८७. ज्ञा० दी०, १८२.०—१९६.० ;

बताया कि बनिया का वंशज होने से धर्मदास सच बोलने म भी डरता है। इसपर विरोधक पक्ष ने बलप्रयोग करना चाहा, परन्तु सत्पुरुष के प्रभाव से आक्रमणकारी सेना का-सा भीषण निनाद हुआ और धर्मदास के अनुयायी उसके शिविर की ओर भाग खड़े हुए।[८८]

दरियासाहब धरकन्धा में आठ वर्ष तक स्थिर रहे और दल, उजियार तथा मेहरबान की भक्ति के भाजन बने रहे। उन्होंने लोगों को यह बताया कि सुक्रित (वे स्वयं) ईश्वर (सत्पुरुष) के राजकुमार (शाहजादा) हैं तथा उसे प्राप्त करने का एक मात्र माध्यम हैं।[८९]

दरियासाहब तब लहठान (धरकन्धा से कुछ मील पर) गये। मार्ग में भीखम दुबे नाम का एक ब्राह्मण मिला। उसने संत के चरणों पर सिर नवाया और उनसे दीक्षा ग्रहण की। दरियासाहब ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उसके फलस्वरूप उसे एक पुत्र हुआ।[९०]

दरियासाहब के जीवनकाल में उनके विरोधियों से (जिन्हें वे प्रायः 'काल'[९१] कह कर सूचित करते थे) राजपुर तथा अन्य स्थानों में अनेक वाद-विवाद हुए। बनारस में उन्होंने रामेश्वर पण्डित से विचार-विनिमय किया।

× × ×

'ज्ञानदीपक' में वर्णित कहानी के कल्पित अंशों को छोड़ने तथा अन्य पुस्तकों के आधार पर कुछ बातें जोड़ने से दरियासाहब के जीवन के विषय में हम निम्नांकित निश्चित बातें पाते हैं—

(१) दरियासाहब अपने को कबीर का अवतार मानते थे। उनके अनुसार कबीर का जन्म बनारस में हुआ था और वे स्वामी रामानन्द के शिष्य थे।[९२]

(२) वे शाहाबाद (बिहार प्रान्त) जिले के धरकन्धा नामक ग्राम के निवासी थे।[९३]

---

८८. ज्ञा० ी०, १९६.१—२०२.०;

८९. ज्ञा० दी०, २०२.१—२०७.०;

९०. ज्ञा० दी०, २०७.१—२१३.० ;

९१. 'कालचरित्र' में सन्त दरिया और पण्डित अथवा अन्य वेशधारी 'काल' के बीच जो मुठभेड़ हुई उसका वर्णन किया गया है। इस पुस्तक तथा अन्य पुस्तकों में भी 'काल' 'निरंजन' अथवा 'अब्दुल्ला' का द्योतक है जो उस मन का प्रतीक है जो हमें मोहजाल में फंसाने वाली सबसे बड़ी शक्ति है। अतः दरिया साहब की काल अथवा निरंजन के साथ मुठभेड़ का जो भी वर्णन आया है, उसे प्रतीक-वर्णन ही समझना चाहिए। हममें अच्छे और बुरे का जो अन्तर्द्वन्द्व है अथवा विरोधी विचार वाले व्यक्तियों के साथ जो उनके विवाद हुए, उसीका संकेत-चित्रण है।

९२. व्यक्तियों और स्थानों के परिचय के लिए परिशिष्ट देखिये।

९३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,

(३) नौ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हो गया था। बीस वर्ष की आयु में वे सांसारिकता का त्याग कर प्रचार कार्य में लग गये। उनकी पत्नी शाहमती (दासी या शाहजादी) सदा उनके साथ ही सन्मित्र रूप में बनी रहीं।[९४]

---

९४. (क) दरियासाहब ने गुनादास को महन्थी प्रदान करने वाले आदेशपत्र में गुनादास के उत्तराधिकारी टेकादास तथा रायमती, केवलदास, मुरलीदास और दलदास का विशेष उल्लेख किया है। फकीरदास, बस्तीदास, और खरगदास का उल्लेख इस प्रकार है जिससे वे अपने सम्बन्धी सूचित होते हैं। मुरलीदास, उनके दीवान; मनिदास लेखक तथा दलदास उनके लेखाधिकृत (कानगोय) और वजीरदास अंगरक्षक (छड़ीदार) थे।

(ख) उनके सम्बन्ध में अन्य प्रसंगों और उल्लेखों के निमित्त देखिये--

'ज्ञानमूल'--११.१, १४.२--१५.०, ३६.५--७; ३६.१०, ३७.१, ३९.१, ३९.६,३९.१० ; 'कालचरित्र'--८.५, २१.३, २१.७, २१.१०, २२.२, २९.१, ४१.११, ४२.०, ४८.३, ६२.५, ६२.८--९; ६४.११, ७७.१, ७९.६; 'ब्रह्मचैतन्य'--१४१।

(ग) दरिया के शिष्य दो वंशों में विभक्त हैं। बिन्द गदी (विन्दु गद्दी—उनके अपने सम्बन्धियों की शाखा) तथा नादगदी (नादगद्दी--शब्द की गद्दी अथवा मंत्र पाये हुए दीक्षित शिष्यों की शाखा)।

(घ) निम्नांकित अन्य शिष्यों के नाम साधु चतुरी दास ने 'ज्ञानदीपक' की भूमिका में दी हैं:—

रूपसाहब, बालक साहब, अंजीरदास, चन्दनदास, बल्लूदास, फेकूदास, सुफलदास, उजियारदास (द्वितीय), अजगैबदास, गुलाबदास, प्रेमदास, भोरासाहब, पीताम्बरसाहब, परिमलसाहब तथा नरोजसाहब।

(ङ) साधु रामव्रतदास के पास जो एक शिष्यों की अवली है उसमें निम्नांकित नाम भी हैं—पुरानदास, गाजादास, दलनदास और फेंकनदास--ये हुए साधु; तथा राजपुर के झण्डा दुबे और हिरामनभक्त—गृहस्थ अनुयायी।

(च) साधु रामव्रतदास ने आजतक के दरियापंथी साधुओं द्वारा लिखी पुस्तकों की एक सूची तैयार की है जिसमें नीचे लिखी पुस्तकें हैं--भक्तमहातम और शिव-सागर—तेलपा के शिवनाथ साहब द्वारा लिखित; ज्ञानटीका, ज्ञान-मणि, ज्ञानगरकाब--दंगसी के रूपसाहब द्वारा लिखित; आदिअंकावली--मोहन साहब द्वारा लिखित; एक गुटका जिसमें मणिमाला को लेकर दो सौ 'शब्द' हैं--गोपाल साहब द्वारा लिखित। मैंने उनमें से कुछ पुस्तकें देखी हैं, पर मुझे इनमें कोई भी ऐसी विशेषता न मिली जो दरियासाहब की कृतियों में न हो अथवा उनपर आधारित न हो।

(४) हरदी (जहाँ गाँव के मुखिया ने उनका सप्रेम स्वागत किया था) लहठाना, कसठ, (कालचरित्र ६३.२) और मगहर आदि स्थानों में उन्होंने भ्रमण किया। राजपुर में उन्होंने विरोधियों से वाद-विवाद किया और वहीं एक ब्राह्मण शिष्य उनका कृपापात्र बना (कालचरित्र—१४.१०)। काशी में रामेश्वर पण्डित से उनका शास्त्रार्थ हुआ।

(५) धरकन्धा में गाँव के मुखिया निहाल सिंह तथा अन्य विपक्षियों और विशेष कर गणेश पण्डित की ओर से उन्हें कठिन विरोध का सामना करना पड़ा। गणेश पण्डित तो उनके अपने ही गाँव के थे, पर धर्मदास (बनिया) का वंशज भगवानदास तन्तागिर (छत्तीसगढ़) का रहनेवाला था। उसने भी उनका कम विरोध न किया था। प्रथम दो पीछे चलकर उनके प्रशंसक बन गये।

(६) तेगबहादुर (उनके भाई) दलदास, फक्कड़ (फकीर) दास बस्तीदास, उजियारदास, (जो उनके भाई थे) गुनादास, केवलदास, खड़गदास, मुरलीदास, सेवादास, मेहरबानदास, शिवनाथदास, खुशिहालदास, वजीरदास, नन्दादास, मनिदास, खीरनदास, तेजादास, कोकिलदास, जागादास, बीरबल, बलोक्षत्रिय, भीखम दुबे, चुरामन दुबे, शिवदत्त दुबे, भीखम खाँ, दुन्दखाँ, तैयब, दल, और अजीज ये उनके सगे सम्बन्धी, अनुयायी अथवा शिष्य थ। बुद्धिमती (उनकी बहन) शाहमती (उनकी पत्नी) तथा रायमती (एक शिष्या) उनकी नारी-भक्तों में थीं। गढ़ नोखा (आरा-सहसराम लाइटरेलवे) के तत्कालीन राजा उनके सर्वप्रथम शिष्यों में थे।

मीरकासिम द्वारा दरियासाहब को भूमि-प्रदान

दरिया साहब के जीवन की एक अति प्रमुख घटना मीरकासिम द्वारा १०१ बीघा लगान-मुक्त भूमि का प्रदान है।[९५] गुलाम हुसेन का कहना है कि मीरकासिम के दादा इम्तियाज खाँ (उपनाम—खलिस) एक समय पटना के दीवान थे।[९६] तथा उनके पिता रजी खाँ लोहानीपुर[९७] (जो अब भी मुहल्ला लोहानीपुर के नाम से प्रचलित है) में ही गाड़े गये थे। ये बातें यह सूचित करती हैं कि मीरकासिम का बचपन में पटना से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। यह संभव है कि बंगाल और बिहार के नवाब होने के बहुत पहले ही दरियासाहब की प्रसिद्धि उन्होंने सुनी हो। ई० सन् १७६१ के नवम्बर में शाहजहाँ के पटना से चले जानेपर मीरकासिम भोजपुर पर चढ़ आया। उसकी बड़ी सेना 'कयामत के दिन की सेना की तरह विशाल थी।'[९८] इतनी बड़ी सेना देख कर पहलवान सिंह तथा भोजपुर के अन्य अत्याचारी जमींदार

---

९५. अब उसका क्षेत्रफल इससे कहीं बड़ा है।

९६. सेयारुल मुताखरीन (लखनऊ टेक्स्ट) पृ० ६९१।

९७. वही पुस्तक पृ० ७४९।

९८. रेमण्ड का अनुवाद, कलकत्ता, रिप्रिण्ट, दूसरा भाग, पृ० ४२५।

भाग खड़े हुए। वे भाग कर गाजीपुर चले गये। दो महीनों के भीतर ही, १७६२ ई० के आरंभ में, नवाब ने भोजपुर के सभी किलों को अपने अधिकार में कर लिया।[९९] उन्होंने प्रत्येक किले में स्थायी सेना रख दी तथा भागे हुए जमींदारों की सम्पत्ति जब्त कर ली।[१००] इसी समय मीरकासिम ने दरिया साहब को १०१ बीघा जमीन प्रदान की। इस दान से पता चलता है कि वह सन्त दरिया का कितना सम्मान करता था। भोजपुर की जनता को अपने पक्ष में करने की भावना से प्रेरित होकर भी नवाब ने उस लोकप्रसिद्ध सन्त को यह दान दिया होगा। बुकानन साहब भी नवाब द्वारा १०१ बीघा लगान-मुक्त भूमि के दान की पुष्टि करते हैं।[१०१] धरकन्धा के महन्थों ने इस भूमि में बहुत वृद्धि की और अब मठ की इस भूमि का क्षेत्रफल लगभग २०० बीघा है।[१०२]

९९. पी० एल० आई० १७६२ नं० ३।

१००. जे० बी० ओ० आर० एस० ५ वाँ भाग, पृ० ६०६।

१०१. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० ७८।

कासिम अली के विषय की एक किंवदन्ती है जो नीचे दी जाती है——

एक बार कासिम अली ने धरकन्धा से कुछ मील पर दिनारा (थाना) में अपना खेमा गिराया। वहीं से उन्होंने धरकन्धा में दरियासाहब के घर पर गोलियाँ चलाई, क्योंकि दरिया साहब ने नवाब के यहाँ जाकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन नहीं किया। गोली के आघात से घर की छत गिर गई। जब कासिम ने सुना कि यह घर एक फकीर का है तो वह स्वयं वहाँ गया। वह आया तो था अनादर की भावना से, पर यहाँ आकर उनकी भक्ति करने लगा। संत दरिया ने नवाब के प्रति दया दिखाई और उसे आशीर्वाद दिये ('शब्द'—३ 'क'. ७७)। नवाब ने अपने सद्गुरु दरिया को एक बहुमूल्य पत्थर दिया और उनसे दीक्षा तथा अन्य शिक्षाएँ ग्रहण कीं ('दरियानामा' में लिखित)। नवाब के चले जाने पर फकीर ने उस पत्थर को पास के एक पोखरे में फेंक दिया। जब इस बात का पता कासिम को चला, तो उसने आकर अपना पत्थर वापस मांगा। दरिया साहब ने पानी में हाथ डाला और अचरज यह कि एक ही जगह अनेक वैसे पत्थर निकले। कासिम पर इस अचरजपूर्ण घटना का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने भूमि प्रदान करने की इच्छा प्रकट की। दरियासाहब ने इस दान को भी अस्वीकार कर दिया, पर उनके शिष्यों में से एक ने दान की सनद उनसे बनवा ली।

मैं इस किंवदन्ती पर कोई आलोचना करना नहीं चाहता। जहाँ तक सनद का सवाल है, मैं उसे नहीं देख सका, क्योंकि मुझे बताया गया कि उसका पता नहीं चलता। भूतपूर्व महन्थों में एक छत्रपति साहब थे। उन्हीं के समय में सुफलसाहब ने छल प्रपंच से उस सनद को दरिया साहब के परिवार वालों को दे दिया। उनलोगों ने या तो उसे भुला दिया, अथवा किसी को दिखाना नहीं चाहते।

१०२. विशेष बातों के लिए 'परिशिष्ट' देखिये। उसीमें व्यक्तियों तथा स्थानों पर भी टिप्पणि है।

द्वितीय परिच्छेद

दरिया और उनका समय

मध्यकालीन सुधारकों में दरिया का स्थान

दरियासाहब ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को उच्चतर सार्वभौम मानवता का प्रतीक मान कर दोनों सम्प्रदायों को मिलाने का जो प्रयत्न किया, वह मध्यकालीन भारत में कोई असाधारण बात नहीं थी। उनकी कृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वे जहां ईसा की १५वीं शताब्दी में प्रवर्तित कबीर की विचारधारा के समर्थक थे, वहाँ उस नवीन युग के अग्रदूत भी थे जिसका प्रतिनिधित्व राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द जैसे महान् व्यक्तियों ने १९वीं शताब्दी क आरंभ में किया। दरियासाहब ने हिन्दुओं और मुसलमानों के स्वतंत्र अस्तित्व को मिटाने की आकांक्षा नहीं की, अपितु उसके रहते हुए उन्हें उच्च एवं संप्रदायविहीन आचार-व्यवहार का आदेश देना चाहा। बुकानन साहब लिखते हैं कि "उनके हिन्दू तथा मुस्लिम गृहस्थ शिष्यों को अपने धर्म की परम्परागत प्रथाओं को मानने की स्वतंत्रता थी"।[१]

(कबीर के समान दरियासाहब ने भी अपने को बाह्य विभिन्नताओं के बीच आन्तरिक एकता के पथ का पथिक घोषित किया। वे मध्य युग के उन सन्तों में थे जिन्होंने एकता तथा विश्व-बन्धुत्व के मूलमंत्र का प्रचार किया और सभी प्रतिबन्धों तथा संकुचित नियंत्रणों से परे एक ऐसे आश्रय को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया जहाँ सभी लोग एक भाव से हिलमिल सकें। कबीर ने कहा है—"जो ज्ञानी तथा समझदार हैं उनके धर्म एक हैं, चाहे वे पण्डित हों अथवा शेख।" पुनः वे कहते हैं—"हिन्दू राम को पुकारते हैं और मुसलमान रहीम को; फिर भी दोनों एक दूसरे से झगड़ते हैं और हत्या भी कर डालते हैं। पर दो में से कोई भी सत्य को नहीं पहचानता।"[२] इसी भाँति नानक ने भी प्रचार किया—"संसार के स्वामी सत्पुरुष दरबार का एक ही मार्ग है।"[३] मुसलमानों को सम्बोधित कर वे कहते हैं—

"दया तुम्हारी मस्जिद हो, सचाई तुम्हारा आसन हो, और न्यायाचरण ही कुरान हो; विनय एवं नम्रता सुन्नत तथा व्रत हो; ऐसा करने से ही सच्चे मुसलमान बन सकते हो।"[४]

---

१. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० २२१–२३।

२. पद्यसमुच्चय : लेखक श्री क्षितिमोहन सेन, प्रथम खण्ड, पृ० ६।

३. नानकप्रकाश : लेखक गुरुमुख सिंह, पृ० २१८।

४. मेकालिफ : दि सिख रिलीजन, भा० १, ० ३८।

दादू ईसा की १६ वीं शताब्दी में हुए। उनका भी सन्देश बहुत अंशों में कबीर जैसा ही था। वे कहते हैं—"अल्लाह और राम! मेरा भ्रम दूर हो गया है, हिन्दू और मुसलमान के बीच कोई अन्तर नहीं है।"[५] पुनश्च, "दोनों में एक ही आत्मा है, दोनों के समान शरीर हैं, दोनों में एक ही मांस और रक्त है।"[६] उन्होंने उच्च स्वर से घोषित किया—"भाइयो, हमारा मार्ग सम्पूर्ण है, उसमें द्वैत और शाखाएँ नहीं हैं।" १६ वीं शताब्दी क अन्य महान् प्रचारक रज्जब ने भी अपने हृदय की भावना प्रकट की है—"मैं बद्धांजलि होकर उन महान् गुरु की वन्दना करता हूँ, हिन्दू और मुसलमान मिलकर एक परिवार जैसे हो जायँ।"[८]

औरंगजेब की असहिष्णुता तथा दमन-नीति भी महात्माओं द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाकर एक समन्वित धर्म स्थापित करने के प्रयत्न का गला न घोंट सकी। १७ वीं शताब्दी के मध्य में "बाबालाली" नामक एक सम्प्रदाय की स्थापना हुई जिसके संस्थापक बाबालाल का जन्म मालवा में हुआ था। उन्होंने सभी प्रकार की मूर्ति-पूजा का खण्डन तथा एक परमात्मा की पूजा का विधान किया। उन्होंने 'वेदान्त और सूफी मतों के समन्वय से अपनी भक्ति और आदर्शों की रूपरेखा निर्धारित की।'[९] ई० सन् १६४४ में हरिदास द्वारा स्थापित 'नारायणी' नामक एक अन्य पंथ ने भी ऐसे ही आदर्शों का प्रचार किया—"इस पंथ में मूर्तियाँ नहीं हैं, मन्दिर नहीं हैं और काबा भी नहीं है, न तो कोई विशेष पूजा इस पंथ के अवलम्बियों को करनी है; न ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना और न उससे तादात्म्य स्थापित करना। एकमात्र परमेश्वर अथवा नारायण की भक्ति ही सर्वस्व है। इसलिए उसका नाम भी 'नारायणी' पड़ा है।"[१०] औरंगजेब के शासनकाल के उत्तरार्द्ध में प्राणनाथ ने साम्प्रदायिक एकता के इसी ध्येय की पूर्त्ति के निमित्त प्रयत्न किया। दीक्षा के अवसर पर नवागत शिष्यों को हिन्दुओं और मुसलमानों की सम्मिलित पंक्ति में बैठ कर भोजन करना पड़ता था। प्रत्येक सदस्य को दोनों ही धर्मों का एक ईश्वर मान कर अपनी परंपरागत प्रथाओं के अनुसरण करने की स्वतंत्रता थी।[११] उनका विश्वास था कि हिज्र की ११ वीं शताब्दी में हिन्दुओं और मुसलमानों का धर्म एक हो जायगा। वे कहा करते थे कि दोनों सम्प्रदायों

---

५. दादूदयाल का शब्द, (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०७)।

६. नं० ५ वाली पुस्तक, पृष्ठ २२।

७. नं० ६ वाली पुस्तक।

८. देखिए, "हाथ जोरूँ गुरू सों हौ मिलें हिन्दू मुसलमान"।

९. रिलीजस सेक्ट्स आफ दि हिन्दूज, लेखक—विल्सन, पृ० ३४७-४८।

१०. 'देबिस्तान-ई-मजाहिब' ले०—ट्रोयर और शी, पृ० २३२।

११. 'रिलीजस सेक्ट्स आफ दि हिन्दूज,' ले०—विल्सन, पृ० ३५१-५२

को मिलाकर एक कर देना ही उनका ध्येय है। 'शिवनारायणी' पंथ के संस्थापक शिवनारायण दरिया साहब से कुछ पहले जन्मे थे, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र एक दूसरे से संबद्ध एवं मिलता-जुलता था। वे उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में रसरा के निकट चन्द्रावर नामक ग्राम के निवासी थे। दरिया के समान शिवनारायण ने भी अपने पंथ में जातिगत या श्रेणीगत भेद न रखा और सभी व्यक्तियों को अपनाया। यदि इस पंथ का कोई व्यक्ति मरता है तो उसकी क्रिया उसके कुल की रीतियों के अनुसार ही गाड़कर अथवा जलाकर की जाती है। पलटू दास एक और धर्मसुधारक थे जिनके आदर्श दरियासाहब के आदर्शों से मिलते-जुलते थे और जो फैजाबाद जिले के नागपुर-जलालपुर के निवासी थे। उन्होंने प्रचार किया—

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है
उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता।
साहिब वह कहाँ है कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू और तुरुक तोफान करता॥
हिन्दू औ तुरुक मिलि परे हैं खैंचि में,
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक मैं साँच कहता॥

नीचे जो तालिका[१४] दी जाती है, उससे निर्गुण मत के उन सन्तों का सरसरी तौर से परिचय प्राप्त हो जायगा जो बिहार में दरियापंथ के आविर्भाव होने के पहले अथवा उसके समकालीन थे।

---

१२. 'जर्नल ऑव द रायल एशियाटिक सोसायटी,' ले०—ग्रियर्सन, १९१८ का अंक, पृ० ११४—१६।

१३. 'पलटू की बानी,' बेल्वेडियर प्रेस, द्वितीय भाग, पृ० ५।

१४. यह तालिका बड़थ्वाल साहब की पुस्तक 'निर्गुण स्कूल ऑव हिन्दी पोयट्री', ६ठा परिच्छेद तथा रामकुमार वर्मा की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृ० २९४—९५ के आधार पर बनाई गई है।

सं०	पंथ	औसत प्रगतिकाल (विक्रम की शताब्दी में)	प्रवर्तक	प्रचार एवं प्रसार के केन्द्र स्थान
१.	कबीरपंथ	१५००	कबीर	बनारस (उत्तर प्रदेश)
२.	सिख	१५६०	नानक	पंजाब
३.	दादूपंथ	१६५०	दादू	राजस्थान
४.	मलूकदासी	१६८०	मलूक दास	कड़ा मानिकपुर (उत्तर प्रवेश)
५.	सतनामी या साध	१६८०	जगजीवनदास	दिल्ली नारनौल
६.	लालदासी	१७००	लालदास	अलवर (राजस्थान)
७.	बाबालाली	१७००	बाबालाल	देहनपुर (पंजाब)
८.	नारायणी	१७००	हरिदास	(अनिर्णीत)
९.	प्रनामी या धामी	१७१०	प्राणनाथस्वामी	राजस्थान
१०.	दरियापंथ मारवाड़ का	१७६०	दरियासाहब	मारवाड़ (जोधपुर)
११.	दूलनदासी	१७८०	दूलनदास	धर्मेगाँव(रायबरेली, उ० प्र०
१२.	शिवनारायणी	१७८०	स्वामीनारायण	चन्द्रावर बलिया (उ० प्र०)
१३.	चरणदासी	१७८७	चरणदास	दिल्ली
१४.	भीखापंथ	१८००	भीखासाहब	भुरकुरा, बलिया (उ० प्र०)
१५.	गरीबदासी	१८००	गरीबदास	रोहतक (पंजाब)
१६.	रामसनेही	१८००	रामसरन	शाहपुर (राजस्थान)

दरियासाहब के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती सुधारकों में कबीर, नानक, दादू, और शिवनारायण का विशिष्ट प्रभाव उनके जीवन तथा उनकी शिक्षाओं पर स्पष्ट झलकता है। बुकानन साहब के वर्णन से हमें पता चलता है कि ईसा की १९ वीं शताब्दी के आरंभ में इन सन्तों के अनुयायी शाहाबाद जिले में बड़ी संख्या में पाये जाते थे। निम्न तालिका बुकानन साहब के 'शाहाबाद रिपोर्ट' से संकलित की गई है। इसमें शाहाबाद जिले के विभिन्न थानों में ई० सन् १७०८–१० में पाये जाने वाले विभिन्न पंथों क अनयायियों की तुलनात्मक संख्या का आँकड़ा दिया गया है।[१५]

---

१५. प्रथम भाग के पंचम परिच्छेद में देखिये। परम्परागत हिन्दू सगुणपंथियों में जो उस समय शाहाबाद जिले में बसते थे, बुकानन साहब शैवों (शाक्तों सहित) और वैष्णवों का उल्लेख करते हैं। इनमें से शैव मत वष्णव की अपेक्षा अधिक जनप्रिय था। शिवशक्ति के उपासक गुरुओं में दसनामी संन्यासियों का प्रभाव ब्राह्मण पण्डितों की अपेक्षा जनता पर अधिक था।

यथा—

थाना या डिवीजन	नानकपंथी	कबीरपंथी	शिवनारायणी	दरियापंथी
आरा	हिन्दुओं के २/१४ अंश	१०० अनुयायी	.	.
बिलोरी	,, १०/३२ ,,	कुछ थोड़े	.	.
डुमराँव	,, ३/१६ ,,	हिन्दुओं के १/१६ अंश	२०	कुछ थोड़े
एकवारी	,, १/४ ,,	१०० अनुयायी	५०	.
करंजिया	,, १/१६ ,,	कुछ थोड़े	.	२० अनुयायी
बराँव	,, ३/३२ ,,	कुछ थोड़े	.	कुछ थोड़े
सहसराम	,, ५/२४ ,,	२०० घर	.	.
तिलोथू	,, २/१४ ,,	कुछ थोड़े	.	.
महनिया	,, ४/१४ ,,	,,	.	.
रामगढ़	,, २/१६ ,,	,,	.	.
संजोत	,, २/३२ ,,	,,	.	.

यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि दरियासाहब, कबीर और नानक के अनुयायियों के निकट सम्पर्क में आये होंगे तथा उनकी मान्यताओं से प्रभावित हुए होंगें। दरियासाहब के सिद्धान्तों और आदर्शों का जो विस्तृत वर्णन[१६] आगे दिया जायगा, उससे ज्ञात होगा कि वे किन अंशों में एक मौलिक विचारक थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी प्रबल धार्मिक भावना और पवित्र जीवन ने अनुयायियों को बड़ी संख्या में आकर्षित किया। बुकानन साहब ने उनके गृहस्थ शिष्यों की संख्या लगभग २० हजार बताई है।

दरिया साहब की सफलता के कारण

इस स्थल पर अब हम तनिक उन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर विचार करें जो दरियासाहब की सफलता म साधक बनीं। कबीरपंथी और नानकपंथी साधुओं ने दरिया के नवीन विचारपक्ष और व्यवहारपक्ष के लिए पहले से ही प्रशस्त पृष्ठभूमि तैयार कर छोड़ी थी। इसके अतिरिक्त बिहार को १८ वीं शताब्दी में जिन राजनीतिक संकटों से होकर गुजरना पड़ा, वे भी दरिया साहब के रहस्यवादी आध्यात्मिक उपदेशों के प्रसार एवं प्रचार में सहायक सिद्ध हुए। १८ वीं शताब्दी के प्रथम तीन चरणों में बिहार की राजनीतिक स्थिति पूर्णतया डांवाडोल रही। १७०७ से १७२७ तक मुर्शिद कुली खां प्रायः अव्यवहित रूप से बंगाल, बिहार और उड़ीसा का नवाब था। वह इन प्रान्तों पर स्वतंत्र शासक की भाँति शासन करता था, केवल यदा-कदा दिल्ली के बादशाह को कर दिया करता था। उसकी शासन-पद्धति कठोर

---

१६. इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड में देखिये।

थी, और जनता को अधिकाधिक कर देने के लिए सताया करता था। उसके बाद उसका दामाद शुजा खाँ उत्तराधिकारी हुआ। उसने अलीवर्दी खाँ को पटना या अजीमाबाद का शासनाधिकार दिया। शुजा खां के बाद उसका बेटा सरफराज खां आया। परन्तु अलीवर्दी ने दिल्ली-सम्राट् के दरबार से बंगाल, बिहार और उड़ीसा को सरफराज से लेकर उनपर अधिकार कर लेने का फर्मान प्राप्त कर लिया। फलतः बिहार में गृहयुद्ध आरंभ हो गया और सरफराज मार डाला गया। अलीवर्दी गद्दी पर बैठा। अलीवर्दी के शासन-काल में मराठों के बार-बार आक्रमण करने से बिहार को भीषण संकट झेलना पड़ा।[१७]

ऐसे ही दमन और अत्याचार के समय में सन् १७४५ में अफगान-विद्रोह भी हो गया। अफगानों के सरदार मुस्तफा खाँ नें पटना सिटी पर धावा किया, पर असफल होकर शाहाबाद की ओर चला गया। अफगानों और अलीवर्दी की सेना के बीच युद्ध हुआ और अफगान हरा दिये गये। इसके दूसरे ही वर्ष अफगानों का दूसरा विद्रोह हुआ और अठारह महीने बाद पटने के शासक जैनुद्दीन की हत्या के कारण वहां विप्लव खड़ा हो गया। अफगानों के अत्याचार की सीमा न रही। गुलाम हुसैन अपनी पुस्तक 'सियार-उल् मुताखरीन' में लिखते हैं—"उनलोगों ने नगर (पटना) के सभी बड़े नागरिकों के घर घेर लिये और उन्हें लूटा। नगर में और इसके आस-पास रुहेल लोग लूट-मार मचाते रहे। अनेकानेक व्यक्तियों की जानें गईं, उनकी सम्पत्ति लुट गई और उनके कुल की इज्जत बर्बाद कर दी गई। कयामत के दिन के लक्षण दीख पड़ने लगे।" इन घटनाओं के अतिरिक्त, पलासी के युद्ध के फलस्वरूप, घोर राजनीतिक अव्यवस्था छाई हुई थी। सन् १७६१–६२ में शाहजादा अलीगौहर का भी आक्रमण हुआ और फिर सन् १७६४ में बक्सर का युद्ध रहा। इन राजनीतिक विप्लवों और अशांतियों के अतिरिक्त यह अभागा सूबा सन् १७७० में एक भयंकर अकाल से भी पीड़ित हुआ।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि ऐसे युग में कुछ लोग बाह्य संकटों से ऊबकर आभ्यन्तर जगत् की अनुभूतियों में अपने दुखों को भुलाने की चेष्टा करें और दरियासाहब ऐसे महान् अध्यात्म-शक्ति वाले सन्त के द्वारा प्रदर्शित शांति एवं बन्धुत्व के मार्ग का अनुसरण करें। जब तुर्क-अफगान आधिपत्य की जड़ उखड़ रही थी और मुगल साम्राज्य की जड़ जम रही थी, उस परिवर्तन काल में, कबीर, नानक और चैतन्य हुए। ऐसे ही एक दूसरे परिवर्तन काल में, जब मुसलमानी शासन का अन्त और अंगरेजी शासन का आरंभ हो रहा था, हमारे संत दरियासाहब का आविर्भाव एवं उनके उपदेशों का प्रचार हुआ।

---

१७. विशद वर्णन के लिए सर यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित "मुगल साम्राज्य के पतन काल में बिहार और उड़ीसा" (अंग्रेजी) नामक पुस्तक के पृ० ३७ में देखिय।

तृतीय परिच्छेद

दरियापंथ

दरियापंथ का नाम इसके प्रवर्त्तक दरिया साहब के नाम पर पड़ा। वे अपने को कबीर का अवतार मानते थे। फलतः यह पंथ कबीर पंथ से बहुत-कुछ मिलता जुलता है।

उद्गम इसे कबीर द्वारा स्थापित निर्गुण संत मत की परम्परा का ही एक अंग मानना चाहिए।[1]

दरिया पंथ के माननेवाले मुख्यतः दो प्रकार के होते ह (क) साधु और (ख) गृहस्थ। साधु वे हैं जिन्होंने घर-द्वार छोड़ दिया है, माथ मुड़ाकर नंगे सिर रहना उनका विशेष

ा पकता, सदस्यता और रीति-रश्म

चिह्न है।[2] गृहस्थ जन टोपी पहन सकते हैं। पंथ में हिन्दू या मुसलमान कोई भी सम्मिलित हो सकता है। बुकानन साहब कहते हैं—"सभी श्रेणी के हिन्दू और मुसलमान साधु बन सकते हैं और साधु बनने पर वे सभी एक साथ भोजन करते हैं, वे किसी भी गृहस्थ के हाथ का खा सकते हैं यदि उसने इस पंथ को अपनाया हो। वे प्रायः इतर धर्मियों के हाथ का भोजन नहीं करते।····साधुजन स्त्री और सगे-सम्बन्धियों से नाता तोड़ लेते हैं। वे अपना सिर मुड़ाकर रखते हैं। वे प्रायः तम्बाकू पीते हैं और इसके लिए रत्ननलित नामक एक विशिष्ट ढंग का हुक्का रखते हैं। रत्ननलित और पानी का एक लोटा—ये उनके विशिष्ट वेश के प्रतीक हैं। ·····साधुओं के शव गाड़े जाते हैं।[3] उनके गृहस्थ अनुगामी, हिन्दू या मुसलमान, अपनी कुलपरंपरागत अन्त्येष्टि क्रिया तथा विवाह सम्बन्धी प्रथाओं को मानने के लिए स्वतंत्र हैं। इस प्रकार मुसलमान अपने शवों को गाड़ते हैं और हिन्दू जलाते हैं। मरण, विवाह और अन्य ऐसे अवसरों पर दोनों संप्रदाय वाले अपने-अपने पुरोहित बुलाकर उचित विधि पूरी करते हैं।"[4] बुकानन साहब के वर्णन का मुख्यांश आज भी उतना ही तथ्य है जितना तब था। सामान्यतः एक हिन्दू और एक दरियापंथी में कोई अन्तर पाना कठिन है क्योंकि सभी सामान्य व्यवहारों में, यहाँ तक कि शादी-विवाहों में

---

१. दरिया और कबीर के सिद्धान्तों की तुलनात्मक आलोचना एक स्वतंत्र परिच्छेद में की जायगी (देखिए खण्ड—३)।

२. ज्ञान दीपक, १७६.६; ज्ञान मूल, २६.१—३।

३. पहले शव को उत्तराभिमुख बिठाया जाता है, फिर उसे लिटाकर उसके ऊपर तख्ता या अन्य कोई चीज रखकर मिट्टी से ढँक देते हैं।

४. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० २२१—२३।

भी, वे एक समान ही बरतते हैं।[५] पृथक् अस्तित्व और गतिशील कार्यक्रम के अभाव से इस पंथ के अनुयायियों की संख्या दिनोदिन घटती गई और व हिन्दू धर्म के विशाल अंश में विलीन होते गये। आर्य समाज के आन्दोलन ने भी दरिया पंथ को आघात पहुँचाया। अब इस पंथ में मुसलमान बहुत कम पाये जाते हैं। इसका भी कारण वही है। इस्लाम धर्म ने इसके कुछ सदस्यों को अपने में मिला लिया और ये उसमें खो गये। यह क्रम लगातार चलता रहा है। फिर भी जो अनुयायी इस पंथ में बच रहे हैं वे मुसलमानों के धार्मिक रश्म-रिवाज, रोजा-नमाज आदि के प्रति उदासीन हैं। वे शाकाहारी हैं। शादी-विवाह अपने कुलपरंपरागत भाई-बन्धुओं में ही करने की चेष्टा करते हैं। बुकानन साहब क समय में इस पंथ के गृहस्थ अनुगामियों की संख्या २० हजार आँकी गई थी; पर अब वे केवल पन्द्रह हजार के लगभग हैं; और यह संख्या भी दिन-पर-दिन घटती ही जा रही है। बुकानन साहब ने साधुओं (जिन्हें दास या चेला कहते हैं) की संख्या अनुमानतः ७० बताई थी। पर अब उनकी संख्या लगभग ५०० से ६०० या कुछ ही कम हो। ये साधु प्रायः ऐसे व्यक्तियों के घर नहीं टिकते हैं और न भोजन ही करते हैं जो उनके पंथ के न हों। कबीरपंथियों और वैष्णव संप्रदाय वालों के चौके की रसोई पाने में उन्हें कोई आपत्ति अथवा हिचक नहीं होती, परन्तु वैष्णव साधुओं को दरियापंथियों के चौके का भोजन स्वीकार नहीं है। इस पंथ के अनुयायी प्रधानतया बिहार के कतिपय जिलों तथा उत्तर प्रदेश में ही सीमित हैं। कुछ कलकत्ता और आसाम में भी पाये जाते हैं। सिद्धान्ततः वे हिन्दुओं के साधारण त्योहारों में विश्वास नहीं करते। परन्तु व्यवहार रूप में ऐसे अवसरों पर उन्हें पृथक् करना संभव नहीं है। दरियापंथ के अनयायियों में विशेष प्रतिनिधित्व रखने वाली जातियाँ हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, भूमिहार, कायस्थ, कोइरी, सुनार, बढ़ई और ग्वाला। इनमें बनियों की संख्या भी प्रचुर है।

पूजा की विधियाँ

किसी भी भक्त के लिए, चाहे वह साधु हो अथवा गृहस्थ, दिन में पाँच बार पूजा करने की विधि है—सूर्योदय के समय, स्नान करके ८-९ बजे के बीच में, दोपहर को भोजन के बाद, संध्या के समय और भोजनोपरान्त शयन के पूर्व। यही पाँच पूजा के समय हैं। पूजा की विधि बहुत साधारण है और यह कहीं की जा सकती है। पूजा के हेतु मन्दिर अथवा मस्जिद की कोई आवश्यकता नहीं है। सतनाम का जप और दरियासाहब के शब्द तथा अन्य ग्रंथों के पदों का सस्वर भजन कर लेने मात्र से पूरी पूजा हो जाती है। जप और भजन दो आसनों में किये जाते हैं। प्रथम आसन को 'कोर्निस' कहते हैं। इसमें थोड़ा झुक कर उत्तर की ओर मुँह करके खड़ा होना चाहिए। बायाँ हाथ छाती पर हो, और दाहिने हाथ से पृथिवी, हृदय और कपाल को क्रम से पाँच बार छूवे। दूसरे आसन का नाम 'सिर्दा' (शिजदा) है। इसमें घुटने के बल

---

५. रत्ननलित (हुक्का) और मिट्टी के बर्तन (भरुका) का व्यवहार अब घटता जा रहा है।

टेककर माथे से पृथ्वी को छुवे। इस पंथ के लोग मूर्त्तियों की पूजा नहीं करते, परन्तु फल, मिठाई, दूध आदि वस्तुएँ पृथ्वी पर रखकर सत्पुरुष का नाम जपते और उन्हें चढ़ाते हैं।[६]

दैनिक पूजा के अतिरिक्त गृहस्थ भक्त को साल में अथवा छः महीने पर एक बार बृहत् रूप से पूजा करनी पड़ती है। इस अवसर पर प्रसाद चढ़ाने और वितरण करने की विधि उसे करनी होती है। यह विधि प्रायः सूर्यास्त से दो घड़ी पहले की जाती है। सर्वप्रथम भक्त अपने घर का कोई भाग चुन लेता है। उसे वह गोबर-मिट्टी और जल से लीपकर साफ-सुथरा बना देता है। इस चौके के चारों कोनों तथा घरों पर केले के खम्भे गाड़ दिये जाते हैं। चौका तैयार हो जाने पर प्रसाद और एक लोटा स्वच्छ छना हुआ जल उसमें वहाँ रख दिये जाते हैं। प्रसाद में खीर (दूध में सिद्ध किया हुआ चावल) पूरी (घी में पकाई हुई) मिठाई और पंचमेवा (किसमिस, बादाम, गरी, छुहाड़ा, चिरौंजी) रहते हैं। फिर प्रसाद और जल को एक नवीन उजले कपड़े (चादर) से ढँक दिया जाता है। चौके के ऊपर भी एक नवीन उज्ज्वल वस्त्र का चंदोवा टाँग कर उसे मण्डप-सा बना देते हैं। पूजा या सजावट के लिए फूलों का व्यवहार नहीं किया जाता। प्रसाद के भण्डार में बाहरी व्यक्तियों के चढ़ाये प्रसाद और पैसे भी लेकर रख दिये जाते हैं। सभी उपादान पूरा हो जाने पर विशेष रूप से आमंत्रित साधुगण और उनके पीछे सामान्य भक्तगण पंक्तिबद्ध होकर प्रसाद की ओर उत्तराभिमुख खड़ हो 'अगाधलीला' और 'मंगल' (शब्द ५४-५५) के चारों पदों का सम्मिलित गान करते हैं। प्रार्थना समाप्त हो जाने पर प्रथम पंक्तिवाले साधुगण और उनके हट जाने पर बादवाली पंक्तियों के व्यक्ति 'कोर्निस' (व्यक्तिगत अर्चना) करते हैं। तब प्रसाद पर की चादर हटा दी जाती है और साधुगण तथा पंक्ति के सभी सदस्य यथेष्ट प्रसाद पाते हैं।

इसके अतिरिक्त किसी मठ का अधिकारी साधु या अन्य कोई प्रेमी जब तब पूरा पैसा बचाकर या चन्दे इकट्ठा करके एक बृहत् सम्मेलन (जिसे भण्डारा कहते हैं) का आयोजन कर सकता है। ऐसे भण्डारा के अवसर पर सभी स्थानों के साधुओं और भक्तों को आमंत्रित किया जाता है। उनको पूर्ण भोजन कराके उनमें यथाशक्ति वस्त्रों का भी वितरण किया जाता है। दरिद्रों को भी यथासंभव भोजन और वस्त्र दिये जाते हैं। भोजन या प्रसाद वितरण करते समय इस पंथ के अनुयायियों में जाति और संप्रदाय का कोई भेद रखा नहीं जाता और सभी व्यक्ति प्रायः एक ही पंक्ति में बैठ कर खाते हैं। इस विषय का दरियासाहब असन्दिग्ध रूप से समर्थन करते हैं।[७] भण्डारा के अवसर पर भी प्रसाद चढ़ाने की विधि वही रहती है जो पूर्व की पंक्तियों में वर्णित है। भण्डारा यज्ञ प्रायः एक सप्ताह तक चलता

---

६. बुकानन साहब की पुस्तक, पृ० २२०—२३; और भी देखिए ज्ञानमूल, १७·२—४।

७. दरियासागर, ६१·०, ६१·२, ६१·३।

रहता है, प्रसादार्पण के दो-तीन दिन पहले से दो-तीन दिन बाद तक। इसके समाप्त होने के एक दिन पहले भात, दाल, तरकारी आदि 'कच्ची' रसोई से अतिथियों का स्वागत किया जाता है। समाप्ति के दिन साधुओं के सम्मान के अनुकूल रुपये और वस्त्र से उनकी विदाई की जाती है। प्रायः भण्डारा का आयोजन एक बृहत् आयोजन होता है। उदाहरणार्थ, धरकन्धा में जो भण्डारा माघ सम्वत् १९९८ की पूर्णिमा को हुआ उसमें १३८ महंत २१ संन्यासी और एक हजार सामान्य भक्त सम्मिलित हुए। कुल खर्च लगभग दो हजार रुपये हुए यद्यपि प्रसाद में बहुत कम रुपये की आय हुई।[८]

बुकानन साहब दरियापंथियों की पूजा की विधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं—"हिन्दू लोग बलि और यज्ञ को पूजा की परम्परा का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं, किन्तु दरियापंथी बलि नहीं चढ़ाते और न यज्ञ ही करते। वे अपने अनुयायियों को कोई गुरुमंत्र या पूजा-विधि भी नहीं बताते।"[९] इस वर्णन का पूर्वार्द्ध तो ठीक है, पर उत्तरार्द्ध ठीक नहीं है, क्योंकि मुझे साधुओं से ज्ञात हुआ है कि अपने शिष्यों को गुरुमंत्र के रूप में कुछ मंत्र अवश्य बताते हैं और वे मंत्र साधारणतया 'बेवहा', 'सत्पुरुष' के नाम और वे 'शब्द' (ध्वनि) होते है जो सत्पुरुष से मिलन होने पर परमानन्द की अवस्था में सुन पड़ते हैं।

शिष्य चाहे गृही हो या साधु, अपने गुरु (धर्मगुरु) का बड़ा सम्मान करता है। वह उसे सत्पुरुष का अवतार समझता है। उदाहरणस्वरूप जब कभी कोई शिष्य अपने गुरु अथवा उच्च श्रेणी के साधु के दर्शन करने जाता है तब वह अपने साथ एक कटोरे में गुड़ और पैसा तथा एक गिलास में जल भरकर ले जाता है। वह इन वस्तुओं को साधु के आसन के समीप रख देता है, तत्पश्चात् बायाँ हाथ छाती पर धर कर 'साहब सतनाम, 'साहब सतनाम' कहता हुआ उपर्युक्त कोर्निस के ढंग पर दाहिने हाथ से पाँच बार पृथ्वी, हृदय और मस्तक को छूता है। इसके बाद घुटनों के बल होकर भूमि पर मस्तक टेक देता है। कुछ क्षण के बाद वह पुनः उठकर खड़ा हो जाता है और एक बार पुनः वैसे ही 'कोर्निस' करके सम्मान में सिर झुकाकर खड़ा हो रहता है। तब गुरु या साधु उसमें से थोड़ा गुड़ लेकर जल में मिलाकर चरणामृत रूप में शिष्य को पान करा देता है। इस साधारण शिष्टाचार के बाद ही शिष्य और किसी कार्य में लगता है। इस परिच्छेद को समाप्त करने के पहले हम दरियासाहब द्वारा वर्णित 'निमेरा' का उल्लेख करेंगे। यह मन अथवा निरंजन अर्थात् कामनाओं को वश में करने की एक क्रिया है। इसमें इक्कीस पग इस प्रकार चलना पड़ता है कि पीठ उत्तर की ओर न पड़े और निम्नलिखित गुप्त मंत्र का प्रत्येक पग पर उच्चारण करना पड़ता है —

---

८. प्रसाद और भण्डारा की विधि मुझे रामव्रतदास से मिली।

९. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० २२०–२३।

मेरे ज़बर को ज़ेर कर, ज़ेर को ज़बर कर,
या दाता कड़ी मुश्किल, साहब सत्तनाम मंसूर
बेबहा मेरे सिर पर सदा वली अल्लाह
मदद बेबहा की, दोहाई दरियासाहब की, दोहाई ।

तात्पर्य यह है कि भक्त सत्पुरुष और दरियासाहब की दुहाई मनाता है और उनके आशीर्वाद और साहाय्य की कामना करता है जिससे वह 'सबल को दबाने और दबे हुए को सबल बनाने' में सफल हो सके। सबल को दबाने का अर्थ चित्तवृत्ति-निरोध से है, चित्तवृत्तियाँ प्रबल और उपद्रवी होती ही हैं; और दबे हुए को सबल बनाने से अर्थ है आभ्यन्तर आत्मशक्ति का (जो प्रायः निहित अवस्था में रहती है) पूर्णरूपेण विकास।

धरकंधा[10] का मठ जो दरियासाहब का 'तख्त' था सभी मठों में प्रधान माना जाता है। तख्त पर बैठनेवाले महन्त कहलाते हैं। इस संबंध में बुकानन साहब लिखते

दरिया पंथ के मठ

हैं—"दो अन्य व्यक्ति भी महंत की उपाधि से सुशोभित हैं, पर उनके रहने के स्थान को केवल मुकाम (आवास) ही कहा जाता है। उनमें से एक बेतिया के निकट दंगसी में है और दूसरा छपरा के निकट तेलपा में। दोनों ही स्थान सारन जिले में पड़ते हैं।"[11] इस वर्णन से पता चलता है कि आरंभ से ही धरकंधा का मठ सर्वप्रधान माना जाता था। प्राधान्यक्रम में उसके बाद दंगसी और तेलपा के स्थान आते हैं। 'दरियासागर' (बेल्वेडियर प्रेस द्वारा मुद्रित) की भूमिका में लिखा है कि धरकंधा में तख्त (सिंहासन) है तथा चार अन्य स्थानों पर इसकी शाखाएँ अथवा गद्दियाँ हैं। ये गद्दियाँ तेलपा, (जिला सारन), दंगसी (जि० सारन), मिर्जापुर (जि० सारन) और मनुआ चौकी (जि० मुजफ्फरपुर) में हैं। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि सन् १८१० ई० तक मिर्जापुर और मनुआचौकी के मुकाम (मठ) उतने प्रसिद्ध नहीं हो पाये थे कि उनका नाम धरकंधा के बाद वाले मठों की श्रेणी में रखा जा सके। न्यूनाधिक प्रसिद्धि के सभी मठों की वर्त्तमान संख्या अनुमानतः १५० के लगभग होगी।"[12]

---

१०. धरकन्धा के विशद वर्णन के लिए देखिये परिशिष्ट में 'व्यक्तियों एवं स्थानों पर टिप्पणी'।

११. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० २२०—२३०।

१२. परिशिष्ट में पूरे पते के साथ मठों की एक सूची दी गई है। धरकन्धा को छोड़कर अन्य तीनों प्रधान मठों की वंशावली भी वहाँ दी गई है; धरकन्धा की वंशावली के लिए परिशिष्ट 'स्थानों और व्यक्तियों पर टिप्पणी' देखिये।

मुख्य मठों में, विशेषतः धरकंधा मठ के तख्त पर, पुराने महंत के उत्तराधिकारी प्रधान शिष्य के नये महंत के रूप में आसीन होने की विधि बड़े समारोह से मनाई जाती है। जब पुराने महंत अपने शिष्यों में से उत्तराधिकारी बनने योग्य किसी एक व्यक्ति का चुनाव कर लेते हैं तो यह बात इस पंथ के अनुयायियों और सामान्य जनता में घोषित कर दी जाती है। उनके प्रस्तावित नाम पर किसी ओर से विशेष विरोध नहीं हुआ तो वे एक तिथि निश्चित करते हैं। उस तिथि पर पंथ के अनु-यायियों, साधुओं और जनता का सम्मेलन होता है। मनोनीत महंत एक पवित्र स्थान पर बिठाये जाते हैं। आगत व्यक्ति यथाशक्ति कुछ रुपये के साथ या बिना रुपये के एक चादर नये महंत को भेंट करते हैं। पहले पूर्ववर्त्ती बड़े महंत इनके ललाट पर दही का टीका (तिलक) लगाते हैं। तत्पश्चात् अन्य साधुगण भी टीका लगाते हैं। इस अवसर पर अक्षत, हल्दी, फूल और ऐसी ही अन्य शुभ वस्तुएँ व्यवहार में लाई जाती हैं। एक बृहत् भंडारा भी किया जाता है। भंडारा के दिनों में साधुओं और सर्वसाधारण के बीच सम्मिलित भजन-कीर्त्तन के मनोरम कार्य-क्रम चलते रहते हैं।

चतुर्थ परिच्छेद
दरियासाहब की रचनाएँ

दरियासाहब की निम्नलिखित २० पुस्तकों का अबतक पता चला है —

संख्या	पूर्णनाम		संक्षिप्त नाम
१.	अग्रज्ञान	—	अ० ज्ञा०
२.	अमरसार	—	अ० सा०
३.	भक्तिहेतु	—	भ० हे०
४.	ब्रह्मचैतन्य	—	ब्र० चै०
५.	ब्रह्मविवेक	—	ब्र० वि०
६.	दरियानामा	—	द० ना०
७.	दरियासागर	—	द० सा०
८.	गणेशगोष्ठी	—	ग० गो०
९.	ज्ञानदीपक	—	ज्ञा० दी०
१०.	ज्ञानमूल	—	ज्ञा० मू०
११.	ज्ञानरत्न	—	ज्ञा० र०
१२.	ज्ञानस्वरोदय	—	ज्ञा० स्व०
१३.	कालचरित्र	—	का० च०
१४.	मूर्त्तिउखाड़	—	मू० उ०
१५.	निर्भयज्ञान	—	नि० ज्ञा०
१६.	प्रेममूल	—	प्रे० मू०
१७.	शब्द या बीजक	—	श०
१८.	सहसरानी (सहस्रानी)	—	स० रा०
१९.	विवेकसागर	—	वि० सा०
२०.	यज्ञसमाधि	—	य० स०

उपर्युक्त सूची के नाम बुकानन साहब के द्वारा दिये गये नामों से[1] कुछ भिन्न पड़त हैं। उन्होंने कुल १८ पुस्तकों का नाम दिया है। उनकी दी हुई तालिका में उपरिलिखित संख्या १, २, ३, ४, ५, ७, ९, १०, ११, १६, १९, २० वाली पुस्तकों क

१. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० २२०—२३।

नाम कुछ विकृत रूप में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त निम्न ६ क नाम और मिलते हैं —

१. अलिफनामा
२. अरील
३. बैतनामा
४. गर्भचेतावन

} —परंतु ये 'शब्द' नामक ग्रंथ के विभिन्न परिच्छेद मात्र हैं।

५. गोष्ठी —'गणेशगोष्ठी' का ही नाम है।

६. ज्ञान गोष्ठी —संभवतः 'शब्द' के 'रामेश्वरगोष्ठी' शीर्षक परिच्छेद का ही विकृत नाम है।

उनकी तालिका में हमारी तालिका की सं० ६, ८, १२, १३, १४, १५, १७ और १८ वाली पुस्तकों के नाम नहीं मिलते। नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा प्रकाशित 'हिंदी हस्तलिपियों की खोज' की द्वितीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट में दरियासाहब की केवल १२ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं। उनमें से ९ तो हमारी तालिका की संख्या २, ३, ५, ७, ८, ६, ११, १२, और १३ वाली पुस्तकें ही हैं। शेष तीन पुस्तकें बीजक, रेख्ता, और शब्द बताई गई हैं। परंतु ये हमारी सूची की संख्या १७ के ही भिन्न अंशों के नाम हैं। आश्चर्य है कि सभा की १०वीं रिपोर्ट में दरियासाहब की एक नई पुस्तक का नाम मिलता है जिसका नाम 'अनुभववानी' है। किंतु पुस्तक के कुछ अंश (जो रिपोर्ट में उद्धृत किये गये हैं) को पढ़ने मात्र से यह पता चलता है कि इस पुस्तक के लेखक हमारे बिहार वाले दरियासाहब नहीं हैं। कारण निम्नलिखित हैं—

(१) पुस्तक की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—

'श्री सीताराम श्री दरियासाहब अनुभववानी लिख्यते।'

'श्री सीताराम' शब्दों के कहने से सगुण भक्ति का बोध होता है। इसके विपरीत निर्गुण भक्ति के सूचक शब्द 'सतनाम' हैं जिनका दरियासाहब ने निरंतर व्यवहार किया है और जो उनकी हस्तलिखित पोथियों क प्रत्येक पृष्ठ क ऊपर लिख पाये जाते हैं।

(२) जो हस्तलिपियाँ मेरे पास हैं उनमें कहीं भी दरिया या दरियादास के स्थान पर 'दरियाव दास' नहीं मिलता।

(३) उद्धृत खंड की अन्य पंक्तियों से भी ईश्वर की सगुणभक्ति का ही बोध होता है। यथा—"नमो नमो हरि गुरू नमो नमो नमो सब संत।
जन दरिया बंदन करे नमो नमो भगवंत।"

अतः मेरे विचार में ये दरियासाहब कोई अन्य लेखक थे और रिपोर्ट के संपादकों ने असावधानता से ही उन्हें बिहार का दरियासाहब मान लिया है।

'दरियासागर' (बेल्वेडियर प्रेस) के संपादक ने पुस्तकों की जो सूची दी है उसमें १९ नाम हैं जिनमें 'गर्भचेतावन', और 'रामेश्वरगोष्ठी' भी हैं। पर ये तो 'शब्द' (संख्या १७) के ही विभिन्न अंश हैं। अतः वह संख्या केवल १७ रह जाती है। उनमें से सोलह तो वे ही नाम हैं जो हमारी सूची में है और एक नाम 'ब्रह्म-ज्ञान'—जान पड़ता है—'ब्रह्मविवेक' (संख्या–५) का ही प्रमाद-जन्य रूपान्तर है। हमारी सूची के तीन नाम इस सूची में नहीं आये हैं। वे हैं संख्या ४, ७ और २०।

मुद्रित 'ज्ञानदीपक' की भूमिका में जो सूची दी गई है उसमें सं० ४, १४, १७, और २० के नाम नहीं हैं। पर उसमें दो अन्य पुस्तकों के नाम दिये गये हैं—एक 'पारसरत्न' और दूसरा 'ज्ञानचुम्बकसार'।

खेद है कि मैं उन पुस्तकों का कोई पता न पा सका। साधु चतुरीदास भी, जिनके ऊपर 'ज्ञानदीपक' वाली इस सूची का उत्तरदायित्व है, ये पुस्तकें मुझे न दिखा सके।

गणेशप्रसाद द्विवेदी अपने 'हिन्दी के कवि और काव्य' (द्वितीय भाग) में 'दरियासागर' और 'ज्ञानबोध' के नाम उद्धृत करते हैं। उनमें से प्रथम तो हमारी सूची की संख्या ७ है और दूसरा 'ज्ञान' से आरंभ होने वाली किसी पुस्तक का प्रमाद–जन्य नाम मालूम पड़ता है।

ऐसी अवस्था में, यह ध्यान में रखते हुए कि 'पारसरत्न'-और 'ज्ञानचुम्बकसार' नामक दोनों पुस्तकें या तो हैं ही नहीं अथवा अप्राप्य हैं, ऐसा कहा जा सकता है कि दरियासाहब एक उर्वर कवि थे जिन्होंने कम-से-कम बीस पुस्तकें लिखीं। उनमें से कुछ तो बहुत बड़ी हैं। निम्नलिखित तालिका से उन पुस्तकों के तुलनात्मक आकार तथा उनमें व्यवहृत पदों की विशेषता और संख्या का बोध होगा—

सं०	पुस्तक का नाम	दोहा या साखी	सोरठा	चौपाई	छन्द	पद्यों की पूरी संख्या	पंक्तियों की पूरी संख्या
१.	अ० ज्ञा०	५२	—	४१४	—	४६६	९३२
२.	अ० सा०	३६	८	३६५	८	४१७	८५०
३.	भ० हे०	५२	—	४७७	—	५२९	१०५८
४.	ब्र० चै०	—	—	—	—	३०९	७५६
५.	ब्र० वि०	३६	—	५१९	—	५५५	१११०
६.	द० ना०	—	—	—	—	१६५	३३०
७.	द० सा०	१०६	१६	११६०	१५	१२९७	२६२४
८.	ग० गो०	१३	—	१३४	—	१४७	२९४
९.	ज्ञा० दी०	२१४	५१	२२२८	१०२	२५९५	५९५८
१०.	ज्ञा० मू०	४३	—	४२७	—	४७०	९४०
११.	ज्ञा० र०	१२५	२३	१९६१	२४	२१३३	४३१४
१२.	ज्ञा० स्व०	४८	६	३४०	—	३९४	७८८
१३.	का० च०	—	१६	७३५	३२	७८३	१८०४

०ं	पुस्तक का नाम	दोहा या साखी	सोरठा	चौपाई	छन्द	पद्यों की पूरी संख्या	पंक्तियों की पूरी संख्या
१४.	म० उ०	४६	—	४८८	—	५३४	१०६८
१५.	नि० ज्ञा०	८	—	१८३	—	१९१	३८२
१६.	प्रे० मू०	२५	—	२३७	—	२६२	५२४
१७.	श०[2]	—	—	—	—	१२२४	९२२४
१८.	स० रा०	१०५३	—	—	—	१०५३	२१०६
१९.	वि० सा०	५९	१०	५५६	२०	६४५	१४४०
२०.	य० स०	२७	—	२५४	—	२८१	५६२
पूर्ण योग—		१९४३	१३०	१०४७८	२०१	१४४५०	३७०६४

शब्द[3] (श) क पदों की विशेषता पृथक् दी जा रही है —

शब्द सं०	पदों की सं०	पंक्तियों की सं०	शब्द सं०	पदों की सं०	पंक्तियों की सं०	शब्द सं०	पदों की सं०	पक्तियों की स०
१.	११९	४९२	२३.	१७	१८६	४६.	४	२१
२.२ (अ)	५३	२९४	२४.	२०	२४४	४७.	६	५५
३.३ (अ)	१५२	९४०	२५.	५	६०	४८.	४	४२
४.	४७	२८४	२६.	५	५२	४९.	९	९४
५.	३१	३८४	२७.	६	७४	५०.	९	१००
६.	१६	१८४	२८.	२	१९	५१.	१	१२
७.	२७	३३०	२९.	७	६०	५२.	१२	९६
८.	१८	१८६	३०.	१	९	५३.	१८	३८०
९.	९	१०६	३१.	२	६०	५४.	२	४५
१०,	९	१२०	३२.	३	१५	५५.	२	१६
११.	४	४६	३३.	२	१८	५६.	२९	१९३
१२.	२१	२३२	३४.	२	१२	५७.	७	८०
१३.	७	७८	३५.	२	१३	५८.	२७	५४
१४.	१३	१६०	३६.	२	१९	५९.	२८	११२
१५.	७	९०	३७.	१८	६४	६०.	१२	८२
१६.	२	३२	३८.	२	१०	६१.	२८	११२
१७.	२५	२५८	३९.	८	८२	६२.	३०	१८०
१८.	५९	६६२	४०.	१	१०	६३.	३२	३२
१९.	११	१३४	४१.	३	३४	६४.	३०	६०
२०.	१९	२२२	४२.	३	३६	६५.	९१	१८२
२१.	१०	१२४	४३.	३	३२	६६.	६	११०
२२.	२६	३२२	४४.	३	३२	६७.	३१	३५६
			४५.	४	४२			

योग फल—शब्दों की संख्या ६७; पदों की संख्या १२२४; बड़ी-छोटी पंक्तियों की सं० ९२२४

२. विशेष वर्णन के लिए अगला पृष्ठ देखिये ।

३. शब्द के पद्य प्रायः गाने योग्य पदों में लिखे गये हैं । कुछ पद्यों में चौपाइयाँ और साखी भी हैं । छन्दविचार के लिए परिशिष्ट देखिये ।

दरियासाहब की यह असाधारण प्रतिभा थी कि उन्होंने प्रायः १५ हजार पद्यों की रचना की। इन पद्यों में छोटी-बड़ी कुल ३७ हजार से अधिक पंक्तियाँ हैं। इनमें भिन्न-भिन्न अनेक छंदों का व्यवहार किया गया है। कविताओं की मौलिकता और काव्य-प्रतिभा को छोड़ दीजिए, फिर भी उपर्युक्त विशेषताएँ उन्हें हिंदी के अग्रगण्य कवियों की पंक्ति में बिठाने के लिए पर्याप्त हैं।

पुस्तकों की रचना का कालक्रम

स्वयं पुस्तकों में भी उनके रचना-क्रम संबंधी कुछ संकेत मिलते हैं। यथा—'ज्ञानदीपक' में लिखा है 'दरियासागर प्रथमहि कहेऊ'[४]।—यह पंक्ति दरियासाहब के आत्मचरित के प्रसंग में आई है और इससे पता चलता है कि 'दरियासागर' उनकी प्रथम काव्यरचना थी। पुनश्च—'ज्ञानस्वरोदय' में लिखा है—

"ग्रंथ अष्टदस कहा बखानी
तब सरोद कहँ दिल अनुमानी।"[५]

इसका अर्थ है कि 'ज्ञानस्वरोदय' (सरोद) की रचना के पहले १८ पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं। पुनः, 'ज्ञानस्वरोदय' का अंतिम पद है—

दरियानामा पारसी, पहिले कहा किताब।
सो गुन कहा सरोद में गहिर ग्यान गरकाब।।[६]

अर्थात्, 'दरियानामा' की ही पृष्ठभूमि पर 'ज्ञानस्वरोदय' की रचना हुई।

सभी बातों का ध्यान रखते हुए हम निम्नलिखित निर्णय पर पहुँचते हैं—

(१) 'दरियासागर' दरियासाहब की प्रथम काव्य-रचना है।

(२) 'ज्ञानस्वरोदय' उनकी उपान्तिम रचना थी।

(३) 'ज्ञानस्वरोदय' के बादवाली रचना को छोड़कर और सभी रचनाएँ उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के बीचवाले समय में लिखी गईं।

(४) इन मध्यवर्त्ती रचनाओं में 'ज्ञानदीपक' के बाद ही 'कालचरित्र' की रचना हुई। स्पष्ट है—

"ज्ञानदीपक ग्रंथ संपूरन कीन्हा।
तब ही काल पेयाना दीन्हा।"[७]

पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ के द्वितीय खंड में दरियासाहब के दार्शनिक विचारों और सिद्धांतों का विशद वर्णन किया गया है। इस वर्णन में उनके संपूर्ण प्रतिपादित विषयों के सामूहिक रूप का परिचय मिलता है, पर इसमें भिन्न-भिन्न पुस्तकों की पृथक्-पृथक् चर्चा नहीं की गई है। अतः हम यहाँ प्रत्येक पुस्तक के विषय का अलग-अलग संक्षिप्त परिचय देंगे। ये विषय अनेक तथा विविध हैं; यथा—ईश्वर, आत्मा, शरीर, पुनर्जन्म, कर्मसिद्धांत, सृष्टिरचना, स्वर्ग, नरक, योग, स्वरोदय (श्वास अथवा प्राणायाम का विज्ञान), माया, ज्ञान, भक्ति, परंपरागत

४. ज्ञा० दी० १६२·३०। ५. ज्ञा० स्व० ३। ६. वहीं ३६४। ७. 'कालचरित्र' ०·१।

प्रवृत्तियाँ—यथा, जाति, रीतिरस्म और मूर्त्ति-पूजा ; सद्गुण—यथा, सत्य, संयम, अहिंसा और आत्मनिरोध ; संत और सद्गुरु की उपासना और लेखक तथा उसके पंथ के संबंध की अनेकानेक बातें।

[१] अग्रज्ञान—(दरिया और सत्पुरुष के बीच वार्त्तालाप के ढंग पर) माया की व्यापकता—निर्गुण और त्रिगुण—अभय लोक का वर्णन—सृष्टि की रचना—सत्पुरुष के सोलह पुत्र जिनमें अब्दुल्ला (दूसरा नाम निरंजन) सहज और सुक्रित (दूसरा नाम जोगजीत) भी हैं—उनके द्वन्द्व और अधिकार-सीमा की चर्चा तथा सहज और निरंजन का परस्पर संघर्ष—दयादीप (द्वीप) में सत्पुरुष का जोगजीत (दरिया के पूर्व अवतार) से जाकर अब्दुल्ला का राज्यच्युत कर देने को कहना—जोगजीत का सहज से मिलना और सोलहों भाइयों की राज्यसीमा के विषय पर वार्त्तालाप—जोगजीत और तीन लोक हड़पने वाले अब्दुल्ला की भिड़ंत—दोनों का सत्पुरुष के निकट जाना और जोगजीत के अनुयायियों का सत्पुरुष लोक का अधिकारी सिद्ध करने की चेष्टा करना—भक्तों के चरित्र—पाप और पाषण्ड का त्याग—दिव्यदृष्टि और 'छपलोक'—योग की व्याख्या—प्रेम और भक्ति।

आरम्भ— अरज कीन्ह सिर नाय, दयानिधि सुनु लीजिये।
सदा सबद समुझाय, बहुरि ना भव जल आवहीं।।

अन्त— बेबहा पुर्ख अमान हहिं, दरसन दीन्हों आए।
सहिजादा सुक्रित हहिं, सभ बिधि कहा बुझाए।।

[२] अमरसार—सद्गुरु और सत्पुरुष की स्तुति—दरिया का सत्पुरुष से साक्षात्कार—भक्ति पर तर्क-वितर्क—मिथ्यायोग का विरोध—पाषण्ड की निन्दा—अमरपुर तथा उसके पार्श्ववर्ती लोक और उनके गौरव—ज्ञानमार्ग—सगुण अवतार और निर्गुण सत्पुरुष—माया के प्रपंच और हिंदू देवताओं, ऋषियों और संतों पर इनका प्रभाव—स्वरोदय और प्राणायाम।

आरम्भ— सद्गुरु चरन सुधा सम, विमल मुक्ति के मूल।
पद-पंकज लोभत हिए, अजर अनूपम फूल।।

अन्त— अग्र कला ते पार है, अगम निगम पहिचानि।
सेत मण्डल झलकत रहे, निर्मल हंस बखानि।।

[३] भक्तिहेतु—पशु-पक्षी और कीट जगत् से लिए हुए उदाहरणों द्वारा भक्ति और ज्ञान का उपदेशपूर्ण वर्णन—साधु और असाधु (अच्छे और बुरे लोगों) के चरित्र की चर्चा तथा साधु संगति की आवश्यकता—सद्गुरु की स्तुति—माया और इसकी शक्ति—अहिंसा और दया—स्त्री और संपत्ति के लोभ का त्याग—निर्गुण और त्रिगुण—अमरलोक की 'दिव्य दृष्टि'—मन की चंचलता—तथाकथित पण्डितों का पाषण्ड—विश्वबंधुत्व, और जाति-पाँति का बहिष्कार—सत्पुरुष के अंशावतार के रूप

सुक्ति (दरिया)--उनका मिलन और उनसे बातचीत--हठयोग और अन्य पाषण्डों का खण्डन--विभिन्न लोकों (द्वीपों) से होकर हंस (आत्मा) की अमरपुर-यात्रा।

आरम्भ-- ज्ञान भक्ति निजु सार है, सुनो स्रवन चितलाए।
बिक्ति बिक्ति बिख्यान यह, ब्रह्म अनूप देखाए।।

अन्त-- मन पवना के साधिए, साधू सब्दहि सार।
मूल अकह में गमि करो, मोती घना पसार।।

[४] ब्रह्मचैतन्य--निर्गुण और सगुण--विहंगमयोग और पिपीलिकयोग--सद्गुरु की कीर्त्ति--हिंसा और पाषण्ड का बहिष्कार--माया और मन की चंचलता--अमरपुर और इसके वैभव-विलास --अद्वैतवाद और द्वैतवाद।

आरम्भ--(किंचित् शुद्ध रूप में) सत्यब्रह्मं निरूपं सदा गुणवन्तम्।
अर्धेन ऊर्ध सुमध्ये न रान्तम्।।

अन्त-- पुर्ष सब्द या भेद भेदे
स्वेत ब्रह्म सरूपणम्।
दरिया भाष्यम् सत्तुसारम्
ज्ञान ब्रह्म निरूपणम्।।

[५] ब्रह्मविवेक--सत्पुरुष का सत्य स्वरूप--विवेक-बुद्धि की आवश्यकता--पाषण्ड का भंडाफोड़--सच्चे संत का वर्णन--हठयोग के विपरीत सहजयोग--छपलोक और उसके आमोद-प्रमोद--निर्गुण और त्रिगुण--आत्मशुद्धि की आवश्यकता--भूत-प्रेत का निराकरण--आदि भवानी (माता) और ब्रह्म (पुत्र) के बीच वार्त्तालाप--तपस्या करने पर भी ब्रह्म का (सत्पुरुष का) दर्शन न पाना--राम (जो सीता पर मुग्ध हुए) और सत्पुरुष में परस्पर भेद--राम की कहानी का थोड़े में प्रसंग--नारी का प्रत्याख्यान और ब्रह्मचर्य की महिमा--सच्चा योग--क्रोध के दूषण--कामनाओं की व्यापकता और प्रबलता के प्रतिपादनार्थ दुर्वासा का उर्वशी पर रीझने का दृष्टांत--सत्तनाम और सद्गुरु का गुणानुवाद--सत्पुरुष से उस कृष्ण से भिन्नता जो राधा, रुक्मिणी और अन्य गोपियों से रासलीला करते रहे--सच्चा योग--ज्ञान की गरिमा--शृंगी ऋषि (ऋष्यशृंग) की कहानी जो एक सुन्दर कुमारी के मोह में फँस गए--एक द्रौपदी के पाँच पाण्डव पति--पराशर का एक वेश्या पर आसक्त होना--साम्प्रदायिक विभिन्नताओं का खोखलापन--निरंजन (काल या मन) का प्रभाव--हंसों (आत्माओं) का उद्धार करने के हेतु सुक्ति का भिन्न-भिन्न नाम-रूप में अवतार लेना--दरिया का अंतिम अवतार।

आरम्भ-- ब्रह्म विवेक ग्यान एह, स्रोता सुमति सुधार।
ग्यानी समुझि बिचारही, उतरहि भौ जल पार।।

अन्त— ब्रह्म बिबेक ग्यान यह, पढ़े सुने चित लाए।
मुक्ति पदारथ पावई, सदा रहे सुख पाए।

[६] दरियानामा[८]—यह संक्षेप में 'ज्ञानस्वरोदय' का 'स्वरोदय' परिच्छेद छोड़कर अवशेष अंश का फारसी में रूपान्तर मात्र है और इसमें मौलिक वस्तुएँ भी हैं। इसके पदों में कुरान से भी अंश लिये गए है। यह प्रधानतया मुसलमानों को संबोधित करके लिखा गया है।

आरंभ— बनाम् आँ के वस् फ़स कुल हो वल्लाह्।
नेक़ाबे नामा अस् अल् हम्दो लिल्लाह्॥

अंत— अया दरिया ज़े तो बेरूँ यके नीस्त।
तु हस्ती हर चे हस्ती रा शके नीस्त॥

[७] दरियासागर—शब्द और नाम की महिमा—छपलोक का प्रसंग—निर्गुण सत्पुरुष और सगुण अवतार—दिव्य-दृष्टि की मनोरमता—सच्चायोग—सद्गुरु की प्रशंसा—नाम की महिमा—सद्गुरु द्वारा मुक्ति को शिक्षा-प्रदान—माया और उसका प्रपंच—ईश्वर-प्राप्ति के लिए विश्वास की आवश्यकता—नामस्मरण से लाभ—पाषंड और कर्मकाण्ड का बहिष्कार—मूर्त्ति-पूजा और जाति-प्रथा के विरुद्ध आक्षेप—यम के अत्याचार और उनसे बचने के मार्ग—संत के आदर्श—क्रोध तथा अन्य वासनाओं की निकृष्टता—हिंदू और मुसलमानों के हिंसाचार के विरुद्ध कठोर आलोचना—वेद और पण्डित की भ्रम-मूलकता—सृष्टि-निर्माण की क्रिया—ऐहिक संपत्तियों की क्षणभंगुरता—माया की प्रबलता।

आरंभ— दरियासागर ग्रंथ यह, मुक्ति भेद निजु सार।
जो जन सब्द विवेकिया, उतरहु भौ जल पार॥

अंत— कोठा महल अटारिया, सुनेउ स्रवन बहु राग।
सद्गुरु सब्द चिन्हे बिना, ज्यों पंछिन महँ काग॥

[८] गणेशगोष्ठी—मूर्त्तिपूजा, कर्मकाण्ड, जातीय तथा सांप्रदायिक भेदभाव, वेद, ईश्वर, अवतार, स्वर्ग, माया आदि विषयों पर गाँव के सरदार के राजगुरु गणेश पण्डित और दरियासाहब के बीच विवादों की एक छोटी पुस्तिका।

आरंभ— पंडित राज सुन लीजिए, बचन सत्त सुबास।
पढ़ि ग्रंथ कछु लाज धरो, मेटे नरक कुबास॥

अंत— सत्त नाम सर्वे ऊदितं, जैसे देवस पतंग।
जो जन सुमिरन ठानहीं, पच्छ होत ना भंग॥

[९] ज्ञानदीपक—सद्गुरु और संत की वंदना—निर्गुण तथा त्रिगुण—ज्ञान द्वारा मुक्ति—अमरपुर के आनंद का वर्णन—चिंतन (अथवा ध्यान)—तीर्थ और अन्य

८. मेरे पास 'दरियानामा' नामक एक अन्य पुस्तक है जिसमें साखियाँ है। इसके चरण द, रि, आ, (संत का नाम) अक्षरों से आरंभ होते हैं।

पाषण्डों का उपहास—आत्मनिरोध और अहिंसा—ईश्वर, माया आदि विषयों पर कुंभज और भारद्वाज के बीच वार्त्तालाप—नारद के राजा शीलनिधि की कन्या पर मुग्ध होने की कथा—शिव और पार्वती के बीच देवता, मनुष्य और अन्य प्राणियों की सृष्टि के विषय में वार्त्तालाप—सत्पुरुष और उनके पुत्रों के विषय में कुंभज और नारद के बीच वार्त्तालाप—कुंभज का शिव और पार्वती से मिलना—सुक्रित (दरिया) के विभिन्न जन्मों का आत्मचरित।[९]

आरंभ— प्रेम जुक्ति निज मूल है, गुर गमि करो सुधार।
दया दीपक जब ही बरै, दरसन नाम अधार।।

अन्त— हीरामन निजु दास है, सभ दासन को दास।
सतगुरु से परिचे भई, त्रिगसा प्रेम प्रकास।।

[१०] ज्ञानमूल—त्रिगुण देवों से सत्पुरुष की विभिन्नता—सत्पुरुष का स्वर्ग से जंबू द्वीप आकर सुक्रित के प्रचारों के हेतु उन्हें रक्षा प्रदान करना—जीवहिंसकों की निंदा—दिव्यदृष्टि और छपलोक का सौंदर्य—विश्व की अनेकता—नरक की यातना—वासनाओं पर विजय—स्वर्ग और नरक का वास्तविक अर्थ—सद्गुरु का सम्मान—कबीर और नामदेव के आदर्श संत होने का प्रसंग—सच्चे साधु का चरित्र—माया का परदा और यम का आधिपत्य—ज्ञान द्वारा मुक्ति—नारी और धन की निन्दा—जाति और सम्प्रदाय का बहिष्कार—सत्पुरुष का आकर दरिया को अपना युवराज (शाहजादा) बनाना—छपलोक के चमत्कार का विशद वर्णन—दरिया की दिव्य शक्तियों के अचरज—उनके परिवार और शिष्यों की चर्चा—मन की व्यापक प्रबलता।

आरंभ— सत्त बरग सरब ऊपरै, सखा पत्र सब जीव।
जल थल सभ में व्यापिया, साँच सुधा रस पीव।।

अन्त— रबि को छबि यह छीत पर, एह निर्गुन को भाव।
छबि ते रबि नहिं होत है, त्रिगुन सगुन को भाव।।

[११] ज्ञानरत्न—इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर नोखागढ़ (आरा-सहसराम लाइट रेलवे) के जमींदार शुजाशाह और दरियासाहब के बीच वार्त्तालाप है। प्रधान विषय है—(१) संक्षेप में राम की कहानी; (२) निर्गुण, सगुण, ज्ञान, भक्ति, माया, साधु, सद्गुरु आदि विषयों पर आलाप; मूलकथा में यत्र-तत्र प्रसंग रूपेण इसका वर्णन; (३) इन्हीं विषयों पर गरुड़ और काकभुशुण्डि का आलाप; (४) अवतार आदि विषयों पर कृष्ण और अर्जुन का आलाप; (५) मुक्ति, सत्तनाम, सद्गुरु आदि विषयों पर दरिया और शुजा की परस्पर बातचीत।

आरंभ— ग्यानरतन मनि मंगल, बिमल सुधा निजु गाम।
करो बिबेक बिचारि के जाय अमरपुर धाम।।

---

९. प्रथम खण्ड का प्रथम परिच्छेद देखिये।

अन्त—गुरु से भ्रम जनि राखहु, मिले सब्द निजु सार।
सुक्रित वचन बिचारिया, उतरि जाहु भव पार।।

[१२] **ज्ञानस्वरोदय**—ईश्वर, आत्मा, शरीर, पुनर्जन्म, मुक्ति, स्वर्ग और नरक, दिव्यदृष्टि, माया, ज्ञान, और भक्ति, साधु और सद्गुरु, संयम, आत्मनिरोध आदि गुण; हिंसा, मद्यपान आदि अवगुण; तथा पाषण्ड, मिथ्या कर्मकांड आदि विषयों के अतिरिक्त इस पुस्तक में प्राणायाम अथवा स्वरोदय (श्वास की क्रिया-प्रक्रिया) के विज्ञान का वर्णन है। 'ज्ञानस्वरोदय' 'दरियानामा' नामक फारसी ग्रंथ का विशद रूपान्तर है।

आरम्भ— दरिया अगम गँभीर है, लाल रतन की खानि।
जो जन मिलै जौहरी, लेहि सब्द पहिचानि।।

अन्त— दरियानामा फारसी, पहिले कहा किताब।
सो गुन कहा सरोद में, गहिरि ग्यान गरकाब।।

[१३] **कालचरित्र**—इस पुस्तक में दरियासाहब का 'काल' के साथ युद्ध का वर्णन है। 'काल' साधु या पण्डित के वेश में है। विवाद के विषय वे ही हैं जो अन्य पुस्तकों में; यथा—सगुण और निर्गुण, सद्गुरु, शब्द, योग, वासनाओं का दमन, पाषण्ड आदि। उन स्थानों और व्यक्तियों के अनेक प्रसंग हैं जिनका वर्णन खंड १ के प्रथम परिच्छेद में किया जा चुका है।

आरम्भ— ग्यानदीपक ग्रंथ संपूरन कीन्हा।
तबही काल पेयाना दीन्हा।।

अन्त— हीरामन निज दास है, सभ दासन के दास।
सतगुरु से परिचै भई, बिगसा प्रेम प्रकास।।

[१४] **मूर्त्तिउखाड़**—धरकन्धा के गणेश पण्डित से मूर्त्ति-पूजा पर विवाद का विशद वर्णन—भवानी की मूर्त्ति कुछ महीनों तक छिपाकर उस मूर्त्ति की निरर्थकता प्रमाणित करना—फलस्वरूप गाँव के मुखिया और कट्टर हिंदुओं का दरियासाहब पर क्रोध—दरियासाहब की अंत में विजय—सत्पुरुष का प्रकट होना और अपने विभिन्न अवतारों का वर्णन करना—स्थानों और व्यक्तियों का प्रसंग।

आरम्भ— जहाँ बसे सतगुरु सतपुर देसवा,
भेसवा धरिया पगु धरहीं रे जी।।

अंत— वा चढ़हि हंस लोक सिधारेवो,
भयउ संपूरन काजउ रे जी।।

---

१०. संख्या ६ वाली पुस्तक का अन्तिम पद भी यही है।

[१५] निर्भरज्ञान— सत्पुरुष का गुणानुवाद, सद्गुरु और शब्द में विश्वास की आवश्यकता—आत्मा पर उनका शांतिप्रद और सुधारपूर्ण प्रभाव, जैसे स्वातिबूँद के केले में पड़ने से कपूर की सृष्टि होती है अथवा जैसे बिना किसी गंधवाले दूध से सुगंधित घी की उत्पत्ति है अथवा जैसे बीजरूप पुष्पों में अनेक प्रकार की सुगंध निहित रहती है—सच्चा योग और दिव्यदृष्टि—क्रोध, लोभ, वासना, आदि प्रलोभनों का परित्याग—यम के १४ दूत (प्रलोभन)—ज्ञान द्वारा उनके दमन की आवश्यकता—२५ 'प्रकृतियाँ' (मानव स्वभाव के दूषण)।

आरंभ— आदि पुर्ख कर्त्ता हहिं, जिन्हँ कीन्हों सकल संसार।
प्रिथिमी नीर अकास जत, चंद सुरज बिस्तार ।।

अन्त— सतगुरु सब्द प्रतीति करि, गहो सन्त चित लाय ।
छपलोक के जाइहो, बहुरि ना भवजल आय ।।

[१६] प्रेममूल—यह एक छोटी-सी पुस्तक है जिसमें पशु-पक्षी और कीट-पतंगों के उदाहरण द्वारा ईश्वर और सद्गुरु के प्रति प्रेम की दृढ़ता का प्रतिपादन किया गया है।[११]

आरंभ— प्रेम कँवल जल भीतरै, प्रेम भँवर लै बास।
होत प्रात सूपट खुलै, भान तेज परगास ।।

अन्त— त्रिया भवन बिच भगति है, रहै पिया के पास।
मन उदास नहि चाहिए, चरन कँवल की आस ।।

[१७] शब्द—दरियासाहब का यह सबसे बृहत् एवं विशालकाय ग्रंथ है और अन्य ग्रंथों से विभिन्न है। विभिन्नता इस बात में है कि इसमें ऐसे पदों का संकलन है जो भिन्न रागों में गाये जा सकते हैं और जो विभिन्न छन्दों में लिखे गये हैं। पदों को अनेक शीर्षों में विभक्त किया गया है और सब मिलाकर वे उन सभी विषयों को अन्तर्विष्ट कर लेते हैं जो अन्य पुस्तकों में प्रतिपादित है। बल्कि कुछ और विषयों का भी प्रतिपादन इस ग्रंथ में हुआ है। यह संकलन एक बृहत् कोष की भाँति है और साधुओं का प्रिय ग्रंथ है। यहाँ अरील (शब्द सं० ६१) और अलिफनामा (शब्द सं० ६२) का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। उनमें फारसी तथा नागरी अक्षरों को क्रम से प्रत्येक चरण अथवा पंक्ति के आरंभ में रखकर उन्हें सार्थक शब्दों का अंग बनाकर कविता करने की विशेष प्रणाली का व्यवहार किया गया है। यथा, (१) अलिफ—अलिफ अल्लाह सभको सिर ताज

('अलिफनामा' अरबी लिपि के आधार पर है)

(२) ग—गहिर ग्यान निजु सार भेद बाँको बड़ो।

('अरील' देवनागरी लिपि के आधार पर है)

---

११. विशद वर्णन के लिए द्वितीय खण्ड म 'प्रम' शीर्षक परिच्छेद दखिये।

कभी-कभी अक्षरविशेष पंक्ति के आरंभ में न होकर उसके बीच में किसी प्रमख शब्द का अंग बन जाता है। शब्द सं० ६० में दरियासाहब और बनारस वाले रामेश्वर पण्डित के वाद-विवाद का सारांश दिया गया है।[१२]

[१८] सहसरानी—यह १०५३ साखियों का एक समुच्चय है। ये साखियाँ अन्य पुस्तकों में वर्णित विभिन्न विषय पर ही हैं। अधिकांश साखियाँ सर्वथा मौलिक हैं, परन्तु कुछ को संत कवि ने अपनी अन्य रचनाओं से भी लेकर इसमें शामिल कर लिया है। उदाहरणस्वरूप सहसरानी—५०=ज्ञा० स्व० ३८१ (थोड़े अन्तर के साथ)।

" —७६=ज्ञा० र० ६.०
" —६०=ज्ञा० र० ३६.०
" —२०७=ज्ञा० स्व० १
" —२१३=ज्ञा० स्व० ७६
" —४५६=ज्ञा० स्व० १०३
" —४७६=ज्ञा० स्व० ८५
" —७८५=ज्ञा० स्व० ११२
" —८१३=ज्ञा० स्व० १४८ (थोड़े अन्तर के साथ)।

और इसी प्रकार अन्य भी स्थल है। सामान्य धारणा ऐसी है कि 'सहसरानी' में आरंभ में केवल सात ही (सतसई) पद थे, पर क्रमशः वह संख्या बढ़ते-बढ़ते १००० हो गई और इसका नाम 'सहसरानी' पड़ गया। संस्कृत, प्राकृत और हिंदी में सप्तशती का बड़ा प्रचार था और दरियासाहब ने भी उनसे ही अपनी प्रेरणा ली होगी।

[१६] विवेकसागर—गरुड़ की वंदना—विवेक के बिना बाह्याडम्बर की निस्सारता—साधु के लिए जाति की निरर्थकता—भक्ति के बिना मानव की पशुपक्षी के साथ सदृशता—यम की यातना—सद्गुरु में विश्वास—शरीर का लोकों में विभाजन—स्वर्ग के आमोद-प्रमोद—विहंगम योग—दया के गुण और मांस-भक्षण के अवगुण।

पाषण्ड का वहिष्कार—प्रलोभनों के दण्डस्वरूप अवतार—कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में विष्णु का हाथ—कृष्ण का दुर्योधन के पास पाण्डवों की ओर से राज्य-विभाजन-विषयक संवाद लेकर जाना और दुर्योधन का सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार करना—दुर्योधन द्वारा कृष्ण का उपहास—कृष्ण का अपने विभिन्न अवतारों की कथा कहना—कौरवों और पांडवों का युद्ध—कौरवों की हार—युधिष्ठिर का राज्याभिषेक—निर्गुण सत्पुरुष की सगुण कृष्ण से विभिन्नता—दरिया का सत्पुरुष से मिलना।

युधिष्ठिर का सपना देखना कि वे रक्त की वर्षा में भींग गये हैं और उनके सभी ओर रक्तपात का दृश्य है—उनका कृष्ण के पास जाना और कृष्ण का यह कह कर स्वप्न की व्याख्या करना कि वह उनके सगे-संबंधियों की युद्ध में मृत्यु का

१२. शब्द के शीर्षकों और छन्दों के बारे में परिशिष्ट दखिये।

सूचक है—युधिष्ठिर का कृष्ण पर इस रक्तपात का आक्षेप लगाना—कृष्ण का प्रायश्चित्त के निमित्त एक यज्ञ करने की सलाह देना—घंटा न बजने के कारण यज्ञ की विफलता—कृष्ण का यह बताना कि घंटा न बजने का कारण गोपपुर के सुदर्शन नामक संतों के भक्त श्वपच (डोम) का यज्ञ में उपस्थित न रहना ही है—भीम का उस श्वपच के पास जाना—भीम की प्रार्थना का श्वपच द्वारा इस कारण निराकरण कि वह राजा, मछुआ, वेश्या, और वधिक के घर भोजन नहीं करता था—अंत में युधिष्ठिर का उसे मना लेना—श्वपच को यथेष्ट भोजन कराने के फलस्वरूप घंटे का बज उठना।

आरम्भ— सतगुरु मत हिरदै मम, पद पंकज करु ध्यान।
लोचन कंज मंजन करो, सुघर संत सुजान।।

अन्त— नीच भया नाचत फिरे, बाजीगर के साथ।
पाँव कुल्हारी मारिया, गाफिल अपने हाथ।।

[२०] यज्ञसमाधि—इस पुस्तक में 'विवेकसागर' के ही उत्तरार्द्ध का विषय[१३] फिर से दूसरे ढंग के छंदों में कहा गया है।

आरंभ— एहि भाँति के परिपंच केसो भारत को महिमा कियो।

अंत— साधु साधु सब कहत है, साधू समुझे वार।
अलल पच्छ कोइ एक है, पंछी कोटि हजार।

---

१३. देखिये, संख्या १६ वाली पुस्तक के सारांश का उत्तरार्द्ध।

द्वितीय खंड

प्रथम परिच्छेद

संतमत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य की प्राचीनतम साहित्यिक विभूतियाँ वेद हैं। उनके प्रति सिंहावलोकन करने से पता चलता है कि वे सामान्यतः बहुदेववाद के समर्थक हैं। उदाहरणतः,

वैदिक एवं ब्राह्मणग्रंथीय युग

ऋग्वेद की ऋचाएँ उन देवताओं की स्तुति में गाई गई, जो 'प्राकृतिक दृश्यों के मानवीकृत रूप हैं'।[1] किन्तु सूक्ष्म विश्लेषण से यह भी विदित होता है कि ऋग्वेदीय युग के पश्चिमांश में ऋषियों का बहुदेववाद एकदेववाद की ओर अग्रसर हो चला था[2]। 'कहीं-कहीं तो ऐसे सर्वात्मवाद की भी झलक मिलती है जिसमें एकदेवत्व की भावना न केवल सर्वदेवत्व का, अपितु व्यापक प्रकृति (Nature) का भी, प्रतिनिधित्व करती है।········सर्वात्मवाद का यह बीज पश्चाद्वर्त्ती वैदिक साहित्य में विकसित होकर वेदान्तदर्शन में अपने चरम रूप को प्राप्त हुआ'।[3] इसके अतिरिक्त वह यज्ञवाद अथवा कर्मकांड, जो ऋग्वेदीय काव्य का सामान्य पृष्ठाधारमात्र था, क्रमशः अधिकाधिक पेचीदा और जटिल होता गया; और, सामवेद तथा यजुर्वेद तक आते-आते एकमात्र वही उनका प्रधान लक्ष्य बन गया। साम और यजुष् के अध्ययन करनेवाले को ऐसे मंत्र अधिक संख्या में मिलेंगे जिनमें यज्ञ-संपादन, सामगान अथवा सोमपान के द्वारा उत्पादित 'परमानन्द-जन्य आत्मविस्मृति' का वर्णन है; और, राधाकृष्णन् के अनुसार, इन वर्णनों को पढ़कर हमें 'योगियों की उन दिव्य आनन्दानुभूतिजन्य अवस्थाओं की याद आ जाती है, जिनमें सुन्दर 'ध्वनियाँ' सुन पड़ती हैं और अद्भुत 'दृश्य' गोचर होते हैं'।[4] 'यज्ञविधियों के विस्तार के साथ ही साथ उस वर्णप्रणाली का भी विकास और संगठन होने लगा, जिसमें ब्राह्मणों को सामाजिक एवं धार्मिक श्रेष्ठता प्राप्त हुई और जिसने भारतवर्ष को पिछले ढाई हजार वर्षों से जकड़ रक्खा है।'[5] 'कृत्रिम पुरोहितवाद' ब्राह्मणग्रंथों और कल्पसूत्रों में अपने प्रकर्ष पर पहुँच गया; और, पुरोहित अत्यधिक गौरव के पात्र बन गए। शतपथ ब्राह्मण ने तो यहाँ तक घोषित किया कि "देवता दो प्रकार के हैं, स्वर्ग के देवता तो देवता हैं ही, किन्तु वे ब्राह्मण जो वेदों का अनुशीलन और अध्ययन करते हैं, मानव होते

---

१. मैकडोनेल : संस्कृत साहित्य का इतिहास, (अंग्रेजी में) पृ० ६६।

२. वही, पृ० ७०, तु० ऋग्वेद १०, ११४।

३. वही, पृ० ७०–७१।

४. राधाकृष्णन् : Indian Philosophy, पृ० ११६,।

५. वही, पृ० १८४।

हुए भी देवता है"।[६] ऋग्वेद में प्रतिपादित आचार-व्यवहार की ओर दृष्टिपात करने से यह विदित होता है कि वरुणदेवता की जिन मंत्रों द्वारा स्तुति की गई है, वे उसे 'भौतिक और आचार-सम्बन्धी नियम (ऋत) का अधिष्ठाता' और रक्षक मानते हैं। 'ऋत' वस्तुतः एक महत्त्वपूर्ण भावना है, क्योंकि यह भारतीय विचारधारा की एक प्रमुख विशेषता, अर्थात् 'कर्म-सिद्धान्त का अग्रदूत' है। क्रमशः यज्ञविधान के महत्त्व की वृद्धि के साथ-साथ 'ऋत' यज्ञ अथवा यज्ञविधि का पर्यायवाची[९] हो गया, और यज्ञ तथा यज्ञफल के बीच के कार्यकारण-सम्बन्ध का द्योतक बन गया। यद्यपि ऋग्वेद के समान ही, ब्राह्मणग्रन्थों में भी 'देवलोक अथवा स्वर्ग में अमरत्व'[१०] की भावना सर्वप्रबल है, फिर भी उनमें देवयान और पितृयान के बीच जो अन्तर प्रतिपादित किया गया है तथा 'दूसरे लोक'[११] में मिलनेवाले पुरस्कारों और दण्डों की जो चर्चा की गई है, उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों में पुनर्जन्म-सिद्धांत के विकास की मूल भावनाएँ विद्यमान हैं।[१२]

(ऋग्वेद[१३] में सृष्टि की समस्या का समाधान भी यज्ञसंस्कार की भावना के अनुरूप किया गया है, और 'पुरुष' को बलि अथवा सामग्री मानकर उससे संसार की सृष्टि की कल्पना की गई है।[१४] सृष्टि की समस्या के सुलझाव के लिए स्वभावतः एक स्रष्टा की कल्पना हुई और उसे 'पुरुष', 'विश्वकर्म्मा', 'हिरण्यगर्भ' और 'प्रजापति' की संज्ञाएँ दी गई।[१५] इस संबंध में हमारा ध्यान उस प्रसिद्ध 'नासदीय सूक्त' की ओर जाता है, जिसमें राधाकृष्णन् के अनुसार, 'सृष्टि का अत्युत्कृष्ट सिद्धान्त'[१६] वर्त्तमान है। पश्चाद्वर्ती भारतीय दार्शनिकों ने 'पंचतत्त्व' का प्रतिपादन किया है, किन्तु ऋग्वेद में एक 'जल' ही मूलतत्त्व माना गया है।

सृष्टि-संबंधी सूक्तों की रहस्यमय भाषा से मिलती-जुलती भाषा हम ऋग्वद जैसे अन्य सूक्तों में भी पाते हैं जिनमें हमें 'काव्यगत पहेलियों' का दर्शन होता है। इन सूक्तों का ऐतिहासिक महत्त्व उस दशा में और भी बढ़ जाता है जब हम इन्हें कबीर के रहस्यवाद और आधुनिक हिन्दी काव्य के 'छायावाद' के धुँधले अग्रेसरों के रूप में देखते हैं।

---

६. शतपथ ब्राह्मण (ii) २.२.६, ४.३.१४.
७. मैकडोनेल, पृष्ठ ७५
८. राधाकृष्णन्, पृष्ठ १०९
९. वही, पृष्ठ ११०
१०. वही, पृष्ठ १३३
११. शतपथ ब्राह्मण—१२. ९, ११.
१२. राधाकृष्णन्, पृ० १३५
१३. ऋग्वेद, १०. ९०
१४. मैकडोनेल, पृ० १३२
१५. वही
१६. राधाकृष्णन, पृष्ठ १०१, १०५

नवीन वेदान्त में 'माया' को केन्द्रीय भावना माना गया है, किन्तु ऋग्वेद में सामान्यतः उसका अर्थ 'बल' अथवा 'महत्त्व'[१७] मात्र है, यद्यपि 'भ्रम' की भी कुछ ध्वनि होती है।[१८] ऋग्वेद के सूक्तों में वेदान्त के समान संसार के मिथ्यात्व की भावना की कल्पना करना अनुपयुक्त है।[१९]

ऊपर की पंक्तियों में 'त्रयी विद्या' अथवा प्रथम तीन वेदों के दर्शन एवं कर्मकांड के सिद्धांतों की संक्षिप्त विवेचना की गई है, किन्तु हमारी विशिष्ट दृष्टि में चतुर्थी विद्या, अर्थात् अथर्ववेद भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। विन्टर्निट्स के शब्दों में, 'अथर्ववेद संहिता की महत्त्वपूर्ण विशेषता इस बात में है कि यह तत्कालीन सामान्य जनता में प्रचलित विश्वासपुंज का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने का एक अनमोल स्रोत है।'[२०] अथर्ववेद में पौरोहित्यपरक धर्म के बदले जादू-टोना वाले सर्वसाधारण धर्म का प्रतिपादन है। अथर्ववेद की विशेषता उसके उन 'मंत्रों' में है जिनका त्रिविध लक्ष्य है—'संकटहरण, मंगलकरण और शापवितरण'।[२१] इनके अतिरिक्त हमें ऐसे उत्कट साधकों का उल्लेख मिलता है 'जो अपनी तपस्या द्वारा प्रकृति की उग्र शक्तियों पर भी विजयी हो सकते थे'[२२] तथा शारीरिक हठयोग द्वारा समाधि की अवस्था में पहुँच जाते थे।[२३] इस वेद में काल, कर्म और स्कम्भ की पूजा का विधान है। पशुपति के रूप में रुद्र की जो कल्पना है वह 'वैदिक धर्म को पश्चाद्वर्त्ती शैवमत से मिलानेवाली कड़ी है'।[२४] "प्राण प्रकृति की जीवन-दायिनी शक्ति के रूप में वर्णित है। प्राणवायु अथवा जीवनशक्ति का सिद्धान्त, जो उत्तरवर्त्ती भारतीय दर्शन में बाहुल्य से प्रतिपादित है, प्रथम-प्रथम यहीं पर मिलता है।.... यद्यपि ऋग्वेद के देवता स्त्री तथा पुरुष दोनों जातियों के है, तथापि पुरुष देवताओं की ही प्रधानता है, किन्तु अथर्ववेद में यह प्रधानता बदल गई है; और आगे चलकर यदि तान्त्रिकमतों में यौन संबंध ही आधारस्तम्भ हो गया तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।"[२५] सारांश यह कि अथर्ववेद में हम प्रायः उन सभी मुख्य भावनाओं के अंकुर पाते हैं जो पीछे चलकर शैवमत, शाक्तमत और तन्त्रमत के रूप में विकसित हुई, और, उनसे छनकर, जिन्होंने सन्तमत के सिद्धान्तों को जन्म दिया।

---

१७. तु० ६. ४७. १८
१८. तु० १०. ५४. २.
१९. राधाकृष्णन् पृ० १०८
२०. विन्टरनिज : अध्याय १, पृ० १२६
२१. वही–पृ० १२५
२२. राधाकृष्णन्, पृ० १२१
२३. वही
२४. वही
२५. वही–पृ० १७८–७९

अब वैदिकयुग तथा ब्राह्मणयुग को छोड़ उपनिषद् युग की ओर आइए। अपनी 'वेदान्त की रूपरेखा' (Outline of the Vedanta), की प्रस्तावना में पाल डायसेन (Paul Deussen) ने उपनिषदों की प्रशंसा में लिखा है कि "भारतीय ज्ञान-रूपी वृक्ष पर उपनिषदों से बढ़कर कोई कमनीयतर कुसुम न खिला, और न वेदान्त-दर्शन से बढ़कर कोई मधुरतर फल ही लगा।" इसमें संदेह नहीं कि भारतीय विचारस्रोत की सभी धाराओं पर—जिनमें बौद्धमत भी सम्मिलित है—उपनिषदों का प्रभाव अतिप्रभूत रहा है। राणाडे के शब्दों में हम उन्हें 'पश्चाद्भावी भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं की उद्गमभूमि' कह सकते हैं, क्योंकि 'हम उपनिषदों में बौद्ध एवं जैन-दर्शन, सांख्य तथा योग, मीमांसा और शैवमत, भगवद्गीता की रहस्यमय आस्तिक भावधारा, द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैतवाद—सबके मूल पाते हैं'।[२६] यद्यपि उपनिषदों को 'वेदान्त' (वेद+अन्त) संज्ञा दी गई है, तथापि उनका साहित्य वैदिक साहित्य से पृथक् अपनी विशिष्ट सत्ता रखता है। सामान्य रूप से यह कहा जायगा कि वैदिक साहित्य से औपनिषदिक साहित्य की विशेषताएँ निम्न निर्दिष्ट हैं :—

उपनिषद् युग

(१) वैदिक ऋचाओं के एकत्ववाद की धूमिल भावनाओं की अधिकाधिक स्पष्टता।
(२) बाह्य जगत् के बदले अन्तर्जगत् में विचार केंद्र की अवस्थिति।
(३) वैदिक कर्मकाण्ड की बहिर्मुख प्रवृत्ति के विरुद्ध आंदोलन; और
(४) वेद के पावनत्व के प्रति उदासीनता।[२७]

वैदिक बहुदेववाद से चलकर उपनिषदीय अद्वैतवाद तक भावधारा का जो क्रमविकास हुआ है उसके सामान्य दिग्दर्शन के लिए निम्नलिखित अवतरण प्रतीक रूप में दिया जाता है। इस अवतरण का प्रसंग है विदग्ध शाकल्य और महर्षि याज्ञवल्क्य के बीच की ज्ञानचर्चा—

> तब विदग्ध शाकल्य ने पूछा—'याज्ञवल्क्य! देवता कितने हैं?'
>
> उन्होंने निम्नलिखित निविद् (संक्षिप्त देवविषयक उक्ति) के अनुसार उत्तर दिया—"उतने, जितने 'विश्वेदेवों' के सूक्त की निविद् में अंकित हैं, अर्थात् तीन सौ तीन और तीन हजार तीन (३३०६)।"
>
> उसने कहा—'हाँ, लेकिन, ठीक-ठीक कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य?'
> 'तैंतीस'।
>
> उसने कहा—'हाँ, लेकिन, ठीक-ठीक कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य?'
> 'छः'।
>
> उसने कहा—'हाँ, लेकिन, ठीक-ठीक कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य?'
> 'तीन'।

---

२६. राणाडे पृ०—१७८–७९
२७. राधाकृष्णन्, पृ० १४४

उसने कहा—'हाँ, किंतु, ठीक-ठीक कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ?'

'दो'।

उसने कहा—'हाँ, किंतु, ठीक-ठीक कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ?'

'डेढ़'।

उसने कहा—'हाँ, किंतु, ठीक-ठीक कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ?'

'एक'।[२८]

इससे हमलोग जान सकते हैं कि उपनिषदीय विचारक देवत्व की जिज्ञासा में सत्य तक किस प्रकार पहुँचे। उन्होंने यह सोचना आरम्भ किया कि विश्व में कितने देवताओं की कल्पना अनिवार्य होगी और उन्हें तबतक संतोष नहीं हुआ जबतक वे एक ईश्वर की भावना तक नहीं पहुँच गये।[२९]

किंतु एक ईश्वर और एकान्त सत्ता (Absolute Reality)—दोनों भावनाएँ वस्तुतः एक ही हैं, और उसे व्यक्त करने के लिए उपनिषदीय ऋषियों ने दो दृष्टिकोण रखे। सृष्टि-मूलक सिद्धान्त के रूप में उसे 'ब्रह्म' कहा गया, और मनोविज्ञानमूलक सिद्धान्त के रूप में उसे 'आत्मा' की संज्ञा दी गई; और, अंततः वे निम्नलिखित दो सिद्धान्तवाक्यों पर जा रुके—

(१) विश्व ब्रह्म है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)[३०]

(२) आत्मा ब्रह्म है (अयमात्मा ब्रह्म)[३१]

ये ही सिद्धान्त सर्वात्मवाद (Pantheism) के निष्कर्ष हैं। किंतु उपनिषदों का सर्वात्मवाद वह विकृत और संकुचित सर्वात्मवाद नहीं है जिसके अनुसार परमात्मसत्ता का विश्वसत्ता में विलयन हो जाय। "परमात्मा अपने अस्तित्व की अनन्तता और पूर्णता के द्वारा स्वनिर्मित दृश्य जगत् की सान्त भौतिक और चेतन सत्ताओं से परे हो जाता है—उनका अतिक्रमण कर देता है। वह अन्तर्यामी (Immanent) भी है और साथ ही साथ अति-यामी (Transcendent) भी"।[३२] यह परमात्मा कहीं बाहर ढूँढ़ने की चीज नहीं है, यह तो हमी में है। उपनिषदों में जहाँ-तहाँ ऐसे वाक्य मिलेंगे जिनमें परमात्मा के सूक्ष्म रूप की उद्भावना की दृष्टि से उसकी तुलना 'आँख-में-के पुरुष'[३३] (अक्षिणि पुरुषः), अर्थात् किसी की आँख की पुतली में दिखाई पड़ने वाले सामने खड़े हुए व्यक्ति के सूक्ष्म प्रतिबिम्बित रूप से की गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह तुलना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है.

२८. बृहदारण्यक ३९.१।

२९. राणाडे, पृ० २५८।

३०. छान्दोग्य, ३. १४. १।

३१. बृहदारण्यक २. ५. १९७; १. ४. १०।

३२. राधाकृष्णन्, पृ० २०३।

३३. छान्दोग्य—८, ७, ४।

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति
होवाच एतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति।

क्योंकि निर्गुणवादी सन्तों के द्वारा प्रतिपादित 'विहंगमयोग' का मुख्य उद्देश्य यही है कि सत्पुरुष (परमात्मा) का आँखों के अष्टदल कमल में मानसप्रत्यक्ष किया जाय।[३४] यों कहिये कि उपनिषदों का 'आँखों-का-पुरुष' (अक्षिणिपुरुषः) सन्तमत में 'आँखों-का-सत्पुरुष, (अक्षिणि सत्पुरुषः) बन बैठा। छान्दोग्य में भी लिखा है--"सो यह ज्योति जो आकाश से भी परे चमकती है, सब के पीछे, विश्वों के पीछे, उत्तम लोकों में, अनुत्तम लोकों में--यह ज्योति वस्तुतः वही है जो इस पुरुष के अन्तर में है।"[३५]

इस तरह के वाक्यों में हम उस विस्तृत पिण्डब्रह्माण्ड के सिद्धान्त के अग्रिम रूप को पाते हैं जो पीछे चलकर तंत्रमत और सन्तमत में विकसित हुआ। और, इन्हीं में हम उन विस्तृत एवं अद्भुत दृश्यों के बीज ढूँढ़ सकते हैं जिनका मानसप्रत्यक्ष एक योगी अपने शरीर के ब्रह्मांड भाग के 'शून्य गगन' में अपनी 'दिव्य-दृष्टि' के बल से करता है।[३६] 'दिव्यदृष्टि' के अद्भुत दृश्यों, आध्यात्मिक अनुभूतियों के अपूर्व आनन्द और परमतत्त्व संबन्धी समस्याओं के प्रति आत्मानुभूतिप्रधान (Intuitional) दृष्टिकोण ने उपनिषदीय ऋषियों को रहस्यमय उक्तियों की ओर प्रेरित किया। ये उक्तियाँ तीन मुख्य श्रेणियों में विभक्त की जा सकती हैं--

(१) लाक्षणिक रूपक; यथा--

दो पक्षी अति सख्य भाव से एक विटप पर थे बसते।
रहता एक फलों को चखते अन्य विना खाये हँसते॥[३७]

(खानेवाला पक्षी—जीवात्मा
विना खाये हँसनेवाला पक्षी—ब्रह्म)

(२) व्याघातात्मक उक्तियाँ; यथा—

चलता है वह, और नहीं वह चलता है,
दूरस्थित वह, और निकट भी रहता है।
वह सबके उर-अन्तर में भी बसता है,
और सबों से बाहर भी वह रहता है॥[३८]

---

३४. विशेष व्याख्या के लिए योग के विस्तृत प्रकरण को देखिये।

३५. छान्दोग्य ३. १३. ७।
अथ यदतः परो दिवोज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेषु इदंवाव तद्यदिदमस्मिन्नन्त. पुरुषे ज्योतिः॥

३६. दे० 'योग' वाला परिच्छेद। सांख्य तथा योग के औपनिषदिक पृष्ठाधार के लिए दे० राणाडे, अ० ४; राधाकृष्णन्, अ० ४, खंड २२।

३७. श्वेताश्वतर—४. ६।

३८. ईश—५।

(१) दाम्पत्यप्रेम के अनुरूप ईश्वरीय प्रेम की कल्पना; यथा—

जिस प्रकार एक प्रेमी प्रियस्त्री-'परिष्वक्त' अवस्था में ऐसा खो जाता है कि न भीतर जानता है; न बाहर; उसी प्रकार इस पुरुष को प्राज्ञ आत्मा से समालिंगित होने पर न बाहर की सुधि रहती है, न भीतर की।[३९]

वस्तुतः उपनिषद्-युग से लेकर आजतक रहस्यवाद का जो विकासक्रम रहा है उसका अध्ययन अत्यन्त मनोरंजक और आर्कषक सिद्ध होगा। उपरिनिर्दिष्ट तीनों तरह की रहस्यमय भावना कबीर-प्रवर्तित निर्गुणवाद की अपनी विशेषता रही है; और फलतः रही है विशेषता दरियासाहब आदि अन्य संतों की भी। उपनिषदों की 'रहस्यमय ब्रह्मविद्या' के रहस्य को ठीक-ठीक समझाने के लिए और शिष्य को आत्मानुभूति के उस कठिन मार्ग पर सावधानता के साथ ले जाने के लिए जो 'छुरे की धार के समान दुर्गम और संकटापन्न'[४०] है, एक आध्यात्मिक गुरु[४१] की सेवा अनिवार्य है। 'उपनिषद्' (उप+नि+सद्, अर्थात् निकटतम और सम्यक् रूप से बैठना)—इस पद से भी यही व्यक्त होता है कि उस युग में गुरुओं और शिष्यों के दल के दल एकान्त बैठकर आध्यात्मिक और दार्शनिक समस्याओं के समाधान में लगे दीख पड़ते थे। उपनिषदों में प्रतिपादित ईश्वर, जीव और प्रकृति के एकत्व के सिद्धांत के फलस्वरूप 'दृश्य (Phenomenal) और अतिदृश्य[४२] ((Superphenomenal)' के बीच विश्लेषण आरम्भ हुआ। परिणाम यह हुआ कि 'माया' जो ऋग्वेद में 'अलौकिक पराक्रम' अथवा 'कलाबाजी'[४३] के अर्थ में प्रयुक्त होती थी, क्रमशः उस सिद्धांत की आधारशिला बन गई जिसके अनुसार दृश्यजगत् की सत्ता भ्रान्तिजन्य मानी गई;[४४] यथा श्वेताश्वतर में—"छन्दस् (श्रुति), अग्निष्टोमादि यज्ञ, व्रत, भूत और भविष्य एवं जो कुछ भी वेद कहते हैं उससे ईश्वर समस्त संसार की सृष्टि करता है और उस संसार में जीव 'माया' से घिरा रहता है। 'माया' प्रकृति है और उस माया का अधिपति ईश्वर है, उसके ही अंगों से यह सारा संसार व्याप्त है।"[४५]

---

३९. बृहदारण्यक—४. ३. २१.।

४०. नु० कठ—१. ३. १४।

४१. मुण्डक—१. २. १२।

४२. ह्यूम (Hume), पृ० ३७।

४३. ऋग्वेद ६. ४७. १८।

४४. ह्यूम (Hume), पृष्ठ ३८।

४५. श्वेताश्वतर ४. ९–१०।

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥९॥
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०॥

यह है मूलरूप मायावाद का, जो आगे चलकर वेदांतदर्शन का एक प्रमुख सिद्धांत बन खड़ा हुआ और जिसके अनुसार मानव का प्रत्यक्षज्ञान अनिवार्यतः भ्रांत[४६] माना गया। किस प्रकार और किस रूप में यह मायावाद का सूत्र संतमत की तानी-भरनी में बुना गया और दरियासाहब के इस संबंध में क्या विचार थे—इन बातों की चर्चा अन्यत्र की जायगी।

ऋग्वेद की परलोकसंक्रमण (Eschatology) की भावना उपनिषदों में परिवर्तित होकर कर्मसिद्धांत की भित्ति पर अवलंबित पुनर्जन्मवाद के रूप में प्रकट होती है। यथा बृहदारण्यक से—

"सो, जिस प्रकार, एक स्थलजोंक घास के अंत में पहुँच कर वहीं से दूसरी घास को पकड़ कर उसके सहारे अपने आपको उसपर खींच लेती है, उसी प्रकार यह आत्मा इस शरीर को छोड़कर अविद्या को दूर करके दूसरा सहारा पाकर अपने आपको वहीं पहुँचा देता है।

"सो, जैसे एक कलाकार सोने-चांदी के एक टुकड़े को लेकर उससे दूसरे नये और सुकरतर रूप का निर्माण करता है, वैसे ही आत्मा इस शरीर को छोड़कर अविद्या को दूर करके, दूसरे नये और सुन्दरतर रूप का ग्रहण करता है—पितर का, गंधर्व का, देवता का, प्रजापति का, ब्राह्मण का अथवा अन्य प्राणियों का।.... जो जैसे करता है, जैसे बरतता है, सो वैसा ही बनता है; भले कर्त्तव्यवाला भला होता है; पापमय कर्त्तव्य वाला पापी; पुण्यात्मा होता है पुण्याचरण से और पापात्मा पापाचरण से।"[४७]

जीवन के आधार-संबंधी इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप, जो कर्म को न कि जन्म को प्राधान्य देता हो, जातिव्यवस्था के बंधन को शिथिल होना ही था। उदाहरणतः जिस परिस्थिति में सत्यकाम जाबाल को उसके आचार्य गौतम ने विना किसी हिचक के ब्रह्म-ज्ञान के रहस्य में दीक्षित किया, वह उस युग की सामान्य मनोवृत्ति का परिचायक है। जब सत्यकाम पुनीतज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से गौतम के पास पहुँचा तब गौतम ने पूछा—"प्रियवर! तुम किस गोत्र के बालक हो?"। सत्यकाम बोला—"तात! मैं यह नहीं जानता कि मैं किस गोत्र का हूँ। माँ से पूछने पर उसने यही कहा है कि 'अपने यौवन में परिचारिणी के रूप में मैं बहुत स्थानों मे बिचरी, और उसी सिलसिल में तुम्हें कहीं पा गई; अतः मैं नहीं बता सकती कि तुम्हारा गोत्र क्या है। हाँ, मेरा नाम जबाला है, तुम्हारा नाम सत्यकाम है बस!' सो, भगवान्, आप मुझे सत्यकाम जाबाल कह सकते हैं।" इस पर आचार्य गौतम ने कहा—"एक अब्राह्मण इतना विवेकवान् नहीं हो सकता; सो, सौम्य! समिधा लाओ; मैं तुम्हें शिष्य बनाऊँगा, क्योंकि तुमने सत्य का त्याग नहीं किया है।"

---

४६. ह्यूम (Hume)–पृष्ठ–३८।

४७. बृहदारण्यक–४.४. ३–५।

जीवन्मुक्ति का सिद्धांत[४८] जिसे हम शांकर वेदान्त में पाते हैं और कबीर आदि संतों के मत में भी पाते हैं, उपनिषदों में मूलीभूत है। यथा--

हृदय में बसते हैं जो काम,
सबों का हो जब प्रशम-विराम।
बनेगा अमर मर्त्य तब जीव
मिलेगा यहीं ब्रह्म का धाम।।

("सो जैसे साँप का केंचुल मिट्टी की ढेर पर निर्जीव फेंका पड़ा रहता है, वैसे ही यह शरीर पड़ा रहता है। किंतु यह अशरीर और अमर प्राण ब्रह्म ही है।"[४९])

उपनिषदीय ऋषियों के अनुसार मुक्ति या मोक्ष का अभिप्राय वह 'आनन्त्यभाव' है जिसे मनुष्य आत्मानुभूति की अवस्था में प्राप्त करता है, और जिसे प्राप्त कर वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है[५०] तथा असीम आनन्द का भागी होता है। उपनिषदों ने ज्ञानकाण्ड को प्राधान्य दिया; परिणाम यह हुआ कि कर्मकाण्ड के वातावरण का विस्तार करनेवाले वेदों की जो सर्वोपरि प्रतिष्ठा थी उसमें कमी होने लगी। फलतः कभी-कभी वेदों की यह कहकर निन्दा की गई कि वे साधक की यात्रा के लिए 'निरापद नौकाएँ' नहीं हैं, और उनपर सवार होने से उसका सर्वनाश भी हो सकता है।[५१] अतः यदि शंकराचार्य ने अपने 'ब्रह्मसूत्र'-भाष्य में, तथा अन्य वैष्णव आचार्यों ने अपने दार्शनिक पक्ष की परिपुष्टि में, 'श्रुति' के नाम पर वेदों का प्रमाण न देकर उपनिषदों का हवाला दिया, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। बौद्ध तो इस दिशा में इतने अधिक बढ़े कि उन्होंने वेदों का तिरस्कार ही कर दिया; और सहजयान बौद्धमत के छायानुवर्त्ती संतमत ने भी वेदों के लिए कोई आस्था नहीं रखी।

उपनिषद् युग का अवसान और षड्दर्शनों का अभ्युत्थान

प्राचीनतर उपनिषदों के युग के अन्त होते न होते हम ऐसे युग में पदार्पण करते हैं जिसकी विशेषताएँ थीं 'विप्लव, विद्रोह और पुनर्निर्माण'; [५२] क्योंकि यद्यपि उपनिषदों ने विचारधारा को एक नई गतिविधि दी थी, तथापि वे जनता को अपने साथ ले चलने में सफल न हो सकीं, क्योंकि सर्वसाधारण यागयज्ञ को ही ढोये चल रहा था। "परिणाम हुआ एक ऐसे युग का आविर्भाव, जिसमें तत्कालीन व्यवस्था का नवविधान आरंभ हुआ और उपनिषदीय क्रान्तिभावना को अधिकाधिक सुश्रृंखल रूप देने की चेष्टा की गई। उपनिषदीय एकत्ववाद और वैदिक बहुदेववाद, उपनिषदीय अध्यात्मप्रधान जीवन और वैदिक यागप्रधान दिनचर्या, उपनिषदीय मोक्ष और वैदिक स्वर्ग-नरक, उपनिषदीय सार्वभौमवाद और उस काल का

---

४८. छान्दोग्य ४.४, १-५।
४९. बृहदारण्यक ४.४, ७।
५०. दासगुप्त, खण्ड १ पृष्ठ ५८।
५१. मुण्डक १.२.७-१०.।
५२. राधाकृष्णन्, पृ० २६७।

प्रचलित वर्णधर्म,—इनका बेमेल सहवास क्यों कर निभ सकता था। पुर्नानर्माण उस युग का सबसे प्रबल तकाजा था।"[५३] इसलिए, जहाँ बौद्धमत और जैनमत ने नास्तिकवाद और क्रांतिवाद की दिशा में पुर्नानर्माण आरंभ किया, वहाँ वैष्णवमत और शैवमत ने अतीत को एकदम छोड़ देना उचित न समझा और यह चाहा कि उपर्युक्त बेमेल विचारों का ऐसा समन्वय किया जाय जो उतना उग्र न होकर यथासंभव संघटनात्मक हो और हो आस्तिक भावना से प्रेरित।[५४]

उसी बीच उपनिषदों और आरण्यकों में संपुटित ढेर के ढेर दार्शनिक विचारों के विश्लेषण और व्यवस्थिति का भी काम जारी था। परिणाम हुआ निम्नलिखित षड्दर्शनों का आविर्भाव--

१. पूर्वमीमांसा
२. उत्तरमीमांसा
३. न्याय
४. वैशेषिक
५. सांख्य
६. योग

इनमें पूर्वमीमांसा ने उस कर्मकाण्ड को प्राधान्य दिया जिसका आगे चलकर शबर और कुमारिल ने प्रतिनिधित्व किया; और उत्तरमीमांसा अथवा बादरायण के 'ब्रह्मसूत्र' ने उस ज्ञानकांड पर विशेष बल दिया जिसे शतियों बाद शंकराचार्य की प्रतिभा ने गौरवान्वित किया। न्याय और वैशेषिक ने तर्कशास्त्र और भौतिकता की जिस कला एवं विज्ञान का प्रस्तवन किया उसने प्रायः सभी दार्शनिक विचारों के कंचुक में ताना-बाना बनकर प्रवेश किया। संतसाहित्य की ऐतिहासिक विवेचना की दृष्टि से सांख्य और योग का महत्त्व अत्यधिक है, क्योंकि संतों के दर्शन और अध्यात्म के आधारभूत पारिभाषिक शब्दों--यथा, पुरुष, प्रकृति, पंचतत्त्व आदि--का मूलस्रोत सांख्यदर्शन में मिलेगा; और, उनकी यौगिक क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं का मल स्रोत पतंजलि-निर्मित योगदर्शन में पाया जायगा। 'क्लेशकर्म बिपाकाशयैरपरामृष्टःपुरुषविशेष ईश्वरः' में वर्णित पतंजलि का 'पुरुषविशेष' कबीर आदि संतों के साहित्य में 'सत्पुरुष' के रूप में उपस्थित होता है।

वैष्णव मत

अब वैष्णवमत की ओर आइए।[५५] इस मत के प्राचीनतम रूप की पृष्ठभूमि 'भगवद्-गीता' में पाई जाती है। भगवद्गीता मूलतः 'महाभारत' का एक अंश है। इस मत का प्राचीन नाम 'ऐकान्तिक धर्म' था अर्थात् वह धर्म जिसमें एकान्त (एकमात्र) भगवान् के प्रति प्रेम और भक्ति का प्रतिपादन हो। शीघ्र ही इस धर्म ने साम्प्रदायिक रूप

५३. वही पृ० २६६।

५४. वहीं।

५५. वैष्णव मत की इस संक्षिप्त चर्चा के लिए मैं भण्डारकर की प्रशंसनीय रचना "वैष्णववाद, शैववाद और अन्य गौण धर्म" का विशेषतः ऋणी हूँ।

ग्रहण कर लिया और 'पांचरात्र' अथवा 'भागवतधर्म' के नाम से विदित होकर विष्णु, नारायण और कृष्ण की पूजा को अपना लिया। ईसा की पाँचवीं और छठी शती के आसपास, जब गुप्त साम्राज्य का पतन हुआ, तब भागवतधर्म का प्राबल्य उत्तर भारत में क्षीण होने लगा[५६] और दक्षिण भारत में केंद्रित होने लगा। दक्षिणीय भागवतधर्म के उपदेशक दो कोटियों में विभक्त हुए--पहले 'आल्वार' संत और फिर उनके पीछे 'आचार्य'। "इनमें प्रथम कोटि के प्रचारकों अर्थात् आल्वारों ने विष्णु अथवा नारायण के प्रति प्रेम और भक्ति की भावना को तीव्रतर रूप देते हुए गेय पदों की रचना की, और दूसरों का उद्देश्य हुआ अपने सिद्धान्तों तथा मन्तव्यों के प्रतिपादन की दृष्टि से वादविवाद और शास्त्रार्थों का आयोजन।"[५७] रायचौधरी के शब्दों में, 'जहाँ आचार्यों ने तामिल वैष्णववाद के बौद्धिक अंग का प्रतिनिधित्व किया वहाँ आल्वारों ने उसके भावुक अंग का'।[५८] दक्षिणीय वैष्णवमत की परम्परा में बारह आल्वार संतों की चर्चा है, और उन्हीं में गणना है अन्दाल की जो 'दक्षिण की मीराबाई' की संज्ञा से विभूषित की गई हैं।[५९] आल्वारों के युग का अवसान सामान्यतः ईसा की ७ वीं-८वीं शती में हुआ। इसके बाद आने वाले युग में जिस धार्मिक भावना का अभूतपूर्व अभ्युदय हुआ उसे हम निम्नलिखित काण्डों में से किसी एक को विशेष प्रश्रय देने के कारण तीन कोटियों में विभाजित करेंगे--

१. कर्मकाण्ड—प्रतिनिधि–शबर स्वामी और कुमारिल भट्ट ;

२. ज्ञानकांड—प्रतिनिधि–गौडपादाचार्य और उनके सुविख्यात प्रशिष्य शंकराचार्य;

३. उपासना (भक्ति) काण्ड—प्रतिनिधि–नाथमुनि और उनके पश्चाद्वर्त्ती रामानुज।

शंकराचार्य के मायावादविशिष्ट अद्वैतसिद्धान्त में भक्ति का स्थान नगण्य था; अतः भक्ति के महत्त्व के प्रतिपादन को ध्यान में रखते हुए वैष्णव आचार्यों ने शंकराचार्य के प्रबल और पांडित्यपूर्ण तर्कों द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद का खण्डन करना ही अपना मुख्य लक्ष्य बनाया,—और सो भी उन्हीं उपनिषदों की सूक्तियों के आधार पर जिनके साक्ष्य और समर्थन का सहारा शंकर ने लिया था। इन भिन्न-भिन्न आचार्यों ने कालक्रम से जिन-जिन भावधाराओं का आविर्भाव किया, उनसे १२ वीं शती तक आते-आते चार मुख्य सम्प्रदायों की उद्गति हुई—

१. श्री सम्प्रदाय—प्रतिष्ठाता—रामानुजाचार्य ;

२. ब्राह्म सम्प्रदाय--प्रतिष्ठाता—मध्वाचार्य ;

---

५६. रायचौधरी द्वारा रचित 'प्रारंभिक वैष्णवमत का इतिहास' पृ० १०७।

५७. भण्डारकर, पृ० ५०।

५८. रामचौधरी, पृ० ११२।

५९. उन संतों के परिचय के लिए 'कल्याण' का सन्तांक देखें।

३. रुद्र सम्प्रदाय—प्रतिष्ठाता—विष्णुस्वामी ;

४. सनकादि सम्प्रदाय—प्रतिष्ठाता—निम्बार्काचार्य ।

यद्यपि इन वैष्णव सम्प्रदायों में परस्पर कुछ छोटे-मोटे मतविभेद हैं, फिर भी निम्नलिखित दृष्टियों से ये एक दूसरे से समान हैं—

१. ये शंकराचार्य के मायावाद के खण्डन में एकमत हैं।

२. इनमें से प्रत्येक ईश्वर के अवतार में आस्था रखता है।

३. इनके आचार सिद्धान्त में भक्ति का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[६०]

हिन्दी के भक्ति-साहित्य की दृष्टि से रामानुज का श्रीसंप्रदाय और विष्णुस्वामी का रुद्रसम्प्रदाय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं; क्योंकि रामानुज की शिष्यपरंम्परा में चार-पाँच पीढ़ियों बाद होने वाले श्री रामानंद स्वामी ने जो मंतव्य प्रचारित किये उनने कम-से-कम उन दो महान् प्रवर्त्तकों कबीर और तुलसी–की प्रतिभा को अनुप्राणित किया, जिन्होंने क्रमशः 'निर्गुण ज्ञानमार्गी भक्ति' तथा 'सगुण रामावत भक्ति' की धाराएँ संचारित कीं; और, विष्णुस्वामी के ही अनुयायी वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र बिठ्ठलाचार्य के व्यक्तित्व और विचारों से प्रभावित होकर वे आठ असाधारण प्रतिभावाले शिष्यरत्न आकृष्ट हुए जो 'अष्टछाप' के नाम से विख्यात हैं और जिनमें सर्वप्रमुख थे सूरदास, साहित्य की कृष्णमार्गी सगुण भक्तिधारा के प्रमुख प्रवर्त्तक। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कबीर-प्रवर्त्तित संतमत वैष्णव-भक्ति-सिद्धान्त और उसके प्रतिपादकों–विशेषतः रामानुज और रामानंद–का सविशेष ऋणी है। इतना ही नहीं, जिस प्रकार वैष्णव आचार्यों ने उपनिषदों की भावनाओं से अपनी प्रेरणाएँ लीं, उसी तरह कबीर ने भी उन्हें गौरव की दृष्टि से देखा और अपने सिद्धान्तों के प्रांगण में उपनिषत्प्रतिपादित ब्रह्म के एकत्व और अन्तर्यामित्व का स्वागत किया, तथा उपनिषदीय अद्वैतवाद के साथ वैष्णव भक्तिवाद का सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की।

जब हम शैवमत पर विचार करते हैं, तब यह पाते हैं कि वैदिक बहुदेववाद में जो रुद्र नाम के देवता हैं वे भयावह प्रकृति के हैं; किन्तु वे ही जब क्रमशः प्रसन्न भाव में कल्पित हुए, तब 'मंगलविधायक शिव, शंकर एवं शम्भु' के रूप में प्रकट हुए। रुद्र के भयावह रूप के विकास के फलस्वरूप पाशुपतदर्शन की स्थापना हुई जिसके जन्मदाता थे नकुलीश अथवा लकुलीश, और जिन्होंने योग और योगसिद्धिजन्य आश्चर्यजनक विभूतियों तथा करामातों पर विशेष बल दिया। इस पाशुपतदर्शन से 'कापालिकों' और 'कालमुखों' के दो आत्यन्तिक (Extremist) मतवादों का जन्म हुआ, जिनमें सुरा और सुन्दरी इन दो साधनों से ईश्वर की पूजा का विधान है। किंतु प्रतिक्रियास्वरूप ऐसे मतवाद भी प्रचलित होने लगे जो उतने आत्यन्तिक न होकर अपेक्षाकृत संयत हों। ऐसों में उल्लेख्य हैं शम्भुदेव-मत, श्रीकंठ-मत और वे काश्मीरी शैवमत जिनपर शंकर और रामानुज के प्रभाव के चिह्न स्पष्ट हैं। ग्यारहवीं शती के मध्यभाग में 'लिंगायत-मत' का जन्म हुआ;

शैवमत

६०. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ४६, ४७।

इसके अनुसार ईश्वर अनन्त आनन्द तथा अनन्त चैतन्य-स्वरूप है और जीव भक्तिभाव-भरित अभ्यर्थना के द्वारा उसके साथ मिलकर, उस मिलन की आनन्दानुभूति में तन्मय हो जाता है। लिंगायतों के अतिरिक्त शाक्तों का भी दल था; इसने शिव से अधिक प्रधानता दी शिव की अर्द्धांगिनी को और उसकी पूजा तीन रूपों में की—(१) सामान्य देवी के रूप में; (२) काली अथवा दुर्गा के रौद्ररूप में, जिसमें वह मनुष्य और पशुओं की बलि द्वारा प्रसन्न होती है; और (३) शक्ति के वासनामय रूप में। शाम्भवदर्शन–जो शाक्तमत के आचार-व्यवहारों का आधार है–के दार्शनिक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—"शिव और शक्ति परमतत्त्व हैं। 'प्रकाश' के रूप में शिव 'विमर्श' अथवा 'स्फूर्ति' रूपिणी शक्ति में प्रवेश करता है और 'विन्दु' का रूप धारण करता है; उसी प्रकार शक्ति शिव में प्रवेश करती है, और तब विन्दु का विकास आरम्भ होता है, तथा विन्दु के इस विकसित रूप से नादात्मक नारीत्व उद्भूत होता है। ······ फिर, दो विन्दु ौर होते हैं, एक उजले रंग का, जो पुंस्तत्त्व का प्रतिनिधि है, और दूसरा, लाल रंग का, जो स्त्रीतत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। ······ जब ये सभी चार तत्त्व मिलकर एक तत्त्व—'कामकला' के रूप में पुञ्जित होते हैं तो उनसे सारी वागात्मक एवं अर्थात्मक सृष्टि का आविर्भाव होता है।"[६२] कामकला के अन्य नाम 'त्रिपुर-संदरी', 'आनन्दभैरवी' और 'ललिता' भी हैं। शाक्तों की मुख्य अर्चनवि , अर्थात् चक्रपूजा, में भक्त मद्य, मीन, मांस, म ु एवं अन्य इस प्रकार के द्रव्यों के साथ तात्त्विक अथवा चित्रांकित स्त्री-योनि की पूजा करता है। तन्त्रशास्त्र—जिसका विपुल साहित्य हमें आज भी उपलब्ध है—शक्ति के ही भिन्न-भिन्न रूपों की पूजा का विधान करता है, और प्रसंगतः चक्र, आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा अन्य हठयोग संबन्धी क्रियाओं-प्रक्रियाओं का वर्णन करता है। शैवमत अपने अन्तिम विकास-क्रम में नेपाल और उसकी तराई में फला, फूला; और नाथपंथ या गोरखपंथ के नाम से प्रचारित हुआ। गोरखपंथ की एक विशेषता यह भी है कि वह, हिन्दुत्व ने जीर्ण बौद्धत्व को जिस प्रक्रिया के द्वारा शनैः-शनैः ग्रस कर अपने में विलीन कर लिया, उसके अन्तिम रूप का परिचय दिलाता है। बौद्ध भावधारा के इतिहास पर विचार करते समय इस विषय पर फिर प्रकाश डाला जायगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि सामान्यतः शैवमत, और विशेषतः तांत्रिक हठयोग और नाथपंथ ने संतमत की विचारसरणि को ऋजुरूप से प्रभावित किया है; क्योंकि नाथपंथ और उससे मिलते-जुलते तंत्र-ग्रंथों से हठयोग-संबन्धी अनेकानेक पारिभाषिक शब्दों एवं यौगिक क्रियाओं को संतमत ने अपनाया है।

जैनमत और बौद्धमत

जब हम जैनधर्म और बौद्धधर्म की विवेचना करते हैं तो विदित होता है कि इन दोनों म कुछ सादृश्यविन्दु अतीव स्पष्ट हैं। यथा; दोनों 'चेतन आदिकारण की सत्ता का परिहार करते हैं, संतों को ही देवत्व के प्रतीक मान कर उनकी पूजा करते हैं, और किसी प्राणी की हिंसा को पापाचार मानते हैं'; सके अतिरिक्त दोनों 'वेदों की प्रामाणिकता के प्रति नितान्त तिरस्कार नहीं तो, उदासीनता का भाव,

६२. भंडारकर, पृ० १४६।

कम-से-कम अवश्य रखते हैं।'[६३] आरंभ में दोनों समसामयिक और समानान्तर भावधाराओं के रूप में आगे बढ़े, किन्तु कालक्रम से बौद्धमत अधिकाधिक उत्कर्ष को प्राप्त होता गया; यहाँ तक कि ब्राह्मणीय हिन्दूधर्म को कुछ शतियों तक ग्रस-सा लिया और शंकर-सरीखे दुर्दान्त प्रतिभाविशिष्ट व्यक्ति का ही यह काम था कि उसने अपने मायावाद के 'छद्मबन्धुत्व के आलिंगन' द्वारा बौद्ध शून्यवाद का अवसाद किया। प्रथम-प्रथम बौद्ध धर्म का अभ्युत्थान परम्परागत ब्राह्मणधर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ, और उसने उपनिषदों में प्रतिफलित क्रान्तिभावना को और आगे बढ़ाया। "उपनिषदों के लिए शाश्वत आत्मा, आनन्दमय आत्मा सर्वोत्कृष्ट तत्त्व था, किन्तु बुद्ध के लिए शाश्वत तत्त्व कोई था ही नहीं;—सब कुछ क्षणिक था, परिवर्त्तनशील था, और था दुःखमय।"[६४] निर्वाण अथवा मोक्ष दुःख की निवृत्ति का ही नाम था और दुःख की निवृत्ति सम्भव थी तृष्णा की विरति से। खीस्ताब्द के अरुणोदय में, अर्थात्, कनिष्क द्वारा आयोजित बौद्धधर्म-सम्मेलन के समय में, हम यह देखते हैं कि बौद्धधर्म दो विशाल सम्प्रदायों में विभक्त हो चुका था—'हीनयान' और 'महायान'। इन दोनों के बीच मुख्य विभेद-विन्दु निम्नलिखित थे—

(क) "महायानियों का विश्वास था कि सभी पदार्थ तत्त्वतः शून्य हैं, न तो उनकी कोई अनिवार्यता है और न उनकी कोई परिभाषा; पर हीनयानियों के मत में सभी पदार्थ अचिरस्थायी हैं; और वे अपने इस विचार को महायानियों के समान और आगे खींचना तथा आत्यंतिक रूप देना नहीं चाहते थे।"[६५]

(ख) "हीनयान के अवलम्बी का अन्तिम लक्ष्य है अपना निजी निर्वाण अथवा मोक्ष-साधन; किन्तु महायानमतावलम्बियों के लिए अपना ही मोक्ष नहीं, बल्कि सभी प्राणियों का मोक्ष चरम लक्ष्य बना।"[६६]

कालक्रम से हीनयानियों को महायानियों ने धर दबाया। महायानियों की "अपने गुरुओं के उत्कृष्ट ज्ञान में सहज श्रद्धा थी, वे उनके बताए हुए आचार-पथ का अनुसरण करते थे, उन सूक्तों और प्रतिज्ञाओं को दुहराया करते थे जिन्हें वे अति पवित्र समझते थे और बुद्धों और बोधिसत्त्वों की आत्माओं का आवाहन करने के उद्देश्य से 'धारणी' नाम की छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का अध्ययन करते थे।"[६७] जब धारणियाँ पुरानी पड़ गईं तो उनका स्थान उन मंत्रों ने ले लिया जो 'धारणियों के सूक्ष्मबीज-रूप थे'; और, महायान मंत्रयान में परिणत हो गया। मंत्रयान को भी पीछे चलकर वज्रयान ने धर दबाया। वज्रयान 'मंत्रयान से

६३. राधाकृष्णन्, पृ० २८९–९० ।
६४. दासगुप्त, अध्याय १ पृ० १११ ।
६५. वही, अध्याय १ पृ० १२६ ।
६६. वही, अध्याय १ पृ० १२६ ।
६७. नगेन्द्र नाथ बसु द्वारा लिखित "आधुनिक बौद्ध धर्म" में महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री की भूमिका पृ० ५ ।

आकर्षक, कुछ दार्शनिक, कुछ रहस्यात्मक और पिछले बौद्ध-मतवादों से अपेक्षाकृत अधिक वासना-वासित था'।

''महायान से वज्रयान का क्रमिक विकास वज्रयानी साहित्य में स्पष्टरूप से निर्देशित है। मानव जीव जब परमज्ञान की प्राप्ति के लिए लालायित हो जाता है तो वह मर्त्यलोक के निचले स्तरों से उठकर ऊपर वाले स्तर में पहुँचता है; उस दशा में उसका अस्थिपंजर विगलित हो जाता है और कामलोक से ऊपर रूपलोक में आता है। फिर 'बोधि' की इस लालसा में वह अन्यान्य रूपों को ग्रहण करता है और उपरितम रूपलोकों में प्रवेश करता है, किन्तु इतने पर भी बोधि की प्राप्ति नहीं होती। तब वह और ऊपर-ऊपर चढ़ता जाता है, तबतक जबतक रूप से भी परे अरूप लोक में संक्रमण करता है। इस अरूप लोक में भी जब वह अधिक से अधिक ऊपर की ओर बढ़ता है तो क्रमशः चोटी पर पहुँच जाता है और फिर अनन्त और शून्य गगन में जा मिलता है। महायानियों के निर्वाण की भावना ऐसी ही है। किन्तु इतने पर वज्रयानी को सन्तोष नहीं; वह रहस्यमय भावुकता के द्वारा एक 'निरात्मदेवी' की कल्पना करता है जो अरूपलोक के शिखर पर विराजती है। ऐसा भान होता है मानो वह शून्य गगन का ही आलंकारिक रूपान्तर हो। अरूपलोक के शिखर पर से बोधिप्रवण जीव निरात्मदेवी की गोद में जा कूदता है और ऐन्द्रिय-आनन्द के-से आनन्द का अनुभव करता हुआ उसी प्रकार उसमें विलीन हो जाता है जिस प्रकार जल में लवण। इस प्रकार वज्रयान रहस्यवाद, दार्शनिकता और ऐन्द्रियता का विचित्र संमिश्रण है। इसके सिद्धान्तों की ऐन्द्रियता ने इसे बहुत ही आकर्षणशील बना दिया। परिणाम यह हुआ कि इसने शीघ्र ही शुष्क मंत्रयान और कठिन महायान को परास्त कर दिया।''[६८] लगभग नवीं शती के आसपास वज्रयान सहजयान में रूपान्तरित हुआ। सहजयान ने 'यौन आनन्द के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का प्रचार करके उसे सहज बना दिया'। सहजयानियों ने तीन मोक्षमार्गों का प्रचार किया—अवधूतीमार्ग, चाण्डालीमार्ग और डोम्बीमार्ग, जिनमें अन्तिम को उत्तम बताया गया।[६९] 'जो कोई तांत्रिक और शाक्त नामक शैव मतवादों की भावधारा के साथ वज्रयान और सहजयान की भावधारा की तुलना करेगा, उसे इन दोनों में स्पष्ट समानताएँ अवश्य झलकेंगी। यह एक ऐसी बात है जो न कि हिन्दुत्व और बौद्धत्व की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया की द्योतक है, अपितु यह भी इंगित करती है कि किस प्रकार हिन्दू धर्म ने बौद्ध धर्म को क्रमशः निगल ही नहीं, बल्कि पचा भी लिया। इससे हमें यह भी पता चलता है कि 'ब्राह्मणधर्मानुयायियों में तान्त्रिक विधियों के प्रचार के साथ-साथ बौद्धधर्म का सर्वापहारी लोप हो गया।''[७०]

जैसा अभी बताया गया, बौद्धमत अपने पिछले रूपों में वज्रयान और सहजयान के नाम से प्रचलित हुआ। ये दोनों क्रमशः हिन्दूधर्म में मिले और नाथपंथ में विलीन हो गये। यही

---

६८. वही, पृ० ६–७।

६९. वही, पृ० ९।

७०. वही, पृ० ११।

बौद्धों—योगियों का नाथपंथ और उसका पूर्वरूप 'सिद्धों' का सहजयान—ऋजुरूप से 'निर्गुणियों' के संतमत के विकास के प्रेरक हैं। कुछ आलोचकों ने कबीर के काव्य की रूपरेखा में इस्लाम का बहुत अधिक प्रभाव देखा है। किन्तु हाल में कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि 'निर्गुनियाँ संतमत की भावधारा सम्पूर्णतः भारतीय' है और उसका सीधा संबंध बौद्ध सिद्धान्तों और नाथपंथी योगियों की 'बानियों' से है ; क्योंकि उसी प्रकार के पद, उसी प्रकार के गीत और उसी प्रकार के दोहे और चौपाइयाँ कबीर आदि के काव्यों में मिलती हैं जो उन्होंने रची थीं।[७१] "क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद। क्या परिभाषा सर्वत्र व ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं।"[७२]

विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने से पता चलेगा कि संतमत के प्रवर्त्तक कबीर तथा उनके पीछे होनेवाले संतों के अधिकांश मंतव्य—यथा "शून्य गगन में[७३] सुरति का आरोप और वहाँ परमानन्द का आस्वादन, योग की क्रियायें और उनका अभ्यास, भक्ति में रहस्यवाद, गुरु का गौरव, जात-पाँत, तीर्थव्रत, आडम्बरपूर्ण विधि-निषेध आदि, पाषंडों का निर्दय खंडन आदि—उन्हें गोरखनाथ के दल से पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले थे। इन योगियों ने उन्हें वज्रयानी और सहजयानी 'सिद्धों' से लेकर और उनपर आस्तिकता का रंग चढ़ाकर तथा उनकी अश्लीलता और ऐन्द्रियता का परिहार करके उन्हें गौरवान्वित एवं परिष्कृत किया।[७४]

ऊपर की पंक्तियों में उन विद्वानों के विचार की चर्चा की गई है जो संतमत को 'सम्पूर्णतः भारतीय' मानते हैं। इस विचार से सामान्यतः सहमत होते हुए भी इस्लाम सरीखे विदेशी धर्म का संतमत पर अऋजु प्रभाव भी न पड़ा हो, ऐसा कहना ठीक नहीं होगा, क्योंकि कबीर की भावधारा को तत्कालीन प्रचलित इस्लाम के मूर्त्तिखंडनपरक एकखुदावाद तथा उसके अनुयायियों के बीच फैले हुए व्यापक भ्रातृभाव के बर्त्ताव से परिपुष्टि मिली—इतना तो मानना ही पड़ेगा। इसके अतिरिक्त जिस रूप में कबीर ने दाम्पत्य प्रेम के सूचक पदों में अपने

कबीर पर इस्लाम के प्रभाव

७१. ह० प्र० द्वि०—'भूमिका'—पृ० ३१।

७२. वही, पृ० ३१।

७३. दादू, पृ० १७६ में आचार्य क्षितिमोहन सेन ने यह बताया है कि किस प्रकार बौद्धों का 'शून्य' नाथपंथ और निरंजनपंथ में 'अलखनिरंजन' के नाम से अंगीकृत हुआ। कबीर में भी वही तत्त्व 'शून्य गगन' या 'गगनसुधा' के रूप में प्रकट होना है, जहाँ योगी का भगवान् से साक्षात्कार होता है।

७४. इस विषय पर कुछ अधिक जानने की दृष्टि से डॉ० हजारी प्रसाद द्विवदी की 'भूमिका' (अ० ३) अथवा रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (अ० २), सिद्धों के गानों और दोहों के मूल रूपों के लिए म० म० हर प्रसाद शास्त्री का 'बौद्ध गान और दोहा', पी० सी० बागची का 'चर्यापद' और 'गंगा' के पुरातत्त्वांक में राहुल सांकृत्यायन के लेख देखिये।

भक्त के गीत गाए हैं उससे न केवल वैष्णव माधुर्यभाव का प्रभाव परिलक्षित होता है, अपितु सूफियों के रहस्यमय प्रेम गीतों का भो। कबीर और संतमत के अन्य प्रचारकों के विचारों में परस्पर क्या भेद थे, इस विषय पर अन्यत्र विचार किया जायगा।[७५]

उपसंहार। कबीर-कालीन वातावरण

अबतक जो विचारविन्दु प्रस्तुत किये गए उनसे यह स्पष्ट विदित होगा कि संतमत के प्रवर्त्तक कबीर साहब जिस काल और वातावरण में रहे उनमें प्रचलित प्रायः सभी धार्मिक और दार्शनिक विचारधाराओं से वे प्रभावित हुए। उदाहरणतः उन्होंने उपनिषदों से अद्वैतवाद, शंकर से मायावाद, वैष्णव आचार्यों से भक्ति, अहिंसा और प्रपत्ति के सिद्धान्त, तांत्रिक शैवों, वज्रयानी बौद्धों और नाथपंथी योगियों से हठयोग, रहस्यवाद तथा जात-पाँत एवं कर्मकांड के विरुद्ध पैनी उक्तियाँ, वैष्णव भक्तों और सूफी संतों से माधुर्यमय भक्तिवाद, इस्लाम से एकेश्वरवाद की दृढ़तर भावना—इन मकरन्द-विन्दुओं का संचय करके, उन सब के मेल से, आचार, दर्शन एवं आस्तिकता का एक ऐसा विचित्र और मौलिक समन्वय प्रस्तुत किया जिसे 'संतमत' अथवा 'निर्गुणमत' की सामान्य उपाधि मिलो। व्यावहारिक दृष्टि से इस मत का लक्ष्य था हिन्दुओं और मुसलमानों, छोटों और बड़ों सब में सार्वभौम प्रेम और मित्रता का प्रचार, क्योंकि वे सभी एक ही भगवान् के पुत्र हैं, चाहे उसे राम कहो या रहिमान। खेद की बात है कि संतमत के अमूल्य विचारों की विभूतियाँ अभी भी बहुत कुछ अज्ञात अथवा अर्द्धज्ञात है और अनेकानेक ऐसे ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित पड़े हैं।

कबीर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठाधार

उत्तरी भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ऐसी थी जिससे कबीर के आध्यात्मिक तथा आचार-संबंधी विचारों के फलने-फूलने में प्रोत्साहन मिला, क्योंकि भारत में बहुत बड़ी संख्या में मुसलमान अपना पैर जमा चुके थे, और हिन्दू सभ्यता के सामने आँखें तरेरे एक इतर सभ्यता खड़ी थी। फलतः यह स्वाभाविक ही नहीं,आवश्यक भो था कि उच्च कोटि के विचारक इन दोनों सभ्यताओं के बीच की गहरी खाई को पाटने और एक दूसरे को गले से गला मिलाने का बीड़ा उठावें। और, कबीर ने वस्तुतः किया भी यही। कबीर के पश्चात् आनेवाली शतियों में भी उपर्युक्त दोनों सभ्यताओं का संघर्ष समय-समय पर प्रखर एवं प्रखरतर रूप धारण करता रहा, और उस संघर्ष को सम्पर्क के रूप में परिणत करने की चेष्टा करनेवाले तथा सार्वभौम प्रेम का संदेश सुनानेवाले संतों का भी आविर्भाव होता रहा। संतों का यह सिलसिला सच पूछिये तो कभी भी नितांत विच्छिन्न नहीं हुआ और न होना चाहिए था, क्योंकि परिस्थितियों का तकाजा ऐसा ही रहा है। हिन्दुओं और मुसलमानों में भ्रातृभाव का प्रचार करनेवाला साबरमती का संत गाँधी इस दृष्टि से यदि नवयुग का संत कबीर कहा जाय तो संभवतः उचित ही होगा।[७६]

७५. खंड तीन में।

७६. दरियासाहब के समय में बिहार की परिस्थिति की चर्चा खण्ड १ के अध्याय २ में की गई है।

द्वितीय परिच्छेद

सत्पुरुष

दरियासाहब के भिन्न-भिन्न ग्रंथों में परमसत्ता (ईश्वर) को द्योतित करने के लिए निम्न शब्दों का व्यवहार किया गया है—सत्पुरुष (श० ३७.१), राम (श० १८.३३), आत्मा (श० ३.४४), ब्रह्म (श० ३.४४), परब्रह्म (ज्ञा० स्व० १३४), कर्त्ता (श० २९.१), अल्लाह (श० २.१३), बेबहा (श० रा० १), जिन्दा (श० ३७.१), सद्‌गुरु (ज्ञा० स्व० २०२), सुक्रित (ज्ञा० स्व० ५२) आदि। इनमें से अन्तिम तीन शब्दों का प्रयोग दरियासाहब अथवा भक्त के ऐहिक गुरु का भी बोध करने के लिए हुआ है। प्रथम सात नाम बहुधा हिन्दू और मुसलमान के धर्म तथा दर्शन ग्रंथों में पाये जाते हैं। आठवाँ नाम है 'बेबहा', जिसपर कुछ टिप्पणि की आवश्यकता जान पड़ती है। यह फारसी भाषा के 'बे' (बिना) और 'बहा' (मूल्य) शब्दों को मिला कर बना है और इस प्रकार इसका अर्थ हुआ 'अमूल्य'। यह शब्द 'बेबहा' बहुत अधिक व्यवहार में आया है और जैसा मुझे साधुओं से ज्ञात हुआ है, वे इसको बहुत महत्त्व तथा गौरव देते हैं, क्योंकि वे इसे ही गुरुमंत्र कहकर शिष्यों को प्रदान करते हैं।

सत्पुरुष के अनेक नाम

'राम' शब्द पर भी कुछ आलोचना की आवश्यकता है। यद्यपि दरियासाहब ने 'राम' को अवतार के रूप में मानने का घोर विरोध किया है, तथापि उन्होंने अनेक स्थानों में इस शब्द का प्रयोग ईश्वर अथवा सत्पुरुष के अर्थ में किया है।[1] इस रूप में उन्होंने इसे प्रायः 'रमिता'[2] का विशेषण दिया है, जिसका अर्थ हुआ 'व्यापक' (सब में रमा हुआ)।

सत्पुरुष का 'नाम' उतना ही सर्वशक्तिमान् है जितना स्वयं सत्पुरुष; और भी बहुत-सी पंक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें नाम को सत्पुरुष का पर्य्यायवाची मानकर उसी रूप में उसका उल्लेख हुआ है।[3] उदाहरणतः 'शब्द' में बहुत-से पद ऐसे हैं जिनका अन्त इस चरण से होता है—'एक नाम अलम सही करता।'[4] नाम की उपमा बहुधा पारस पत्थर से दी गई है,[5] जिसके छू जाने से लोहा

सत्पुरुष के नाम

---

१. श०, १८.३३, ज्ञा० र०, ७४.०, ९३.६, ९३.७; ज्ञानरत्न में तो राम की बहुधा सत्पुरुष के समान वन्दना की गई है। ज्ञानरत्न के विश्लेषण के लिए खण्ड—३. के दूसरे परिच्छेद में "तुलसी और दरिया" शीर्षक देखिये।

२. शब्द, २२.६।

३. तुलसी ने नाम को राम से भी बड़ा माना है।

४. श० १.८४।

५. ज्ञा० र० १.४।

भी सोना बन जाता है। अनमोल होने के नाते मोती[६] और हीरे[७] से भी इसकी उपमा दी गई है। यह एक नौका के समान है जिसमें दुःखों के सागर को पारकर हमें अमरपुर[८] पहुँचा देने की क्षमता है। एक अवसर पर तो सन्त दरिया ने तुलसीदास का निम्नलिखित प्रसिद्ध दोहा भी उद्धृत किया है--

एक भरोसा एक बल, एक आस बिसवास।
एक भरोसा नामकर, जाचक तुलसीदास।।[९]

इन पंक्तियों का विस्तार दरियासाहब निम्नरूपेण करते हैं--

बूझहु तुलसीकर यह साखी। पतिबरता एक पतिचित राखी।।
एह जग बेस्वा बहुत भतारी। एक भगति करु तनमन वारी।।
एकै नाम आस चित धरहु। दूजा दोविधा सब परिहरहु।।[१०]

नाम की चमक एक सौ कोटि सूर्यों की चमक के समान है।[११] जो प्रेम और भक्ति से हीन हैं उन्हें छोड़कर शेष सभी को यह आलोकित करती है।[१२] नाम की महत्ता इससे भी प्रत्यक्ष है कि दरियापंथी लोग एक दूसरे को 'सत्तनाम' कहकर अभिवादन करते है। प्रणाम-पाँती का सार्वभौम माध्यम होने के अतिरिक्त, लोग भक्तिवश परमात्मा के नाम की भाँति इसका भी उच्चारण करते हैं।

नाम की महिमा

माया के तीन गुण हैं--सत्त्व, रजस् और तमस्।[१३] ये ही गुण हमारी दैहिक स्थिति के मूल में हैं और हमें पुनः-पुनः जन्म और मृत्यु के बन्धन में डालते हैं। अतः हमारी सत्ता दो भागों में विभक्त की जा सकती है; यथा, एक निर्गुण, अर्थात् वह सत्ता जो इन तीन गुणों से परे और, मुक्त है; और दूसरा त्रिगुण अथवा सगुण, अर्थात् वह जो तीन गुणों के अधीन है और जो जन्म तथा मृत्यु, उत्पत्ति तथा विनाश के चक्र में पिसती है।

निर्गुण और त्रिगुण

उपमा के लिए निर्गुण यदि सागर है तो सगुण उसकी लहरें हैं।[१४] सत्पुरुष, परमात्मा निर्गुण है, क्योंकि वह निर्लेप है;[१५] अर्थात् प्रकृति के विकारों से अलग और माया तथा

६. ज्ञा० र० १.४।
७. ज्ञा० र० ५७. १८।
८. ज्ञा० दी० २१.०; श० २ (क) १८।
९. ज्ञा० स्व० ३६२।
१०. ज्ञा० स्व० ३६३–६५।
११. ज्ञा० स्व० १७।
१२. ज्ञा० स्व० २०।
१३. व्र० प्र०, पृ० ५।
१४. सहसरानी, ८८६।
१५. शब्द, १४०४; अमरसार, २०२; ब्रह्मविवेक, १.१२; ज्ञानरत्न, १.६, ११.३

इसके तीन गुणों से परे। वह सत् है, अमर है, जन्म, रोग, जरा और मृत्यु से मुक्त है।[16]

निर्गुण सत्पुरुष और उसकी विभूतियाँ

कर्मविधान और उसके नियम उसपर लागू नहीं हैं।[17] उसमें न गुण है, न दोष; क्योंकि वह इन दोनों ही से परे है।[18] उसका न आदि है और न अन्त।[19] वह बन्धनों और क्लेशों से मुक्त है।[20] वह सच्चिदानन्द है, उसके न रूप है और न गुण।[21] वह अकथनीय है।[22] हम उसका मूल्य नहीं आँक सकते[23] और न उसके रहस्यपूर्ण अभिप्रायों को ही समझ सकते हैं।[24] उसकी महिमा अपार है;[25] ब्रह्मा, शिव, शेष और शारदा भी उससे भयभीत हैं।[26] अस्सी लाख पैगम्बर भी उसका अन्त न पा सके।[27]

वह सर्वव्यापी है। वह मानव, 'कूकर' या शूकर सभी प्राणियों में वर्त्तमान है।[28] वह मिट्टी या जल, पृथ्वी या आकाश सर्वत्र उसी भाँति विद्यमान है जैसे सरसों में तैल।[29]

ईश्वर अथवा सत्पुरुष की सर्वव्यापकता

सभी फूल-पौधों में उसकी सत्ता झलकती है।[30] इस हाड़-मांस और रक्त के बने अपने शरीररूपी पर्दे की ओट में हम उसे ही पाते हैं।[31] हम भूल से उसे अपने आप में खोजने के बदले यहाँ-वहाँ मन्दिरों, मस्जिदों और तीर्थों में ढूँढ़ते हैं;[32] ठीक उसी भाँति, जैसे कस्तूरीमृग[33] अपनी नाभि की गंध को घास में ढूँढ़ता-फिरता है।[34]

---

१६. ज्ञा० र०, ११६. १; श० १४. १।
१७. श०, ३ (क). २५।
१८. श०, १. २१।
१९. श०, १८. ४३।
२०. श०, ३.७, १. २०।
२१. श०, ३ (क). २५।
२२. श० १२. १६।
२३. श०, ३. ७।
२४. श०, ३७. १; ज्ञा० स्व०, १३।
२५. ज्ञा० स्व०, १३।
२६. ज्ञा० स्व०, १४।
२७. ज्ञा० स्व०, १५।
२८. श०, ७. ११।
२९. श०, १. ८४, १. ९२, १. ९६, १२.१४; ज्ञान मल, श०; ब्रह्मचैतन्य, ९३।
३०. श०, ३. १५।
३१. श०, १५. ३।
३२. ज्ञा० स्व०, ३८०; श० २. १४; ज्ञानदीपक, ४. २।
३३. ज्ञा० स्व०, ३७७।
३४. ज्ञा० स्व०, ३७८; श०, १.२८; मतिपूजा पर दरिया के विचारों को १६ वें परिच्छेद में देखिये।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पत्थर की मूर्ति कभी भी ईश्वर नहीं हो सकती। ऐसी मूर्ति की पूजा करना मूर्खता है जो न खाती है और न बोलती है। जीवधारियों की उपेक्षा करना और निर्जीव पत्थर की पूजा करना, पत्थर की नाव पर नदी पार करने के समान है। वह नाव डूबेगी ही।[३५]

मूर्तिपूजा की निन्दा

साहब (सत्पुरुष) ही सद्गुरु[३६] (पथ-प्रदर्शक) है। दरियासाहब ने बार-बार ऐसा कहा है कि सत्पुरुष ने उन्हें मार्ग दिखाया और उनकी वाणी को प्रेरणा दी।[३७] सत्पुरुष राजा है और दरिया उसके पुत्र।[३८] सभी को उससे संबंध जोड़कर उसके चरणों में आश्रय लेना चाहिए। वही हमारा मित्र (यार) है[३९] और यदि हमारी भक्ति सच्ची नहीं है तो हम उसे कभी न पा सकेंगे।[४०] वह अपने भक्तों (प्रह्लाद या कबीर) की भलाई तथा रक्षा के लिए प्रकट हो जाता है।[४१] कबीर आदि के सदृश हमें भी सत्य की चिनगारी से हृदय का दीप जला लेना चाहिए।[४२] आलोक-ग्रहण की यह क्रिया विना सद्गुरु के असंभव है। जैसे भूमि में बीज बोने पर भी समय पर वर्षा न होने से वह नहीं अंकुरित होता है, उसी प्रकार गुरु की सहायता के बिना अज्ञानांधकार नहीं हटता और अन्तर की ज्योति नहीं जगमगाती।[४३] इस क्षणभंगुर संसारसागर में सत्पुरुष[४४] नाविक के समान है और उसका नाम ही जहाज है। वही 'हंसउबारन' (जीवों का उद्धार करनेवाला) है।[४५]

सत्पुरुष ही हमारा मार्ग-दर्शक (सद्गुरु) है

सत्पुरुष एक है।[४६] वह विश्व के अनन्त रूपों में अन्तर्यामी है।[४७] अनेकता में

---

३५. श०, ५. २६; द० स०, ५५. ८, ८६. ३, ७६. १०।

३६. ज्ञा० स्व०, १८; २७७।

३७. ज्ञा० स्व०, २०२।

३८. ज्ञा० स्व०, २८२, २८६।

३९. ज्ञा० स्व०, ३४६, ३५८।

४०. ज्ञा० स्व०, ३८४।

४१. श० १. ६७, १. १०३, १. १०, १. १०८, ३. ५३।

४२. ज्ञा० स्व०, १६१।

४३. ज्ञा० स्व०, १६४।

४४. ज्ञा० स्व०, ५२; ज्ञा० रत्न १०६. ०।

४५. 'हंस' शब्द जीव अथवा आत्मा के लिए व्यवहृत हुआ है। हस्तलिपि-ग्रंथों में 'हंसउबारन' उपाधि दरियासाहब को भी दी गई है।

४६. श०, १. २१, ३. ६५, ७. ४।

४७. द० सा० १०५. ३।

एकता दिखाने के लिए उपमाओं की कमी नहीं है। गौएँ विभिन्न रंगों की होती हैं, पर उनका दूध सदा उजला ही होता है।[४८] एक ही पेड़ के अनेक फल होते हैं, मीठे, खट्टे, तीते और कसैले, विषमय और अमृतमय।[४९] स्वाति की वही बूँद सीप में मोती, हाथी के मस्तक में गजमुक्ता, कदली-वृक्ष में सुगंधित कपूर, बाँस में वंशलोचन और साँप के मुँह में विष बन जाती है।[५०] अविनश्वर सत्पुरुष स्वाति बूँद के समान इस विविधरूप जगत् का मूल है।[५१] उसी एक से अनन्त रूपों की सृष्टि हुई है तथा पुनः वे भी उसी एक में विलीन हो जायेंगे।[५२]

जगत् की अनेकता में सत्पुरुष की एकता

प्राणिमात्र का जीवन और उसकी चेतना उसी परमपुरुष से प्राप्त होती है। अतएव आत्मा उससे भिन्न नहीं है। उदाहरणस्वरूप यदि कोई जल से भरे बर्तन में झाँके तो उसका प्रतिबिम्ब उसमें दीख पड़ेगा, पर बर्तन टूटते ही प्रतिबिम्ब लुप्त हो जायगा।[५३] उसी प्रकार हम अपने आप में सत्पुरुष की वह झलक पा सकते हैं, जो हमारे जन्म के साथ प्रादुर्भूत होती है और मृत्यु के साथ विलीन हो जाती है। किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब वस्तु से पृथक् सत्ता नहीं रखता, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा दो नहीं हैं। अन्ततः वे एक ही हैं। हम आत्मज्ञान प्राप्त करके ही उस सत्पुरुष की एकता पा सकते हैं[५४] और उसे पा लेना सर्वस्व पा लेना है। विरले ही साधु-सन्त ऐसे हैं जो 'सब में तैं, तौ ही मैं सब हैं'[५५] का पूर्ण मर्म समझ पाते हैं।

आत्मा : ईश्वर का अंश

दरियासाहब के अद्वैतवाद की संक्षिप्त रूपरेखा यही है। इस अद्वैतवाद के प्रतिपादन-क्रम में अनेकानेक असंगतियाँ आई हैं। पर यह देखते हुए कि दरियासाहब में एक ओर तो दार्शनिक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञानपद्धति का अपेक्षाकृत अभाव था, और दूसरी ओर भक्त की भावुकता की प्रबलता थी, हम सामान्यतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दरियासाहब मुख्यांश में अद्वैतवादी हैं; क्योंकि उनके अनुसार सत्पुरुष एक है, अनेक नहीं; विश्व में एक वही है, अन्य नहीं। वे अद्वैत पुरुष का[५६] यत्र-तत्र इस रूप में वर्णन करते हैं जिससे प्रतीत होता है कि वे परम सत्ता की एकता के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। वे एकेश्वरवादी ही नहीं थे, अद्वैतवादी भी थे।

अद्वैतवाद

---

४८. ज्ञा० स्व०, ३६७।
४९. ज्ञा० स्व०, ३६५–७०।
५०. ज्ञा० स्व०, ३७१–३७४।
५१. ज्ञा० स्व० ३७६।
५२. शब्द, १८.२।
५३. ज्ञा० र०, ११०.०, ११५.९–१०।
५४. द० सा०, ४१.३।
५५. ज्ञा० स्व०, ३९.३।
५६. द० सा०, ४१.३, ११७.०; ब्र० चै०, १६३।

दरियासाहब ने सत्पुरुष को निर्मल 'सत्स्वरूप'[५७] कहा है। यह सूक्ष्मस्वरूप परमात्मा निर्गुण और सगुण (अथवा त्रिगुण)[५८] दोनों ही से परे है और तीनों लोकों से अतिरिक्त चतुर्थ लोक का वासी है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि दरियासाहब निर्गुण मत के पोषक नहीं हैं। उनका लक्ष्य सत्पुरुष के इंद्रियागोचरत्व अथवा बड़थ्वाल के शब्दों में, उसके 'परात्परत्व' का बलपूर्वक प्रतिपादन करना है। उनका यह भी तात्पर्य है कि भक्त सगुण और निर्गुण में तभी तक भेद कर पाता है जबतक वह बुद्धि के धरातल पर स्थित है; पर जब वह अनुभूति की तुरीयावस्था में परमतत्त्व का साक्षात्कार करता है तो उसकी दशा ऐसी नहीं रह जाती कि वह निर्गुण सगुण का विवेक कर सके; वह वेग और वाणी की सीमा से परे पहुँच जाता है। दरियासाहब का सत्पुरुष सार्वभौम है। वह राम भी है, रहीम[५९] भी। केशव भी है, करीम भी।[६०] वह न हिंदू है और न तुर्क।[६१] अतएव उसे राजा रामचंद्र (रामराव) समझने की भूल नहीं करनी चाहिए जो मुसलमानों का न होकर हिन्दुओं का है और उन्हीं का रक्षक है।[६२] सत्पुरुष जाति, वर्ण, रूपरंग आदि सभी भेदों से परे है।

ईश्वर सत्पुरुष की परात्परता और सार्वभौमता

ऊपर लिखे विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि सत्पुरुष अथवा निर्गुण ब्रह्म की भावना सगुण अवतार की भावना से भिन्न है। गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है "जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं जन्म-ग्रहण करता हूँ।"[६३] इस प्रमाण के आधार पर दस अवतारों और उनकी रावणवध, कंसवध, गोवर्द्धनधारण आदि लीलाओं का समर्थन किया जाता है।[६४] परंतु दरियासाहब कहते हैं कि सत्पुरुष का अवतार और सत्पुरुष—दोनों अभिन्न नहीं हो सकते; क्योंकि सत्पुरुष तो निर्गुण है तीनों गुणों से परे; जबकि उसका अवतार त्रिगुण नदी[६५] की धारा में डूबता-उतराता रहता है। राम हो या कृष्ण,

अवतार त्रिगुण है

---

५७. श० १४.१ ; द० सा० १०५.८।

५८. श० १५.३, १८.२०; स० रा० ३५२; द० सा० १०५.८; ज्ञा० दी० ७१.६; अ० ज्ञा० २६.०।

५९. द० सा० १०.७; ६५.६; ज्ञा० दी० २२.०।

६० श० १.८७।

६१. स० रा० ६३८।

६२. स० रा० ६३३; ६३४।

६३. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
(गीता, अध्याय ४, श्लोक ७)

६४. ज्ञा० र० ११३.१, ४८.२७-२८, २ क० ११।

६५. श० १.२१, १.२३; ब्र० वि० ६.५; ज्ञा० मू० २.०।

बुद्ध हों या कलि, जो भी अवतार धारण करता है वह जन्म, जरा और मृत्यु के बंधन में बँधता है।[६६] वह यमरूपी धीवर के जाल का आखेट बनता है।[६७] किंतु सत्पुरुष बंधनों से परे है। वह देश और काल के नियंत्रणों और सांसारिक संबंध-बंधनों से मुक्त है।[६८] अवतारों के संबंध और सगे-संबंधी होते हैं, पर सत्पुरुष के कोई संबंधी नहीं है—न माँ, न बाप और न भाई।[६९] राम (विष्णु) का उदाहरण लीजिये। कहा जाता है कि वे कमला या लक्ष्मी के पति हैं। परंतु सत्पुरुष तो सारे जगत् का पति है।[७०]

सत्पुरुष अपने शुद्ध निर्मल रूप में अजर, अमर तथा अद्वैत है।[७१] यह तो जीव है जो प्रकृति या माया रूपी स्त्रीतत्त्व के साथ संसक्त है। कुछ प्रसंगों में पुंस्तत्त्व जीव का दूसरा नाम 'मन' भी दिया गया है। मन और माया ये ही दोनों मिलकर अवतारों की लीला के कारण बनते हैं।[७२] मन और माया को अन्यत्र क्रमशः शिव और शक्ति भी कहा गया है और उनके संयोग से ही त्रिगुणात्मक प्रपंच की सृष्टि बताई गई है।[७३]

दरियासाहब ने यह बात कई बार कही है कि जितने भी अवतार हुए है वे सभी 'मन' के रूप हैं[७४] और माया सदा उनके साथ लगी रहती है; उदाहरणतः राम के साथ सीता, कृष्ण के साथ राधा आदि।[७५] एक सुंदर रूपक द्वारा वे वर्णन करते हैं कि जीव एक झूले पर 'शक्ति' को बगल में बिठाकर झूल रहा है और 'मन' उन्हें झुला रहा है।[७६] एक अन्य रूपक में वे बताते हैं कि आदि में मन पुरुष के साथ था। उसे छोड़ वह शक्ति अथवा अष्टभुजी भवानी के पास गया। इस संसर्ग से तीन देवताओं—ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर—का जन्म हुआ। इन तीनों से विश्व-प्रपंच का उद्भव हुआ जिसमें दसों अवतार भी हैं।[७७] इन त्रिगुणात्मक अवतारों ने मानों बाजार

---

६६. श० ८.३; अ० सा० ३२.४–३३.०।

६७. श० १८.१४, १६.१०।

६८. श० १.११०; २ क १०, ५.१८, १८.१६, १८.४५; ज्ञा० र० ४८.२५, ४८.४०; ज्ञा० दी० ४.०।

६९. श० १.११०; भ० हे० ८.०; ज्ञा० मू० १.८।

७०. श० ६.६।

७१. श० २२.३।

७२. श० ५.११: १८.२७, २१.६; ज्ञा० र० ६८.६; द० सा० १३.५।

७३. श० १८.२७, २२.३; ज्ञा० दी० ७५.१०।

७४. ज्ञा० दी० ७०.१।

७५. श० ७.४; १८.१, १६.२, ५६.८।

७६. श० २७.४।

७७. श० १८.२७।

लगा रखा है।[७८] किंतु सत्पुरुष इन सबों से न्यारा है (निर्गुण पुरुख निनारं)।[७९] वह प्रकृति अथवा माया का संग नहीं चाहता है। वह अजर, अमर है; फिर उसका अवतार के साथ तादात्म्य क्यों माना जाय? अवतार तो जन्म, जरा और मृत्यु के वश में है।[८०]

पुनश्च, जितने अवतार हैं, वे सभी देवता हैं, ऐसा मान लेना दरियासाहब के एकेश्वरवाद के विरुद्ध पड़ता है[८१] और उन्होंने बड़ी तीव्रता से इसका खंडन किया है। 'ज्ञानरत्न' में आये हुए कृष्णार्जुनसंवाद को भी उन्होंने ऐसा रूप दिया है जिससे उनके अपने मंतव्य का समर्थन हो। उदाहरणतः जब अर्जुन कृष्ण से प्रश्न करते हैं कि कृष्ण और कर्त्ता (भगवान्) में कोई अंतर है या नहीं तो कृष्ण बताते हैं कि अंतर अवश्य है; कृष्ण भगवान् के भेजे हुए प्रतिनिधि मात्र हैं।[८२] कर्त्ता तो 'निर्गुण' और निरन्त' है।

देवता और ऋषि भी त्रिगुण हैं

हिंदू धर्म के अन्यान्य देवी-देवताओं की भावना में भी वे ही त्रुटियाँ हैं जो अवतारों के संबंध में हैं। देवता और अवतार दोनों ही समान रूप से त्रिगुणों और माया (जिसे अन्यत्र 'ज्योति' भी कहते हैं) के अधीन हैं।[८३] उदाहरणस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनों प्रधान देवताओं—के पत्नियाँ हैं और वे वासनाओं के वश में हैं। इंद्र की 'वीरता' का क्या कहना! वे तो इतनी दूर तक बढ़े कि गौतम की पतिव्रता पत्नी अहल्या को धोखे से भ्रष्ट किया।[८४] साधारण देवताओं, ऋषियों और संतों की कथा भी कुछ इसी ढंग की है। गणेश और शेष भी माया के अधीन थे, और वही दशा शुकदेव, वशिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर, जनक और सनकादि की भी थी।[८५] 'नवनाथ' और 'चौरासी सिद्ध' भी उसी विवश स्थिति में रहे और मन तथा माया के बंधन में बँधे रहे।[८६]

उस विचारधारा को, जिसमें बहुदेववाद और अवतारवाद की प्रधानता है—,

---

७८. तिर्गुन का मेला'।
७९. श० ५.१८।
८०. श० ५.११।
८१. श० ७.४।
८२. 'कर्त्ता के भेजल'। ज्ञा० र० ११३.१, ११८.५।
८३. श०. २१.६, १८.२७; ज्ञा० दी० ७६.०; भ० हे० २३.४।
८४. श० १९.८, अ० सा० १४.३–६, १५.१—२।
८५. श० १९.१०, २१.६; अ० सा० १६.१—१८.०।
८६. श०. १८.१।

'मुनिमत' कहते हैं।[८७] इसके विपरीत 'संतमत'[८८] है जिसके अनुयायी दरियासाहब थे।

मुनिमत और संतमत

संतमत का दूसरा नाम 'साधुमत'[८९] या 'सद्गुरुमत'[९०] भी कहा जाता है। सामान्य दृष्टि से यों कहा जायगा कि मुनिमत सगुणवाद का परिचायक है और संतमत निर्गुणवाद का।

संतमत के उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि निर्गुण सत्पुरुष त्रिगुण से परे है। ऐसी दशा में यह प्रश्न होता है कि त्रिगुणातीत सत्पुरुष और सगुण मायाविशिष्ट जगत् के बीच सामंजस्य कैसे स्थापित हो? पूर्वीय और पश्चिमीय सभी दर्शनों के सम्मुख सदा से यह एक महान् प्रश्न और एक जटिल समस्या रही है तथा विभिन्न विचारकों ने इसका उत्तर या समाधान अपने-अपने मतानुसार दिया है। ईश्वर और जगत् के बीच की खाई को पाटने के लिए दरियासाहब निरंजनदेव[९१] की कल्पना करते हैं। यह निरंजन ईश्वर से भिन्न है और माया के त्रिगुणात्मक जगत् का स्वामी है। उसे सत्पुरुष का पुत्र माना गया है।[९२] उसने 'कन्या' माया के साथ भोग-विलास की उच्छृङ्खलता की।[९३] इसी उच्छृङ्खलता के फलस्वरूप देवताओं की सृष्टि हुई और अन्य प्राणी भी उसके व्यापक जाल में फँसे।[९४] इस जगत् की अमीरी और गरीबी तथा सुख और दुःख का उत्तरदायित्व निरंजन पर ही है। जब हम एक धार्मिक व्यक्ति को आपत्तियों में कराहते हुए और एक व्यभिचारी को प्रचुर वैभव में इठलाते हुए, एक सती-साध्वी को दुःखों और मुसीबतों के बोझ से दबी और एक वेश्या को आनंद और विलास में मग्न देखते हैं, तो अक्सर हम बरबस बोल उठते हैं —

निरंजन ! धुंध तेरी दरबार

तुम्हारे न्यायालय में न्याय की आशा दुराशामात्र है।

निर्गुण और त्रिगुण के बीच सामंजस्य-स्थापन की दृष्टि से दूसरी कल्पना जो की गई है वह है सुक्रित (सुकृत) की।[९५] सुक्रित से दरियासाहब का भी बोध होता है।

---

८७. श० ५.३।
८८. श० रा० ४२३; श० ३.४२।
८९. श० १.३८।
९०. श० ७.२।
९१. ज्ञा० दी०, ७०.१७; ब्र० वि० २५.६ 'कर्त्ता के अनेक नाम'।
९२. ज्ञा० दी०, ७४.२०।
९३. ज्ञा० दी०, ५९.७—१०, ७०.१८; ज्ञा० र० १०४.१३—१४।
९४. श०, २१.७; ज्ञा० र० १०४.१३।

वे सत्पुरुष (ईश्वर) के पुत्र हैं। उनपर 'हंसों' (आत्माओं) को बंधनमुक्त करने का भार दिया गया हैं। 'ज्ञानदीपक' में उनक सत्पुरुष के धाम से जंबूद्वीप (भारत) आने की यात्रा का तथा यहाँ आकर उनके अनेक जन्मों की कृतियों का विशद वर्णन हमें पहले ही मिल चुका है।[९६]

९५. श० २१.८।

९६. ज्ञा० दी० ७६.५ तथा प्रस्तुत पुस्तक का खण्ड १ परिच्छेद–१ भी देखिये।

तृतीय परिच्छेद

जीव (आत्मा)

आत्मा की उपमा एक 'हंस' से दी गई है जो अपनी वाटिका से भटक पड़ा है

जीव अथवा आत्मा को बहुधा ऐसा पक्षी (मुख्यतः हंस) कहा गया है, जो अपने असली घर से भटक पड़ा है।[1] हम पहले ही कह चुके हैं कि 'हंस उबारन' पद का व्यवहार सतपुरुष के अर्थ में हुआ है। 'हंस' हुआ जीव, 'उबारन' उद्धारक[2]। इस पद से सद्गुरु दरियासाहब का भी बोध होता है। अनेक प्रसंगों में हंस के मानसरोवर झील से मोती चुगने की चर्चा की गई है,[3] जिसका तात्पर्य है पथप्रदर्शक गुरु की कृपा के फलस्वरूप आत्मा का बंधनों से मुक्त होकर उन्मुक्त 'गगन' में विहार करना। वह वाटिका जिसका 'माली' यह आत्मा है अथवा वह मनोरम 'वन' जिसका वह 'पखेरू' है, सदा हरा-भरा, फला-फूला और 'नवबहार' रहता है।[4] स्वर्ग (छपलोक) एक 'अक्षयवृक्ष' है; आत्मा उसी की शाखाओं में निवास करता है।[5] यह अजर-अमर और 'अमान' है, किंतु भटककर इस मर्त्यलोक में आ पड़ा है।[6] ऐसे नाशवान् शरीर में इसका डेरा पड़ा है जो लकड़ी के पिंजड़े के समान है और जिसमें दस छिद्र हैं।[7] इसे अपने असली घर लौट जाना है। इसके लिए उसे अपनी ज्ञानदृष्टि बाह्य जगत् से अभ्यंतर की ओर फेर कर अपने को आपमें ढूँढ़ निकालना है, निज चेतना से निजत्व को प्राप्त करना है।[8] मानव को संबोधित करते हुए कवि कहता है—

> "तुमही सुभग मंकुर हौ भाई
> तोहि मैं साहब सुरत देखाई।"[9]

---

१. ज्ञा० स्व० ७८।

२. पीछे 'सतपुरुष' परिच्छेद को देखिये। और भी, ज्ञा० र० २.०।

३. ज्ञा० दी० ६.६।

४. ज्ञा० स्व० ७७—८०।

५. ज्ञा० स्व० ८६; श० २६.२।

६. ज्ञा० स्व० ३३१।

७. श० २६.४; दस छिद्रों से अर्थ दस इन्द्रियों से है।

८. ज्ञा० स्व० ३३२, ३८२।

९. ज्ञा० स्व० ३३०।

मनुष्य को यह समझना चाहिए कि स्वातिबिंदुवत् सत्पुरुष ही उसका मूल है, और, वह उस नगर का निवासी है जहाँ कोई कभी मरता नहीं है।[11] उसे अपने हृदय-दर्पण को इतना स्वच्छ और निर्मल बनाना है कि उसमें सत्पुरुष की महिमा और ज्योति की झलक दीख पड़े। यदि दर्पण पर धब्बे होंगे तो 'प्रतिमा' नहीं दीख पड़ेगी; और जैसे अंधे के लिए चमकता हुआ सूर्य निरर्थक होता है अथवा माड़ा (नेत्रदोष) वाला व्यक्ति समतल मार्ग पर भी ठोकर खाता है, उसमें सूर्य या मार्ग का कोई दोष नहीं होता, उसी प्रकार आत्मा अंधकार में भटकता रहेगा।[12] वासनाएँ और कामादि प्रलोभन ही आँखों की 'माड़ा' या दर्पण की मैल है।[13] ब्रह्म तो ध्रुवतारे के समान है जो मोहजाल के आकाश के पीछे छिपा है।[14] अतः मनुष्य को चाहिए कि वह एक मार्गदर्शक ढूँढ़ ले, एक 'सिकिलगर' (दर्पण साफ करनेवाले) को अपना ले और अपने हृदयरूपी दर्पण या तलवार को तेज या साफ कर ले।[15]

आत्मशुद्धि से मुक्ति की प्राप्ति

आत्मा की मलिनता दूर करने की क्रिया को कई रूपकों से समझाया गया है। बीज भूमि में बोया जाता है। वहाँ उसकी भूसा रूपी मैल छूट जाती है। उस बीज से उगे हुए पौधे से हजारों दाने अनाज मिलता है।[16] ईख के रस को उबालकर, उसकी मैल काटकर पहले गुड़ बनता है, गुड़ से भी साफ चीनी और मिश्री होती है, मिश्री से भी मिश्रीकंद।[17] इसी भाँति यदि मनुष्य अनवरत आत्मशुद्धि की क्रिया में लगा रहे तो संत और महात्मा बन जाता है। उसमें फिर 'जंग' नहीं लग सकती।[18] और अंत में विंदु सिंधु में मिल जाता है,[19] आत्मा सत्पुरुष में विलीन हो जाता है। ऐसे जीवन्मुक्त

---

१०. ज्ञा० स्व० ३७६।
११. श० १८.५७।
१२. ज्ञा० १३७–१४०।
१३. ज्ञा० स्व० १४२।
१४. ज्ञा० स्व० १४३।
१५. ज्ञा० स्व० १४४।
१६. ज्ञा० स्व० १४६–१५१।
१७. ज्ञा० स्व० १४८।
१८. ज्ञा० स्व० १५१।
१९. ज्ञा० स्व० १२१।

व्यक्ति के आत्मा को वासनाओं के आस्वादन के लिए 'मुर्दे' के समान होना चाहिए, अर्थात् उसे अपनी वासनाओं का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। रूपक-भाषा में ऐसे निर्लिप्त आत्मा को 'पारा' कहा गया है। कवि कहता है—

"जेहि बिधि पारा मरै न मारा, मलकल मौत सो करै बिचारा।
कहै फिरश्तन्हि सै अस बरनी, पारा जीव हुआ करि करनी।" [२०]

पारा की भाँति जीव भी अपने कर्त्तव्यों के बल मृत्यु के सांघातिक पंजे से मुक्त और उसकी पकड़ से बाहर हो जाता है।

२०. ज्ञा० स्व० ११६–१२०; श० २३.१४; मुक्ति की विशद व्याख्या के लिए तद्विषयक परिच्छेद देखिये।

चतुर्थ परिच्छेद

शरीर

'ज्ञान-स्वरोदय' में आत्मा की महिमा की चर्चा के उपरांत कवि इस मानव-देह की महिमा का वर्णन करता है—

'धन कारीगर सिरजि सँवारा, मानुष तन सब ऊपर सारा।

इसी प्रकार नबी से अल्लाह ने कहा था,

'बुजरुग आदम जात है जीव चराचर झार।[2]

मानव-शरीर की महिमा

मानव जाति सभी प्राणियों से ऊपर है। शरीर के पाँच अंग—सिर, आँख, जिह्वा, कान और नाक पाँच मोतियों या मणियों के समान हैं।[3] मानव की सत्ता महान् है।

विस्तृत और रहस्यमय उपमा, उपमेय अथवा रूपक द्वारा कवि इस शरीर, पिंड और द्विधा लोक (ब्रह्मांड) में समता स्थापित करता है। शरीर भी उसी प्रकार द्विधा है जैसे द्विधा लोक। पार्श्व, पैर, हाथ, नासिका, कान, आँख, दाँतों की पंक्ति, गाल, छाती आदि सभी दो-दो ह।[4] और इस पिंड ब्रह्मांड में 'जल, थल, सरग, पताला'[5] समाविष्ट हैं। निदर्शनतः पद—पाताल, सिर—आकाश; मध्यशरीर—भूमध्य सागर; माँस—मिट्टी; रक्त—जल; नसें—बड़ी और छोटी धारायें; हृदय—गहरी नदी; हड्डी—पहाड़; बाल—वन, उपवन और वाटिका हैं।[6] एक दोहे में[7] तो कहा गया है कि शरीर के 'सात गिरह' और 'नौ टक' ब्रह्मांड के 'सात द्वीप' और 'नौ खंड' के समान है।

इसके अतिरिक्त नाक—सेतु (वह पुल—जिसमें होकर साँस की धारा बहती है); आँखें—तराजू के दो पलड़े, जिनका मध्य बिंदु दोनों भौंहों के बीच में पड़ता है; दोनों श्वास— चंद्रमा और सूरज; ललाट—ध्रुवतारा और इसका मंडल जो श्रम करने पर सीकर के रूप में चमक उठते हैं; जागरित अवस्था—दिन; सुप्त अवस्था—रात; प्रसन्न अवस्था—प्रातःकाल; दुःखमय अवस्था—संध्या काल; आनंद—स्वर्ग; दुःख—नरक हैं।[8] और भी—

---

१. ज्ञा० स्व०, ३२८।
२. ज्ञा० स्व०, ३३४।
३. ज्ञा० स्व०, ३३८।
४. ज्ञा० स्व०, २८७–२९१।
५. ज्ञा० स्व०, २९२।
६. ज्ञा० स्व०, २९३–२९६।
७. ज्ञा० स्व०, २९७।
८. ज्ञा० स्व०, २९९–३०६।

"दिल समुंद्र घन सोग है, सुंठ बिबेक समीर।
लै जल उपरै घीचिया, बरसै नैनन्हि नीर।।"[९]

वियोग—वर्षा; मुस्कुराहट—बिजली की छटा; जोर से हँसना—बादल का गर्जन; श्वास की अनवरत क्रिया—दिन, पक्ष, मास, वर्ष, युग का बीतना; यमयातना—प्रलय।[१०] कवि ने निम्नलिखित प्रकार इस रूपक-परपंरा का उपसंहार किया है—

"धन धन साहब सिरजन हारा।
बून्द एक जल स्रिष्टि संवारा।।
दुनो जहान काया जिन्हि कीन्हा।
ता मौं सम एह उपमा दीन्हा।।"[११]

पुनः वह कहते हैं कि 'काबा और कर्बला' भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। दिल की दुनियाँ ही मुहम्मद साहब का साम्राज्य है।[१२] इस शरीर के चार प्रधान अंगों—जिह्वा, आँख, नाक और कान—की महिमा विस्तार से की गई है। कवि कहता है कि ये चारों ही चार धर्मग्रंथ—तौरैत, अंजील, जमूर और फुरकान हैं, ये ही मुहम्मद साहब के चारों यार हैं, ये ही चार प्रधान और सच्चे पीर हैं, यही चारों असली 'तरीकत' हैं, असली 'वजीफा' चारो फरिश्ता है; शरीर के चारो खंभे हैं; चारों तत्त्व है—

मिट्टी, हवा, आग और पानी; चारों देह यही हैं; ब्रह्मा के चार मुख और योग की चार मुद्राएँ भी यही हैं।[१३] संक्षेप में—

"एही चारि हैं चारिउ कोना, एहि में खाक एहि में सोना।"

।। साखी ।।

"दरिया तन सै नहि जुदा, सभ कुछ तन कै मांहिं।
जुगुति जोग सो पाइयै, बिना जुगति कछु नाहिं।।"[१४]

दरियासाहब कहते है कि तीनों लोकों की सारी विभूतियाँ इस मानवतन में केंद्रीभूत कर दी गई है।[१५] अतः 'सिरजनहार' (कारीगर) को बार-बार धन्यवाद है।[१६]

९. ज्ञा० स्व०, ३०७।
१०. ज्ञा० स्व०, ३०८–३११।
११. ज्ञा० स्व०, ३१२–३१३।
१२. ज्ञा० स्व०, ३१४।
१३. ज्ञा० स्व०, ३१५–३२३।
१४. ज्ञा० स्व०, ३२४–३२५।
१५. ज्ञा० स्व०, ३२७।
१६. ज्ञा० स्व०, ३२८।

नरतन, पाँच तत्व और पच्चीस प्रकृतियों से निर्मित

यह तन पाच तत्वों--मिट्टी, वायु, जल, अग्नि और आकाश और उनकी पच्चीस विकृतियों (प्रवृत्तियों) से बना है।[१७]

इस शरीर के तीन गुण हैं[१८]---सत्व, रजस् और तमस्; और इसमें त्रिविध ताप हैं---आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक।[१९] जो आत्मा इस भवजाल में

त्रिगुण और त्रिविधताप

फँसा कि वह उस त्रिविध धारा में अनायास बह चला।[२०] कुछ पद्यों में शरीर की उपमा एक उल्टे वृक्ष[२१] से दी गई है जिसकी जड़ ऊपर है और डाल नीचे। तात्पर्य संभवतः शरीर के उस प्रभाव से है जो वह अपने दस द्वारों या नौ धाराओं (नाटिका)[२२] द्वारा आत्मा को भटकाने में सहायक होता है। दूसरी बात यह है कि हमारे शरीर का केंद्र बिन्दु अर्थात् ब्रह्मांड, जो यौगिक क्रिया और चित्तवृत्ति निरोध का माध्यम है, शरीर के मध्य में न होकर गर्दन से ऊपर अवस्थित है।[२३]

दस इंद्रियाँ और सोलह कलाएँ

आत्मा का दैहिक बंधन दस इंद्रियों और सोलह कलाओं द्वारा और भी दृढ़ हो जाता है। ये इंद्रियाँ और कलाएँ शरीर के साथ ही जुड़ी हैं।[२४]

साधारणतया (आत्माधिष्ठित) शरीर तीन अवस्थाओं का अनुभव करता है---जागृति स्वप्न और सुषुप्ति। एक चौथी अवस्था भी है जिसे तुरीय अवस्था कहते हैं और जो

चार अवस्थाएं

यौगिक क्रियाओं द्वारा बड़ी कठिनाई से प्राप्त की जाती है। यह अहंभावना का सर्वथा विलोप करके अपने आपको सत्पुरुष में मिला देने की आनंदानुभूति की अवस्था है।[२५]

सत्पुरुष, आत्मा और शरीर की नित्यता और अनित्यता सापेक्ष हैं। सत्पुरुष अमर, नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप; आत्मा नित्य, चित्स्वरूप; और शरीर आत्मा का अनित्य एवं नश्वर मंदिर

---

१७ विशद वर्णन के लिए परिच्छेद, 'स्वरोदय' देखिये। प्रकृति शब्द का इस अर्थ में व्यवहार करना दरियासाहब की अपनी विशेषता है।

१८. इसीसे बहु वर्णित संख्या ३३ होती है। ५ तत्त्व + २५ प्रकृति + ३ गुण = ३३; देखिये, श० ४.३८।

१९. ज्ञा० दी०, १७.६; श० ३ अ १७; २.३१।

२०. श०, २.२६।

२१. स० रा० ७२४; और भी गीता का 'अर्द्धमूल मधः शाखं' वाला श्लोक देखिये।

२२. श०, ३.३०; दस द्वार=दो कान, दो नासिका, दो आँखें, मुह, गुदाभाग, जननेन्द्रिय और सहस्रदलकमल को छोड़कर अन्य नवों द्वारों से नौ धाराएँ बहती है।

२३. पिण्ड और ब्रह्माण्ड के भेद के लिए परिच्छेद ८ देखिये।

२४. विशद व्याख्या के लिये परिच्छेद ८ देखिये।

२५. स० रा०, ४६, २५१; ज्ञा० र० १२०.१४-१५।

आत्मा और शरीर की नित्यता और अनित्यता

है।[२६] यह एक सुदृढ़ दुर्ग के समान दीख पड़ता है, तथापि यह कागज का पुतला मात्र है।[२७] विचित्र, रहस्यमय और छत्तीस कलाओंवाला होते हुए भी यह सर्वथा अपने निर्माता की दया पर निर्भर है।[२८] वर्षा की एक बूँद का स्पर्श भी इसे गला कर नाश कर दे सकता है।[२९] यह एक बुलबुले के समान है जो छू जाने मात्र से फूट जा सकता है।[३०] इसकी कोई महत्ता यदि है तो केवल इसलिए कि आत्मा इसमें निवास करता है। अन्यथा, यह पंचतत्त्वों का पुतलामात्र है।[३१] जिस क्षण आत्मा इसे छोड़ देता है, यह भ्रमर द्वारा परित्यक्त सूखे कमल के समान अथवा पक्षी के उड़ जाने पर सूने खाली पिंजड़े के समान पड़ा रह जाता है।[३२]

अपनी सभी न्यूनताओं के साथ भी यही शरीर आत्मा और परमात्मा के मिलने का संगम स्थल है। यदि हम ध्यानावस्थित होकर 'परमानंद' की अवस्था प्राप्त करें तो इसी

शरीर 'गगन-गुफा' का द्वार

शरीर में तीनों धाराओं (अर्थात् तीनों स्वरों—इडा, पिंगला, सुषुम्णा) का संगम प्रत्यक्ष अनुभूत होगा।[३३] तभी हम नयनद्वार ('अग्र' या 'अग्रनख') से उस गगन-गुफा में प्रवेश कर सकते हैं जहाँ हमारा साक्षात्कार शब्द-रूप ब्रह्म अथवा अजर-अमर सत्पुरुष से होगा।[३४]

---

२६. ज्ञा० र० ३६.०।

२७. श०, १८.३।

२८. श०, १८.३।

२९. श०, ६.२, ७.१३, १८.९।

३०. श०, १८.४३।

३१. श०, २.१७।

३२. श० ७.१, २९.४।

३३. विशद व्याख्या के लिए 'योग' वाला परिच्छेद देखिये, और भी श० ३ अ० १२ आदि।

३४. चित्त की इस परमानन्द की अवस्था के विशेष विश्लेषण के लिए देखिये परिच्छेद—'दिव्य दृष्टि'।

पंचम परिच्छेद

पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धांत

दरिया साहब कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों में विश्वास करते हैं। उन्होंने चौरासी लाख योनि[1] की प्रचलित धारणा का मान्यतापूर्वक उल्लेख किया है। यह महत्त्वपूर्ण नर-तन पाकर भी यदि आत्मा मुक्त न हो सका और चूक गया, तो वह चौरासी लाख योनियों का चक्कर समाप्त करने के बाद ही मुक्त होने का अवसर पा सकेगा।[2] हम मानो घूमते हुए चर्ख पर चढ़े हुए हैं। जिस तरह रहट के घड़े अनवरत घूमते रहते हैं और प्रत्येक क्रम से ऊपर से नीचे तथा नीचे-से-ऊपर जाता रहता है, उसी प्रकार हमारी दशा है।[3] कवि ने एक पद्य[4] में वर्णन किया है कि पूर्व जन्मों में वह जहाँ-जहाँ घूमे, वहाँ-वहाँ भिन्न परिस्थितियाँ देखीं; वे राजा और रंक, पंडित और योगी, भक्त और दास, बारी-बारी से सब कुछ हुए। 'ज्ञानरत्न' में काकभुशुंडि गरुड़ से गीता की 'वासांसि जीर्णानि' के अनुरूप यह कहते हैं कि उन्होंने अपने चौरासी लाख पूर्व जन्मों को इस प्रकार पार किया जैसे कोई व्यक्ति पुराने वस्त्र उतार कर फेंकता जाय और नवीन वस्त्र धारण करता जाय।[5]

पुनर्जन्म का फेरा

जन्म-जन्मांतर में उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट योनि की प्राप्ति अपने कर्मानुसार होती है। यदि कोई व्यक्ति इस जन्म में ब्राह्मण है, इसका अर्थ है कि पूर्व जन्म में उसने बहुत से अच्छे काम किये हैं।[6] उसी प्रकार मनुष्य यदि इस जन्म में कुकर्मों में फँसा रहे तो भविष्य जन्म में वह निश्चय है कि निकृष्ट पशु-योनि में फेंक दिया जायगा; और तब उसे बैल, बकरा, कुत्ता, सूअर, गधा, उल्लू, गीदड़, गोह, भालू, मेढ़क, भुजंग, प्रेत आदि बनना पड़ेगा।[7] यदि कोई अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप अगले जन्म में लदहा बैल या अन्य पशु बने तो उसकी क्या दुर्गति होगी या होती है इसका चित्रवत् वर्णन अनेक पदों में किया गया है। चार पैर, दो सींग, नंगे अंग, झुकी हुई गर्दन पर भारी जुआ, भूसी-चोकर का भोजन, चाबुक की मार, टूटी-फूटी नाक और रक्तस्रावी घाव—यही इसके पल्ले में पड़ेंगे।[8] उपर्युक्त दुर्दशाओं का

कर्म प्रधान है

---

१. श०, १८.५२, २२.२०; द० सा० ३१.०।

२. ज्ञा० स्व०, ३८३।

३. श०, १९.७, २३.१५, ४३.१।

४. श०, २३.११।

५. ज्ञा० र०, ६६.९—१०।

६. श०, ५.२७।

७. श०, ५०.२; स० रा० ११६, ४६६।

८. श०, १८.२३, १८.३३, १८.३५, १८.५१।

जीवन्त प्रभावोत्पादक चित्रण दरियासाहब ने बड़े चाव तथा भावुकता से किया है और इसके आधार पर वे मानवों से आग्रह करते हैं कि वे दुष्कर्म और माया के मार्ग से बचे रहें।[९]

यमराज जिसका दूसरा नाम 'धर्मराय'[१०] है और जो मृत्यु और नरक का देवता माना जाता है, उसके बही-खाते में प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक कर्म का उल्लेख रहता है।

यम : नरक का स्वामी और चित्रगुप्त : कर्मों का लेखा रखने वाले

जब कोई जीव मृतप्राय होता है तो यम अपने दूतों को भेजता है।[११] वे उसे अपने स्वामी के सम्मुख ले आते हैं। तब चित्रगुप्तजी[१२] अपनी बही-खाता निकालते हैं। उसमें दो खाते बने हैं--सुकर्म पूँजी के खाते में लिखे जाते हैं, तथा दुष्कर्म टोटे के खाते में। व्यक्ति के कर्मों का लेखा हिसाब करने पर यदि उसकी पूँजी उसके टोटे से बड़ी हो अथवा समान भी हो, तो वह स्वर्ग का अधिकारी होता है, और, उसे वहाँ के लिए अनुमति मिलती है। आध्यात्मिक गुरु की मुहर ही प्रायः उस अनुमतिपत्र का काम करती है जो उसे स्वर्ग के द्वार पर दिखानी पड़ती है।[१३]

यदि पूँजी से टोटा अधिक हुआ तो अपराधी को यम के हाथों अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं[१४]; हाथ-पैर बाँधकर उसे कोड़े लगाए जाते हैं अथवा नंगा कर उसे जलती चट्टान पर फेंक दिया जाता है। यम मृतकों के प्रति उतना ही निर्दय है जितना एक गाय के प्रति कसाई।[१५] वह स्वयं चोर और रक्षक भी है।[१६] उसने घर (जगत्) में आग लगा दी है और आग लगाकर गाढ़ी नींद में सो रहा है।[१७] वह अपने विजेताओं (आत्माओं) से मानो प्रतिशोध ले रहा है। आत्मा को यम से हारने के बजाय उसे उस पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। यम का आत्मा पर विजयी होना वैसा ही है जैसे साँप का सँपेरे को काटने दौड़ना।[१८] यम का जाल उतना ही सूक्ष्म है जितना मछुए का जाल; और, मछलियों की भाँति आत्मा उसमें आ-आकर फँस जाते हैं।[१९]

---

९. श०, २२.२०, ४३.१, ५०.२; ब्र० वि० ३.३–४; ज्ञा० मू० ६.६–१०.० ।
१०. स० रा०, ८४६ ।
११. द० सा०, ३६.३, ३६.५, ३६.७ ।
१२. श०, २२.१६ ।
१३. द० सा०, ११.८ ।
१४. श०, ७.१, ५६.१३, ५६.१६ ।
१५. ब्र० वि०, १३.३–४ ।
१६. ब्र० वि०, १३.५ ।
१७. ब्र० वि०, १३.६ ।
१८. ब्र० वि०, १३.७ ।
१९. ब्र० वि०, १३.८–६, १४.१ ।

षष्ठ परिच्छेद

मुक्ति

मुक्ति का अर्थ है यम के कठोर चंगुल से बच निकलना। अतः यह आवश्यक है कि हमारे सुकर्मों की संख्या दुष्कर्मों की संख्या से बड़ी हो; और, नहीं तो कम-से-कम उसके बराबर तो अवश्य ही हो। तभी हमारा 'कागज'[1] स्वच्छ होगा। किंतु प्रश्न यह है कि हम अपने स्वार्थों के दुष्परिणाम को कैसे मिटा सकते हैं? 'कर्मों के वन' को कैसे काट कर साफ कर सकते हैं?[2] अथवा, एक अन्य रूपक के आधार पर, यह कैसे संभव है कि आत्मारूपी हंस त्रिविध त्रिगुण धार और भयंकर आवर्त्तोंवाले भवरूपी सागर से उड़कर उस मानसरोवर[3] में पहुँच जाय जो नितांत निर्मल है और जिसमें वह उस सीप को चुग सकेगा जो मुक्ति रूपी मोती को जन्म देती है?

ज्ञान द्वारा मुक्ति

इन प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट है, 'ज्ञानी जन कहँ दुख नहिं भाई।'[4] सच्चा ज्ञान ही वह 'छेनी' है जो हमारे 'कर्म-पहाड़' को ढाह सकती है अथवा यही वह 'कुल्हाड़ी' है जिससे हमारे अतीत 'कर्मों का वन' कटकर साफ होगा।[5] संत मत के कवियों की शब्दावलि में 'ज्ञान' का एक विशेष अर्थ अथवा भाव है। यह शंकर या कपिल का 'ज्ञान' नहीं है। यह तो सहजज्ञान या अनुभूति है जिसे 'भक्त' अथवा 'उपासक' आत्मशुद्धि तथा योग-क्रियाओं द्वारा मन की एकाग्रता संपन्न करके धीरे-धीरे प्राप्त करता है। यह पाखण्डों के विरुद्ध विद्रोह का प्रतीक है।[6]

सद्गुरु अनिवार्य है

ऐसी आत्मानुभूति या सहजज्ञान बिना पथप्रदर्शक सत्पुरुष के संभव नहीं है। प्रायः जिस प्रकार हम स्वयं भ्रांत हैं वैसे ही किसी भ्रांत व्यक्ति को गुरु बना लेते हैं।[7] यह तो वैसा ही हुआ जैसे सिंह और स्यार की मित्रता अथवा ओजस्वी पुरुष की नपुंसक से प्रीति।[8] होना यह चाहिए कि—

'सिंह ठवन्हि रहु सिंघन्हि पासा, मरद मरद संग मजलिस बासा।'[9]

यदि त्रिविध ताप और भवजाल से छूटना है, यदि 'अमल शुचि नाम' की प्राप्ति अभीष्ट है

---

१. श०, ५६.१६; स० रा० ८४६।
२. स० रा० ८१६, ८१७।
३. ज्ञा० स्व०, ५३।
४. ज्ञा० स्व०, ३४५।
५. स० रा०, ८१७।
६. ज्ञान और भक्ति नामक परिच्छेद देखिये।
७. ज्ञा० स्व०, ३४५।
८. ज्ञा० स्व०, ३४६।
९. ज्ञा० स्व०, ३४८।

तो सद्‌गुरु के चरणों की शरण लेनी पड़ेगी।[१०] वही सद्‌गुरु इहलोक और परलोक दोनों में तारनेवाला होगा। वही सच्चे 'शब्द' अथवा मन्त्र का ज्ञानदाता भी है।

हृदय की पवित्रता

हृदय की पवित्रता मुक्ति के लिए आवश्यक है। दुर्गुणों से मुक्त, शुद्ध और निर्मल चित्त ही सबसे बड़ी अचरज की वस्तु है। कहा जाता है कि जमशेद के पास एक जादू का प्याला और सिकंदर के पास एक जादू का आईना था।[११] उस प्याले या आईने को सामने रखते ही उनकी दृष्टि दो सौ योजन (१६ सौ मील) तक पहुँच जाती थी। परंतु,

कहाँ जाम जमसेद है, कहाँ सिकन्दर ऐन।
दिल चसमा सभ ऊपरै, अबिगति सूझे नैन ॥[१२]

हृदयरूपी शीशा, जमशेद का प्याला और सिकन्दर का आईना--दोनों से बढ़कर है।

आँखों का 'अंजन' तैयार करने की एक बड़ी अच्छी विधि (नुस्खा) 'ज्ञानस्वरोदय'[१३] में दी गई है। हृदय का दीप हो, ज्ञान का तेल और प्रेमपूर्वक स्तवन (प्रेमस्तुति) की बाती हो,, इस दीपक को सत्य की चिनगारी से जलाया जाय। जलने पर दीपक से जो धूमशिखा उड़े वही आँखों का अंजन बने। इससे दिव्यदृष्टि का लाभ होगा, आँखों का 'अंध-पट' हटेगा; उजेला होगा और बंधनों से मुक्ति प्राप्त होगी। उपर्युक्त अंजन के गुण सचमुच अवर्णनीय हैं। विना सद्‌गुरु के यह अलभ्य है।

जीवन्मुक्ति

मृत्यु के बाद ही मुक्ति हो, यह आवश्यक नहीं है। 'जीवन्मुक्ति' (जीते-जी निर्वाण) प्राप्त करना संभव भी है और श्रेयस्कर भी।[१४] यदि हमें सच्चा ज्ञान हो जाय तो हमें जीवन और इसके उत्थान-पतन तथा सुख-दुःख का मोह-पाश न बाँध सकेगा। विरक्तिपूर्ण दृष्टि ही हमारे जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त होने की सूचना है। दरियासाहब के रहस्यमय शब्दों में 'जियतहिं मरै तबहिं बनि आवै।'[१५] अथवा 'जीवतही मुर्दा ह्वै रहना।'[१६] 'मृत्युमय जीवन' (अर्थात् जगत् में रहकर भी

---

१०. ज्ञा० स्व०, ६४, ६८, ८१।

११. ज्ञा० स्व०, १५३—१५६।

१२. ज्ञा० स्व०, १५७। साधु प्रभुदास ने यह बताया कि योगियों के लिए इस प्याले (जाम) का अर्थ पलक है। बहुधा ऐसा होता है कि यदि कोई व्यक्ति भूली हुई बात स्मरण करना चाहता है तो वह अपनी पुतरियों को इस प्रकार ऊपर उठा लेता है जिससे वे पलकों में ढँक जायँ। ऐसा करने से उसे भूली बात याद हो आती है।

१३. ज्ञा० स्व०, १५८—६४।

१४. ज्ञा० स्व० ३८३; द० सा० ४६.६।

१५. ज्ञा० स्व०, ११८. १६५।

१६. ज्ञा० स्व०, ११७।

जगत् से परे रहने) की कल्पना का उद्गम स्रोत सांख्य दर्शन माना जा सकता है। सांख्य का पुरुष प्रकृति के विकारों से उसी प्रकार निर्लिप्त रहता है जिस प्रकार जल में सदा रहने पर भी कमल के पत्ते[१७] (पुष्कर-पलाश) पर पानी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है,—'पुष्कर-पलाशवत् निर्लेप'। शंकराचार्य ने बादरायण के ब्रह्मसूत्रों पर जो टीका लिखी है, उसमें भी वेदांत के जीवन्मुक्ति वाले सिद्धांत की विशद व्याख्या की है। मुक्ति होने के पहले व्यक्ति की उपमा सरसों में छिपे हुए तेल से दी जा सकती है।[१८] मुक्ति के पश्चात् जगत् से भिन्न उसका वैसा ही व्यक्तित्व हो जाता है जैसा सरसों से अलग हो जाने पर तेल का। वह संत या उपासक जिसने ऐसी 'दिव्यदृष्टि'[१९] प्राप्त कर ली है और उस अवस्था पर पहुँचने की सिद्धि पा ली है जहाँ वह सत्पुरुष से सीधा संपर्क स्थापित कर सके, केवल स्वयं जीवन्मुक्त नहीं है, बल्कि दूसरों को भी मुक्ति दिलाने में समर्थ होता है।[२०] एक बार की मुक्ति सदा की मुक्ति है। दरियासाहब के विचार में एक बार मुक्त हो जाने पर जीव सदा के लिए मुक्त हो जाता है।[२१] उसे पुनः जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं आना पड़ता और यमराज की मुट्ठी में नहीं पड़ना होता।[२२] अतः मरे ऐसा कि मुक्ति हो जाय।

एक बार की मुक्ति सदा की मुक्ति है

मरना मरना सब कहै, मरिगौ बिरला कोय।
एक बेरि एह ना मुआ, जो बहुरि ना मरना होय ॥"[२३]

योग-साधन की दिशा में हमारे संत कवि ने 'विहंगम योग' का प्रतिपादन किया है। ये 'पिपीलिक योग' के विरुद्ध हैं। इन दोनों में से प्रथम तो सत्पुरुष से सदा के लिए मिला देता है, और दूसरा केवल थोड़े समय के लिए ही। सच्ची मुक्ति का अर्थ तो अमरपुर में सदा के लिए निवास और दिव्यदृष्टि[२४] का शाश्वत आस्वादन ही है। इसका अर्थ यह भी है कि जीवात्मा परमात्मा में मिलकर एक हो जाय।[२५] ब्रह्म को प्राप्त करने का अर्थ है—स्वयं ब्रह्म हो जाना।[२६]

---

१७. श० २३.८।
१८. द० सा० ६३.१।
१९. 'दिव्य दृष्टि' नामक परिच्छेद देखिये।
२०. द० सा० ४५.१५, ४६.६।
२१. द० सा० ५५.२०; तु० उपनिषद्-वाक्य—'न पुनरावर्त्तते'।
२२. श० ७.२४, ८.२, १०.२, १८.५७।
२३. स० रा० २६६।
२४. श० १.६१; द० सा० ४५.१३; इन क्रियाओं के विशद वर्णन 'दिव्य दृष्टि' वाले परिच्छेद में देखिये।
२५. ज्ञा० दी० ११७.१–१६; 'दिव्य दृष्टि' वाला परिच्छेद देखिये।
२६. श० ४.१६; उपनिषद्-वाक्य—'ब्रह्म विद्वान् ब्रह्मैव भवति।'

सप्तम परिच्छेद

स्वर्ग और नरक[1]

मुक्ति का जो रूप पिछले परिच्छेद में दिया गया है, उसमें इस जगत् से भिन्न कोई स्वर्ग या नरक है—इस रूढ़िवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि ब्रह्म की प्राप्ति यहीं हो, तो हम यहीं अमरपुर भी पा लेंगे।[2] अतः दरियासाहब स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

स्वर्ग और नरक कहीं अलग नहीं है

"विनु मसूक की आस की, यहि दोजख की आंच।
मिलि रहना महबूब सौं, सोइ भिश्ति है सांच।।[3]

परमात्म-प्रेम से रहित होना नरक है, परमात्मा से मिलना ही सच्चा स्वर्ग है। ऐसा विचार छोड़ देना चाहिए कि कहीं सातवें आसमान में अथवा अन्यत्र लोक में स्वर्ग या नरक स्थित है। साधारण रूप में यह कहा जा सकता है कि सुख ही स्वर्ग है और दुःख ही नरक है।[4] यदि कोई रोग, शोक और दुःखों से मुक्त है तो फिर उसे और किस स्वर्ग की चाह है?[5] भ्रम नरक का मूल कारण है और स्वर्ग प्राप्त करने के लिए उस भ्रम को विनष्ट करना आवश्यक है।

यदि ऐसी बात है तो फिर उन उद्धरणों की संगति कैसे होगी जिनमें यम का साम्राज्य, उसकी सेना, उसके दूत और इन दूतों द्वारा उस व्यक्ति का सताया जाना जिसके कुकर्म सुकर्म से अधिक हों, और उसका 'अंधकूप'[6] में उलट कर लटकाया जाना—आदि बातों की चर्चा की गई है? यदि सच पूछा जाय तो एसे अंश दरियासाहब की शिक्षाओं के प्रतिकूल पड़ते हैं। उनकी सामूहिक विचारधारा में कहीं अन्यत्र स्वर्ग और नरक की सत्ता नहीं है। अतः ऐसे अंशों का अर्थ रूपक, दृष्टांत आदि अलंकार की विद्यमानता मानकर ही लगाना ठीक है। उदाहरणार्थ जलती चट्टान पर तड़पने या अंधकूप में लटकने का अर्थ मातृगर्भ[7] की यातना है।

यम की भावना

---

१. 'पुनर्जन्म' वाले परिच्छेद की पृष्ठभूमि पर इस परिच्छेद को पढ़ें।
२. विशद व्याख्या 'दिव्य दृष्टि' वाले परिच्छेद में देखिये।
३. ज्ञा० स्व० ३९।
४ १. १८. ८; ज्ञा० स्व० ३०५; ज्ञा० मू० १२·२।
५. ज्ञा० स्व० ३०६।
६. श० २०·१४, २२·१२; स० रा० ६३; भ० है०. ४.६–८।
७. साधु प्रभुदास जी के विचार के आधार पर यह व्याख्या की गई है।

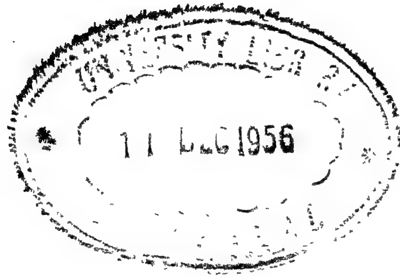
किंतु अनेक स्थानों पर अमरपुर, 'छपलोक' [८] और 'अछयबट' या 'अछयब्रिछ' (अक्षयवट या अक्षयवृक्ष) [९] के प्रसंग आते हैं। ऐसे सभी प्रसंगों का अर्थ अलंकार या कल्पना के आधार पर ही लगाना चाहिए। अलंकार-विहीन तात्त्विक अर्थ में ये प्रसंग आभा और सुषमा से पूर्ण एक दिव्य जगत् की कल्पना की ओर संकेत करते हैं। यह दिव्य जगत् दिव्य-दृष्टि जन्य एक कल्पनालोक मात्र है जिसे संत यौगिक क्रियाओं [१०] द्वारा 'ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा' अपने को ब्रह्मानंद में विलीन करके प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त परलोक या दिव्यलोक कोई दूसरी सत्ता नहीं है।

अमरपुर

८. भ० हे० २४.०।

९. 'दिव्य दृष्टि' नामक परिच्छेद देखिये।

१०. इनका वर्णन 'योग' वाले परिच्छेद में देखिये।



अष्टम परिच्छेद
पिपीलक योग और विहंगम[1]

दरियासाहब के अनुसार सभी यौगिक क्रियाएँ योग के दो मुख्य प्रकारों म अन्तर्निविष्ट हैं—

(१) पिपीलक योग और (२) विहंगम योग ।[1]

पिपीलक योग या हठयोग एक ही है ।[2] इसको दरियासाहब कहीं-कहीं कर्मयोग[3] भी कहते है। संक्षेप में इस योग की प्रक्रिया यह है कि कुंडलिनी को इस प्रकार जागरित किया जाय कि वह अपने मूलस्थान मूलाधार चक्र को छोड़ दे और सुषुम्णा का मार्ग, जो इसने रोक रखा है, उन्मुक्त करके स्वयं ऊपर की ओर बढ़े और शेष पाँच चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रदल कमल में जाकर विलीन हो जाय। कुंडलिनी का इस प्रकार सहस्रदल कमल में विलयन ही यौगिक क्रियाओं की पराकाष्ठा का सूचक है। उपर्युक्त सूत्ररूप कथन को स्पष्टतया समझने के लिए निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या की आवश्यकता है।

पिपीलक योग : कुंडलिनी का जागरित करना

(क) कुंडलिनी
(ख) त्रि-नाड़ी—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना
(ग) आसन
(घ) प्राणायाम
(ङ) मुद्रा
(च) षट्चक्र
(छ) सहस्रदलकमल

वह व्याख्या नीचे दी जाती है—

(क) कुंडलिनी

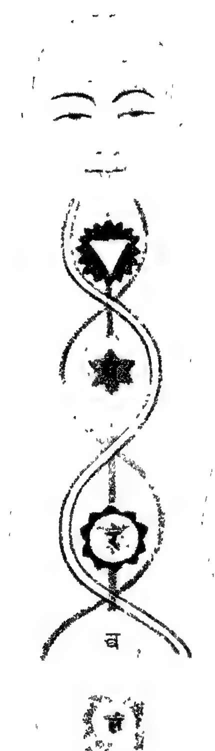
कुंडलिनी एक शक्ति है। इसका रंग विद्युत् के समान है। इसका मूलस्थान मूलाधार चक्र है। इसका स्वरूप एक सोई हुई सर्पिणी के समान है। यह जगत् की सृजन-शक्ति का प्रतीक है। इसको वश में कर लेने से अविद्या (अज्ञान) का नाश हो जाता है।

---

१. इसी परिच्छेद में आगे इन शब्दों की व्याख्या दी गई है।

२. अपनी 'कबीर के रहस्यवाद' नामक पुस्तक में 'हठयोग' शीर्षक परिच्छेद में डा० रामकुमार वर्म्मा ने इसका संक्षेप में स्पष्ट वर्णन किया है। परन्तु इन्होंने विहंगम योग की चर्चा नहीं की है, यद्यपि यह योग कबीर की साधना-पद्धति में भी उतनी ही प्रधानता रखता था, जितनी दरिया की पद्धति में।

३. ज्ञा० दी० ६४.१—८।



योगी

मूलाधार चक्र में एक केंद्र है। उससे ७२,००० नाड़ियाँ निकलती हैं। इनकी *(ख) नाड़ियाँ और* शाखा प्रशाखाओं को मिलाकर कुल संख्या ३,५०,००० है।[४] इनमें *उनपर नियन्त्रण* से सर्व प्रधान तीन हैं—

(अ) इडा (इंगला)
(आ) पिंगला और
(इ) सुषुम्णा (सुखमना)।

(अ) इडा मूलाधार से निकलकर मेरुदंड के वाम भाग से होते हुए सभी चक्रों का भेदन करते हुए आज्ञा-चक्र के दक्षिण भाग से आकर ब्रह्मरन्ध्र (जो भ्रूमध्य में स्थित है) में अन्य नाड़ियों से मिलकर वाम नासारन्ध्र में प्रवेश कर जाती है।[५]

(आ) पिंगला भी उसी मूलाधार से निकल कर मेरुदंड के दक्षिण भाग से होते हुए सभी चक्रों का भेदन कर आज्ञा-चक्र के वामभाग से आकर ब्रह्मरन्ध्र में अन्य नाड़ियों से मिलकर दक्षिण नासारन्ध्र में प्रवेश कर जाती है।[६]

(इ) सुषुम्णा मूलाधार में नाड़ियों के केंद्र से आरंभ होकर मेरुदंड के बीच-बीच चलती है और सभी चक्रों का भेदन करते हुए नासिका के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है।[७] यहाँ पहुँचने पर इडा और पिंगला प्रायः इसके मुखका अवरोध कर इसकी क्रिया को रोके रहती हैं। इस प्रकार मध्यवर्त्तिनी और सबसे अधिक ओजस्विनी सुषुम्णा नाड़ी का मुख अन्तिम छोर पर अवरुद्ध रहता है। इसके दूसरे छोर पर अर्थात् मूलाधार के मध्य में भी इसकी दशा कुछ ऐसी ही रहती है। यहाँ सर्पिणी के आकार की कुंडलिनी मूलाधारस्थित नाड़ियों के 'केन्द्र' को पूर्णतया ढँक कर सोई रहती है, और सुषुम्णा के निचले छिद्र में अपनी पूँछ प्रविष्ट किये रहती है जिससे सुषुम्णा का निचला भाग भी सर्वथा अवरुद्ध रहता है।[८] यौगिक क्रियाओं की सफलता के लिए यह अनिवार्य है कि सुषुम्णा में शुद्ध प्राणवायु का संचार अनवरुद्ध रहे और यह संचार आसन, प्राणायाम और मुद्राओं के द्वारा ही संपन्न हो सकता है। इन क्रियाओं से योगी में वह क्षमता आयगी जिससे वह कुण्डलिनी को वश में करके सुषुम्णा का मार्ग उन्मुक्त करादे और कुंडलिनी उठ कर चक्रों को भेदते हुए अपने को सहस्रदलकमल में निमग्न कर दे। इन क्रियाओं से दूसरी सिद्धि जो उसे प्राप्त होगी वह यह कि इडा और पिंगला (जिन्हें सूर्य और चन्द्र भी कहते हैं) द्वारा प्राणवायु का आयात-निर्यात रोककर

---

४. ब्रह्म प्रकाश, पृ० १९ और २०।
५. ब्रह्म प्रकाश, पृ० २०।
६. ब्रह्म प्रकाश, पृ० २०—२१।
७. ब्रह्म प्रकाश—पृ० २१।
८. ब्र० प्र०—२१-२२।

उसे सुषुम्णा मार्ग से ही आने-जाने को बाध्य करे जिससे दोनों नासापुटों द्वारा एक साथ ही प्राणवायु का गमनागमन हो।[९] ऐसा केवल सुषुम्णा द्वारा ही संभव है, क्योंकि यही एक नाड़ी है जो एक साथ ही दोनों नासापुटों में अपना मुख खोले रहती है।[१०] सामान्यतः इडा या पिंगला इसके मुख को रुद्ध रखकर बायीं या दाहिनी ओर प्राणधारा प्रवाहित करती रहती है।

इडा, पिंगला और सुषुम्णा को अन्य शब्दों में गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहते हैं।[११] ये नदियाँ जल की धारा की वाहक हैं, इसीसे इनकी तुलना उन नाड़ियों से की गई है जो प्राणवायु की धारा का संचार करती है। इसी तुलना के आधार पर इन नाड़ियों के संगमस्थान को त्रिवेणी कहते हैं। यौगिक क्रियाओं में योगी का आत्मा इसी त्रिवेणी में स्नान करता है। इस त्रिवेणी घाट का दूसरा नाम त्रिकुटी भी है।[१२]

(ग) आसन

महर्षि पतंजलि के समय से ही योग की सिद्धि के लिए आसनों की अनिवार्यता मानी गई है। पंतजलि ने अष्टांग योग मार्ग का प्रतिपादन किया है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।[१३] हठयोग के ग्रंथों में बहुत से आसनों का वर्णन किया गया है। उनमें से साधु प्रभुदास के कथनानुसार निम्नलिखित सात आसन ही दरियापंथी संतों ने विशेष कर अपनाया है और उन्हें व्यवहार में लाते हैं।[१४]

(१) स्वस्तिकासन—"सुगमता से बैठ जाओ, शरीर सीधा रहे, परों को आगे फैलादो, बायें पर को मोड़ कर दाहिनी जाँघ की माँसपेशियों के निकट ले आओ। उसी प्रकार दाहिने पैर को मोड़कर जाँघ और पिंडली के बीच में रखो। तुम्हारे दोनों पैर जाँघ और पिण्डलियों के बीच पड़ते हैं।"

---

९. जहाँ दरिया साहब ने सुषुम्णा की अवहेलना की है, वहाँ पर उस सुषुम्णा से तात्पर्य है जो कुण्डलिनी के बन्धन में जकड़ी हुई है।

१०. द० सा० १५.१—३।

११. द० सा० ११२·१।

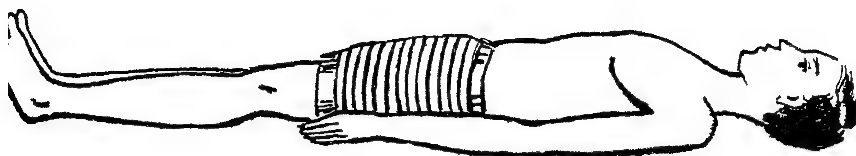
१२. द० सा० ५. १७–१९, ४३.१३, ७०.७।

१३. पतंजलि का योगदर्शन, साधना पाद, २९।

१४. ब्र० प्र०, पृ० ४९; आसनों का वर्णन और चित्र स्वामी शिवानन्द (द्वितीय संस्करण) की पुस्तक 'योगासन' से लिये गए हैं। परिशिष्ट में 'घेरण्ड संहिता' से प्रासंगिक पद उद्धृत किये गए हैं। साधु प्रभुदास द्वारा बताये सात आसनों में से केवल तीन ही आसनों (सिंहासन, पद्मासन और सिद्धासन) को साधु रामव्रत दास दरिया साहब के लेखों के अनुकूल बताते हैं। उनके मत में अन्य चारों को छोड़ देना चाहिए। रामव्रत दास द्वारा उद्धृत पद—

(१) पद्मासन और सिद्धासन के पद—'पद्म आसन सिद्ध। जहाँ अमी सरिता निद्ध'।—का० च०।

(२) सिंहासन के पक्ष में—'जहाँ बैठे तहाँ सिंह-ठवनि हो, चले सुरति के साथ।'



शवासन



पद्मासन

(२) सिंहासन--"दोनों एड़ियों को अण्डकोष की जड़--अर्थात् अण्डकोष और गुदामार्ग के बीच--में इस प्रकार रखो जिसमें बाईं एड़ी दाहिनी ओर पड़े और दाहिनी एड़ी बाईं ओर। हाथों को घुटनों पर रखो और उँगुलियों को फैला दो। अपना मुँह खोल दो।"

(३) शवासन--"एक कोमल कम्बल बिछा लो। उसपर पीठ के बल चित्त होकर लेट जाओ। हाथों को पार्श्व में भूमि पर रखो, पैरों को सीधा फैला दो; एड़ियाँ सटी रहें, पर पैर के अँगूठे अलग रहें। आँखें बंद कर लो। सभी माँसपेशियों, नसों और अंगों को ढीला कर दो। अँगों को शिथिल करने की यह क्रिया पैर के अँगूठे से आरंभ करो और क्रमशः पैर की पिंडली, कमर, पीठ, छाती, बाँह, गर्दन, मुँह आदि तक उसे बढ़ाओ। इस बात का ध्यान रहे कि उदर, हृदय, छाती, मस्तिष्क आदि सभी पूर्णतया शिथिल हो जायँ।"

(४) पद्मासन--"पैरों को आगे फैलाकर भूमि पर बैठ जाओ। तब दाहिने पैर को बाईं जाँघ पर और बायें पैर को दाहिनी जाँघ पर रखो। हाथों को घुटनों पर रखो।"

(५) सिद्धासन--"एक एड़ी गुदा-मार्ग पर रखो और दूसरी एड़ी जननेंद्रिय की जड़ में। पैरों को इस प्रकार बैठाकर रखो, जिससे दोनों घुट्ठियाँ एक दूसरी को छूती रहे। हाथों को पद्मासन की भाँति रख सकते हो।"

(६) मुक्तासन--"स्वामी शिवानन्द इसे और सिद्धासन को एक ही बताते हैं। परंतु 'घेरण्ड संहिता' में कुछ भेद दिया है। यथा--सिद्धासन में चिबुक छाती पर रख कर दृष्टि भ्रू-मध्य में जमानी पड़ती है; परंतु मुक्तासन में मस्तक और गर्दन को पीठ और शेष शरीर के साथ ही सीधा रखना पड़ता है। अन्यथा दोनों आसनों का स्वरूप समान ही है।"

(७) उग्रासन या पश्चिमोत्तानासन--भूमि पर बैठ जाओ और पैरों को सीधा लकड़ी के समान फैला दो। पैर के अँगूठे को हाथ की प्रथमा, मध्यमा और अँगूठा—इन तीन उँगुलियों से पकड़ो। उनको पकड़ने के लिए देह आगे झुकानी पड़ेगी। अतः साँस बाहर छोड़ दो, धीरे-धीरे आगे झुको। तनिक भी झटका देकर मत झुको। तबतक झुकते जाओ जबतक ललाट घुटनों से छू न जाय। मुखमंडल घुटनों के बीच में भी रख सकते हो। झुकते समय पेट को भीतर खींच लो, इससे आगे झुकने में सुविधा होगी। झुकने की क्रिया धीरे-धीरे ही करनी चाहिए। कोई घबराहट नहीं हो। जब झुको तब मस्तक को हाथों के बीच में डाल दो और उन्हीं के समतल पर उसे रखो। (बच्चों का मेरुदंड कोमल होता है और वे प्रथम प्रयास में ही घुटनों को ललाट से छू ले सकते हैं।) तबतक साँस रोके रहो, जबतक सिर उठकर अपने मूल स्थान पर न आ जाय—अर्थात् तुम पुनः सीधे होकर बैठ न जाओ। तब साँस लो। इस क्रिया को पाँच सेकण्ड से आरंभ करके दस मिनट तक धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।"

प्राणायाम के विना योग पूरा हो ही नहीं सकता है। क्योंकि संयत प्राण ही एक प्रकार से आत्मा है और असंयत प्राण मन है जो चंचलता का कारण है।[१५] तात्पर्य यह कि प्राणवायु को संयत करना आत्मा को प्राप्त करना है।

(घ) *प्राणायाम*

प्राणायाम की तीन क्रियाएँ हैं--

(१) पूरक: साँस खींचना;

(२) कुम्भक: साँस को रोककर रखना;

(३) रेचक: साँस बाहर फेंकना।

साधु प्रभुदास ने प्राणायाम की एक निम्नलिखित विधि बताई है जिसे वे 'सहित कुंभक-विधि' के नाम से पुकारते है। वाम नासिका से धीरे-धीरे साँस खींचो और खींचने के समय सोलह बार मंत्र[१६] का जप करो। तब साँस को उतनी देर रोक रखो, जितनी देर में मंत्र का जप चौसठ बार पूरा हो और दक्षिण नासिका से धीरे-धीरे उतनी देर में साँस छोड़ो जितनी देर में मंत्र का जप बत्तीस बार कर सको। मंत्र का जप करते हुए पुनः इसी विधि से दुहराओ; पर इस बार दक्षिण नासिका से साँस खींचो और वाम नासिका से छोड़ दो।[१७]

प्राणायाम साधन करने का प्रधान उद्देश्य है अपान-वायु को आज्ञाचक्र में स्थिर कर देना, जहाँ उसका स्वरूप बदलकर प्राणवायु या जीवनशक्ति बन जाय।[१८]

आसन और प्राणायाम की मिली-जुली यौगिक क्रियाओं को मुद्रा कहते हैं। निम्नलिखित सात मुद्राएँ[१९] साधु प्रभुदास आवश्यक बताते हैं--

(ङ) *मुद्रा*

(१) मूलबन्ध--"योनि को बाईं एड़ी से दबाओ और गुदामार्ग को सिकुड़ा लो। क्रमशः अभ्यास द्वारा अपान वायु को बलात् ऊपर खींचो। दाहिनी एड़ी जननेंद्रिय पर रखे रहो।"

(२) जलन्धर बन्ध--"गला को सिकुड़ा दो, चिबुक को दृढ़तापूर्वक छाती पर दबाओ। इस बन्ध का अभ्यास पूरक (साँस खीचने) के अन्त में और कुंभक (साँस रोकने) के आरंभ में किया जाता है।"

---

१५. ब्र० प्र० पृष्ठ १३ और पृ० ५५।

१६. साधु प्रभुदास के कथनानुसार यह मंत्र 'सोऽहम्' है। इसका अर्थ है--मैं वही हूँ, अर्थात् आत्मा ही ईश्वर है।

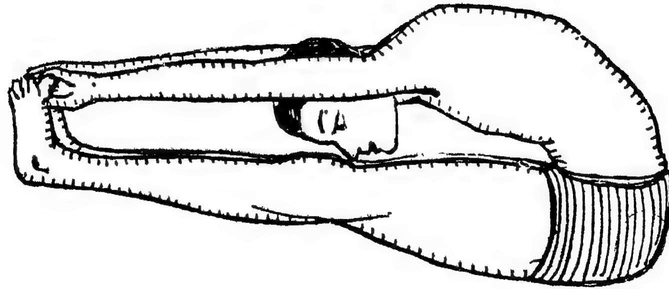
१७. 'ब्रह्मप्रकाश', पृष्ठ ५२; यह विधि 'घेरण्ड संहिता' में लिखी है। ५.४९।

१८. शरीर में दस प्रकार की वायु हैं:--प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। इनमें सबसे आवश्यक हैं--प्राण और अपान वायु। प्राणवायु हृदयस्थल और अपानवायु नाभिस्थल में रहती है।

१९. ब्र० प्र०, पृष्ठ ४८-५१; सं० ४ और ६ को छोड़कर सभी मुद्राओं का वर्णन स्वामी शिवानंद की पुस्तक 'योगासन' से लिया गया है तथा नं० ४ और ६ का वर्णन 'घेरण्डसंहिता' से लिया गया है।



सिद्धासन



उग्रासन

पाँचवी का वर्णन भी है।[२०] वे मुद्राएँ निम्नलिखित हैं--(१) खेचरी, (२) भोचरी, (३) अगोचरी, (४) चंचरी और (५) उन्मुनी जिसे महामुद्रा[२१] भी कहा गया है।

खेचरी मुद्रा का वर्णन संख्या ५ में ऊपर हो चुका है। दरियासाहब की संख्या २, ३ और ४ मुद्राओं की समता 'घेरण्ड संहिता' के तृतीय अध्याय में वर्णित पचीस मुद्राओं में से किसी एक से भी मैं नहीं कर पाता हूँ। मेरे अनुमान में भोचरी, अगोचरी और चंचरी के साथ जिस खेचरी का व्यवहार दरियासाहब ने किया है, वह ऊपर संख्या ५ में वर्णित खेचरी मुद्रा नहीं जान पड़ती है। यदि इन चारों शब्दों को शुद्ध रूप में पढ़ा जाय तो ये खेचरी, भूचरी, अग्निचरी और जलचरी--अर्थात् घेरण्डसंहिता द्वारा वर्णित पाँच धारणा मुद्राओं में से चार--यथा आकाशी, पार्थिवी, आग्नेयी और आंभसी के ही दूसरे नाम जान पड़ते हैं। इनकी साधना करने पर योगी सुगमतापूर्वक वायु, स्थल, अग्नि और जल में अनवरुद्ध गति की क्षमता प्राप्त कर लेता है। पाँचवी मुद्रा 'वायवी' को प्रायः इस लिए छोड़ दिया गया है कि इसका समावेश आकाशी में हो जाता है, क्योंकि आकाश में विचरण करने का मतलब वायु में भी विचरण करना होता है। हमारे इस अनुमान की पुष्टि मुद्रित 'ज्ञानदीपक' के पृष्ठ १५९ के नीचे की टिप्पणी से होती है जिसमें पाँच मुद्राओं की व्याख्या अग्नि, वायु, जल, चंद्र और सूर्य के रूप में की गई है। दरियापंथी साधु रामव्रतदास ने मुझे बताया कि खेचरी, भोचरी, अगोचरी और चंचरी का अर्थ--आँख, नाक, कान और मुँह हैं जिनकी साधना करना सभी यौगिक क्रियाओं का लक्ष्य है। आगे के पृष्ठों में 'उन्मुनी' का स्वतंत्र रूप से वर्णन किया गया है।

यह पहले बताया जा चुका है कि जब कुण्डलिनी जाग्रत कर दी जाती है तब यह सहस्रदलकमल तक पहुँचने के पहले षट्चक्रों[२२] का भेदन करती है। ये चक्र कमल के आकार के हैं और इनका स्थान मेरुदण्ड के मिलन-विन्दुओं पर है। इन चक्रों के ऊपर-की-ओर जाने की विभिन्न गति की उपमा उल्टे हुए घड़े से दी गई है जो नीचे दाबने पर भी पानी में नहीं डूबता।[२३] चक्रों के सिद्धांत को शैव और शाक्त तांत्रिकों ने विस्तृत, विशद और दुरूह रूप में प्रतिपादन किया और निर्गुण या संत विचारधारा को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

(च) षट्चक्र

अन्तिम चक्र अर्थात् आज्ञा-चक्र अति महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही शरीर के दो प्रधान भागों--पिण्ड और ब्रह्मांड--का संगमस्थल है। पिण्ड--अर्थात् निम्न प्रदेश में नौ द्वार

---

२०. स० रा० ४६६, ७३; श० ४.४, २२.१८।

२१. श० ५.२१; द० सा० ४३.१२; यह स्मरण रखना चाहिए कि दरिया साहब केवल 'उनमुनी' पर ही जोर देते हैं।

२२. स० रा० ६१८; श० ३ अ० ६।

२३. स० रा० ६१।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

हैं। यथा—दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, मुंह, गुदामार्ग और जननेंद्रिय। दसवाँ द्वार ब्रह्माण्ड में खुलता है, जिसकी कुंजी इसी आज्ञाचक्र में निहित है।[२४]

ब्रह्मरन्ध्र में इडा, पिंगला और सुषुम्णा—अथवा गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम-स्थल 'त्रिवेणी या त्रिकुटी' है।[२५] ब्रह्मरन्ध्र में ही तालुमूल में शून्य गगन अथवा

त्रिवेणी और सहस्रदल कमल

'नभपुर' है, जहाँ सहस्रपद्म अपने सहस्रदलों सहित विकसित है। इस पद्म की आभा एक बड़े देदीप्यमान हीरे की चमक के समान है।[२६]

योगी के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह दसवें द्वार को बंद रखे।[२७] इसी द्वार होकर आत्मा शरीर के निम्न भाग पिण्ड में उतर आता है और नीचे के किसी

नौ द्वारों पर शासन करके दसवें द्वार को बन्द रखना

चक्र में अपना स्थान बना लेता है। इसी द्वार से प्रकाश छनकर नीचे के नौ द्वारों में पहुँचता है।[२८] ये ही नौ द्वार हमें बाह्य जगत् में लिपटा कर बंधनों और मृत्यु के अधीन कर देते है। यदि मुक्ति प्राप्त करनी है तो आत्मा—अर्थात् प्राणवायु अथवा वीर्यशक्ति—के इस निम्नाभिमुख प्रवाह को रोकना पड़ेगा।[२९] अतः दरियासाहब ने इस बात पर अनेक बार जोर दिया है कि हमें नौ द्वारों को वश में करके दसवें द्वार को बन्द करना चाहिए, तभी हम आत्मशक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

यह हम जानते ही हैं कि हठयोग का प्रधान लक्ष्य कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से जागरित करके शून्य गगनस्थित सहस्रदल कमल में मिला देना है। तब

कुण्डलिनी योग का अर्थ और लक्ष्य

यों समझिए कि कुण्डलिनी प्रकृति का प्रतीक और सहस्रपद्म सत्पुरुष (ईश्वर) का प्रतीक है, और इस प्रकार कुण्डलिनी का क्रम से सहस्र-पद्म में विलीन हो जाने का अर्थ है—आत्मा का प्रकृति के बन्धनों से मुक्त होकर पुनः अपनी मूलभूत दिव्य पवित्रता और पुरुषरूप सत्ता को प्राप्त

---

२४. 'ब्रह्मप्रकाश' में शरीर का इस प्रकार विभिन्न भाग बताया गया है—

(१) स्वर्गलोक—भ्रूमध्य से गर्दन तक; मृत्युलोक—गर्दन से नाभि तक; पाताललोक— नाभि से नीचे।

(२) सत्वगुण का स्थान—आज्ञा-चक्र से गर्दन तक;
रजोगुण „ —गर्दन से नाभि तक;
तमोगुण „ —नाभि से नीचे।····पृ०१२।

२५. श० ३ अ४१; स० रा० ५४७; का० च० ४—०१।

२६. द० सा०, २२.६।

२७. द० सा० २२.८, ७७.९—१०; श० ८.११।

२८. श० ३.३०, ८-९; द० सा० ७७.९—१०।

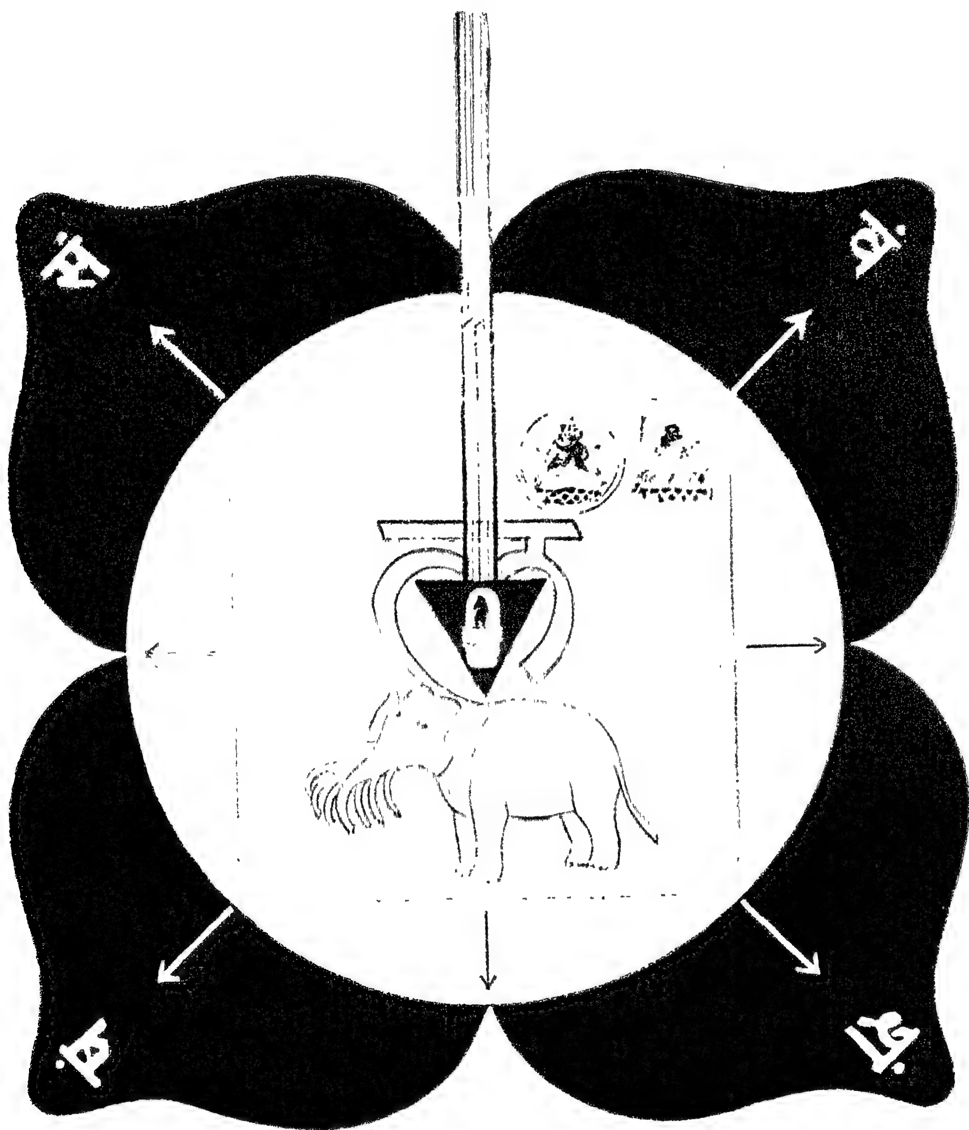
२९. दरियासाहब इसी लिए कम सोने के पक्ष में हैं; क्योंकि सुप्तावस्था में स्वप्नदोष होने की संभावना रहती ह। देखिये—श० ८.१४ और १९.१०।

करना। चक्रों की विधि को विशद रूप से समझने के लिए पाठक 'षट्चक्र निरूपण' तथा हठयोग की अन्य पुस्तकें देखें। आर्थर ऐवेलन (Arthur Avalon) की पुस्तक Serpent Power की भूमिका में जो तालिका ऊपर दी गई है, उसे तथा निम्नलिखित उद्धरण पढ़ने से तंत्र-शास्त्र-सम्मत चक्रविधि का रहस्य समझने में सहायता मिलेगी।

"शरीर में प्राणतत्त्व की विशेषावस्थिति के कुछ प्रधान केन्द्र हैं। इन्हें चक्र कहते हैं।

"मेरुदण्ड के भीतर तत्त्वों के छः प्रधान क्रिया-केन्द्र हैं, जिन्हें चक्र या पद्म कहते हैं और जो शक्ति के स्थान हैं। इनसे ऊपर जो सहस्रार हैं, वह शिव का स्थान है। इन छः केन्द्रों के नाम हैं--मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। शरीर में इन चक्रों के अनुरूप छः तन्तुग्रंथियाँ (Plexuses) हैं। इनका आरंभ मेरु की सबसे नीचे की तिकोनी हड्डी के भीतर की तन्तुग्रंथि से होता है, और अन्त ऊपर चलकर भ्रूमध्य में होता है। आगे बताया जायगा कि ये चक्र चैतन्य के केंद्र, सूक्ष्म शक्तिरूप हैं।

"जीव कुण्डलिनी के प्रभाव से ही अपने को जगत् और ब्रह्म से भिन्न समझता है। अतः मूलाधार में उसका सोया रहना बन्धन और अज्ञान का द्योतक है। जबतक वह मूलाधार कमल में अपनी सुप्तावस्था में पड़ी रहेगी, तबतक उसका बंधनमय सृष्टिजाल बना रहेगा। अतः उसे सुप्तावस्था से जगाया जाता है। जब वह जाग उठती है तो प्राण अथवा शिव के पास लौट जाती है। शिव उससे भिन्न नहीं; अपितु उसके ही एक इतर रूप हैं; और उसका इस प्रकार लौट जाने का अर्थ केवल इतना ही है कि उसने अपनी उन सृजनात्मक क्रियाओं को रोक दिया जिन से दृश्य जगत् की उत्पत्ति होती है। चक्रों से ऊपर जाते समय वह उन सभी तत्त्वों को जो उससे ही निकले थे, अपने-आप में अर्न्तनिविष्ट कर लेती है। योगी की वैयक्तिक चेतना, जिसे जीवात्मा भी कहते हैं, कुण्डलिनी की जगत्-सृजन-चेतना से मिलकर विश्वचेतना अर्थात् परमात्मा में मिल जाती है। योगी का व्यक्तित्व तभी तक परमात्मा से भिन्न जान पड़ता है, जबतक कुण्डलिनी जगत्-सृजन-क्रिया में लगी रहती है। इस क्रिया के रुक जाने के बाद ही उसका परमात्मा से आत्मसात् हो जाता है। कुण्डली के सहारे सत्-चित्-आनन्द की निर्वाण-अवस्था की प्राप्ति ही समाधि है। तात्पर्य यह है कि कुण्डली ही वैयक्तिक शरीर में उस महान् विश्वशक्ति का प्रतीक है, जो विश्व का निर्माण और धारण करती है। जब यह व्यक्तिगत शक्ति, जो वैयक्तिक चेतना के रूप में जीवस्वरूप है, विश्व-चैतन्य रूप प्राण-शिव में विलीन हो जाती है तब जीव के लिए जगत् का लोप हो जाता है और उसे मुक्ति की प्राप्ति होती है।" (पृ० २४५–४६)।



मूलाधार चक्र

हठयोग में कुण्डलिनी का आसन, प्राणायाम और मुद्राओं के माध्यम द्वारा षट्चक्र का भेदन कर ऊपर सहस्त्रदल पद्म तक पहुँचने की क्रिया की तुलना चींटी के वृक्ष पर चढ़ने की प्रक्रिया से की गई है। इसीलिए इसका नाम पिपीलक (चींटी) योग भी पड़ा है। इस योग का अर्थ है—कुण्डलिनी के पिण्ड से ब्रह्मांड तक की यात्रा। जिस प्रकार चींटी वृक्ष पर धीरे-धीरे चढ़ती है, चढ़कर मधुर फल खाती है; किंतु पुनः उस ऊँचाई से नीचे उतर आती है और मिठास के आस्वादन से वंचित हो जाती है; उसी प्रकार जिस योगी ने केवल शारीरिक हठयोग का अभ्यास किया है, उसके बार-बार योगविरहित पूर्वावस्था में लौट आने की आशंका बनी रहती है। फलतः वह अपनेको निरंतर परमानन्द के आस्वादन से वंचित रखता है।

हठयोग अथवा पिपीलकयोग

इन बातों को ध्यान में रखकर दरियासाहब हमारे सामने अन्य और अधिक महत्त्व-पूर्ण यौगिक क्रिया प्रस्तुत करते हैं, जिसे वे विहंगम (पक्षी) योग के नाम से पुकारते हैं। हम जानते हैं कि पक्षी का स्वभाव चींटी के स्वभाव से विपरीत है। चींटी को वृक्ष के फल खा लेने के बाद पुनः भूमि पर लौट आना पड़ता है; क्योंकि उसका मूल आधार-स्थान पृथ्वी ही है। किंतु पक्षी के साथ यह बात नहीं है। पक्षी कभी वृक्ष की डाल को छोड़कर आवास के लिए नीचे नहीं आता; क्योंकि उसका घर ही वृक्षों पर है। सच्चा योगी भी पक्षी की भाँति है—

विहंगम योग या ध्यानयोग

बीहंगम चढ़ि गयउ अकासा, बैठि गगन चढ़ि देखु तमासा।।[३०]

वह शून्य गगन में विचरण करते हुए अमृत पान करता है और अमृत पान करते हुए शून्य गगन में विचरता रहता है। इस विचरण और परमानन्दास्वादन की निरंतर अवस्था में उसे शरीर के 'पिण्ड भाग' से कोई मतलब नहीं रह जाता।

उसकी सुरति[३१] (दृष्टि) नेत्र के अष्टदल कमलस्थित सूचिद्वार[३२] होकर, ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर, त्रिवेणी में मज्जन करते हुए, सहस्रदलकमल में विचरण करते हुए 'बंकनाड़ी' अथवा, 'बंकनाल'[३३] होकर ऊपर चढ़ती है और भँवरगुफा[३४] में प्रविष्ट होती है। इस गुफा में 'शब्द' गुंजायमान रहता है।[३५] इसमें अनोखे दृश्य और अनोखी सुगंधि भरपूर रहती है।[३६] योगी जब अनुपम दिव्यदृष्टि लाभ करता है, तभी इन अनुपम दृश्यों को देखता और गंधों का उपभोग करता है। इसी गुफा से होकर उस प्रदेश का मार्ग

---

३०. द० सा० १०७.१–२।

३१. यह पारिभाषिक पद है। विशद व्याख्या आगे देखिये।

३२. आगे देखिये।

३३. आगे देखिये।

३४. इसके विभिन्न नाम हैं, यथा—अमरगुफा, शून्य महल, गगन आदि; द०सा० ७०.७।

३५. परिच्छेद 'सद्गुरु और शब्द' देखिये।

३६. परिच्छेद 'दिव्य दृष्टि' देखिये।

हठयोग में कुण्डलिनी का आसन, प्राणायाम और मुद्राओं के माध्यम द्वारा षट्चक्र का भेदन कर ऊपर सहस्रदल पद्म तक पहुँचने की क्रिया की तुलना चींटी के वृक्ष पर चढ़ने की प्रक्रिया से की गई है। इसीलिए इसका नाम पिपीलक (चींटी) योग भी पड़ा है। इस योग का अर्थ है—कुण्डलिनी के पिण्ड से ब्रह्मांड तक की यात्रा। जिस प्रकार चींटी वृक्ष पर धीरे-धीरे चढ़ती है, चढ़कर मधुर फल खाती है; किंतु पुनः उस ऊँचाई से नीचे उतर आती है और मिठास के आस्वादन से वंचित हो जाती है; उसी प्रकार जिस योगी ने केवल शारीरिक हठयोग का अभ्यास किया है, उसके बार-बार योगविरहित पूर्वावस्था में लौट आने की आशंका बनी रहती है। फलतः वह अपनेको निरंतर परमानन्द के आस्वादन से वंचित रखता है।

हठयोग अथवा पिपीलकयोग

इन बातों को ध्यान में रखकर दरियासाहब हमारे सामने अन्य और अधिक महत्त्वपूर्ण यौगिक क्रिया प्रस्तुत करते हैं, जिसे वे विहंगम (पक्षी) योग के नाम से पुकारते हैं। हम जानते हैं कि पक्षी का स्वभाव चींटी के स्वभाव से विपरीत है। चींटी को वृक्ष के फल खा लेने के बाद पुनः भूमि पर लौट आना पड़ता है; क्योंकि उसका मूल आधार-स्थान पृथ्वी ही है। किंतु पक्षी के साथ यह बात नहीं है। पक्षी कभी वृक्ष की डाल को छोड़कर आवास के लिए नीचे नहीं आता; क्योंकि उसका घर ही वृक्षों पर है। सच्चा योगी भी पक्षी की भाँति है—

विहंगम योग या ध्यानयोग

बीहंगम चढ़ि गयउ अकासा, बैठि गगन चढ़ि देखु तमासा ।।[30]

वह शून्य गगन में विचरण करते हुए अमृत पान करता है और अमृत पान करते हुए शून्य गगन में विचरता रहता है। इस विचरण और परमानन्दास्वादन की निरंतर अवस्था में उसे शरीर के 'पिण्ड भाग' से कोई मतलब नहीं रह जाता।

उसकी सुरति[31] (दृष्टि) नेत्र के अष्टदल कमलस्थित सूचिद्वार[32] होकर, ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर, त्रिवेणी में मज्जन करते हुए, सहस्रदलकमल में विचरण करते हुए 'बंकनाड़ी' अथवा, 'बंकनाल'[33] होकर ऊपर चढ़ती है और भँवरगुफा[34] में प्रविष्ट होती है। इस गुफा में 'शब्द' गुंजायमान रहता है।[35] इसमें अनोखे दृश्य और अनोखी सुगंधि भरपूर रहती है।[36] योगी जब अनुपम दिव्यदृष्टि लाभ करता है, तभी इन अनुपम दृश्यों को देखता और गंधों का उपभोग करता है। इसी गुफा से होकर उस प्रदेश का मार्ग

---

३०. द० सा० १०७.१–२।

३१. यह पारिभाषिक पद है। विशद व्याख्या आगे देखिये।

३२. आगे देखिये।

३३. आगे देखिये।

३४. इसके विभिन्न नाम हैं, यथा—अमरगुफा, शून्य महल, गगन आदि; द०सा० ७०.७।

३५. परिच्छेद 'सद्गुरु और शब्द' देखिये।

३६. परिच्छेद 'दिव्य दृष्टि' देखिये।

है जिसे 'सचखण्ड' (सत्य का राज्य) कहते हैं और जो निराकार सत्पुरुष (ईश्वर) का निवासस्थान है। सचखण्ड से सुरति विद्युत्वेग से उस अवर्णनीय 'अकह लोक'[३७] की ओर प्रधावित होती है जिसे 'अवाच' भी कहते हैं। फिर यहाँ से वह अगम 'नगरी' या 'अमरलोक' तक पहुँचती है जो परमानन्द की आश्चर्यमयी नगरी और अद्भुत लोक है।[३८]

संक्षेप में यही विहंगम योग है। आगे इसकी कुछ और व्याख्या की जाती है। दरियासाहब ने स्पष्ट शब्दों में विहंगम योग को पिपीलक योग से श्रेष्ठ बताया है।[३९]

विहंगम योग की श्रेष्ठता

उनके कथानुसार हठयोगी पिपीलकयोग के द्वारा शरीर पर तो अधिकार पा लेते हैं; पर आत्मा पूर्णतया उनके वश में नहीं आ पाता।[४०] प्राणायाम की क्रिया द्वारा वायु खींच लेने मात्र से कुछ नहीं होने को, क्योंकि सर्प तो वायु पीकर ही रहते हैं।[४१] हठयोग की सार्थकता के लिए आत्मपरिचय और आत्मप्राप्ति की अनिवार्य अपेक्षा है।[४२] अन्यथा यह योग नहीं, विडम्बना है।

इससे यह नहीं समझें कि दरियासाहब पिपीलक योग का सर्वथा निराकरण करते हैं। वे दोनों विधियों के सामंजस्य के पक्ष में हैं। इनमें से एक तो षट्चक्र की विधि है और दूसरी अष्टदलपद्म की।[४३] हाँ, यह अवश्य है कि दरियासाहब इस दूसरी विधि पर विशेष बल देते हैं।[४४] उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखकर हम सहज ही दरियासाहब के योग के 'चौदह' तत्त्वों का अभ्यास[४५] करने के उपदेश की सार्थकता समझ लेंगे; क्योंकि चक्र और कमल मिलकर चौदह होते हैं। कभी-कभी इन चतुर्दश तत्त्वों को चतुर्दश मंत्र[४६]

---

३७. ज्ञा० र० ५७.२।

३८. योग के प्रदेशों का यह क्रम 'ब्रह्मप्रकाश' के आधार पर है। दरिया साहब सदा इस क्रम का अवलंबन न करके बहुधा त्रिवेणी, अमरगुफा और अगम नदी में कोई अन्तर नहीं मानते।

३९. स० रा० २२९, ४६६; श० ४.३५; हठयोग के विपरीत विहंगम योग को बहुधा सहजयोग भी कहा गया है। देखिये 'ब्रह्मविवेक' ४.८, ५.११।

४०. द० सा० ७१.१०—११; ज्ञा० र० १३–१४।

४१. ज्ञा० र० ३६.१६। उसी प्रकार आँख मूँद लेने मात्र से एकाग्रता नहीं हो जाती। विहंगमयोग में तो आँख बन्द करना भी आवश्यक नहीं है। देखिये, श० १८.४९।

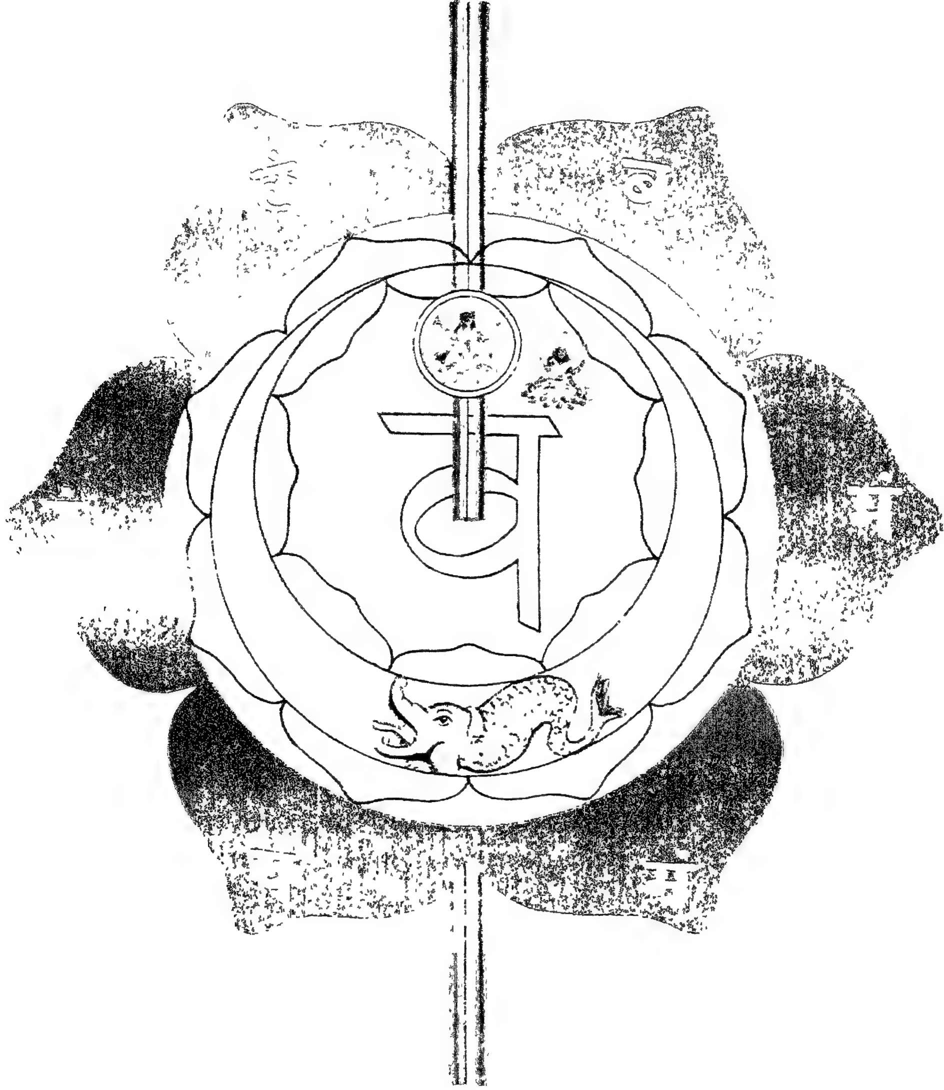
४२. ज्ञा० र० ३६.१७।

४३. ज्ञा० र० ८०.१३।

४४. द० सा० ३४.१; श० ३ अ० ७१, ८.३।

४५. श०. ३ अ० ७१, ८.३।

४६. द० सा० ५.३–४, ९.८, ७७.०।



स्वाधिष्ठान चक्र

कहा गया है जो यम के चंगुल से मुक्त रखते हैं। इन्हें कहीं-कहीं यम की 'चौदह-चौकी' भी कहा गया है। यदि जीव इन्हें पार कर जाता है तो यम की पहुँच से बाहर निकल जाता है। 'चौदह' की संख्या, 'नवद्वार' और 'पंचतत्त्व'[४७] का सम्मिलित योग भी संकेतित करती है। इन नवद्वारों और पंचतत्त्वों पर अधिकार प्राप्त करना योगी के लिए अनिवार्य है।[४८]

यौगिक क्रियाएँ संक्षेप में

दरियासाहब का एक पूरा पद नीचे उद्धृत किया जाता है। इसमें योग की प्रक्रियाओं का संक्षिप्त रूपक-चित्र प्रस्तुत किया गया है। देखिये—

संत की चाल तुम समुझि बाँकी बड़ी, सुरति कमान कसि तीर मारा।
पाँच के मेटि पचीस के दलि मलो, छव के छेदि पीउ सब्द सारा।।
साधि ले मेरुदंड बैठु ब्रह्मंड खंड, पौन परचो लिये काम जारा।
काल जंजाल ते काम निकुताए ले, जोग गहि जुक्ति तुम समुझि यारा।।
उलटि ले पवन तुम गौन करु गगन में, साधि ले त्रिकुटि दिबि द्रिस्टि बारा।
ताहाँ होत झनकार सत सब्द उजियार, ताहाँ छूटिगो त्रिमिर उदित सारा।।
ताहाँ रोग नहीं सोग निरदोख निरबान, सबँग सब माँह तुम देखु न्यारा।
कहें दरिया दिल पैठु दरियाव में, पाव तुम लाल अनमोल प्यारा।।[४९]

विहंगम योग

ऊपर वर्णित विहंगम योग को कुछ स्पष्टतर समझने के लिए नीचे कुछ विशिष्ट पदों पर टिप्पणी दी जाती है—

---

४७. द० सा० ६६.७। एक पुस्तक में यम के १४ दूतों के नाम दिये गये हैं—(१) विश्वम्भर (सगुणदेव) अपने तेरह अनुचरों के साथ, (२) मन, (३) नेत्र, (४) काम-वासना, (५) विषय-सुख, (६) कामिनी-संग, (७) विशिष्ट भोग-विलास (भोजन), (८) जीवहिंसा, (९) अंगों को शिथिल करनेवाले बादल, (१०) मांसभक्षण, (११) मदिरापान, (१२) असत्य-श्रवण की उत्सुकता, (१३) क्रोध और (१४) द्वेष। प्रत्यक्ष है कि योगी, साधु या साधक सभी को इन चतुर्दश दुर्गुणों का परित्याग करना ही पड़ेगा। निर्भयज्ञान, ५.२१—३८।

४८. द० सा० ७७.९—१४ में संख्या 'चौदह' का चमत्कारपूर्ण अर्थ दिया गया है—
नव पद—नवों द्वारों को वश में करना; दसवाँ पद—दसवें द्वार का बन्द करना;
ग्यारहवाँ पद—ज्ञान छेत्र का धारण करना; बारहवाँ पद—पंचतत्त्वों को परखना;
तेरहवाँ पद—त्रिगुणों से परे हो जाना; चौदहवाँ पद—सत्पुरुष (ईश्वर) के सिहांसन तक पहुँचना तथा जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाना।

४९. श० ३ अ० ९।

(१) सुरति[५०]--योगी की उस असाधारण दृष्टि क्षमता को कहते हैं, जिसके द्वारा वह अपार्थिव जगत् के आश्चर्यमय दृश्यों और शब्दों की साक्षात् अनुभूति प्राप्त करता है।[५१]

सुरति

(२) निरति--सुरति से भिन्न उस निर्विकल्प ध्यान की अवस्था है, जिसमें दृश्यावली नहीं प्रकट होती।[५२] दरियासाहब निरति की अवहेलना नहीं करते, अपितु निरति और सुरति के समन्वय को श्रेयस्कर मानते हैं।[५३] बहुधा वे इन दोनों को एक ही मन्थन-रज्जु के दो छोर मानते हैं, जिनके सहारे शरीररूपी 'मटुकी' में दयारूपी दधि मथकर स्थिरता रूपी घृत निकाला जाता है।[५४]

निरति

(३) अष्टदल कमल--प्रत्येक आँख की पुतली के जो चार खण्ड हैं, इन्हीं को कमलदल माना गया है। ये चार खण्ड इस प्रकार हैं--(क) आँख का उज्ज्वल भाग, (ख) उसके बीच में नाचनेवाली अपेक्षाकृत कम काली पुतली, (ग) केन्द्रीय तारे की नाईं छोटी पुतली और (घ) उस तारे के बीच में उज्ज्वल सूक्ष्म विन्दु जिसकी उपमा सूई के छेद से दी जा सकती है। इसीलिए इसे 'सूई' या 'अग्रनख' भी कहते हैं।

अष्टदल कमल

(४) उन्मुनी—सुरति (जिसे रूपक भाषा में सुमेरु' पर्वत भी कहते हैं) अग्र-दृष्टि (अग्रनख)[५५] होकर अष्टदल कमल का भेदन करती है। तत्पश्चात् यह इडा, पिंगला और सुषुम्णा के संगम-त्रिवेणी[५६] में पहुँचकर वहाँ गोता लगाती है। एकाग्रता द्वारा सुरति को अग्रनख के भीतर की ओर प्रेरित करने की क्रिया को 'उन्मुनी मुद्रा'[५७] या 'महामुद्रा'[५८] भी कहते हैं। 'उन्मुनी' का संस्कृत

उन्मुनी मुद्रा

---

५०. कभी-कभी इस शब्द का व्यवहार साधारण ध्यान के अर्थ में भी किया गया है।

५१. ७०·७।

५२. ज्ञा० र० १९·०; द० सा० ८८·१२।

५३. द० सा० ७०·६।

५४. स० रा० २७७; द० सा० ७७·३–६।

५५. श० १·९३, ८·१७; ज्ञा० र० ११९·१; द० सा० ३३·६।

५६. श० ३ अ० ४१, ५·२१; द० सा० ५·१७–१९, ७०.७।

५७. ज्ञा० दी० ९४·१–८; ब्र० वि० २७·११–१२; इसका उल्लेख 'घेरण्डसंहिता' में नहीं है।

५८. श० ५·२१, ८·३; स० रा० ४६९; घेरण्डसंहिता में महामुद्रा की निम्नलिखित परिभाषा दी गई है—

'गुदामार्ग को बाईं एड़ी से दबा दो, दाहिना पैर फैला दो और इसके अँगूठे को हाथ से पकड़ लो। बिना साँस बाहर फेंके ही गले को सिकुड़ाओ और दृष्टि भ्रूमध्य में जमा दो।

पर्यायवाची शब्द 'मनोन्मनी' है, जिसका अर्थ है—'मनको स्थिर करना' (मनःसुस्थिरीभाव)। 'हठयोग-प्रदीपिका' के अनुसार—

मारुते मध्यसंचारे मनःस्थैर्यं प्रजायते ।
यो मनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी—२,४२ ।।

(५) बंकनाल[५९]:—हठयोग में जो मेरुदण्ड का स्थान है, वही ध्यानयोग में बंकनाल का है। बंक का उद्‌गम केन्द्र मूलाधार में है। वह वहाँ से आरंभ होकर नाभि के वाम भाग से होते हुए हृदय और छाती को छूकर आज्ञाचक्रस्थित रुद्रग्रंथि में मिल जाती है। यहाँ से वह आगे बढ़ती है और ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर सिर के पीछे की ओर मुड़ जाती है और पुनः ऊपर की ओर भागती है। यहाँ इसका आकार एक अर्द्धवृत्ताकार कमलनाल (बंकनाल) के समान बन जाता है। यह तब 'धुंधुकारमंडल' होते हुए शून्य प्रांत भँवरगुफा में प्रवेश कर जाती है।[६०] यह गुफा 'सचखण्ड' की ड्योढ़ी है।[६१]

बंकनाल

(६) भँवरगुफा—इसे गुफा कहते हैं; क्योंकि यह शून्य स्थान है। यहीं योगी 'शब्द' को सुनता है।

भँवरगुफा

(७) शब्द—संतमत की शबावली में यह शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कबीर और दरियासाहब की सर्वोत्तम शिक्षाएँ 'शब्द' नामक पदों में ही लिखी गई हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ 'ब्रह्मप्रकाश' के आधार पर उद्धृत की जाती हैं—

शब्द

शब्द स्वयं ब्रह्म है। यही विश्व का स्रष्टा है और इसीसे आकाश, मर्त्य और पाताल लोकों की सृष्टि हुई है।

सुरति, निरति, मन और प्राण की एकाग्रता प्राप्त कर लेने पर योगी शून्य मण्डल में शब्द सुनते हैं। इस शब्द का निवासस्थान ब्रह्माण्ड से परे भँवरगुफा में है। यह ध्वनि से उत्पन्न होता है और ध्वनि में ही पुनः विलीन हो जाता है। ध्वनि ही सद्‌गुरु (सत्पुरुष) का साकार रूप, तथा 'शब्द' गुरु का साकार रूप है। साँस के एक दूसरे से टकराने पर शब्द की सृष्टि होती है।

ध्वनि सुनने से[६२] बुद्धि संयत हो जाती है और अपनेको सत्पुरुष (ईश्वर) में निमग्न कर देती है।

ये पंक्तियाँ स्पष्ट हैं और इनमें उस रहस्यपूर्ण और दार्शनिक भावना का परिचय मिलता है, जिसका द्योतक 'शब्द' है। 'भँवरगुफा' या 'गगनमण्डल' में जो शब्द सुन पड़ता

---

५९. श० १०·२, २२·१६; द० सा० १०७–५; ज्ञा० दी० ५·३१; ज्ञा० र० ५७·२।

६०. श० ८.३।

६१. बंकनाल की आकृति 'ब्रह्मप्रकाश' के पृ० २४ और ३० में दी गई है।

६२. ब्र० प्र०, पृ० ३७; ज्ञा० र० ५७. ४; द० सा० ४२. ११।

सुरति

(१) सुरति[५०]--योगी की उस असाधारण दृष्टि क्षमता को कहते हैं, जिसके द्वारा वह अपार्थिव जगत् के आश्चर्यमय दृश्यों और शब्दों की साक्षात् अनुभूति प्राप्त करता है।[५१]

निरति

(२) निरति--सुरति से भिन्न उस निर्विकल्प ध्यान की अवस्था है, जिसमें दृश्यावली नहीं प्रकट होती।[५२] दरियासाहब निरति की अवहेलना नहीं करते, अपितु निरति और सुरति के समन्वय को श्रेयस्कर मानते हैं।[५३] बहुधा वे इन दोनों को एक ही मन्थन-रज्जु के दो छोर मानते हैं, जिनके सहारे शरीररूपी 'मटुकी' में दयारूपी दधि मथकर स्थिरता रूपी घृत निकाला जाता है।[५४]

अष्टदल कमल

(३) अष्टदल कमल--प्रत्येक आँख की पुतली के जो चार खण्ड हैं, इन्हीं को कमलदल माना गया है। ये चार खण्ड इस प्रकार हैं--(क) आँख का उज्ज्वल भाग, (ख) उसके बीच में नाचनेवाली अपेक्षाकृत कम काली पुतली, (ग) केन्द्रीय तारे की नाईं छोटी पुतली और (घ) उस तारे के बीच में उज्ज्वल सूक्ष्म विन्दु जिसकी उपमा सूई के छेद से दी जा सकती है। इसीलिए इसे 'सूई' या 'अग्रनख' भी कहते हैं।

उन्मुनी मुद्रा

(४) उन्मुनी--सुरति (जिसे रूपक भाषा में सुमेरु' पर्वत भी कहते हैं) अग्र-दृष्टि (अग्रनख)[५५] होकर अष्टदल कमल का भेदन करती है। तत्पश्चात् यह इडा, पिंगला और सुषुम्णा के संगम-त्रिवेणी[५६] में पहुँचकर वहाँ गोता लगाती है। एकाग्रता द्वारा सुरति को अग्रनख के भीतर की ओर प्रेरित करने की क्रिया को 'उन्मुनी मुद्रा'[५७] या 'महामुद्रा'[५८] भी कहते हैं। 'उन्मुनी' का संस्कृत

---

५०. कभी-कभी इस शब्द का व्यवहार साधारण ध्यान के अर्थ में भी किया गया है।

५१. ७०·७।

५२. ज्ञा० र० १९·०; द० सा० ८८·१२।

५३. द० सा० ७०·६।

५४. स० रा० २७७; द० सा० ७७·३–६।

५५. श० १·९३, ८·१७; ज्ञा० र० ११९·१; द० सा० ३३·६।

५६. श० ३ अ० ४१, ५·२१; द० सा० ५·१७–१९, ७०.७।

५७. ज्ञा० दी० ९४·१–८; ब्र० वि० २७·११–१२; इसका उल्लेख 'घेरण्डसंहिता' में नहीं है।

५८. श० ५·२१, ८·३; स० रा० ४६९; घेरण्डसंहिता में महामुद्रा की निम्नलिखित परिभाषा दी गई है--

'गुदामार्ग को बाईं एड़ी से दबा दो, दाहिना पैर फैला दो और इसके अँगूठे को हाथ से पकड़ लो। बिना साँस बाहर फेंके ही गले को सिकुड़ाओ और दृष्टि भ्रूमध्य में जमा दो।

पर्यायवाची शब्द 'मनोन्मनी' है, जिसका अर्थ है—'मनको स्थिर करना' (मनःसुस्थिरीभाव)। 'हठयोग-प्रदीपिका' के अनुसार—

मारुते मध्यसंचारे मनःस्थैर्यं प्रजायते ।
यो मनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी—२,४२ ।।

(५) बंकनाल[५९]:—हठयोग में जो मेरुदण्ड का स्थान है, वही ध्यानयोग में बंकनाल का है। बंक का उद्गम केन्द्र मूलाधार में है। वह वहाँ से आरंभ होकर नाभि के वाम भाग से होते हुए हृदय और छाती को छूकर आज्ञाचक्रस्थित रुद्रग्रंथि में मिल जाती है। यहाँ से वह आगे बढ़ती है और ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर सिर के पीछे की ओर मुड़ जाती है और पुनः ऊपर की ओर भागती है। यहाँ इसका आकार एक अर्द्धवृत्ताकार कमलनाल (बंकनाल) के समान बन जाता है। यह तब 'धुंधुकारमंडल' होते हुए शून्य प्रांत भँवरगुफा में प्रवेश कर जाती है।[६०] यह गुफा 'सचखण्ड' की ड्योढ़ी है।[६१]

बंकनाल

(६) भँवरगुफा—इसे गुफा कहते हैं; क्योंकि यह शून्य स्थान है। यहीं योगी 'शब्द' को सुनता है।

भँवरगुफा

(७) शब्द—संतमत की शब्दावली में यह शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कबीर और दरियासाहब की सर्वोत्तम शिक्षाएँ 'शब्द' नामक पदों में ही लिखी गई हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ 'ब्रह्मप्रकाश' के आधार पर उद्धृत की जाती हैं—

शब्द

शब्द स्वयं ब्रह्म है। यही विश्व का स्रष्टा है और इसीसे आकाश, मर्त्य और पाताल लोकों की सृष्टि हुई है।

सुरति, निरति, मन और प्राण की एकाग्रता प्राप्त कर लेने पर योगी शून्य मण्डल में शब्द सुनते हैं। इस शब्द का निवासस्थान ब्रह्माण्ड से परे भँवरगुफा में है। यह ध्वनि से उत्पन्न होता है और ध्वनि में ही पुनः विलीन हो जाता है। ध्वनि ही सद्गुरु (सत्पुरुष) का साकार रूप, तथा 'शब्द' गुरु का साकार रूप है। साँस के एक दूसरे से टकराने पर शब्द की सृष्टि होती है।

ध्वनि सुनने से[६२] बुद्धि संयत हो जाती है और अपनेको सत्पुरुष (ईश्वर) में निमग्न कर देती है।

ये पंक्तियाँ स्पष्ट हैं और इनमें उस रहस्यपूर्ण और दार्शनिक भावना का परिचय मिलता है, जिसका द्योतक 'शब्द' है। 'भँवरगुफा' या 'गगनमण्डल' में जो शब्द सुन पड़ता

---

५९. श० १०·२, २२·१६; द० सा० १०७—५; ज्ञा० दी० ५·३१; ज्ञा० र० ५७·२।

६०. श० ८.३।

६१. बंकनाल की आकृति 'ब्रह्मप्रकाश' के पृ० २४ और ३० में दी गई है।

६२. ब्र० प्र०, पृ० ३७; ज्ञा० र० ५७. ४; द० सा० ४२. ११।

है, उसे जप के समय का नीरव शब्द समझना भूल है, क्योंकि, जप की अवस्था में जो शब्द उत्पन्न होता है, उसका सृजन तो जपकर्त्ता स्वयं करता है; किंतु भँवर-गुफा में गुंजायमान जो शब्द है, उसका उच्चारण नहीं होता। वह अजपा है; उसकी उत्पत्ति शून्य से होती है; वह स्वयंभू है; वह 'अनहद' या 'अनाहत'[६३] है। इसे सुनना योगियों की कामना की पराकाष्ठा है। वस्तुतः यह सत्पुरुष से साक्षात्कार एवं तादात्म्य का प्रतीक है।[६४]

६३. श० २.३२, ८.१३—१४; द० सा० ६६.४

६४. शब्द की अधिक व्याख्या परिच्छेद 'सद्गुरु और शब्द' में देखिये।


डं
ढं
णं
तं
थं
दं
धं
नं
पं
फं
रं

नवम

दिव्य दृष्टि

मानसिक तथा शारीरिक साधना[१] के अनवरत अभ्यास द्वारा साधक क्रमशः दिव्यदृष्टि की आश्चर्यमयी क्षमता प्राप्त करता[२] है। तभी वह आप-में-आप को जानने में समर्थ होता है।[३] वह सुरति डोर[४] के सहारे अमरलोक[५] में प्रयाण करता है और प्रयाण की इस आह्लादपूर्ण घड़ी में अपने-आपमें सुषमामयी छवियों के विराट् दृश्य (अजब तमाशा) का शून्यगगन में (जिसे अमर गुफा, शून्य महल, गगन आदि भी कहते हैं)[७] प्रत्यक्ष करता है। वह अपनी निस्सीम सूक्ष्म दृष्टि में सारे विराट् विश्व को प्रतिफलित अथवा संक्रमित पाता है।[८]

दिव्य दृष्टि

वह देखता है, सत्पुरुष का सजा-सजाया दरबार है। उस 'आम' या 'खास' दरबार में सत्पुरुष एक सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके सम्मुख हंसों (आत्माओं) की पंक्ति बैठी है।[९] वे सब एक ही कुटुम्ब के सदस्य के समान हैं। उसमें वैभव या गरीबी, जाति या वर्ण आदि का कोई विभेद नहीं है।[१०] वहाँ मनोरम सरोवर हैं। उनमें सहस्र-सहस्र विकसित सहस्र-दल कमलों की पंक्तियाँ अनगिनत रंगों में शोभायमान हैं। उनपर भौंरे मँड़रा रहे हैं।[११] जल

छवियों और ध्वनियों का विराट् वैभव

---

१. इसमें दो चीजें सफलित हैं, एक व्यावहारिक जीवन में संयम (परिच्छेद–१४) और दूसरी यौगिक क्रियाएँ–(परिच्छेद–८)।

२. श० २·अ. ५; २ अ. ८; ३ अ. २५; ३ अ. ३८; ३ अ. ७१, ५३·२।

३. श० ३ अ. ४७; ३ अ. ४८।

४. श० ३७·१७; अ० वि० १५·१०।

५. श० ५३·६। इस अमरलोक के अनेक नाम दिये गये हैं; यथा—अमरघर (श० १०·२); निजुपुर (द० सा० ४२·२); अमरलोक (द० सा० १२·१९); अमरपद (द० सा० ८·२); अमरधाम (ज्ञा० दी० ५८·१४); अमरपुर (श०२९·१; ज्ञा०दी० ९·१७); अमरपुरी (द० सा० ७·०); सतलोक (द० सा० १२·७); मगनपुर (श० ३९·२); अभयलोक (द० सा० २·०); हंसलोक (द० सा० १४·९); छपलोक (श० २९·१) आदि। कभी-कभी यह कहा गया है कि यह 'अमरलोक' ८८ हजार द्वीप-समूहों के बीच स्थित है।

६. श० २३·२; द० सा० ४५·१३।

७. श० ३·२७; ३ अ. ४१, ३ अ. ४४, ३ अ. ७१ आदि।

८. श० ४·४१, २४·१।

९. श० ३·२१, ३ अ. ३८, १८·४७; स० रा० ४१३; अ० सा० २८·८–९।

१०. श० ३·३३; द० सा० ११·१३।

११. द० सा० १५·०; श० २ अ. १३, ३·२३; ज्ञा० र० ४·९।

में हंसों का कल्लोलपूर्ण विहार हो रहा है। वे जहाँ-तहाँ मोती चुग रहे हैं।[१२] वहाँ एक-से-एक मनोरम महल हैं, जिनमें सुषमा, सुरभि और प्रकाश की किरणें अपनी अनुपम छवियों का भण्डार लिये अठखेलियाँ किया करती हैं। उन महलों पर स्वर्ण-कलश देदीप्यमान हैं,[१३] श्वेत पताकाएँ फहरा रही हैं, और बड़े-बड़े छत्र छाये हैं। विस्तृत निकुंजों में मुस्कुराते हुए बेली-चमेली, मालती, गुलाब आदि अगणित तथा भाँति-भाँति के पुष्पों की सुगंधि से सारा वायुमण्डल मँह-मँह है।[१४] चमकीले-उजले बादल सदा रिमझिम वर्षा करते रहते हैं। बरसते हुए घुमड़ते और घुमड़ते हुए गरजते हैं।[१५] उनमें श्वेत पंक्तियों की सी दामिनी दमकती है। यत्रतत्र मयूर अपनी तीखी केका सुनाते हैं।[१६] सागर की उत्ताल तरंगों में नदियाँ विलीन हो रही हैं और आकाश से सुधा-सलिल[१७] की फुहारें झर रही हैं। सर्वत्र और सर्वदा शब्द[१८] गुंजायमान है। यह शब्द असीम और अनन्त है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों असंख्य वाद्ययंत्र—ढोल, मृदंग, बाँसुरी आदि—एक साथ ही मनोरम वाद्य की सृष्टि कर रहे हैं।[१९] प्रत्येक क्षण वीणा अथवा झींगुर की झंकार-सी 'झिनझिन' ध्वनि झंकृत हो रही है।[२०]

> झीं झीं जंतर तहवाँ बाजे, जम जालिम पचि हारा।
> सोवत जागत ऊठत बैठत, टूटु कबहिं नहिं तारा॥

इस मधुर संगीत की अनवरत ध्वनि के तार कभी नहीं टूटते।[२१] इस अमर नगरी में सदा होली मनाई जा रही है। रंगरलियाँ हो रही हैं। कुमकुम, केसर और

---

१२. श० ८·२; द० सा० २२·३–४।

१३. स० रा० ३७; श० २·६; ३·१६, ४·३७।

१४. श० २ अ० १९। ३·१६–१७, ३·२६, ३·२८, ३ अ० ७६, ३ अ० ८२, ३ अ० ८३, १८·४७; द० सा० १६·१०–१७; अ० सा० २८·१०।

१५. श० ३ अ० ७, ३ अ० २४, ३ अ० १९, ८.८, २४·१; ज्ञा० दी० ५८·७–१२।

१६· श० ४·१३।

१७. श० ४·२७, १४·७।

१८, द० सा० १५·१–२, १६·६, ७०·६; श० ४·२१, ५३·४। दरिया साहब के पंथ में 'शब्द' या 'सबद', का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। भक्त परमानंद की अवस्था में जो ध्वनि सुनता है, वही शब्द है। यह अभक्तों के लिये एक पुस्तक के समान है जिसे वे सुन ही नहीं सकते। वस्तुतः यही सत्पुरुष का ध्वन्यात्मक प्रतीक है।

१९. ३ अ० २४, ४.१२, ४.२३, ८.६।

२०. ३ अ० ७, ७.२४, श० आ० ६९.८–३।

२१. श० २२.१९।

गुलाल आदि सुगंधित वस्तुएँ वायुमण्डल में उड़ाई जा रही हैं। सर्वत्र गान और नृत्य हो रहा है।[२२] वृन्दावन की होली और रासलीला में वासना और कामुकता का पुट है; किन्तु अमरपुर की होली और लीला दिव्य तथा पवित्र है।[२३] यहाँ सहस्रों सूर्य चमक रहे हैं—"ज्योति मण्डल रबि कोटि हैं, को करि सके बखान"। असंख्य ताराओं से परिवेष्टित अनगिनत चन्द्रों की छटा व्योम पर छाई हुई है। सरोवर के जल में विहँसती कुमदिनियों के संग चन्द्रों की किरणें अठखेलियाँ कर रही हैं।[२४] लाल, 'हिरामन', मोती, मुक्ता की ढेर से छिटकी हुई ज्योति-किरणें चारों ओर फैल रही हैं।[२५] अक्षयवट (अक्षय वृक्ष) की शाखाएँ चतुर्दिक फैली हुई हैं। उनकी सघन छायापूर्ण झुरमुटों में पक्षी (जीव) विश्राम कर रहे हैं तथा अक्षयवट के अमृत फल का रसास्वादन भी कर रहे हैं।[२६]

इस अमर नगरी में स्वस्थ भोग-विलास की भी कमी नहीं है। यहाँ के विलास दिव्य हैं। जब आत्मा पुरुष (परमात्मा) से मिलता है—ठीक उसी प्रकार जैसे लम्बी बिछुड़न के पश्चात् प्रेमिका अपने प्रेमी (माशूक) से—तब इसका स्वागत अनुपम वैभव-विलास द्वारा होता है। 'पुहुप पलंग पर पुहुप बिछौना' सजाया जाता है।[२७] कोटि-कोटि कामिनियाँ संगीत गाती हैं।[२८] वे हाथ में चँवर लिये डुलाती रहती हैं।[२९] वहाँ सभी अभिलाषाएँ पूर्ण और सभी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं।[३०] एकमात्र दिव्य प्रेम और परमानन्द का साम्राज्य छा जाता है।[३१] 'तहाँ रोग नहिं सोग निरदोख निरबान-सबंग सब मोह तुम देखु न्यारा।' वहाँ रोग, शोक, संताप, दुःख कुछ भी नहीं ह।[३२] न गुण है, न दोष; न जन्म है, न मरण।[३३] इस स्वर्ग की समता नहीं है। इसकी

---

२२. श० ५६.३–४ ; ५६.१० ।
२३. श० ५६.१८ ।
२४. द० सा० ६.३, २६.० ; श० १२.१५, १८.१२ ।
२५. द० सा० २.१३–१६ ; ज्ञा० दी० ९.१६ ; ज्ञा० र० ५७.४ ; श० ४.२, ४.४३, २४.१ ; स० रा० ५४७ ।
२६. श० २९.२, २९.६ ।
२७. श० २ अ० २०, ३.३४, १०.२, २३.९ ।
२८ श० २८.२ ।
२९. द० सा० ४.१३–१६, ८८.१३–१४ ।
३०. श० ४.२७ ; ६.६, २३.९ ।
३१. श० ३.२९, ३.३०, ३०.३१ ।
३२. श० ३ अ० ९ ; अ० ज्ञा० ३७.९ ।
३३. ब्र० च० ३४ ; श० १८.२९, २९.७ ।

में हंसों का कल्लोलपूर्ण विहार हो रहा है। वे जहाँ-तहाँ मोती चुग रहे हैं।[१२] वहाँ एक-से-एक मनोरम महल हैं, जिनमें सुषमा, सुरभि और प्रकाश की किरणें अपनी अनुपम छवियों का भण्डार लिये अठखेलियाँ किया करती हैं। उन महलों पर स्वर्ण-कलश देदीप्यमान हैं,[१३] श्वेत पताकाएँ फहरा रही हैं, और बड़े-बड़े छत्र छाये हैं। विस्तृत निकुंजों में मुस्कुराते हुए बेली-चमेली, मालती, गुलाब आदि अगणित तथा भाँति-भाँति के पुष्पों की सुगंधि से सारा वायुमण्डल मँह-मँह है।[१४] चमकीले-उजले बादल सदा रिमझिम वर्षा करते रहते हैं। बरसते हुए घुमड़ते और घुमड़ते हुए गरजते हैं।[१५] उनमें श्वेत पंक्तियों की सी दामिनी दमकती है। यत्रतत्र मयूर अपनी तीखी केका सुनाते हैं।[१६] सागर की उत्ताल तरंगों में नदियाँ विलीन हो रही हैं और आकाश से सुधा-सलिल[१७] की फुहारें झर रही हैं। सर्वत्र और सर्वदा शब्द[१८] गुंजायमान है। यह शब्द असीम और अनन्त है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों असंख्य वाद्ययंत्र—ढोल, मृदंग, बाँसुरी आदि—एक साथ ही मनोरम वाद्य की सृष्टि कर रहे हैं।[१९] प्रत्येक क्षण वीणा अथवा झींगुर की झंकार-सी 'झिनझिन' ध्वनि झंकृत हो रही है।[२०]

> झीं झीं जंतर तहवाँ बाजे, जम जालिम पचि हारा।
> सोवत जागत ऊठत बैठत, टूटु कबहिं नहिं तारा।।

इस मधुर संगीत की अनवरत ध्वनि के तार कभी नहीं टूटते।[२१] इस अमर नगरी में सदा होली मनाई जा रही है। रंगरलियाँ हो रही हैं। कुमकुम, केसर और

---

१२. श० ८·२; द० सा० २२·३–४।

१३. स० रा० ३७; श० २·६; ३·१६, ४·३७।

१४. श० २ अ० १६। ३·१६–१७, ३·२६, ३·२८, ३ अ० ७६, ३ अ० ८२, ३ अ० ८३, १८·४७; द० सा० १६·१०–१७; अ० सा० २८·१०।

१५. श० ३ अ० ७, ३ अ० २४, ३ अ० १६, ८.८, २४·१; ज्ञा० दी० ५८·७–१२।

१६· श० ४·१३।

१७. श० ४·२७, १४·७।

१८, द० सा० १५·१–२, १६·६, ७०·६; श० ४·२१, ५३·४। दरिया साहब के पंथ में 'शब्द' या 'सबद', का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। भक्त परमानंद की अवस्था में जो ध्वनि सुनता है, वही शब्द है। यह अभक्तों के लिये एक पुस्तक के समान है जिसे वे सुन ही नहीं सकते। वस्तुतः यही सत्पुरुष का ध्वन्यात्मक प्रतीक है।

१९. ३ अ० २४, ४.१२, ४.२३, ८.६।

२०. ३ अ० ७, ७.२४, श० आ० ६६.८–३।

२१. श० २२.१६।

गुलाल आदि सुगंधित वस्तुएँ वायुमण्डल में उड़ाई जा रही है। सर्वत्र गान और नृत्य हो रहा है।[२२] वृन्दावन की होली और रासलीला में वासना और कामुकता का पुट है; किन्तु अमरपुर की होली और लीला दिव्य तथा पवित्र है।[२३] यहाँ सहस्रों सूर्य चमक रहे हैं—"ज्योति मण्डल रबि कोटि हैं, को करि सके बखान"। असंख्य ताराओं से परिवेष्टित अनगिनत चन्द्रों की छटा व्योम पर छाई हुई है। सरोवर के जल में विहँसती कुमदिनियों के संग चन्द्रों की किरणें अठखेलियाँ कर रही हैं।[२४] लाल, 'हिरामन', मोती, मुक्ता की ढेर से छिटकी हुई ज्योति-किरणें चारों ओर फैल रही हैं।[२५] अक्षयवट (अक्षय वृक्ष) की शाखाएँ चतुर्दिक फैली हुई हैं। उनकी सघन छायापूर्ण झुरमुटों में पक्षी (जीव) विश्राम कर रहे हैं तथा अक्षयवट के अमृत फल का रसास्वादन भी कर रहे हैं।[२६]

इस अमर नगरी में स्वस्थ भोग-विलास की भी कमी नहीं है। यहाँ के विलास दिव्य हैं। जब आत्मा पुरुष (परमात्मा) से मिलता है—ठीक उसी प्रकार जैसे लम्बी बिछुड़न के पश्चात् प्रेमिका अपने प्रेमी (माशूक) से—तब इसका स्वागत अनुपम वैभव-विलास द्वारा होता है। 'पुहुप पलंग पर पुहुप बिछौना' सजाया जाता है।[२७] कोटि-कोटि कामिनियाँ संगीत गाती हैं।[२८] वे हाथ में चँवर लिये डुलाती रहती हैं।[२९] वहाँ सभी अभिलाषाएँ पूर्ण और सभी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं।[३०] एकमात्र दिव्य प्रेम और परमानन्द का साम्राज्य छा जाता है।[३१] 'तहाँ रोग नहिं सोग निरदोख निरबान-सबंग सब मोह तुम देखु न्यारा।' वहाँ रोग, शोक, संताप, दुःख कुछ भी नहीं है।[३२] न गुण है, न दोष; न जन्म है, न मरण।[३३] इस स्वर्ग की समता नहीं है। इसकी

---

२२. श० ५९.३–४; ५६.१०।

२३. श० ५६.१८।

२४. द० सा० ६.३, २६.०; श० १२.१५, १८.१२।

२५. द० सा० २.१३–१६; ज्ञा० दी० ९.१६; ज्ञा० र० ५७.४; श० ४.२, ४.४३, २४.१; स० रा० ५४७।

२६. श० २९.२, २९.६।

२७. श० २ अ० २०, ३.३४, १०.२, २३.९।

२८ श० २८.२।

२९. द० सा० ४.१३–१६, ८८.१३–१४।

३०. श० ४.२७; ६.६, २३.९।

३१. श० ३.२९, ३.३०, ३०.३१।

३२. श० ३ अ० ९; अ० ज्ञा० ३७.९।

३३. अ० च० ३४; श० १८.२९, २९.७।

महिमा अवर्णनीय है।[३४] कवि की वाणी इसका वर्णन नहीं कर सकती। यही सच्चा स्वर्ग है, जहाँ आत्मा सच्ची मुक्ति का उपभोग करता है। इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक आदि की भावनाएँ तो आत्माओं को भरमानेवाली हैं।[३५]

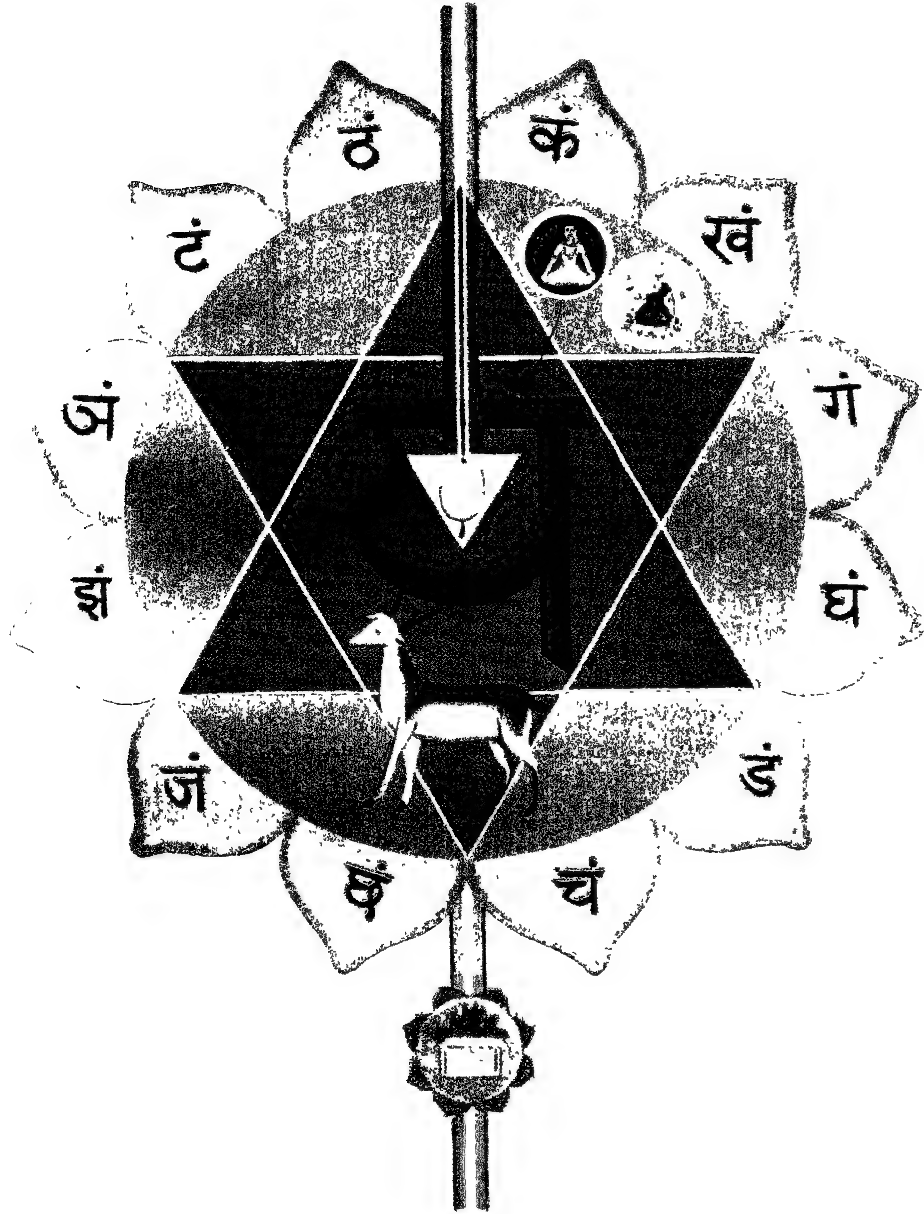
दिव्य दृष्टि के अमरलोक का अत्यधिक यथार्थवादी और साकार चित्र अंकित करते समय दरियासाहब इसके सूक्ष्म स्वरूप को भूलते नहीं। अतएव वे बहुधा रहस्यमय उक्तियों का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं—जल नहीं है, पर नदियों में बाढ़ आई है। नाविक है, पर नौका नहीं;[३६] वृष्टि है, पर बादल नहीं; मोती है, पर सीप नहीं; प्रकाश है, पर दीप नहीं।[३७] वहाँ सूरज नहीं है, चन्द्रमा भी नहीं है, दिन नहीं है, रात भी नहीं है। धूप और छाया कुछ भी नहीं है।[३८] ऐसी व्याघातात्मक एवं नेति-नेतिपरक उक्तियाँ पूर्व-वर्णित अमरपुर के विशद चित्र को रहस्यमय और गुह्य आवरण से ढँकने के अभिप्राय से ही व्यवहृत की गई हैं और इनका अर्थ इसी दृष्टिकोण से समझना उचित होगा। नदियाँ, सरोवर, हंस आदि कुछ भी वाह्य नहीं हैं; सभी इसी शरीर में और हमारी दिव्यदृष्टि के अन्तर्गत हैं।

तन सरवर मन देखु बिचारी, तामें सलिता तीन सुधारी।
ता में मानसरोवर अहई, हंस बंस कौतुक तहँ करई।।[३९]

योग-साधना के पथिक के लिये गुरु का मार्ग-प्रदर्शन अनिवार्य है। इसकी क्रियाओं में हजारों ऐसी विशेषताएँ हैं, जिन्हें न तो लेखनी द्वारा ठीक-ठीक वर्णन किया जा सकता है और न नवीन साधकों द्वारा उनकी व्याघातात्मक प्रतिक्रियाओं से बचकर उनका अभ्यास ही किया जा सकता है। इसीलिए साधु प्रभुदास जी विभिन्न क्रियाओं का वर्णन करने पर भी पाठक को, बिना गुरु की सहायता के उन्हें करने के विरुद्ध, चेतावनी देते हैं।[४०] ध्यान की विवेचना करते हुए एक स्थान पर वे केवल यही नहीं बताते कि इसे गुरु से सीखे; बल्कि वे कहते हैं[४१]—"सूक्ष्म ध्यान उत्तम साधन है। यह ध्यान कुण्डलिनी को जगाकर शांभवी मुद्रा द्वारा सिद्ध होता है।

गुरु अनिवार्य है

३४. द० सा० ७३.६; ज्ञा० मू० ५.३–६, २८.१, २६.१२।
३५. श० ४.१३, २७.२; दिव्य दृष्टि के संक्षिप्त चित्रवत् वर्णन के लिये पढ़िये—ज्ञा० दी० ११३–६ आ० और ११७.१ आ० तथा अ० सा० ३०.४, ३०.७–६; भ० हे० ३५.१३।
३६. द० सा० ७४. ८–६।
३७. श० १८.४०, ५३. १।
३८. श० ४. ३६, ५५. १; अ० ज्ञा० २८.०।
३६. द० सा० ११२. १–२।
४०. ब्र० प्र० पृष्ठ १४।
४१. ब्र० प्र० पृ० ५७।


कं
खं
गं
घं
ङं
चं
छं
जं
झं
ञं
टं
ठं

यह गुरु द्वारा मालूम कर लेना होगा। हमें यह साफ-साफ लिख देने का अधिकार नहीं है।" अतएव योग की सफलता के लिए गुरु में निस्सीम भक्ति और विश्वास अनिवार्यतया अपेक्ष्य है।

ईश्वर-प्रेम भी आवश्यक है

केवल यौगिक क्रियाओं की सिद्धि से ही काम चलने को नहीं। इससे हम अपने चरम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेंगे। साधक का हृदय प्रभु-प्रेम में मतवाला होना चाहिए। उसमें उसी भाँति आत्मसमर्पण की भावना होनी चाहिए जैसी पत्नी के हृदय में पति के प्रति अथवा प्रेमिका के हृदय में अपने प्रेमी के प्रति होती है।[४२] दरियासाहब कहते हैं[४३]—

बिना प्रेम नहिं पंथ है, पंथ प्रेम के पास।
बिनु सतगुर नहिं दरस है, का कहि कथें उदास॥

---

४२. पत्नी भाव से प्रभु की पूजा के सम्बन्ध में परिच्छेद 'प्रेम' देखिये।
४३. स० रा० ३२४।

दशम परिच्छेद

सृष्टि-विज्ञान

दरिया साहब के दार्शनिक विचारों का विवेचन करते समय यह कहा जा चुका है कि देवों और मानवों की सृष्टि की व्याख्या के लिये उन्होंने निरंजन का अस्तित्व अंगीकार किया है।[1] इस परिच्छेद में सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी जो विचार दरियासाहब ने प्रस्तुत किये हैं, उन्हीं का संक्षिप्त विवरण दिया जायगा।

सृष्टि के पहले शून्य था

सृष्टि के आदि में केवल शून्य था।[2] न देवता थे, न उनके अवतार। सूर्य, चन्द्र और तारे भी नहीं थे। न फल था, न फूल। न गंगा थी, न यमुना। न गण थे, न दोष। न यज्ञ था, न तप। न पाप था, न पुण्य। न जन्म था, न मृत्यु।[3] केवल पुरुष (ईश्वर) था—सर्वथा अकेला।

पुरुष के मन में सृजन की इच्छा उत्पन्न हुई।[4] उसने एक पुत्र निरंजन (जिसे अन्य स्थानों में अब्दुल्ला भी कहा गया है) और एक पूर्ण विकसित युवती पुत्री (जिसे आदि ज्योति, जगज्जननी या आदि भवानी भी कहते हैं)[5] की सृष्टि की। तब उसने पृथ्वी की सृष्टि खड़ी कर दी और उसे सुमेरु पर्वत की अड़ानी लगाकर स्थिर किया।[6] निरंजन की आंख जब उस बाला पर पड़ी, तब वह अपनेको नियंत्रित न कर सका और उन दोनों का सम्मिलन हुआ।[7] इस सम्मिलन से त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु और महेश—की उत्पत्ति हुई।[8] उन देवों की माता ने तब उन्हें समुद्र-मंथन की आज्ञा दी।[9] इस समुद्र-मंथन से तीन वस्तुएँ निकलीं—वेद, तेज और हलाहल विष।[10] इन्हें इन लोगों ने आपस में बाँट लिया। ब्रह्मा ने

---

१. देखिये—खंड २, परिच्छेद ३।

२. ज्ञा० र० ७.१।

३. द० सा० १०२.१–५ ; ज्ञा० र० ७.१–११ ; भ० हे० २४.५–८।

४. द० सा० १०३.०।

५. द० सा० १०३.१ ; कुछ उद्धरणों में यह भी कहा गया है कि सृष्टि-आरंभ के पहले निरंजन थे और पुरुष के साथ-साथ रहते थे। ज्ञा० र० ६.८–९ ; भ० हे० २४.६।

६. ज्ञा० र० ८.१।

७. स० रा० ६७।

८. द० सा० १०२.५।

९. ज्ञा० दी० ६०.०।

१०. ज्ञा० दी० ६०.१–२।

वेद लिया, विष्णु ने तेज और महेश ने हलाहल।[११] जब वे यह पराक्रम करके लौटे, तब उनकी जननी ने उन्हें तीन कुमारियाँ प्रदान कीं --सावित्री, लक्ष्मी और देवी--प्रत्येक को क्रमशः एक।[१२] तदुपरान्त इन्ही तीनों जोड़ियों से सृजन-क्रिया का विस्तार होकर चतुर्विध सृष्टि—अण्डज (अण्डे से उत्पन्न होनेवाला जीव), पिण्डज (शरीर से उत्पन्न होने वाला जीव), उष्मज (स्वेदबिन्दुओं से उत्पन्न होनेवाला जीव) तथा अचर (जिसे अनचर भी कहते हैं और जिसका अर्थ है स्थिर पदार्थ)--का विकास हुआ। इनमें से प्रथम अर्थात् अण्डज की सृष्टि का भार स्वयं जगज्जननी पर पड़ा और अन्य तीनों की सृष्टि क्रमशः उपर्युक्त तीनों देवताओं से हुई।[१३] इसके अतिरिक्त ब्रह्मा ने चारों वेदों की सृष्टि की तथा विधियों का विधान किया।[१४]

सृष्टि-रचना में रूपक अलंकार का व्यवहार

सृष्टि की जो रूपरेखा[१५] ऊपर दी गई है, उसे निरी कपोल-कल्पना नहीं समझना चाहिए। इसमें कतिपय भावनाओं के पीछे जो रूपक छिपा है, उसे दरियासाहब अच्छी तरह समझते हैं। उदाहरणतः सृष्टि-विषयक वर्णन में एक स्थान पर कहते हैं कि तीनों देवता तीनों गुणों—सत्त्व, रजस् और तमस्—के प्रतीक हैं।[१६] उनके कथनानुसार ये ही तीनों इस जगत के आधार हैं जिसमें पंचतत्त्व, पच्चीस प्रकृतियाँ और इनसे विकसित अनगिनत विभूतियाँ विद्यमान हैं।[१७] एक सत्पुरुष से त्रिगुणों की सृष्टि और फिर इस सृष्टि-क्रिया के उत्तरोत्तर विकास को व्यक्त करने के लिए भिन्न-भिन्न उपमा-रूपकों का प्रयोग किया गया है। इनमें से एक जो दरियासाहब को बहुत प्रिय है, वह है—एक ही वृक्ष से तीन शाखाओं का फूटना। देखिये--

---

११. ज्ञा० दी ६०.० आ०।

१२. ज्ञा० दी० ६०.० आ०

१३. ज्ञा० दी० ६०.१०, ६१.०।

१४. द० सा० १०४.० ; सृष्टि का थोड़ा भिन्न वृत्तान्त निम्नांकित पद्यों में देखिये--

१५. ज्ञा० दी० ५६,४, ६१.० ; द० सा० १०२.१, १०४.० ; सृष्टि-विकास का जो रूप श० ३ अ. १३-१४ में दिया गया है, वह इस परिच्छेद के प्रस्तुत रूप से कई अंशों में भिन्न है। वहाँ सत्पुरुष से कूर्म की और कूर्म से सूर्य, चन्द्र, तारों, वायु, जल, अग्नि, शेष और वराह की उत्पत्ति बताई गई है। इस प्रकार के वृत्तान्तों की सार्थकता इसमें है कि वे निरंजन और जगज्जननी के योग से मानवों और देव-दानवों की उत्पत्ति के सामान्य सिद्धान्त की पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं।

१६. ज्ञा० दी० ५६.१०; ज्ञा० र० ६.८; अ० ज्ञा० ७.१, ८.१ आदि।

१७. ज्ञा० दी० ३८.६—७।

आदि हि एक औ अंत फिरि एक है मूल ते फूटि तिनि डाड़ कीन्हा ।
पाँच औ तत्तु पचीस प्रकीति है तीनि गुन बाँधि कलबूद दीन्हा ।।

आदि।[18]

उपरिर्वाणत सृष्टि-विज्ञान को ध्यान में रखते हुए जब हम यह पाते हैं कि दरिया साहब कतिपय अन्य प्रसंगों में 'मन' और 'माया' अथवा 'निरंजन' और 'माया'[19] इन्हीं दोनों को विश्व की अनेकता और विषमता के मूल उत्तरदायी ठहराते हैं, तब हमें इस बात में तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि निरंजन और आदि ज्योति के साकार स्वरूप की ओट में एक सूक्ष्म कल्पना छिपी है जो दरियासाहब के द्वारा प्रतिपादित पुरुष और प्रकृति के संयोग से विश्व की सृष्टि के सुसंगत-सिद्धांत का एक अंग है और उसके साथ सर्वथा मेल खाती है।[20]

---

१८. श०, ३ अ. ५६।

१६. श० ५०.६ ; ज्ञा० र० ८.६ ।

२०. परिच्छेद—'दार्शनिक पृष्ठभूमि' देखिए। माया और जगत् के सम्बन्ध में और भी बातें परिच्छेद 'माया' में देखिये ।

एकादश परिच्छेद

माया

दरिया साहब के विचारों की दार्शनिक पृष्ठभूमि का वर्णन करते समय यह बताया जा चुका है कि जगत् मिथ्या है और माया-जन्य है।[1] सृष्टि के निर्माण-प्रकार में माया

मन और माया जगत् के उत्तरदायी

नारी-शक्ति का प्रतीक है और मन पुरुष-शक्ति का[2]। अथवा यों कहा जाय कि वे दोनों मिलकर इस जगत् की सृष्टि के लिये उत्तरदायी हैं जिसमें जरा, जन्म और मृत्यु के ऐसे जाल बिछे हुए हैं जिनसे देवता, ऋषि कोई भी न बच सका और न बच सकता है।[3] सुविधा के लिये मन या माया किसी एक को ही—और बहुधा माया को ही—सृष्टि का कारण मानकर वर्णन किया गया

जगत्

है। यह जगत् भ्रम और दुःखों से परिपूर्ण है, यह 'मुरदों का गाँव' है, मरिमरि जनम होय जिहि ठाऊँ;[4] यह वैसा स्थान है। इसकी उपमा बहुधा एक सागर (भवसागर) से दी गई है जिसमें आकर आत्मा भटक पड़ा है और अपना दिग्ज्ञान खो बैठा है।[5] यह रोगों का घर है।[6] तीनों गुण ही इस भवसागर की तीन प्रचण्ड धाराएँ हैं जिनमें रात-सदृश ऐसे भँवर हैं जो जीवात्मा को अस्सी लाख जन्मों के चक्र में बार-बार नचाते रहते हैं। बड़े-से-बड़े तैराक भी इन भँवरों में डूबकर मर चुके हैं।[7]

माया के वर्णन-प्रसंग में दरियासाहब की कविताएँ अलंकारों और प्रतीक-वाक्यों से भरी पड़ी हैं। माया एक भयंकर 'काली नागिन' है;[8] एक विषैली लता है जो हमारे

---

१. उक्त विषयक परिच्छेद देखिये।

२. दार्शनिक दृष्टि से मन=पुरुष (सत्पुरुष नहीं) और माया=प्रकृति (देखिये, परिच्छेद—१)।

३. ज्ञा० र० ८·६–७; श० ५०.६; ज्ञा० दी० २७·४–१०; कुछ प्रसंगों में माया-जाल की उलझन को 'नौ मन सूत' के उलझने से तुलना की गई है। श० ५०.६; भ० हे० ३६.४–५।

४. ज्ञा० स्व० ८८, ६१, २७०।

५. ज्ञा० स्व० ६०।

६. ज्ञा० स्व० ८६।

७. ज्ञा० स्व० ४६–५१; २७५।

८. स० रा० २२२।

काया-द्रुम[९] में लिपटी है ; एक वेश्या है जो साधुओं से भागती फिरती है और व्यसनी जीवों को भरमाये रहती है[१०] ; एक 'चूहड़ी' है जो आत्मा और परमात्मा के बीच झगड़ा लगा कर, उन्हें एक दूसरे से अलग रखकर, स्वयं एक किनारे खड़ी होकर तमाशा देखती है ;[११] एक कलवारिन है जिसने वासना की मदिरा पिला-पिला कर सारे जगत् को लोलुपता के आवरण से ढँक रखा है ;[१२] एक ऐसी चंचल और विश्वासघातिनी दासी है जो 'काहु की भई न होनी'[१३] ; एक ऐसी कामिनी है जिसकी 'पाँच-पचीस' सखियाँ हैं, जिसके नयनों में काजल है, जो 'नखसिख अभरन' से लदी 'झमकि-झमकि पगु ठाड़ी' है, जो 'नित उठि झगरा करे खसम से रगड़ा साँझ सकारि'[१४] । एक अन्य स्थान पर माया की उपमा उस 'समधिन' (पुत्रवधू की माँ) से दी गई है जो नख से शिख तक चमत्कृत आभूषणों से विभूषित है और जिसने अपने मोहनमंत्र से वेदों, ऋषियों और मानवों को मुग्ध कर भरमा रखा है ।[१५] यह वह दीपशिखा है जो जीव रूपी पतंगों को आमंत्रण दे-देकर बुलाती है और पास आ जाने पर उन्हें जला कर राख कर डालती है ।[१६] यह एक मीनाबाजार है, जिसकी रंगविरंगी मोहकता पर मानव की आँखें चकाचौंध हो जाती है ।[१७] यह वह कठिन कष्टमय कंटक है, जो सत्य और धर्म के मार्ग में बाधा बनकर पड़ा है ।

माया का वर्णन

माया बड़ी शक्तिशालिनी है । इससे पुरुष भी नहीं बच सके ।[१८] ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, गणपति, शेष, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, शुकदेव; सनकादि; ऋषि और संत; मीर और फकीर; योगी और यति; यहाँ तक कि कबीर भी इस स्वर्ण-जाल से नहीं बचे और उसके हिंडोले में झूलते रहे ।[२०] भवानी शिव की पत्नी हैं और सीता राम की । पर वास्तव में वे माया के ही प्रतिरूप हैं । जग में कौन ऐसा है जो माया की प्रलोभन-शक्ति का

माया की असीम प्रभुता

९. स० रा० ४८ ।

१०. स० रा० २१९ ।

११. स० रा० २२१ ।

१२. ज्ञा० स्व० २२; श० २३·१०, ५७·१ ।

१३. ज्ञा० स्व० ५४–५५ ।

१४. श० २२.२२; 'पाँच-पचीस' सखियों से तात्पर्य पाँच-तत्त्वों और पचीस प्रकृतियों से हैं । देखिये परिच्छेद—९ ।

१५. श० ४७·१ ।

१६. ज्ञा० र० ३६·५ ।

१७. श० ७.७ ।

१८. ज्ञा० स्व० ४८ ।

१९. श० ७.७, १९. ८ ; अ० सा० ४.१३ ।

२०. श० ९.३, १८.१८, १९.११, २४.१६, २७.१ ।

निराकरण कर सका ?[२१] इससे 'तीन लोक में आग लगाया, भागि कहाँ अब जाई।' इसकी ज्वालाएँ दिग्-दिगंत-व्यापी हैं, उनसे निस्तार पाना कठिन है।[२२] यह अगम है, अनन्त है, अपार है; इसके जो तीनों गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्—उन्होंने सबको बंधन में जकड़ रखा है।[२३] इसका जाल अनंत तक है।[२४] यह 'काल का फंदा' है।[२५]

माया के जाल में मानव : द्योतक उपमाएँ

मानव माया के इंद्रजाल में उलझा हुआ है।[२६] उसकी विवेक-बुद्धि, विषय-बेलि से ढँक गई है अथवा कुमति-कांट में उलझ गई है।[२७] उसके लिए गंगा विपरीत दिशा में बहती है। उसे पूर्व का पश्चिम और उत्तर का दक्षिण दिखाई देता है।[२८] वह जन्म-मरण के चक्र में भटकता रहता है[२९] और बार-बार उसे यम की यातना सहनी पड़ती है।[३०] वह उस कुत्ते के समान है जो ऐनभवन (दर्पण-जड़े हुए कमरे) में अपनी ही परिछाईं पर भूक-भूक कर प्राण गँवा देता है;[३१] उस सिंह के समान, जो कुएँ में अपने ही प्रतिबिम्ब को प्रतिद्वन्द्वी समझ कूद कर मौत के मुंह में पहुँच जाता है;[३२] उस हाथी के समान है जो स्फटिक-शिला में अपनी ही प्रतिमा देखकर उस पर टूट पड़ता है और चट्टान से टकरा कर अपना दाँत-मुँह तोड़ लेता है;[३३] उस मृग के समान है जो प्यास से व्याकुल होकर व्यर्थ ही मरीचिका के पीछे दौड़ कर प्राण दे देता है[३४] अथवा उस कस्तूरी मृग के समान है जो अपनी ही नाभि की कस्तूरी की सुगंधि को घास में ढूँढ़ता फिरता है।[३५]

माया का प्रभाव जतानेवाली कहावतें और लोकोक्तियाँ

मोह में फँसे हुए व्यक्ति का वर्णन करने के लिए दरियासाहब ने कहावतों और लोकोक्तियों का प्रचुर व्यवहार किया है। ऐसा व्यक्ति भीतर, बाहर—दोनों तरफ—अंधा है।

---

२१. ज्ञा० र० ११.१२ ; ज्ञा० मू० १६.७ ।

२२. श० ६.२ ।

२३. ज्ञा० दी० ३.८–६ ।

२४. ज्ञा० र० १८.१०, ३५.१३ ; ज्ञा० दी० ५८.२० ।

२५. ज्ञा० र० ७६.१६ ।

२६. श० ३ अ. ४६ ; ज्ञा० र० १०३.२० ।

२७. श० ६.१, ५७.२ ।

२८. श० ५.७ ।

२९. श० ६·८३ ।

३०. श० ३ अ. ६५ ।

३१. श० २ अ. ६,२२.१३ ।

३२. श० २ अ. ६, २२.१३ ।

३३. श० १८.५५ ।

३४. श० १८.५५ ।

३५. श० १८.५५, २२.१३; अ० सा० १२.६—६ में भ्रान्त व्यक्ति की तुलना उस भ्रमर से की गई है जो कमल को छोड़कर विषैली झाड़ी में चक्कर देता है।

'उपर की फूटि भितर की फूटी, चारो फूटि बिलाना।'[३६]

अथवा, बाहरी नेत्र हैं भी, तो अन्तर्दृष्टि अन्धी है:—"ऊपर की आंजिया, भीतर की फूटिया"।[३७] वह स्वयं अन्धा है, पर दूसरों की आँखों में उँगली डालता है—

अपने अन्धा आगु ना सूझै आनहि आँगुरि लावै।[३८]

वह स्वयं बहरा है और उसका गुरु अंधा—

आँधिर बधिर दुनों एक मिलके गुरु सिख बहुत अनारी।[३९]

जो रोगी को भाता है, वैद्य भी वही बताता है—"रोगिया चाहे सौ बैद्य बतावै।"[४०] मोह-जाल में पड़ा व्यक्ति उस मूर्ख के सदृश है, जो अपने पाँव में आप कुल्हाड़ी मारता है।[४१] हम उसकी बाहरी आकृति पर भरोसा नहीं कर सकते; क्योंकि उसका 'ऊपर उजर भितर है करिया।'[४२]

कामिनी और कनक

माया के दो प्रधान अस्त्र कामिनी और कनक हैं। शंकर, विष्णु ब्रह्मा और राम—सभी स्त्री से प्यार करते थे।[४३] कृष्ण और राधा की कहानी—मुरलीवाले कृष्ण और 'कदलिपग' और 'चंचल विशाल' लोचन वाली राधा किसे नहीं मालूम हैं?[४४] शिव किस तरह कामदेव से विद्ध हुए—यह सभी जानते हैं। ऋषि पराशर, मत्स्योदरी के प्रेम-जाल में फँसे तथा नेमि और शृंगी ऋषि भी मृग-नयनियों के नयन-वाण से विद्ध हुए; यह किसे विदित नहीं है।[४५] काम ने सबको परास्त किया।[४६] हम सर्वत्र दूल्हा-दूलिहन की जोड़ी देखते हैं, पुष्पों पर भ्रमर मँड़राते देखते हैं।[४७] अपनी पत्नी से संतुष्ट न होकर लोग

---

३६. श० १८.५७।

३७. श० ३ अ. ५८; तात्पर्य यह कि यद्यपि वह देखने में अन्धा नहीं है, फिर भी वह तत्त्वतः अन्धा है; क्योंकि वह विवेक रूपी अन्तर्दृष्टि से वंचित है।

३८. श० ५. २८; आँखों में उँगली करने से तात्पर्य यह है कि स्वयं नेत्रदोष होते हुए दूसरों को उसके नेत्रदोष के लिए भर्त्सना करता है।

३९. श० २२. २१।

४०. श० २२-२१।

४१. श० ३ अ. ६४।

४२. श० १६.५; उसके हृदय की कलुष भावनाओं से मतलब है।

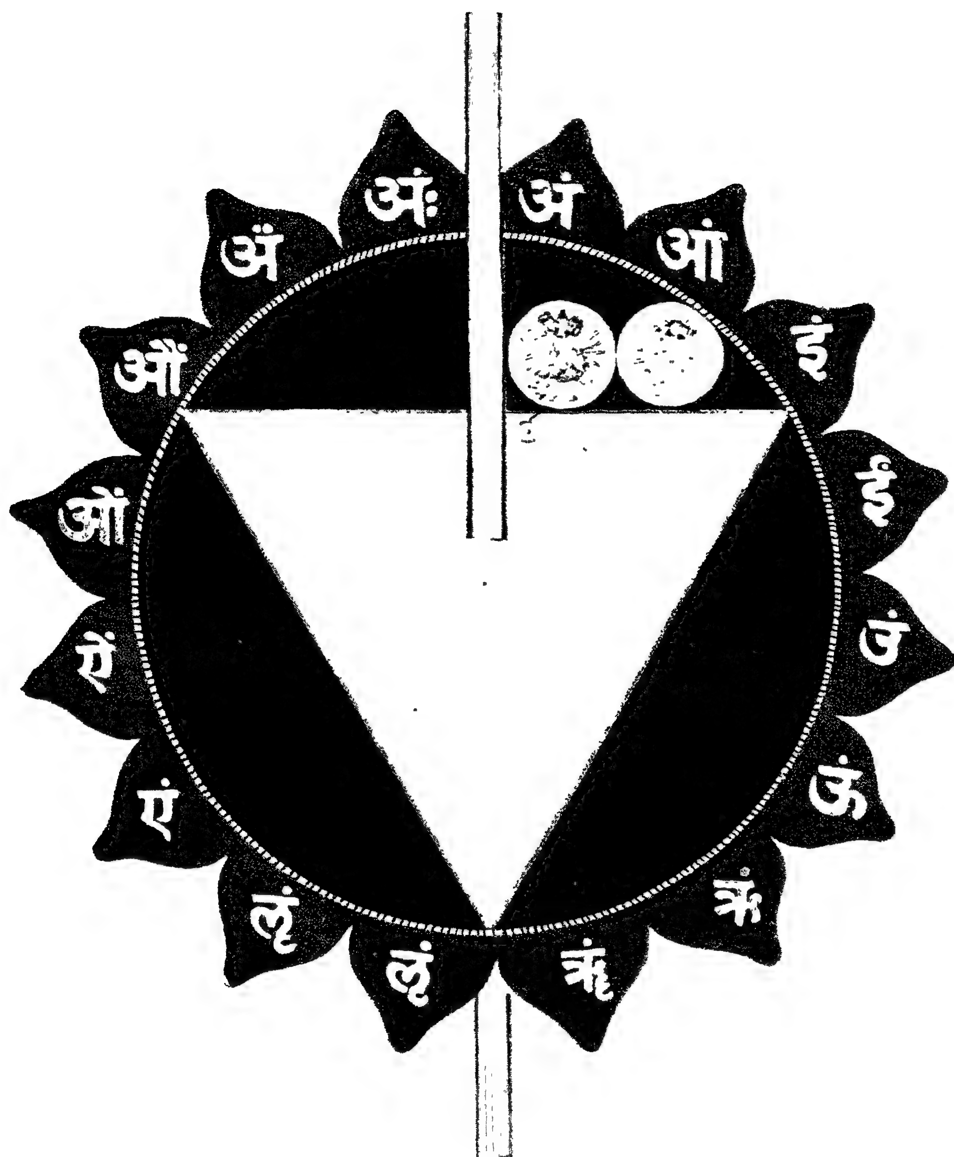
४३. श० ४. १४, १६. ५, २४. ११; श० र० ४. २।

४४. श० ३.४६, २४. १६।

४५. श० ४. १६, २४. १६।

४६. श० ४. १४.

४७. श० १. ११३।



विशुद्ध चक्र

वेश्या के यहाँ जाते हैं।[४८] उन अज्ञानियों को इसका ज्ञान ही नहीं होता कि व क्षणभंगुर है और उपहार में मिलती है वेदना और निराशा।[४९]

धन ही हमें तथ्य के प्रति अंधा बना देता है। इसके प्रभाव मे हम सत्य नहीं पहचान पाते। एक राजा की बात लीजिए। युवावस्था में राजकीय वैभव-वि का उपयोग करते हुए वह हाथी-घोड़ों पर चढ़ता है और सुन्दर परियों के बीच अ करता है।[५०] उसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि विपत्ति प्रबल है और वह राजा और में कोई अन्तर नहीं रहने देती। जब 'बीस भुजा दस सीस रावना' और 'संग सैना जुरजो का भी विनाश हो गया; 'बहुतो गरबी गरद मिलें, नाहीं रहा निसानि', तब छोटे-मोटे रा की कौन कहे?[५१] जब मृत्यु-घड़ी बज उठेगी, तब उनके हाथी-घोड़े और सोने-हीं ही पड़े रह जायँगे और उन्हें हाथ पसार कर इस दुनिया से कूच करना पड़ेगा। पत्नी, महल, सभी व्यर्थ हो जायँगे। शरीर का अन्तिम परिधान तक उतार जायगा और उसे जलाकर खाक कर दिया जायगा।[५२] हमारा जीवन इस जग प्रबल धारा वाली नदी के एक बुलबुले के समान है, जो किसी क्षण विलुप्त हो सकता है।[५३]

जो सोने के मनोहर जाल[५४] में बँधा है, उसकी कामना सदा अपूर्ण रहती है। उसके पास एक है तो उसको दो चाहिए और दो के पा लेने पर तीन, पाँच, हजार और लाख चाहिए; उसे मांस, मछली का आहार चाहिए; किन्तु दुर्दैववश यदि करोड़पति की पूंजी लुट जाय, चोर चुरा ले या राजा छीन ले, तो वह रंक हो जा और दर-दर की ठोकरें खाता है। अन्ततोगत्वा 'चारि जना मिलि खाट उठाया' चितारथ पर ले जाकर श्मशान में जला दिया।[५५] सभी भोग-विलास का यही अन्त दरिया साहब कहते हैं--[५६] "जग में जीवन थोरा थोरा थोरा, वो इयार जी।"

माता-पिता, बेटा-बेटी, पति-पत्नी आदि के जो सांसारिक सम्बन्ध हैं, ये बन्धन के कारण हैं।[५७] 'मैं' या 'मेरा' आदि में जो अपनापन की भावना है श 'तुम' या 'तेरा' आदि मे परायेपन की भावना है; वह अग्राह्य और अनुचित है।[५८]

४८. श० २२. २०, २२. २३।
४९. श० १. ११३।
५०. श० १. ५७।
५१. श० ४६. ७–८।
५२. श० २०. १८, २२. १७।
५३. श० १८. २२, २०. २२।
५४. श०·१८.५३।
५५. श० १६.७, २०.४, २२.२०, २४.४.।
५६. श० ३८.१।
५७. ज्ञा० र० ६१.३ (आगे); श० २०, ११, २०, १६।
५८. श० १८.५३।

प्रकार की भावनाएँ वासना की विषमय वेलि की शाखाएँ हैं।[५९] अहभावना से ही अभि-मान की उत्पत्ति होती है और अभिमान ही पतन का कारण है।

इस उक्ति का पूर्ण समर्थन नारद-सम्बन्धी दो उपाख्यानों से होता है जिन्हें दरिया साहब ने कवितावद्ध किया है। उनका संक्षिप्त सार नीचे दिया जाता है।

प्रथम उपाख्यानः—[६०] एक बार नारद माया के जाल में आ फँसे, उन्हें अहंकार हो गया। उन्होंने गंगा में डुबकी जो लगाई तो बाहर आकर एक सुन्दर युवती राजकुमारी बन गए। जब वह राजकुमारी नाविक के पास पहुँची तब नाविक ने उसका नाम, ग्राम और माँ-बाप का पता-ठिकाना पूछा। पर, वह केवल यही बता सकी कि उसके माँ-बाप, सगे-सम्बन्धी कोई भी नहीं है। नाविक उसे लावारिस सम्पत्ति समझकर अपने घर ले आया और उसने उसे भोजन पकाना तथा घर के अन्य छोटे-बड़े काम-धाम सौंप दिये। दूसरी बार गंगा में गोता लगाने के बाद नारद की पुनः पूर्वस्थ पुरुषवाली आकृति लौट आई। अपना असली स्वरूप पाकर उन्होंने यह सारी कथा अपनी पत्नी से कही तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

नारद उपाख्यान

द्वितीय उपाख्यान[६१]:—एक दूसरे समय की बात है कि नारद पूर्ण स्वस्थ अवस्था में थे। उनका शरीर सर्वथा हृष्ट-पुष्ट था। माया से प्रेरित होकर उन्हें अपने आत्मसंयम की शक्ति पर घमण्ड हो गया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उन्होंने काम-वासना को जला डाला है। वे अपनी प्रशंसा करते हुए सनकादि ऋषियों के निकट और तत्पश्चात् शिव और विष्णु के पास पहुँचे। सबों ने उनकी चाटुकारिता की। इस मिथ्या प्रशंसा से माया का बन्धन और भी दृढ़ होता गया। माया ने तब एक माया नगरी (इन्द्रजाल नगर) बसाई जिसमें झूठा बाजार, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, प्रचुर सम्पत्ति का प्रदर्शन, राज-प्रासाद और उसमें राजा-रानी तथा राजकुमारी—सब प्रकार के वैभव का निर्माण किया। राजा ने नारद को आमंत्रित किया और उनसे राजकुमारी का हाथ देखकर शुभाशुभ की गणना करने की प्रार्थना की। राजकुमारी सुन्दरता की प्रतिमा थी—बलखाती हुई लटें, कमान-सी भौंहें, शुकनासिका-सी नाक, कानों में तारे सदृश जगमग हीरे-मोती, अनारदाने से दाँत, होठों पर मुस्कान, सुडौल शंख-सी गर्दन, स्वर्णकलश-से उभरे हुए उरोज, कमल-नाल-सी भुजाएँ, केसरिणी-सी क्षीण-कटि, कदली-स्तम्भ-सी जंघाएँ और गज-सी मन्थर गति। वह माया की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति, हाथों में जयमाल लिये खड़ी थी। बेचारे नारद सुधबुध खो बैठे। उनकी नसों में बिजली दौड़ गई। वे उसे पाने के लिये व्याकुल हो उठे। वे दौड़कर विष्णु के पास पहुँचे और उनसे राजकुमारी का पाणिग्रहण करने योग्य सुन्दर स्वरूप माँगा। विष्णु ने उन्हे एक सुन्दर पुरुष की आकृति दे दी; पर मुख बन्दर-सा बना दिया। जब नारद राजकन्या के निकट पहुँचे तब उन्हें यह समझ में न आया कि सभी

५९. श० २०.१३।

६०. ज्ञा० दी० ४८.१ आदि।

६१. ज्ञा० दी० ४६.१८, ५६.५; इस कथानक मे माया को मूर्त्त रूप में वर्णित किया गया है।

लोग उन्हें देखकर हँस क्यों रहे है। तब उन्होंने अपना मुंह दर्पण में देखा और विष्णु की दुष्टता पर उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। पर विष्णु ने उन्हें धैर्य दिलाया और समझाया कि ऋषि होते हुए भी वे राजकुमारी के मोह में व्याकुल हो उठे, यह उनकी भूल थी; और इसी को सुधारने के लिये, उनकी सद्दृष्टि लौटाने के लिए ही, विष्णु ने वैसा किया था। नारद का मोह दूर हो गया और तब उन्हें ज्ञान हुआ कि माया कितना अनर्थ कर सकती है और उसका सर्वथा दमन करना कितना कठिन कार्य है।

माया के वर्णन में प्रतीकवाद

दरिया साहब ने माया का वर्णन करने के लिए प्रतीकवाद[६२] का पूर्ण प्रयोग किया है। प्रधानतया तीन तरह के प्रतीकों का व्यवहार किया गया है--

(१) ऋजु प्रतीक (निहित रूपक)

(२) अद्भुत-प्रतीक (अद्भुत घटनाओं द्वारा असंगति मे संगति का आधान)

(३) उलटवाँसी (उलटी-पुलटी बातों और परिस्थितियों के वर्णन द्वारा माया की विपरीत गति की ओर संकेत)। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है--

(१) ऋजु प्रतीकवाद--(क) "हरि तुम ऐसो रंग मचिन्दा।
देखि नेउरिया नाचन लागी सिंघ बजाउ सरिन्दा॥
झींगुर झाल मिरदंग बजावै मेढ़क ताल झरिन्दा।
बीली कूदि सिंगासन बैठी सुगना चंवर ढरिन्दा।"[६३]

प्रतीकार्थः--नेउरिया=माया; सिंह=आत्मा ;
बिल्ली=माया; सुग्गा=आत्मा ;

अर्थात्--आत्मा माया के प्रलोभनों मे पड़कर उसके नचाए नाच नाच रहा है।

(ख) "ओयौं ने एक मुरगी पालिसि सीस पाँव नहिं ठौरी।"[६४]

प्रतीकार्थ--मुरगी=माया; अर्थात्, माया की गतिविधि अज्ञेय है।

(ग) "साधो एक बन झाकर झउआ।
लावा तितिर तेहिं माँह भुलाने सान बुझावत कौआ।"

प्रतीकार्थ--बन झाकर झउवा=माया रूप जगत्;
लावा और तितिर=आत्मा;
कौआ=मन, जो माया का मित्र या स्वयं भी माया रूप है।

अर्थात्:--माया के प्रताप से पुण्यात्मा को कष्ट होता है और पापात्मा चैन करता है।

(२) अद्भुत प्रतीकवादः--(क) "सिंघ सियार कहै दुनो भाई।"[६६]

---

६२. इसके साथ ही साथ खण्ड ३, परिच्छेद (शैली: प्रतीक भाषा) देखिये।
६३. श० २४.१०।
६४. श० १७.२३।
६५. श० १७.६।
६६. श० ५.३१।

प्रतीकार्थः—सिह=आत्मा, सियार=माया अथवा मन ; अर्थात् माया ने आत्मा को जाल में फँसा रखा है।[६७]

(ख) "मूंस मंजारहि भई सगाई, मिलि जुलि मंगल गाई।",[६८] अर्थात्, आत्मा से माया ने मित्रता सजा रखी है।

(३) उलटवांसीः—(क) 'साहु के माल चोरि धरि साधा, साहुनि कूदि साहु के बांधा।"[६९]

इसका अर्थ यह है कि यह दुनिया गोरखधंधा है और माया के प्रताप से आत्मा इसमें आकर फँस जाता है और अपने-आपको भूल बैठता है।

(ख) "चरुई के भात चूल्हि ने खाया दालि जो हँसी ठठाई।
परबत बूड़े भूमि नहिं भीजे कादो बकुलहि खाई।"[७०]

इसका भी वही अर्थ है जो ऊपर (३) (क) का है।

(ग) "चलै सिकारी सावज मारन उलटा सावज खाता।"[७१]

अर्थात् आत्मा पूर्णतया माया के वश में है।

इन उलटवाँसियों (विपरीतोक्तियों) का व्यवहार माया की असीम भ्रांतकारिणी शक्ति का द्योतन करने के अभिप्राय से किया है। जैसे—किसी व्यक्ति के माया के चंगुल में पड़ने का वर्णन जब दरिया साहब इस प्रकार करते हैं—

"मानुष दिल जब फिरे फिरंगा उलटा गंगा बहई।
पुर्ब के भान पछिम जनु अहई उतर दखिन के कहई।"[७२]

तब ऐसी उक्तियों में हमें उस विशाल संत-साहित्य की विशिष्ट शैली का परिचय मिलता है, जो रहस्यपूर्ण प्रतीकवाद से ओत-प्रोत है।[७३]

---

६७. श० १७.२०।

६८. श० १७.२१।

६९. श० ५.३१।

७०. श० ६.१।

७१. श० १७.६।

७२. श० ५.७।

७३. प्रतीकवाद का वर्गीकरण श्रीरामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के आधार पर किया गया है।

द्वादश परिच्छेद

ज्ञान और भक्ति

ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों के लिए परमात्मा में भक्ति होनी परमावश्यक है। भक्ति के बिना जीवन उस पेड़ के समान है, जिसमें न फल हो और न फूल; उस कमल के समान है जो बिना सरोवर का हो; उस दीप के समान है जिसमें बाती न हो; उस पत्नी के समान है जिसका पति न हो; उस सर्प के समान है जिसमें मणि न हो और उस मछली के समान है जो नीर के लिये तड़पती हो।[१] भक्तिहीन मानव की तुलना जलहीन 'मसक' से भी की गई है।[२] यदि किसी के पास सोने-चाँदी का अम्बार लगा हो, उसके लिये कुसुम-शय्या बिछी हो; पर यदि भक्ति नहीं है तो सब व्यर्थ है। जिस प्रकार चकोर का मन चन्द्रमा में, भौंरे का मन कमल में और मीन का मन नीर में लगा रहता है—उनके बिना ये व्याकुल बने रहते हैं; उसी प्रकार हमारा मन भी भगद्भक्ति में लगा रहे।[3] हमें सतनाम की आराधना करनी चाहिए। केवल यही मूल्यवान है और तो सारा जगत् निस्सार है।[४] 'शब्द' परिच्छेद में बहुत-सी कविताओं के दरियासाहब ने दुहराया है कि—"एक नाम अलंम सही करता।"[५]

भक्ति

सत्त नाम को उपमा एक तलवार से दी गई है जिसे अधिकृत कर लेने पर कोई भय नहीं रह जाता।[६] जो नाम भजन से रहित है, वे तो मानों यम के हाथ बिक चुके हैं।[७] ऐसा व्यक्ति एक ठूंठ वृक्ष[८] के समान है और उसे जन्म न देकर यदि उसकी माँ बन्ध्या ही रहती तो कहीं अच्छा था।[९]

सत्त नाम

---

१. श० १.७५, ४.४२।

२. द० सा० ३५.६।

३. श० १.७५, ४.४२ ।

४. द० सा० ५०.०।

५. श० १.८२।

६. श० ३ अ. १, ४.३६।

७. श० ६.१।

८. द० सा० ५५.२; सत्तनाम की आलोचना परिच्छेद सत्पुरुष में देखिये।

९. द० सा० ५५.०।

दरिया साहब की भक्ति 'दास्य' भक्ति है, जिसमें भक्त अत्यन्त विनम्र होकर अपने आराध्य देव के चरणों में आत्म-समर्पण कर देता है। वह अपने प्रभु का 'गुलाम' है, उसका स्वामी 'गरीबनिवाज' और 'बन्दीछोड़' है। वह सच्चे आराधक के 'गुन ऐगुन' की खोज नहीं करता। आराधक को भी केवल शरण चाहिए और उसे शरण न मिली, तो उसकी क्या क्षति? स्वयं प्रभु के नाम में बट्टा लगेगा। अतः अपनी लाज बचाने के लिए भी प्रभु को शरण देनी पड़ेगी।[१०] जिस प्रकार पिता कुपूत से भी प्यार करता ही है, उसी प्रकार भक्त 'गुलाम गुनहगार बहुतेरा' रहने पर भी परमपिता 'बेब्राहा' से प्रतिपाल की ही आशा रखता है।[११] दरिया साहब को भी इस बात का दृढ़ विश्वास है कि स्वामी अपने चाकर को कभी नहीं भुलाता। यदि प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी, कबीर, नामदेव आदि असंख्य व्यक्तियों का कष्ट निवारण कर प्रभु ने उन्हें अचल पद प्रदान किया, तो दरिया को ही क्यों उस सर्वशक्तिमान की दया पर सन्देह हो?[१२]

भक्ति का स्वरूप

किन्तु भक्ति सच्ची हो, दिखावटी नहीं। बहुत-से लोग नाम-मात्र के भक्त हैं; क्योंकि वे इस बात को ठीक-ठीक समझते ही नहीं कि किस प्रकार उन्होंने सगुण अवतारों की उपासना करके अपनेको भ्रम-जाल में फँसा रखा है। अवतार स्वयं भव दुःख से दुःखी हैं, अन्य मर्त्य प्राणियों का उद्धार कैसे करेंगे?[१३]

अब प्रश्न है, दरिया साहब के सिद्धांतों में 'ज्ञान' का क्या स्थान है? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले यह बात याद रखने की है कि दरिया साहब की शब्दावलि में 'ज्ञान' जनसाधारण में प्रचलित अर्थ में व्यवहृत न होकर विशेष अर्थ का द्योतक है।[१४] ज्ञान के मुख्यतः दो अर्थ होंगे--एक विद्वत्ता और दूसरा अन्तश्चैतन्य (तत्त्वज्ञान)। दरिया साहब ने प्रायः 'ज्ञान' शब्द का इस द्वितीय अर्थ में ही व्यवहार किया है; क्योंकि वे निरे किताबी ज्ञान[१५] को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते। वेद-पुराण और शास्त्रों का पण्डित होने पर भी आवश्यक नहीं कि मनुष्य 'ज्ञानी' हो। सच तो यह है कि बहुधा पण्डित वेद-शास्त्र, पोथी-पत्रा आदि पढ़ डालते हैं; किन्तु ज्ञान-रहित ही रह जाते हैं।[१६] अर्थात् वे सत्य के मर्म तक नहीं पहुँच पाते और उनकी तुलना उस गदहे-से की जा सकती है जो अपनी पीठ पर अनेकों बहुमूल्य वस्त्र ढोता-फिरता है; पर एक भी उसके अपने

ज्ञान

---

१०. श० १२.१०, १२.१३, १२.१५।

११. श० १२.११।

१२. श० १४.२, १४.३।

१३. द० सा० १२.१४; विशद व्याख्या परिच्छेद 'सत्पुरुष' में देखिये।

१४. परिच्छेद 'मुक्ति' देखिये।

१५. श० ५.१६।

१६. द० सा० १२.२१, ६१.०।

काम का नहीं होता।[१७] जप-तप, पूजा-पाठ, जाति-पाँति, देवी-देवता, भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र, तीर्थ-व्रत, आदि कुछ भी हमारे काम न आ सकेगा, यदि हम तात्त्विक ज्ञान न प्राप्त कर सके। इसके विपरीत यदि हमने ज्ञान प्राप्त कर लिया, तो ये सभी वस्तुएँ व्यर्थ हो जाती हैं।[१८] मोक्ष की इच्छा रखनेवालों के जीवन में वाह्य रीति-रस्मों का स्थान नगण्य है। सबसे आवश्यक वस्तु तो ज्ञान की ज्योति है जो हृदय से शंका और दुबिधा का अन्धकार दूर कर दे।[१९]

कवि ने विभिन्न प्रसंगों में थोड़े-बहुत परिवर्त्तन के साथ एक रूपक का अनेकों बार व्यवहार किया है, जिसमे साधक की उपमा ऐसे सिपाही से दी गई है जो 'ज्ञान' के घोड़े पर चढ़कर 'शब्द' की तलवार हाथ में लेकर युद्ध-क्षेत्र में पाँच और पचीस (पाँचों तत्त्वों और उनकी पचीस प्रकृतियों) से लड़ने को उतर पड़ता है और उनसे मोर्चा लेता है।[२०] कभी-कभी इस शरीर को सोने की लंका मान लिया गया है, जिसमें मन रूपी रावण, कुविचार रूपी कुम्भकर्ण और घमण्ड रूपी मेघनाद वासना, क्रोध, लोभ आदि की सेना सजाकर विवेक रूपी वीर हनुमान का सामना करने के लिए खड़े हैं।[२१] एक दूसरे प्रसंग में ज्ञान को 'अंकुश' माना गया है जो मन रूपी हाथी को सदा वश में रखता है।[२२] ज्ञान ही मुक्तिदाता है जो हमारी आँखें 'दिव्य दृष्टि' के अनुपम सौंदर्य की ओर खोल देता है।[२३] दरिया साहब के दार्शनिक विचारों में 'ज्ञान' का सर्वोच्च स्थान है और उनका इस शब्द के प्रति ममत्व इस बात से भी स्पष्ट है कि उनकी अधिकांश कृतियों के नाम के पूर्वार्द्ध अथवा उत्तरार्द्ध में यही शब्द है। यथा,--'ज्ञानदीपक', 'ज्ञानरत्न', 'ज्ञानमूल', 'ज्ञानस्वरोदय', 'अग्रज्ञान', 'निर्भय-ज्ञान' आदि।

ज्ञानप्राप्ति का मार्ग सुदूर और कठिन है, अतएव प्रारंभ भक्ति से करनी चाहिए। 'पहले भक्ति पीछे ज्ञान' ऐसा दरिया साहब का मत है।[२४] दोनों में कोई द्वन्द्व नहीं; दोनों का एक दूसरे से सामंजस्य है--भक्ति 'नारी' है और 'ज्ञान' पुरुष।[२५] जिस प्रकार पत्नी अपने पति को मन और शरीर दोनों दे डालती है--उससे मिलकर एक हो जाती है, उसी प्रकार भक्ति और ज्ञान अन्त में मिलकर एक हो जाते है।[२६]

भक्ति और ज्ञान का समन्वय

१७. स० रा० ११२।
१८. श० १.१० आगे।
१९. श० १.६६, १.७६।
२०. श० २ अ. १७, २ अ. २०, ३.५८, ३ अ. ३४; विशद व्याख्या परिच्छेद 'स्वरोदय' में देखिये।
२१. श० ३.६०, ३.६१, ३ अ. ३२।
२२. श० १०.४।
२३. श० ३ अ. ४०; परिच्छेद 'दिव्य दृष्टि' देखिये।
२४. द० सा० ५८.८, भ० हे० १.१।
२५. द० सा० ५८.७।
२६. स० रा० २६१; भ० हे० १.०, ३.०।

उपर्युक्त विचार-बिन्दुओं को दृष्टि में रखकर 'ज्ञान के मत'[२७] का अर्थ समझना चाहिए। दरिया साहब का ज्ञान बर्गसाँ (Bergson) की उस अन्तःप्रेरणा (Intuition) से मिलता-जुलता है, जो बुद्धि (Intelligence) से उच्चतर एवं महत्तर है।

दरिया जो कहै जब ज्ञान हुआ
तबहीं दिल की दोबिधा सब खोई।[२८]

२७. श० ३ अ. ६२।
२८. श० १.७६ की अन्तिम पंक्ति।

त्रयोदश परिच्छेद

प्रेम

पूर्व परिच्छेद में यह वर्णन किया गया है कि भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है। किन्तु भक्ति या ज्ञान दोनों में से कोई भी बिना प्रेम अर्थात् श्रद्धा या निष्ठा के लभ्य नहीं है। आध्यात्मिक उत्कर्ष का मूल मंत्र प्रेम है। अतएव भक्त को पहले यह तौल लेना चाहिए कि उसके हृदय में पूरी श्रद्धा या निष्ठा है या नहीं; और यदि हो, तभी गुरु के सम्मुख पहुँचना चाहिये।[1] अपने एक ग्रन्थ 'प्रेममूल' में दरिया साहब ने प्रेम के व्यापक सिद्धान्त की दृष्टान्त-सहित विशद व्याख्या की है। इसमें मुख्यतः तीन प्रकार के प्रेम का वर्णन किया गया है—

प्रेम का सिद्धान्त

(क) सत्पुरुष (ईश्वर) के प्रति प्रेम ;

(ख) सर्वसद्गुरु (दरिया साहब) के प्रति प्रेम; और

(ग) उस विशिष्ट सद्गुरु के प्रति प्रेम जो गुरुमंत्र की दीक्षा देता है।

निम्नलिखित पंक्तियों में इस विषय का सारांश दरियासाहब की वाणी के आधार पर, उनकी काव्य-शैली को यथायोग्य रक्षित रखते हुए, देने की चेष्टा की गई है—

जल और कमल, कमल और भौंरा, कमल और सूर्य आदि सभी पारस्परिक प्रेमसूत्र में बँधे हैं।

प्रेम कंवल जल भीतरे, प्रेम भंवर लै बास।
होत प्रात सूपट खुलै, भान तेज परगास ।।[2]

प्रेम की प्रशंसा

मृग संगीत पर मुग्ध होकर प्राण तक गँवा देता है। प्रेम-ज्योति के बिना हृदय अंधकार-पूर्ण बना रहता है—

जब लगि प्रेम दिया नहिं बरई।
भवन-कूप अँधियारा परई ।।[3]

---

१. भ० हे० १९·१; ज्ञा० स्व० ३५०; अ० सा० ८·९; वि० सा० ७·१–९। इन पंक्तियों में यह बताया गया है कि उपासक का अपने उपास्य के प्रति प्रेम वैसा ही होना चाहिए जैसा भौंरे का रस के प्रति, शिव का शक्ति के प्रति, चातक का स्वाति की बूँद के प्रति, चकोर का चन्द्रमा के प्रति, माता का अपने पुत्र के प्रति, लोभी का धन के प्रति और कृषक का अपनी खेती के प्रति होता है।

२. प्रे० मू० १.०, १.४–५।

३. प्रे० मू० १.६।

यदि हृदय में प्रेम है तो मनुष्य अमृत फल का रसास्वादन कर स्वयं भी अमर हो जाता है, अन्यथा यम के चंगुल में जकड़ जाता है।

बिना प्रेम नर जमपुर जावे।[४]

बिना प्रेम के भक्ति संभव नहीं है; वैसे ही, जैसे जल के बिना कमल नहीं उत्पन्न होता और न जीवित ही रह सकता है।

बिना प्रेम नहिं भगति है, कँवल सुखे बिनु वारि।[५]

कुमुदिनी जल में होती है और चन्द्रमा आकाश में; पर प्रीति की डोर में दोनों बँधे रहते है।[६] कुमुदिनी चन्द्रोदय होने पर ही खिलती है। चातक स्वाति-बूँद की आस लगाए रहता है और उसे पाकर वह कृतकृत्य हो जाता है।

जीवन जन्म सो भयउ सुभागा[७]।

जिस प्रकार सुहागा सोने को निर्मल बना देता है, उसी प्रकार प्रेम भी मनुष्य को पाप के मालिन्य से मुक्त कर सत्पुरुष से मिला देता है।[८] चकोर पावक से प्रीति करता है और वह उसे खाता भी है।[९] प्रेम बिना आँखें पत्थर के समान है अथवा माली-रहित वाटिका के समान है।[१०] बिना प्रेम के मनुष्य उसी तरह है जिस तरह मुँह जो मधु छोड़कर नमक या धूल फाँके।[११] प्रेम बिना वाणी की मधुरता विफल है—

बिन प्रेम जन गावै कोई भाट, भाँड़, गनिका मत वोई।[१२]

प्रेम-पथ का पथिक पैर आगे बढ़ा कर पीछे नहीं हटता, उसे स्तुति या निन्दा की चिन्ता नहीं सताती, जाति-पाँति के बन्धन उसे बाँध कर नहीं रख सकते।[१३] उसने तो सबकुछ छोड़कर प्रेम-मार्ग अपनाया है। प्रेम के प्रभाव से ही पतंग दीपक पर हँस-हँस कर प्राण देता है।

प्रेम पतंग दीपक महँ हूला, तन सभ जरिगो लागु न सूला।[१४]

४. प्रे० मू० १.८।
५. प्रे० मू० २.०,
६. प्रे० मू० २.२।
७. प्रे० मू० २.३, २.७।
८. प्रे० मू० ३.१,
९ प्रे० मू० ३.२,
१०. प्रे० मू० ३.४, ३.६,
११. प्रे० मू० ३.७,
१२. प्रे० मू० ४.४,
१३. प्रे० मू० ४.८, ४.९, ५.०।
१४. प्रे० मू० ५.१,

पति के प्रेम में पत्नी चिता पर जलकर सती हो जाती है।[15] साहस ही प्रेम का जीवन है। सद्गुरु ने इस मार्ग पर बहुत सजग होकर पैर रखने का आदेश दिया है। यह मार्ग तो तलवार की धार के समान है।[16]

धरती के प्रेम से प्रेरित होकर वायु जल-कण को उठा कर नभ के आँगन में ले जाती है और तब वहाँ से सुधा-वृष्टि करती है और पृथ्वी आनन्द-विभोर हो हरा परिधान धारण कर लेती है।[17] वायु के समान प्रेम आत्मा को मर्त्य-लोक से ऊपर ले जाकर ऐहिक बंधनों से मुक्त कर देता है।[18]

कपूर की भी अपनी एक कहानी है जिसे विरला कोई जानता है। कदली वृक्ष की एक विशेष जाति की कोंपलों में यदि स्वाति की बूंदें पड़ीं तो कपूर की सृष्टि होती है।[19] यह है प्रेम का आश्चर्य !

सेवाती तो गुर भए, केदलि काया बंधान।
नाम सजीवनि प्रेम रस, मिला सो निरमल ज्ञान ।।[20]

गुरु ही स्वाति बूंद है, शरीर ही कदली वृक्ष, सत्यनाम प्रेम का संजीवनी रस और ज्ञान उससे उत्पन्न कपूर।

प्रकट रूप से दूध में कोई गंध नहीं है। पर इसे अग्नि पर उबाल कर दही बना देने के पश्चात् जो माखन निकलता है, उसे आग पर गरम कर देने से सुगंधित घी पैदा हो जाता है।[21] जैसे आग दूध में छिपी हुई सुगंध को प्रकट कर देती है, उसी प्रकार प्रेमाग्नि हमारी आन्तरिक शक्तियों को विकसित कर देती है।[22] इस रूपक का और विशद रूप देखिये—

शरीर की मटुकी (हाँडी), क्षमा का दूध, दया का दही, प्रेम का जल, मन की मन्थन-रज्जु, चरित्र और सन्तोष के दो खंभे जिनमें वह रज्जु लिपटी है, तथा सुरति और निरति उस मन्थन-रज्जु के दो छोर। इस प्रकार इन उपादानों द्वारा मन्थन करने पर उस सुगंधित घृत की उत्पत्ति होगी जो आत्मा को कर्म-फल-जन्य पापों से मुक्त करके सत्पुरुष की प्राप्ति कराने में समर्थ होगा।[23]

---

१५. प्रे० मू० ५.२, ५.३।
१६. प्रे० मू० ६.०।
१७. प्रे० मू० ६.४, ६.५, ६.७।
१८. प्रे० मू० ६.६,
१९. प्रे० मू० ७.१—६।
२०. प्रे० मू० ८.० ; भ० हे० १६.१ ; नि० ज्ञा० २.६–१३
२१. प्रे० मू० ८.६, ८.१०, ६.०; ग० गो० ५.५–८; नि० ज्ञा० २.२५–३०।
२२. प्र० मू० ६.७, ६.८।
२३. प्रे० मू० १०.१–३, १०.४–५।

यदि हृदय में प्रेम है तो मनुष्य अमृत फल का रसास्वादन कर स्वयं भी अमर हो जाता है, अन्यथा यम के चंगुल में जकड़ जाता है।

बिना प्रेम नर जमपुर जावे।[४]

बिना प्रेम के भक्ति संभव नहीं है; वैसे ही, जैसे जल के बिना कमल नहीं उत्पन्न होता और न जीवित ही रह सकता है।

बिना प्रेम नहि भगति है, कँवल सुखे बिनु वारि।[५]

कुमुदिनी जल में होती है और चन्द्रमा आकाश में; पर प्रीति की डोर में दोनों बँधे रहते हैं।[६] कुमुदिनी चन्द्रोदय होने पर ही खिलती है। चातक स्वाति-बूँद की आस लगाए रहता है और उसे पाकर वह कृतकृत्य हो जाता है।

जीवन जन्म सो भयउ सुभागा[७]।

जिस प्रकार सुहागा सोने को निर्मल बना देता है, उसी प्रकार प्रेम भी मनुष्य को पाप के मालिन्य से मुक्त कर सत्पुरुष से मिला देता है।[८] चकोर पावक से प्रीति करता है और वह उसे खाता भी है।[९] प्रेम बिना आँखें पत्थर के समान हैं अथवा माली-रहित वाटिका के समान है।[१०] बिना प्रेम के मनुष्य उसी तरह है जिस तरह मुँह जो मधु छोड़कर नमक या धूल फाँके।[११] प्रेम बिना वाणी की मधुरता विफल है—

बिन प्रेम जन गावै कोई भाट, भाँड़, गनिका मत वोई।[१२]

प्रेम-पथ का पथिक पैर आगे बढ़ा कर पीछे नहीं हटता, उसे स्तुति या निन्दा की चिन्ता नहीं सताती, जाति-पाँति के बन्धन उसे बाँध कर नहीं रख सकते।[१३] उसने तो सबकुछ छोड़कर प्रेम-मार्ग अपनाया है। प्रेम के प्रभाव से ही पतंग दीपक पर हँस-हँस कर प्राण देता है।

प्रेम पतंग दीपक महँ हूला, तन सभ जरिगो लागु न सूला।[१४]

---

४. प्रे० मू० १.८।
५. प्रे० मू० २.०,
६. प्रे० मू० २.२।
७. प्रे० मू० २.३, २.७।
८. प्रे० मू० ३.१,
९ प्रे० मू० ३.२,
१०. प्रे० मू० ३.४, ३.६,
११. प्रे० मू० ३.७,
१२. प्रे० मू० ४.४,
१३. प्रे० मू० ४.८, ४.९, ५.०।
१४. प्रे० मू० ५.१,

पति के प्रेम में पत्नी चिता पर जलकर सती हो जाती है।[१५] साहस ही प्रेम का जीवन है। सद्गुरु ने इस मार्ग पर बहुत सजग होकर पैर रखने का आदेश दिया है। यह मार्ग तो तलवार की धार के समान है।[१६]

धरती के प्रेम से प्रेरित होकर वायु जल-कण को उठा कर नभ के आँगन में ले जाती है और तब वहाँ से सुधा-वृष्टि करती है और पृथ्वी आनन्द-विभोर हो हरा परि-धान धारण कर लेती है।[१७] वायु के समान प्रेम आत्मा को मर्त्य-लोक से ऊपर ले जाकर ऐहिक बंधनों से मुक्त कर देता है।[१८]

कपूर की भी अपनी एक कहानी है जिसे विरला कोई जानता है। कदली वृक्ष की एक विशेष जाति की कोंपलों में यदि स्वाति की बूंदें पड़ीं तो कपूर की सृष्टि होती है।[१९] यह है प्रेम का आश्चर्य !

सेवाती तो गुर भए, केदलि काया बंधान।
नाम सजीवनि प्रेम रस, मिला सो निरमल ज्ञान ।।[२०]

गुरु ही स्वाति बूंद है, शरीर ही कदली वृक्ष, सत्यनाम प्रेम का संजीवनी रस और ज्ञान उससे उत्पन्न कपूर।

प्रकट रूप से दूध में कोई गंध नहीं है। पर इसे अग्नि पर उबाल कर दही बना देने के पश्चात् जो माखन निकलता है, उसे आग पर गरम कर देने से सुगंधित घी पैदा हो जाता है।[२१] जैसे आग दूध में छिपी हुई सुगंध को प्रकट कर देती है, उसी प्रकार प्रेमाग्नि हमारी आन्तरिक शक्तियों को विकसित कर देती है।[२२] इस रूपक का और विशद रूप देखिये--

शरीर की मटुकी (हाँडी), क्षमा का दूध, दया का दही, प्रेम का जल, मन की मन्थन-रज्जु, चरित्र और सन्तोष के दो खंभे जिनमें वह रज्जु लिपटी है, तथा सुरति और निरति उस मन्थन-रज्जु के दो छोर। इस प्रकार इन उपादानों द्वारा मन्थन करने पर उस सुगंधित घृत की उत्पत्ति होगी जो आत्मा को कर्म-फल-जन्य पापों से मुक्त करके सत्पुरुष की प्राप्ति कराने में समर्थ होगा।[२३]

---

१५. प्रे० मू० ५.२, ५.३।
१६. प्रे० मू० ६.०।
१७. प्रे० मू० ६.४, ६.५, ६.७।
१८. प्रे० मू० ६.६,
१९. प्रे० मू० ७.१—६।
२०. प्रे० मू० ८.० ; भ० हे० १६.१ ; नि० ज्ञा० २.६—१३
२१. प्रे० मू० ८.६, ८.१०, ६.०; ग० गो० ५.५—८; नि० ज्ञा० २.२५—३०।
२२. प्र० मू० ६.७, ६.८।
२३. प्रे० मू० १०.१—३, १०.४—५।

यदि तिल पर चमेली के फूल बिछा दिये जायँ, तो फूलों की सारी सुगंध खिंचकर तिल में पहुँच जाती है और जब ऐसे तिल से तेल निकाला जाता है, तब उसमें तिल का पता भी नहीं चलता। उसी प्रकार सद्गुरु के वचनामृत भी प्राणियों के आत्मा को विशुद्ध बना कर मानों उसका कायाकल्प कर देते हैं और अमरपुर का योग्य नागरिक बना डालते हैं।

तिल को तेल फुलेल भयो, मेटा तिल का नावँ।
सतगुर नाम समानेओ, बसेउ अमरपुर गावँ ।।[२४]

अमरपुर में वह परमानन्द के आह्लाद में प्रेम-सिक्त पुष्प-वाटिका के कलित कुसुमों की भीनी-भीनी सुगंध का आस्वादन करते हुए विचरता रहता है।[२५]

साधारण कीट को भृंग किस प्रकार अपनी जाति में परिवर्तित करता है, यह रहस्य विरले लोगों को ज्ञात है। भृंगी स्वाति की प्रथम बूंद को मुंह में रख लेती है और एक कीट पकड़कर उसके पंख तोड़ देती है। वह स्वाति-बूंद मुंह में डाल कर सात दिनों तक उसे लेकर एक अंधेरे कोने में पड़ी रहती है। तत्पश्चात् वह कीट पंख आदि युक्त हो पूर्ण भौंरा बन जाता है।[२६] भृंगी की नाईं सद्गुरु भी मेरी भक्त को पूर्णतया परिवर्तित करके उसे मुक्ति पाने के योग्य बना देने में समर्थ है।[२७]

साँप बड़ी तपस्या के बाद मणि पाता है। हजार वर्ष तक वह अपने विष की रक्षा किये रहता है और किसी को नहीं डँसता। वह विधिपूर्वक सूर्य की पूजा करता है और तब समय प्राप्त होने पर उसे स्वाति की बूंद मिलती है। फलतः उसका सारा विष बदल कर मणि बन जाता है।[२८] मणिधर की नाईं तपस्या, साधना और ज्वलन्त प्रेम द्वारा ही मानव-ज्ञान और मुक्ति प्राप्त कर सकता है।[२९] किसी भी दशा में सद्गुरु अनिवार्य है।[३०]

हाथी के मस्तक में जो मोती होता है, उसका भी निर्माण स्वाति-बूंद से ही होता है। मस्तक पर स्वाति बूंद के पड़ते ही एक पक्षी अपनी चोंच और चंगुल से मस्तक को फाड़कर बूंद को भीतर पहुँचा देता है और तब वही जल मोती बन जाता है।[३१] जिस प्रकार हाथी मोती प्राप्त करता है, उसी प्रकार सद्गुरु के प्रेम द्वारा मनुष्य ज्ञान रूपी मोती प्राप्त कर सकता है।[३२]

२४. प्रे० मू० ११.७, १२.०; नि० ज्ञा० ४.११–१३।
२५. प्रे० मू० ११.१, ११.२, ११.४।
२६. प्रे० मू० १२.५–७।
२७. प्रे० मू० १२.६।
२८. प्रे० मू० १३.२–५।
२९. प्रे० मू० १३.६।
३०. प्रे० मू० १४.०।
३१. प्रे० मू० १४.५–७; भ० हे० १२.१–३।
३२. प्रे० मू० १४.६; भ० हे० १२.४।

सीप अपना मुँह खोल यथेष्ट स्वाति-जल का पान कर लेता है ; पर उसमें से कुछ ही बूँदों से मोती बनता है।[३३] उसी प्रकार सभी कोई ज्ञान और निर्वाण-प्राप्ति का अधिकारी नहीं है। जो सद्गुरु में अपनी भक्ति स्थापित करते हैं, वे ही इस मोती को पाने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। सद्गुरु के साहाय्य से ही इस मोती का निर्माण होता है।[३४]

सद्गुरु का कथन है कि 'हीरानख' नामक एक पक्षी है। जब यह स्वाति-बूंद का पान करता है, तब इसके भीतर हीरा उत्पन्न होता है।[३५] इसका तात्पर्य हुआ—

हीरा तो हँसा भए, पंछी सकल सरीर।
सत्त नाम के जानके, भया हिरंमर थीर ।।[३६]

शरीर पक्षी है, आत्मा हीरा है। सत्तनाम का ग्रहण करने से आत्मा रूपी हीरा बहुमूल्य 'हिरंमर' बन जाता है। अतः दरिया साहब कहते हैं—

जाके प्रेम बसे दिन राती, सो जन कबहि न परै कुभांती।[३७]

जब सत्पुरुष की भक्ति के प्रसंग में प्रेम या इश्क शब्द का व्यवहार किया जाता है, तब इसमें कुछ सूफी भावना की छाप पाई जाती है। उपासक अपनेको प्रेमिका मान कर 'यार' के चरणों में आत्मसमर्पण कर देता है।[३८] परन्तु उसका प्रेम-मार्ग कंटकाकीर्ण है; उसमें चोर और डाकू लगे हुए हैं।[३९] इन सबों से उसे मोर्चा लेना होगा। अन्यत्र दरिया साहब ने कहा है—

प्रेमगत माधुर्य

प्रेम धगा अति सुबुक है, सुंदर साधन एत।
ज्यों मकरी महि तार गहि, टूटे परा अचेत ।।[४०]

अर्थात् प्रेम की डोर मकड़ी के तार के समान कोमल सूक्ष्म और शीघ्र टूट जाने वाली है। अतः लक्ष्य-प्राप्ति के लिये साधक को बहुत सचेत होकर एक-एक पग धरना चाहिए। एक साखी में कवि कहते हैं—

पहिलै गुर सक्कर हुआ, चीनी मिसरी कीन्ह।
मिसरी सै तब कंद भौ, एहि सोहागिन चीन्ह।[४१]

---

३३. प्रे० मू० १५.२–३।
३४. प्रे० मू० १६.३।
३५. प्रे० मू० १८.१–३।
३६. प्रे० मू० १९.०।
३७. प्रे० मू० १९.१।
३८. ज्ञा० स्व० ३४९।
३९. ज्ञा० स्व० ३६०।
४०. ज्ञा० स्व० ३८२।
४१. ज्ञा० स्व० १४८।

साधक पहले गुड़ के समान रहता है, जो क्रमशः चीनी, मिश्री और तब मिश्रीकंद में परिवर्तित होकर सिद्धि-लाभ करता है। नीचे के दोहे में सन्त या साधक की तुलना एक 'सोहागिन' से दी गई है। जैसे विवाहोपरान्त सोहागिन धीरे-धीरे अपने पति के निकटतर पहुँचती जाती है; उसी प्रकार आत्मा ज्यों-ज्यों अपने प्रियतम परमात्मा के निकट पहुँचता जाता है, उसकी मधुरिमा बढ़ती जाती है। ये पंक्तियाँ देखिये—

धन्य सोई जिहि खसमहि जाना, धन्य सोई सतबरतहि ठाना।[४२]

अर्थात् वह सती-साध्वी धन्य है, जिसने अपने प्रियतम को पहचान लिया। यहाँ भी उपासक और उपास्यदेव का ही प्रसंग है। इसी प्रसंग में कवि उस पुंश्चली की भी चर्चा करते है, जो विधवा होकर यार-दोस्तों की संगति करती है और पति की भक्ति भूल जाती है।[४३] श्लाघनीय तो वही साध्वी नारी है, जो अपने पतिदेव के चरण-कमलों में आत्म-समर्पण करके आनन्द उपभोग करती है।[४४] इन पंक्तियों में 'विधवा' से दरिया साहब का अर्थ उस जीव से है, जो परमात्मा में विश्वास और भक्ति नहीं रखता और 'सधवा' वह है जिसने अपना भक्ति-भाव-पूर्ण हृदय एकमात्र प्रभु को समर्पित कर दिया है।

त्रिया भवंन विच भगति हे, रहे पिया के पास।
मन उदास नहिं चाहिए, चरन-कंवल की आस।

परमात्मा-प्राप्ति की आनन्द-विभोर-अवस्था में उसके मुख से अनायास निकल पड़ता है—

तुहु पिया तुहु पिया तुहु पिया मेरो।
हौं पतनी पति नैननि हेरो।।[४५]

'झुमरी' पदों में से उद्धृत निम्नलिखित पद कितना सुन्दर और भावपूर्ण है! इसमें सोहागिन (उपासक) अपने उपास्य पतिदेव से मिलने की उत्कृष्ट अभिलाषा प्रकट करती है। अब वह नैहर में न रह कर ससुराल जायगी ही। कवि अपनेको सोहागिन की भूमिका में रखकर गाता है—

मोहि ना भावे नैहरा ससुरवा जैबों हो।
नैहर के लोगवा बड़ अरियार। पिया के वचन सुनि लागेला बिकार।।
पिया एक डोलिया दिहल भिजाए। पाँच पचीस तेहि लागेला कँहार।।
नैहरा में दुख-सुख सहलों बहूत। सासुर में सुनलों खसम मजगूत।।
नैहरा में बाली-भोली ससुरा दुलार। सत के सेनुरा अमर भतार।।
कहें दरिया धन्य भाग सोहाग। पिया केरि सेजिया मिलल बड़ि भाग।।"[४६]

---

४२. प्रे० मू० २३.४।
४३. प्रे० मू० २४.१–३।
४४. प्रे० मू० २४.७।
४५. श० ५०.६।
४६. श० ३९.६।

चतुर्दश परिच्छेद

आत्मानुशासन के मुख्य नियम

दरिया-पंथियों के लिए भक्ति और सत्संग के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन के कुछ नियमों का पालन विशेष रूप से आवश्यक बताया गया है। उनमें प्रधान ये हैं—

(क) सत्यवादिता और निष्कपटता;
(ख) मद्यादिपरिहार;
(ग) अहिंसा;
(घ) इन्द्रियनिरोध;
(ङ) निरहंकारता और
(च) स्वयमारोपित निर्धनता।

दरिया साहब के अनुसार सत्यवादिता सर्वोत्तम गुण है।[1] प्रायः लोग सच बोलने और निष्कपट रहने की चेष्टा नहीं करते। झूठ बोलते समय मिथ्यावादी की 'चौगुन जिह्वा' हो जाती है और 'साँच सुने दुरि जायो।'[2] तथाकथित साधु, जो धर्म की ओट में पाषण्ड का प्रचार करते हैं, अपने इस कपट-व्यवहार का फल भोगते हैं; उनके लिए सत्य कड़वा और स्वादहीन जान पड़ता है।[3] नाममात्र के भक्तों का भी वही हाल है।[4] पाषण्डी धर्मगुरुओं का एक महाजाल फैला हुआ है और शिष्यों की बहुत बड़ी संख्या उसमें उलझी पड़ी है। गुरु और शिष्य दोनों ही मिथ्याचारी हैं—'झूठा गुरु झूठा है चेला' कल्पित मंत्रों द्वारा कान फूँक कर दीक्षित करने की प्रथा निरन्तर चली आ रही है।[5]

(क) सत्यवादिता और हृदय की पवित्रता

यदि सत्यवादिता से रहित हो, तो वेदों और शास्त्रों के पढ़ने का प्रयोजन ही क्या है?[6] जो इस गुण का अवलंबन करता है, वही सच्चा साधु है।[7] दरिया साहब कहते हैं—

---

१. श० १८.३६।
२. श० ६.२।
३. श० ७.३।
४. श० ७.१७।
५. श० १८.३६।
६. श० ८.६।
७. श० १०.३।
८. द० सा० ३५.०।

'जाहाँ साँच ताहाँ आपु बसतु है।'[८] अर्थात् जहाँ सत्य है, वहीं ईश्वर का निवास है।

(ख) निग्रह

मदिरा अथवा अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन सर्वथा वर्जित है। जो वैसा करता है, वह या तो भ्रम में है अथवा पाषण्डी है।[९] उसे यम के हाथों कठोर यातना भुगतनी पड़ेगी।[१०] 'मांस, मछली और मदिरा तीनों साथ-साथ चलते हैं और इस प्रकार मदिरा का सेवन-कर्त्ता अनेकानेक पापों के जाल में फँसता चला जाता है।[११]

यदि कोई पीना ही चाहता है, तो उसे भगवत्प्रेम की मदिरा पीनी चाहिये जो उसे भ्रान्त और मदमत्त न होने देगी।[१२] भट्ठी में बैठकर दुर्गन्ध-पूर्ण मदिरा पीना अमृत छोड़कर विष पीने के समान है।[१३] अतएव दरिया साहब का कहना है कि पीनेवालो, उस 'यार मिलन की बाग अमाना'[१४] में आओ, जहाँ प्रेम-रस पीनेवाले भक्तों की टोली निकुंजों तले मनोरम पुष्प चुन रही है;[१५] जहाँ सद्गुरु ही पिलानेवाला 'साकी' है और 'प्रेम-पियाला' में ढाल-ढाल कर पिलाता जाता है।[१६] 'सतनाम' की हाला को[१७] छक-छक कर पीने वाले भव-दुःख-जाल से विमुक्त हो जाते हैं।[१८] जिसने सद्गुरु के हाथों यह हाला पी ली, उसे फिर 'महाप्रलय' का भी भय नहीं रह जाता[१९] और वह अपने 'प्रियतम' के मिलन-मार्ग पर अग्रसर होता है।[२०]

एक पद में दरिया साहब आध्यात्मिक 'भंग' के विषय में भी ऐसा ही कुछ कहते हैं—"भ्रमरूपी भंग को रगड़-रगड़ कर शुद्ध बना लो और तब उसको शुद्ध हृदय से छान कर पान करो। इस निर्मल शुद्ध आध्यात्मिक रूपी भंग को पीनेवाला सन्त, प्रभु का प्रेमी, उसकी प्राप्ति का अधिकारी होता है।"[२१]

---

९ श० ३.१०,
१०. श० ८.१३; ५६.१२।
११. श० ६२, ५६.१२।
१२. ज्ञा० स्व० ३४।
१३. ज्ञा० स्व० ४६; श० ३.१०।
१४. ज्ञा० स्व० ११३।
१५. ज्ञा० स्व० ११५।
१६. ज्ञा० स्व० ७४।
१७. ज्ञा० स्व० ४७, ७५, ८४।
१८. ज्ञा० स्व० ७४।
१९. ज्ञा० स्व० ७१।
२०. ज्ञा० स्व० ३५।
२१. श० २.२१।

दरिया साहब अच्छी तरह जानते थे कि मदिरा का प्रचार जनता में और भंग का साधुओं में कितना अधिक है, अतः उन्होंने इन दोनों दुर्व्यसनों की कठोरता-पूर्वक निन्दा की है।

(ग) अहिंसा

दरिया साहब की शिक्षाओं में अहिंसा का अत्यन्त प्रमुख स्थान है। कुछ लोगों की धारणा है कि इस्लाम धर्म हिंसा का पोषक है। किन्तु दरिया साहब कहते हैं कि अल्लाह ने मुहम्मद आदि पैगंबरों द्वारा जीव-हिंसा और रक्तपात का घोर विरोध और निषेध किया है। इस हिंसा और रक्तपात का आरंभ पहले-पहल इब्राहिम ने किया।[२२] हिंसा तो काफिर का लक्षण है और यह महान पाप है।[२३] जिसे नाम और यश की इच्छा हो, उसे हिंसा और पर-पीड़न से बच कर रहना चाहिए।[२४] किन्तु ऐसी अभिलाषा सच्चे हृदय से होनी चाहिये।[२५] कवि कहते हैं कि कृष्ण की गीता में हिन्दू-धर्म की प्रधान शिक्षा जीवदया और अहिंसा के अनुकूल है और हिंसात्मक प्रवृत्तियों के विरुद्ध है।[२६]

फिर भी आश्चर्य है कि सारे जगत् में अंधेर मचा हुआ है। उदाहरणतः धर्म के नाम पर देवी-दुर्गा के सम्मुख जीव-हत्या की जाती है।[२७] हिन्दू और मुसलमान दोनों ही भ्रम में पड़े हैं। हिन्दू हरिणी का मांस खाते है तो-मुसलमान गाय का। दोनों की नसों में एक ही रक्त बहता है, इस बात का दोनों में से किसी को भी बोध नहीं है।[२८] दोनों ही समान रूप से पाखंडी हैं। वे बाहर से देखते हैं; पर भीतर से अंधे हैं।[२९] क्या यह अचरज नहीं कि पुजारी एक जीव की हत्या करके एक निर्जीव मूर्त्ति को प्रसन्न करने की कामना करते हैं?[३०] सारी विद्वत्ता होने पर भी वे बिल्ली, गिद्ध, सारस, कसाई और राक्षस से श्रेष्ठ नहीं हैं।[३१] वे तो मानों भव-सागर को लोहे और पत्थर की नौका से पार करने का प्रयत्न कर रहे हैं।[३२] परिणाम स्पष्ट है। हिंसा और मांस-भक्षण नरक में गिराता है।[३३] हिंसा

---

२२. ज्ञा० स्व० ४०–४५; श० १.७२, ३ ६, ३ अ. ८८।
२३. ज्ञा० स्व० ५७।
२४. ज्ञा० स्व० ५६।
२५ ज्ञा० स्व० ५७।
२६. ज्ञा० स्व० ६०; ६१; श० ३ अ. ३०।
२७ ज्ञा० स्व० ६२; श० २ २८, ३ अ. २६.३, ३०; ब्र० वि० ४.२; ज्ञा० मू० ४.१।
२८. द० सा० ८३.१८–१९; श० ३ अ. ५५।
२९. श० ३ अ. ५८, १८, ३०।
३०. श० ३ अ. ७४, ६ १०।
३१. श० ५.२५, ५.२६; ज्ञा० र० ८४.१३; स० रा० २६१; ज्ञा० मू० ४.५, ७.०।
३२. श० ५.२, ५.३, २१.५।
३३. श० २ अ. १५, ३.६७, ३.६८।

करनी है तो अपनी अनिष्टकारिता की हिंसा कीजिये जिससे स्वर्ग मिले। 'बदी को कतल करु भिश्ति पावै।'[३४] हिंसा करनी है तो हिंसात्मक प्रवृत्तियों की हिंसा कीजिये। सर्वश्रेष्ठ हिंसा यही है।

यदि विनाश किये बिना नहीं रहा जाता, तो ज्ञान का खड्ग लेकर वासना और कामना के सिपाहियों का विनाश कीजिये। यदि इन 'पाँच और पचीस' सिपाहियों पर विजय मिल गई, अर्थात् इन्द्रियाँ और उनकी तृष्णाएँ वश में हो गईं, तो मोह-भ्रम-जाल कट जायगा और जीव मुक्त हो जायगा।[३५]

हिंसा के विरुद्ध दरिया ने सबल तर्क रखे हैं। वे कहते हैं—'जस पिआर जिव आपनो, तस जिव सभहि पिआर'; 'खून करे खून सो पावै।' दूसरे जीवों के साथ वही व्यवहार करना चाहिये, जो हम अपने प्रति चाहते हों।[३६] भिन्न-भिन्न जीवों में कोई अन्तर नहीं है, सभी जीव समान हैं; सभी एक ही ब्रह्म के रूप हैं।[३७] लोग बैल की नाक छेदकर उसमें रस्सी पहना देते हैं। यह अत्याचार और क्रूर कर्म है। हिंसा का अनुमोदन तभी किया जा सकता है, जब हिंसक खुशी-खुशी अपनी ही बलि चढ़ाता; पर ऐसा नहीं होता है। इसलिये हिंसा सदा निन्दनीय है।[३८]

यह तो सर्वथा स्पष्ट है कि—'निज जिव सम सभ जिव जग माँही'[३९] और 'दया धर्म कर मूल।' दया साधु-संतों का अनिवार्य गुण है—'दया बिना का धर्म बखाना, बिना दया किमि गुन पहचाना।'[४०]

अहिंसा के इस प्रश्न पर एक अन्य सूक्ष्मतर दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। यथा—सृष्टिकर्त्ता ने जब जल की सृष्टि की तब उसकी शोभा बढ़ाने के लिये मछलियों का निर्माण किया, और उसी प्रकार वृक्षों के शोभा-वर्द्धन के लिये पंक्षियों की सृष्टि की। फलतः जो कोई उन्हें मारता है, वह विश्व और प्रकृति के विराट् सौन्दर्य-विधान का उल्लंघन करता है।[४१]

साधक के लिये आत्मनिरोध अथवा इन्द्रियों का दमन अत्यन्त आवश्यक है। दरिया

(घ) आत्म-निरोध

साहब ने इन्द्रियों की संख्या दस मानी है जो परंपरा से प्रचलित है—पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रिय। मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय और इन्द्रियों का राजा मानते हैं।[४२]

---

३४. ग० ३.१०।
३५. ज्ञा० स्व० ६५, ६६; भ० हे० ९.०।
३६. ज्ञा० स्व० २८, २९; भ० हे० १७.२।
३७. द० सा० १७.२२, १७.२४; श० ४.३, १८.३२, २२.८।
३८. श० ३ अ. ५५।
३९. ज्ञा० स्व० २९, ३१।
४०. श० ५९.१८; वि० सा० १४.१।
४१. स० रा० २८६।
४२. ज्ञा० स्व० १९६–१९७।

दरिया साहब के विभिन्न ग्रन्थों के सामान्य अध्ययन से यह पता चलता है कि उन्होंने 'मन' को एक विराट् और व्यापक तत्त्व माना है जो देवताओं, ऋषियों तथा अन्य मर्त्य-प्राणियों के ऐहिक जीवन का संचालन करता है।[४३] ब्रह्मा, शिव, राम, कृष्ण आदि भी इस मन के प्रभाव से न बच सके।[४४] हिन्दुओं के दस अवतार 'किस्न राम मन ही को अंगा। मन ते उतपति मन ते भंगा'।[४५] बेमन की ही सृष्टि हैं। इन्द्रादि देवों ने भी विवाह किया या कामुक मनोवृत्ति का परिचय दिया जिससे यह सिद्ध होता है कि वे सभी मन की चंचलता के शिकार हुए।[४६] मनुष्यों द्वारा पूजित तथाकथित ऋषियों की हालत भी कोई विशेष अच्छी नहीं। नारद एक सुन्दरी राजकुमारी पर मोहित होकर किस प्रकार मूर्ख बने, यह सभी जानते हैं। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्र भी सुन्दरता के प्रलोभनों से नहीं बचे।[४७] मन ने ही चारों वेदों का जाल बिछा रखा है और उसी ने व्यासदेव को पुराणों और महाभारत की रचना करने को प्रेरित किया।[४८] यह न्यायाधीश के जीवन पर उतना ही अधिकार रखता है जितना किसी अपराधी के जीवन पर, और राजा और रंक सभी पर इसका समान प्रभुत्व है।[४९]

यह तीनों लोकों में व्याप्त है तथा देवता, ऋषि, मानव या दानव कोई भी इसकी शक्ति से बाहर नहीं है।[५०] दरिया साहब अपने गुरुदेव के प्रति चिरकृतज्ञ हैं जिनकी दया से उन्होंने इस महान् सिद्धान्त का सत्य-स्वरूप जाना।[५१] मन की गति जल और वायु की गति से भी अधिक है; मन की चंचल गति का नियंत्रण करना योगियों का परम कर्त्तव्य है।[५२]

मन के पछ सब जगत भुलाना।
मन चीन्है सो चतुर सुजाना।।

---

४३. श० २४.१२।
४४. ज्ञा० स्व० १६६, २००।
४५. द० सा० १११.१०।
४६. श० १८.१६; अ० सा० १४.१–६।
४७. श० ३ अ. ८, १८.१३, १८.१५।
४८. ज्ञा० स्व० २०१।
४९. द० सा० ७३.०।
५०. द० सा० २४.१, १८.१३।
५१. ज्ञा० स्व० २०२।
५२. द० सा० १२.२३, १११.११।
५३. द० सा० १४.६; मन की प्रबलता के सम्बन्ध में, तुलना कीजिये—अ० ज्ञा० २१.२–२२.० और भ० हे० २१.५–१०।

मन की गति-विधि पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कठोरतम साधना करनी पड़ती है; क्योंकि इसी मन में 'पाँच' और पचीस'; अर्थात् पाँच तत्वों और इनकी पचीस प्रकृतियों की कुंजी बसती है।[५४] मन को 'औंट' देने पर, अर्थात् योगाग्नि में तपा कर निर्मल कर देने पर, इसके 'पाँच और पचीस अनुचरों पर आप-से-आप विजय प्राप्त हो जाती है और ये पूर्णतया अनुशासन में रहने लगते हैं।[५५] मन की तुलना बहुधा उस मत-वाले हाथी से की गई है, जो बिना अंकुश की मार पड़े ठीक राह पर नहीं चलता; अथवा उस बिगड़ैल घोड़े से जो बिना कँटीली लगाम के सीधे रास्ते पर नहीं आता है।[५६] यह अंकुश या लगाम है—तत्त्वज्ञान।

वैसे तो क्रोध, ममता-मोह, विलासिता, लोभ आदि मन के अनेकानेक विकार हैं; किन्तु सत्य के पुजारियों और साधकों को दो विकारों से विशेष रूप से बचकर रहना चाहिये। वे विकार हैं—कामिनी और कञ्चन।[५७] इनकी कामना उस भीषण आँधी के समान है जो ज्ञान के दीपक को बुझा देती है, उस खटाई के समान है जो दूध को फाड़कर उसे खट्टा बना देती है अथवा उस दीमक या घुन के समान है जो लकड़ी की तह में पैठ कर उसे जर्जर कर देता है।[५८] कामिनी-कंचन का परित्याग करना ही आत्मनिरोध का मूल तत्त्व है। निरुद्ध-चित्त-वृत्ति अथवा शमित मन ऐहिक सुखों के बीच रहते हुए भी उनके प्रलोभनों में नहीं पड़ता। वह उस जल-पक्षी के समान बन जाता है जो जल में ही विहार करता रहता है; पर जब चाहे तब उससे निकल कर उड़ जाने की सामर्थ्य रखता है।[५९]

(ङ) *निरभिमानता*

दरिया साहब ने सबके लिये, विशेषतः साधुओं के लिए, सरल और साधारण जीवन बिताने पर विशेष जोर दिया है। सभी आडंबर छोड़ देना चाहिये। वस्त्र भी साधारण, स्वच्छ और उजले हों। उनमें किसी तरह के रंग न हों, जैसे कुछ वैष्णव साधुओं और संन्यासियों के वस्त्रों में हुआ करते हैं। साधुओं का व्यवहार दूसरों के प्रति नम्रतापूर्वक तथा सरल हो।

---

५४. श० ७.२६, २७.६, ५३.१०; द० सा० ४५.३, ७२.३–४; आगे विस्तार के लिए देखिये परिच्छेद १८ और तुलना कीजिये का० च० ५.३, ६.०।

५५. स० रा० ३३४, ज्ञा० स्व० १२२।

५६. श० ३ अ. ६८, ८.१३।

५७. ज्ञा० स्व० ३४३, ३६.० ज्ञा० स्व० २८०; भ० हे० ६.७; ज्ञा० मू० २५.१।

५८. अ० सा० १२.११–१४; ब्र० वि० २१.१०–११; विस्तार के लिए देखिये परिच्छेद—'माया'।

५९. स० रा० ५२०।

दरिया साहब की रचनाओं में अनेकानेक कविताएँ ऐसी हैं जिनमें 'निहचै गर्व गरद महँ होई' वाले सिद्धान्त को भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किया गया है।[६०] वे रावण, हिरण्यकशिपु, कंस और दुर्योधन का उदाहरण देते हैं, जिनका पाप सिर पर नाच उठा और उनका गर्व चूर-चूर हो गया। रावण ने पतिव्रता सीता का अपहरण करते समय स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उसका कितना दुःखद अन्त होनेवाला है। हिरण्यकशिपु भी अपने पुत्र प्रह्लाद को विष्णु-पूजा से निवारणार्थ कठोर यातनाएँ देते समय मदान्ध बना रहा। वसुदेव और देवकी की अनेक सन्तानों की हत्या करते समय कंस भी घमण्ड में चूर था। गर्व से पागल होकर द्रौपदी की लाज, भरी सभा में अपहरण करते समय, दुर्योधन की आँखों पर भी अभिमान का पर्दा पड़ा था और वह अपने भावी पतन और जघन्य मृत्यु की कल्पना भी न कर सका था।[६१]

घमण्ड में फूला-फूला चलनेवाला व्यक्ति मूर्ख और पाषण्डी है। उसके पास प्रचुर सोना-चाँदी या संपत्तियों की ढेर हो सकती है; पर एक दिन ऐसा आयगा जब उसे बरबस इन सभी वस्तुओं को यहीं छोड़कर विदा लेना पड़ेगा।[६२] ऐसी क्षण-भंगुर सम्पत्ति और ठाट-बाट पर क्या डींग और क्या धौंस?[६३]

अतएव हमें अहंकार का दुर्ग तोड़ देना चाहिये। यदि हम स्वयं गर्व को चूर न कर सके तो यमराज हमारे गर्व को चूर करके हमें कठोरतम यातनाएँ देगा।[६४] पर तब तो 'चिड़िया चुग गई खेत, अब पछताये होत क्या' वाली हालत रह जाएगी। उस अन्त समय में सुधार संभव नहीं।

वह व्यक्ति सचमुच धन्य और महान् है, जो स्वयं ही त्याग और गरीबी का जीवन अपनाता है। वही सच्चा संत है जो सार्वजनिक स्थानों में जीवन-यापन करे और बहुधा उपवास-व्रत का पालन करे।[६५] अनेकानेक पाषंडी ऐसे हैं जो अपनेको संत या भक्त घोषित करते हैं; पर वे धन के पीछे मारे-मारे फिरते हैं, उत्तम और स्वादिष्ठ भोजन के लिए लालायित रहते हैं और धन जमा करने के फेर में रहते हैं।[६६] उनकी समझ में यह मोटी बात भी नहीं आती कि मनुष्य खाली हाथ आया है और खाली हाथ जायगा।[६७] अतः हमें अपने जीवन

(च) स्वयं स्वीकृत निर्धनता

---

६०. ज्ञा० र० ३७.१; श० ३ अ. १५।
६१. श० ३ अ. १५, ६.४, १०.३, १८.५६, ५३.११, ५९.१।
६२. श० ३ अ. २०, ३ अ. ६४।
६३. श० १०.३।
६४. श० ३.५३, ३ अ. ५, १८.५५।
६५. ज्ञा० स्व० ४१; श० २.११, २.१४, २ अ. १२, ३.४, ७.२०।
६६. श० ७.१७, २१.९।
६७. श० ३.६६।

को श्रेष्ठ एवं पवित्र बनाना चाहिये। जो स्वयं खा-पीकर अपनी स्वार्थपरता और उदरंभरिता का परिचय देता है, उसकी तुलना अनाज के बोरे या पानी की मशक से की जा सकती है।[६८] एक पद में दरिया साहब ने संतों के जीवन का आदर्श बताते हुए कहा है—

दुखै सुखै दिन काटियै, खूबो रहियै सोय।
ता तर आसन कीजियै, (जो) पेड़ पातरो होय।।[६९]

नीचे धरती, ऊपर आकाश यही संतों का आदर्श बसेरा है।[७०] उसे किसी से कुछ माँगना नहीं चाहिये; माँगकर तो भाँड़ खाता है।

साधू जन माँगे नहीं, माँगि खाय सो भाँड़।
सती पिसावनि ना करै, पीसि खाय सो राँड़।।[७१]

सम्पत्ति का त्याग सर्वथा श्रेयस्कर है; क्योंकि लक्ष्मी की ओट में क्रोध, कायरता, कुटिलता, कुमति और खोटापन आदि दुर्गुणों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है।[७२] सम्पत्ति पाप पर पर्दा डालती है। जहाँ धन और संपत्ति है, वहीं विपत्ति और दुःख भी है।[७३] धन्य है वह व्यक्ति जो निर्धन होकर भी सुखी एवं सन्तुष्ट है।

---

६८. श० ७.११।
६९. ज्ञा० स्व० ८५।
७०. ज्ञा० स्व० ११४; भ० हे० ३७.४।
७१. स० रा० ३१६।
७२. स० रा० १६४।
७३. स० रा० १६६।

पंचदश परिच्छेद

पाषण्ड

दरिया साहब ने प्रचलित अन्धविश्वासों, दुराग्रहों और निरर्थक रीति-रस्मों को पाषण्ड या पाषण्ड-धर्म कहा है। इनमें निम्नलिखित मुख्य है—

(क) मूर्त्ति-पूजा ;

(ख) तीर्थ-यात्रा;

(ग) जात-पाँत और साम्प्रदायिकता;

(घ) वेद और कुरान;

(ङ) 'भेख' और 'कर्मकाण्ड' ; एवं

(च) तथाकथित 'योग'।

दरिया साहब ने ईश्वर (सत्पुरुष) की जो निर्गुण भावना प्रस्तुत की है, उसके साथ सगुण मूर्त्तिपूजा का मेल नहीं खाता है; यह पहले बताया जा चुका है।[1] इस परिच्छेद में हम मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध उनके कुछ तर्कों को उद्धृत करेंगे।

(क) मूर्त्तिपूजा

लोग देवी-देवताओं की पत्थर की मूर्त्तियाँ बनवाते हैं; पर उन्हे यह नहीं समझ मे आता कि पत्थर तो पत्थर ही है, उसमें ईश्वर नहीं रहता।[2] निर्जीव मूर्त्तियाँ, हाथ-मुँह रखते हुए भी, न तो चल-फिर सकती है या न बोल सकती है। इनकी पूजा करने वाले स्वयं जड़ और अन्धे हैं।[3] यद्यपि इन मूर्त्तियों में दैवी शक्तियों का आरोप और प्राणप्रतिष्ठा की जाती है, तथापि ये अपने ऊपर आक्रमण होने पर भी आत्मरक्षा के लिए असहाय हैं। इन्हें कोई भी उठाकर ढेले के समान फेंक या तोड़-फोड़ दे सकता है।[4] दरिया साहब ने प्रत्यक्ष प्रमाणस्वरूप अपने ग्राम 'धरकंधा'-स्थित दुर्गा-मूर्त्ति की असमर्थता का प्रदर्शन किया था। उन्होंने दुर्गा-मूर्त्ति को उखड़वा कर, भीषण विरोध के होते हुए भी, तीन मास तक छिपा कर रखवा दिया था। इसी घटना के आधार पर उनके ग्रंथों में से एक का नाम 'मूर्त्ति उखाड़' पड़ा।

---

१. द० सा० ५.१।

२. ब्र० वि० ६. ८; ग० गो० ३. ११, ५१. २७।

३. श० १. २७; मू० उ० २०।

४. मू० उ० २२।

बड़े आश्चर्य की बात है कि लोग भ्रम में इतने जकड़ गये हैं कि निर्जीव मूर्त्ति के सम्मुख बकरे और भैंसे-जैसे सजीव प्राणियों का वध करते हैं।[५] पूजा के योग्य वास्तविक मूर्त्ति तो सजीव प्राणी (बोलता) है।[६] ईश्वर का निवास प्रत्येक मानव में है, इसलिये हमें हर मनुष्य के प्रति श्रद्धा और प्रेम करना चाहिए। तभी हम ईश्वर की सर्वोच्च पूजा कर सकते हैं।[७] 'टेनिसन' के शब्दों में आत्मदेव (God-in-Man) ही पूजा का वास्तविक पात्र है।[८]

(ख) तीर्थ यात्रा

दरिया साहब तीर्थ-यात्राओं में विश्वास नहीं करते और वे ऐसे यात्रियों के अन्ध-परम्परा-संगत विचारों की भी निन्दा करते हैं।[९] पहली बात यह है कि ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है; वह तीर्थ-स्थानों में ही सीमित नहीं है। दूसरी बात यह कि ये तथाकथित तीर्थ-स्थान तो बहुधा साधारण नगरों और गाँवों से भी निकृष्ट और हेय हैं। कवि ने बहुधा बनारस के प्रसंग में यही कहा है कि यह दुश्चरित्र पुरुषों और पुँश्चली स्त्रियों का अड्डा है और इसमें पाषण्डी साधुओं की भी भरमार है।[१०] यदि भक्त को सद्गुरु का मार्ग-प्रदर्शन और सहयोग प्राप्त हो जाय तो इतस्ततः भटकने से कोई लाभ नहीं है। इसकी तुलना तो करोड़ों तीर्थ नहीं कर सकते।[११] सन्त के कथनानुसार सर्वोत्तम तीर्थ तो मनुष्य का अपना ही शरीर है जिसमें गंगा-यमुना और सरस्वती की तीव्र एवं उतुंग तरंगें तबतक प्रवाहित होती हैं जबतक वे सागर में मिल नहीं जातीं, और जहाँ सूर्य एवं चन्द्र पूर्ण प्रकाशमान रहते हैं।[१२]

(ग) जात-पाँत और साम्प्रदायिकता

दरिया साहब जातपाँत और साम्प्रदायिकता के निरर्थक सिद्धान्त के कट्टर विरोधी और कटु समालोचक हैं। उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अथवा हिन्दू और तुर्क आदि विभेद बिलकुल मान्य नहीं है।[१३] उनके लिए तो मनुष्य मात्र की एक ही जाति है।[१४] अधिक-से-अधिक हिन्दू और मुसलमान—ये दोनों 'दीन' 'सरहद' मात्र हैं और असल अल्लाह या भग-

---

५. श० ३ अ. ७४।

६. द० सा० ५५. १६।

७. द० सा० २८. ६।

८. द० सा० २४. ७; ग० गो० १. ४।

९. श० २४. ५।

१०. श० १. ६५, १०. १।

११. द० सा० १२. २७।

१२. श० ५३. १०; गंगा, यमुना और सरस्वती=इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा। सूर्य और चंद्र=दाहिनी और बाईं नासिकाओं द्वारा ली जानेवाली श्वास-वायु। 'ज्ञान-स्वरोदय' १६६-१७४ देखिए।

१३. स० रा० ३२०. ९०३; ज्ञा० मू० १८. ३।

१४. मू० उ० २७१; द० सा० ६१. ७।

वान तो एक 'सत्पुरुष' ही है।[15] इसका यह अर्थ नहीं है कि हिन्दुओं के राम तथा कृष्ण, मुसलमानों के रहीम तथा नबी से भिन्न हैं; वे तत्त्वतः एक ही हैं।[16] हिन्दू या मुसलमान—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र—सभी मानवों में एक का ही निवास है।[17] प्रत्येक शरीर में एक रूप में ही जीवात्मा बसता है और प्रत्यक की प्रकृति में भूख-प्यास आदि की भावनाएँ समान रूप से विद्यमान है।[18] प्रत्येक शरीर का निर्माण समान रूप से पाँच तत्त्वों से हुआ है। एक ही रक्त, हड्डी, मांस और त्वचा सभी शरीरों में पाये जाते है।[19] बनावट की विभिन्नताएँ तो ठीक उसी समान हैं, जैसे कुम्हार के एक ही चाक पर से विभिन्न बर्तनों की सृष्टि होती है।[20]

प्रकृति के पर्यवेक्षण से भी कृत्रिम भेद-भावों के खोखलापन की शिक्षा मिलती है। 'ब्राह्मणों' को सम्बोधन करते हुए दरिया साहब यों कहते हैं—

> "तुम्हें मुझसे बड़ा होने का गौरव है; पर इसका सबूत क्या है कि तुम मुझसे बड़े हो? यदि मेरी रगों में रक्त प्रवाहित है, तो तुम्हारी नसों में दूध की धारा तो नहीं बहती? यदि मेरा शरीर हाड़-मांस और चमड़े से बना है, तो तुम्हारा शरीर सोने से निर्मित कहाँ है? यदि मैं माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ, तो तुम भी उसी प्रकार पैदा हुए। निम्न जातियों का गौर वर्ण बदल कर काला क्यों नहीं हो जाता? उसकी वाणी का माधुर्य कठोरता में क्यों नहीं परिणत हो जाता? उचित बात तो यह है कि तुम्हीं निन्दनीय हो; क्योंकि तुम गृध्र के समान मांस-भक्षण किया करते हो।"[21]

अपने प्रकृत रूप में सभी मानव एक ही धरातल पर है और उनकी समान अवस्था है। यदि गर्भावस्था में ही ईश्वर ने ब्राह्मणों को जनेऊ पहना दिया होता या अल्लाह ने मुसलमानों की सुन्नत कर दी होती तो हम जातपाँत और साम्प्रदायिक विभेदों पर विश्वास करना उचित समझते;[22] पर ऐसी बात तो है नहीं। प्रकृति ने सभी के लिए एक ही पृथ्वी, एक ही जल और एक ही वायुमंडल का निर्माण किया है और इन विभूतियों का उपभोग सभी समान रूप से कर सकते हैं। सभी मानव प्रकृत जन्म और मृत्यु की हैसि-

---

१५. श० ३ अ. ५५; ब्र० वि० ३१. ०—३१.४।
१६. श० ३ अ. ५४।
१७. श० ५. १२; भ० हे० २६. २, २६. ६; ग० गो० ११. १।
१८. श० ५. ८; मू० उ० २६०, २६१।
१९. मू० उ० २८८–८६; भ० हे० २६. ३–४, २६. ७।
२०. मू० उ० २६३।
२१. श० ५. ४, ५. ५, १५. ५।
२२. श० ५. १२।

यत से बराबर हैं; इसलिए उन्हें मध्यावस्था अर्थात् जीवन-काल में भी बराबर ही रहना चाहिए और जात-पांत तथा सम्प्रदायों के सभी विभेदों का परित्याग कर देना चाहिए।[२३] एक नदी में बहुत-से घाट हो सकते हैं और धाराएँ भी कई हो सकती हैं; पर उनका जल तो एक-सा ही है।[२४]

छुआछूत भी इसी जाति-पाँति-व्यवस्था का दुष्परिणाम है और इसका भी अन्त होना चाहिए। अनाज और जल प्रकृति की उपज हैं; छुआछूत का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। छुआछूत एक मूर्खतापूर्ण परम्परा है। उदाहरणार्थ एक ब्राह्मण को लीजिये। वह खाने बैठता है तो उसके चावल पर मक्खी आकर बैठ जाती है। मक्खी तो अनेकों को छूती हुई दूषित एवं दुर्गन्धि-पूर्ण स्थानों से आती है और अपने साथ उस गंदगी का कुछ अंश भी ले आती है; पर पंडित जी की थाली उससे नहीं छू जाती; हालाँ कि मक्खी के माध्यम से उनका भोजन गंदगी और अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में स्वतः आ गया।[२५] दूसरा उदाहरण लीजिये। बिल्ली नगर के घर-घर के चौकों का चक्कर काटती है। वह सबकी हाँड़ी चाटती है, कुछ यहाँ खाया और कुछ वहाँ। क्या इस प्रकार बिल्ली के माध्यम द्वारा सभी खाद्य पदार्थ एक दूसरे से छू नहीं जाते?[२६] छूत की व्यवस्था एक शर्म-नाक पद्धति है। सच्ची छुआछूत का आधार कर्म हो सकता है, जन्मगत जाति नहीं।[२७] मांस-भक्षक और मदिरा-पायी यदि पंडित भी हों तो निन्दनीय हैं और उनसे दूर रहना उचित है; क्योंकि वास्तव में वे ही म्लेच्छ हैं।[२८] यदि साधु-संतों से भेंट हो तो हम उनकी जाति नहीं पूछनी चाहिए। हमें तो उनका ज्ञान जानने का प्रयत्न करना चाहिए। संतों की कोई जाति नहीं होती, वे उससे परे हो जाते हैं। उनमें भेद-भाव नहीं रह जाता।[२९] यदि किसी ने सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लिया तो उसे जाति की क्या चिन्ता?[३०]

सद्गुरु अपने शिष्यों के जाति-विभेद की बात नहीं सोचता है।[३१] दरिया साहब द्वारा स्थापित पंथ में जो भी आ गया, वह उस विश्वबन्धुत्व का एक सदस्य हो गया जिसमें जाति, सम्प्रदाय या छुआ-छूत का कोई बखेड़ा नहीं है।[३२]

---

२३. श० ५.१२; ग० गो० ८. १।
२४. श० ५.१२।
२५. श० ५. ६; ग० गो० १२. ५—६।
२६. श० ५.६; ग० गो० १२. ३।
२७. श० ५.५।
२८. ग० गो० ११. २–१२. ०।
२९. स० रा० ४८३; भ० हे० १६. ०; ज्ञा० मू० २६. १।
३०. भ० हे० १६. ०।
३१. द० सा० ८७. १४।
३२. द० सा० ६१. ९–१०।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दरिया साहब हिन्दू-मुस्लिम एकता के एक महान् समर्थक मात्र ही नहीं थे, अपितु विश्वबन्धुत्व के एक महान् प्रचारक भी थे।

दरिया साहब की रचनाओं के सामान्य एवं हल्के अध्ययन से यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि वे हिन्दुओं और मुसलमानों के, विशेषतः हिन्दुओं के, धर्म-ग्रंथों के प्रति कटु भावनाएँ रखते थे। वे कहते हैं—'बेदै अरुझि रहा संसारा।'[33] अन्य अवसरों पर वेद, शास्त्र, गीता और कुरान आदि सभी धर्म-ग्रंथों को पाषण्ड-पूर्ण बताया है।[34] परन्तु यदि हम उनकी रचनाओं का सूक्ष्म एवं गम्भीर अध्ययन करें तो हमें यह स्पष्ट ज्ञान हो जायगा कि वे धर्म-ग्रन्थों की निन्दा या उनका निराकरण नहीं करते ; बल्कि इन धर्म-ग्रन्थों द्वारा प्राप्त ज्ञान के दुरुपयोग की निन्दा करते हैं। पंडित और मुल्ला दोनों ही पशुओं क बलिदान करते है—हिन्दू बकरे का और मुसलमान गाय का; और हिंसा के इस घृणित कार्य के समर्थन में ये धर्म ग्रन्थों की दुहाई देते है।[35] परन्तु वास्तव में ये अपने जिह्वा-स्वाद के तुष्टि-मात्र के लिये पशु-हत्या करते हैं।[36]

(घ) वेद और कुरान

ऐसे व्यक्तियों के लिय धर्म-ग्रन्थ निरर्थक तथा बोझ मात्र हैं।[37] कुछ पदों में कवि ने पंडितों और साधुओं को वेदों की शिक्षाओं पर स्थिरता-पूर्वक विचार करने का उपदेश दिया है। उनके विचार में इन ग्रन्थों से मूर्ति-पूजा, पशुवलि, मदिरा-पान आदि का पोषण कदापि नहीं मिलता। ये तो तथाकथित प्रचारकों की अपनी जघन्य प्रवृत्तियाँ हैं।[38] धर्म-ग्रन्थों का दुरुपयोग उन्होंने अपनी स्वार्थपरता तथा आन्तरिक दुर्बलता को छिपाने के अभिप्राय से किया है। ऐसे पाषण्डी व्यक्ति जनता की सहज श्रद्धा-बुद्धि और सरलता से अनुचित लाभ उठा कर उसके दिये हुए अन्न, दूध, दही और पकवान खा-खाकर मोटे-तगड़े बन जाते हैं। उनकी उपमा ढूँढ़ना कठिन नहीं है—

ऊपर हंस भितर है कागा, कर्म कमावै खोटा।
आगे नाथ ना पाछे पगहा, एहि बिधि गदहा मोटा ॥[39]

---

३३. द० सा० ९८. ३; ग० गो० ५. २।

३४. श० २. १८; भ० हे० ४२. २, ४२. ६।

३५. श० ५. १३, १०. ८; ब्र० वि० ६. ४–६।

३६. श० १०. ८; भ० हे० २६. १२–१३।

३७. रा० स० १६०।

३८. श० १६. १, १६. २।

३९. श० १८. ३७।

दरिया साहब की विचार-परम्परा में दिखावटी वेश-भूषा अथवा निरर्थक कर्मकाण्ड[४०] का कोई स्थान नहीं है। जनेऊ, तिलक, कुण्डल, जटा, गुदड़ी, व्याघ्रचर्म और घंटी आदि

(ङ) 'भेख' और कर्मकाण्ड

दिखावे और सजावे की वस्तुओं में इनकी आस्था नहीं है।[४१] उनका कहना था कि अधिकांश लोगों में यह 'भेख' केवल भ्रम या 'ठगौरी' मात्र है।[४२] अपने ग्रन्थ में दरिया साहब ने सरल, उज्ज्वल, बिना रंग के और बिना सिले हुए वस्त्रों के उपयोग का विधान किया है तथा जूते-टोपी का भी निषेध किया है।[४३]

विशद निरर्थक विधिपूर्ण पूजा, नृत्य और गानयुक्त अर्चना, आडम्बरपूर्ण व्रत और नियम आदि का दरिया ने 'खटकर्म'[४४] कहकर खंडन किया है।[४५] उन्होंने अपने समय में हिन्दू पुजारियों को आँख मूँदते, घड़ी-घंट बजाते, 'बाजीगर' के समान 'भेष' बनाते और ढोंग करते देखा था।[४६] मुसलमान मुल्लाओं की भी वही हालत थी। वे यद्यपि भिखारियों के वस्त्र पहनते, मालाएँ जपते और प्रभु की प्रार्थना के निमित्त अजान (बांग) देते; तथापि वे पशु-पक्षी आदि जीवों की हत्या करने से बाज नहीं आते थे।[४७]

दरिया साहब ने जिस योग-विशेष की निन्दा की है, उसे हठयोग कहते हैं।[४८] उन्हें योग के नाम पर शरीर पर अत्याचार करते हुए देखकर बहुत आश्चर्य होता था। रात-

(च) तथाकथित योग

दिन पानी में पड़े रहना (जल-शयन), ग्रीष्मऋतु में पाँचों ओर आग जलाकर बैठना (पञ्चाग्नि-सेवन), पैर ऊपर और सिर नीचे कर वृक्ष से लटकते रहना (हिण्डोला), अंगों का छेदन आदि बातें उन्हें सर्वथा आश्चर्यमय और पाषण्डपूर्ण जान पड़ीं और इन क्रियाओं के साधकों में उन्होंने सच्चे 'ज्ञान' का अभाव पाया।[४९] इनमें से अधिकांश लोग प्रवञ्चक होते थे और उन्हें अपनी इन्द्रियों तथा कामनाओं पर तनिक भी अधिकार नहीं होता था। शरीर को जलाने से क्या लाभ, जब भीतर की क्रोधाग्नि और कामाग्नि नहीं बुझ सकी ?[५०]

---

४०. स० रा० ४३९।
४१. श० २. २४, ८. ११; भ० हे० १३. ३–४।
४२. श० ३. ४६, ७. १५।
४३. अ० ज्ञा० ३२. ३।
४४. श० १. ४१।
४५. श० १. ११।
४६. ब्र० वि० ९. ९–१०।
४७. ब्र० वि० ३१. ४–८।
४८. ग्रन्थ का आठवाँ परिच्छेद देखिए।
४९. श० १. १३, २ अ. ४–५, ५३. १५; भ० हे० १२. १०–१५; ग० गो० ५. १२–१४।
५०. श० ३ अ. ७३; अ० सा० १३. ०।

दरिया साहब ने बहुधा आँख मूँद कर ध्यान करने को बकवृत्ति कह कर तथा साँस खींचकर प्राणायाम करने को सर्पवृत्ति कह कर निन्दा की है।[५१] हठयोग और पाषण्ड के आराधकों का आत्मारूपी हंस मानों कौओं के संग में फँस गया है। सिंह मानों बेड़ियों में जकड़ गया है। चाँद मानों ऐनें से ढँक दिया गया है।[५२] जब ऐसा आराधक अथवा साधक स्वयं डूब रहा है, तब वह दूसरों को डूबने से क्या बचा सकेगा?[५३] सच्चे ज्ञान के बिना योग भ्रम और पाषण्डमात्र है[५४] और सच्चा ज्ञान मन को पहचान कर वश में कर लेने पर ही प्राप्त होता है।[५५]

---

५१. श० ३ अ. ३८।

५२. श० १. ४५।

५३. श० ३ अ. ७०।

५४. अ० सा० ६. ६; ब्र० वि० ६. १६; का० च० ४. ८।

५५. ब्र० वि० २२. १६।

षोडश परिच्छेद

सन्त और सत्संग

सच्चे सन्त (साधु या दरवेश) के संबंध में जो धारणा दरिया साहब की है उसके अनुसार उसका मृत्युलोक के प्राणियों में अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान है। सच्चा सन्त इस संसार में रहकर भी इसके विकारों से परे है। वह जल में कमल के पत्ते अथवा जलपक्षी के समान है जो जल में रहकर भी भीगता नहीं।[1] उसकी उपमा घृत से भी दी जा सकती है, जो एक बार दही से विलग होकर पुनः उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकता; अथवा उस सुगंधित तेल से जो तिल या सरसों से अलग होकर फिर उसमें मिलाया नहीं जा सकता।[2] वह एक निर्मल मोती के समान है[3] जो पाप-पुण्य दोनों का अतिक्रमण कर मुक्तावस्था में पहुँच चुका है।[4]

आदर्श संत

एसे सन्त को पूर्ण ब्रह्म का सच्चा ज्ञान होता है।[5] वह एक सिंह के समान है जो ज्ञान के द्वारा अज्ञान रूपी हाथी का विनाश करता है।[6] किन्तु ज्ञान और भक्ति परस्पर सापेक्ष हैं।[7] रूपक-भाषा में यों कहिए कि सन्त एक सैनिक है जो अपने ज्ञान रूपी अश्व को भक्ति की लगाम से नियंत्रित रखता है।[8] वह सर्वदा प्रभु के नाम का मतवाला बना रहता है। वह ब्रह्म से मिलकर उसी प्रकार एक हो जाता है--जैसे आग में मिलकर इंधन या सागर में मिलकर नदी की धारा।[9]

वह गरीबी और अनाहार में ही गौरव अनुभव करता है[10] और दूसरों के दुःख से दुःखी होकर उनसे सहानुभूति रखता है।[11] वह अपना जीवन परोपकार और मानवता

---

१. ज्ञा० र० ११२. १०, ११९. ८; भ० हे० ६. ४-५; ज्ञा० मू० १८. ७।

२. द० सा० १०८. ७–११; भ० हे० १५. ६।

३. श० २३. १२।

४. श० ५३. ९।

५. ज्ञा० र० १. ३; ज्ञा० सा० १३०।

६. श० १. ४६–४७।

७. द० सा० १०९. ४।

८. श० १. ४७।

९. श० १. ७९; ज्ञा० स्व० १२५–१२९।

१०. श० १४. ९।

११. श० ३.३, १०.६; ज्ञा० स्व० १०३, ११२।

उद्धार के निमित्त उत्सर्ग किये रहता है। वह उस वृक्ष या नदी के समान है जो अपनी तल छाया अथवा शीतल जल सबको प्रदान करते हैं।[12] वह अपनेको करोड़ों में प्रति-लित समझता है। दूसरों में भी अपने ही रूप का दर्शन करता है; वह सच्चा 'आत्म-र्शी' है।[13] उसकी वाणी मधुर और स्पष्ट होती है[14] और उसका चित्त सदा आन्तरिक ह्लाद से प्रफुल्लित रहता है; उसके सत्संग में मनरूपी भौंरा सदा मधुर पुष्प-ाग का रसास्वादन करता रहता है।[15] वह सांसारिक वासनाओं के सुख को नहीं नता।[16] वह सच बोलता है और सच ही करता है।[17] सन्तोष और सच्चरित्रता उसके ोष गुण है।[18] दरिया साहब उस व्यक्ति के कटु आलोचक हैं जो काम-वासना का ान किये बिना सन्तों का मार्ग अनुसरण करना चाहता है।[19] उसे अपनी वासनाओं विजयी होकर ही सन्त के पथ का पथिक बनना चाहिए। मोह रूपी सम्राट् की ो मधुर वाणी है। उसकी रानी अपने कोमल अंगों और अश्रुसिक्त नयनों से सन्त को न-जाल में फँसाने के लिए पहुँच जाती है। पर सन्त वही है, जो उससे स्पष्ट शब्दों में कह कि उसके लिए ये सारी भाव-भंगिमाएँ व्यर्थ हैं; क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है प्रलोभनपूर्ण जगत् भ्रान्त एवं मिथ्या है।

इस तरह फटकार पाने पर मोहरानी अपना मुख ढँक लेती है, उसकी वाणी मन्द पड़ जाती और वह निराश होकर अपने पति के पास लौट जाती है। उसे यह सूचित करती है अमुक सन्त प्रलोभनों से परे और सिद्ध है।[20] दरिया साहब साधुओं को उपदेश देते हैं वे सत्य की माला, सन्तोष की झोली, ज्ञान की छड़ी और मधुर वाणी का कमण्डलु रण करें।[21] तभी वे सच्चे सन्त बन सकेंगे।

साधु की गरिमा सागर-सी विशाल है। वह अगम्य है।[22] सभी श्रेणी के व्यक्ति ससे गौरव में नीचे हैं और वह गगन में सूर्य के समान सर्वोपरि चमकता है।[23]

---

२. ज्ञा० र० १०२, १७-१८।
३. श० १. ३५।
४. श० २अ. ३।
५. ज्ञा० र० १११.२-४।
६. ज्ञा० र० ४. ७।
७. ज्ञा० र० ११०. ७।
८. ज्ञा० र० ५. १५; भ० हे० २५. १।
९. श० ६. १४।
०. प्रे० मू० २१. ५-१०, २०. ०।
१. श० ८. १।
२. श० १८. ४२; अ० सा० २१. ३; ज्ञा० मू० २५. ७।
३. ज्ञा० र० ५७. २४।

उसमें अद्भुत शक्तियाँ आ जाती हैं और उसकी वाणी कभी मिथ्या नहीं जाती; यहाँ तक कि यदि वह कह दे कि 'सोऽहं' (मैं ही ईश्वर हूँ) तो इसमें भी कोई अचरज की बात नहीं है—

कहै जो वह मैं हौं भगवाना, तौ तेहि कहै ना ताजुब माना।[२४]

सच्चे सन्त की उपमा यदि उस हंस से दी जा सकती है, जो नीर-क्षीर का विभेद कर देता है और जो मानस-सरोवर में सदा मोती चुगा करता है, तो पाषण्डियों की उपमा उस बगुले से दी जा सकती है जो 'तन का उजला, पर मन का काला' होता है और ध्यान का ढोंग बाँधकर अचानक मछलियों को धर दबोचता है।[२५] यदि प्रभु की पूजा करनी है तो मिथ्याचार और पाषण्डों से हृदय को मुक्त और शुद्ध करके सच्ची भावना से उसकी प्रार्थना करनी चाहिए।[२६] अतएव दरिया साहब ने उन लोगों को चेतावनी दी है, जो सत्-पथ को त्याग कर, सच्ची पूजा से विमुख हो, माया का जाल बिछाते हैं।[२७] तथाकथित मुसलमान 'पीरों' को तो देखिए, जो मजहबी चोगा पहनकर माला फेरते रहते हैं; पर जिनमें दया लेश मात्र भी नहीं है।[२८] हिन्दू साधु भी इनसे कुछ अच्छे नहीं हैं। वे भी माला, कंठी और तिलक धारण कर लेते हैं, मूर्त्ति पूजते हैं और शंख पूजते तथा बजाते हैं।[२९] ये दोनों पीर और साधु विभिन्न वेशभूषा में आध्यात्मिक गुरु कहाते हैं।[३०] पर, सच्ची बात तो यह है कि वे ठग हैं और अपढ़ तथा भोली-भाली जनता से धन ऐंठना उनका पेशा है।[३१] वे बाहर से हंस और भीतर से कौआ है।[३२]

अतएव उन साधुओं की संगति करनी चाहिए जो सच्ची पूजा करना जानते हैं और जिनके पास 'यार मिलन की बाग अमाना' की कुंजी और प्रमाणपत्र हो।[३३] छल-प्रपंच और पाषण्डपूर्ण पूजा छोड़ देनी चाहिए। इससे प्रभु प्रसन्न नहीं होता।[३४] पाषण्ड हमें नरक की ज्वाला में ढकेल देगा।[३५] जब तक हम सच्चे सन्तों का

सत्संग

२४. ज्ञा० र० ११०, ७; ज्ञा० स्व० १२४।
२५. ज्ञा० र० ८४. १०, ८५.०; ज्ञा० १८. १७।
२६. ज्ञा० स्व० ९८, १०७।
२७. ज्ञा० स्व० ९८।
२८. ज्ञा० स्व० ९९; ज्ञा० मू० २०. ६।
२९. ज्ञा० स्व० १००।
३०. ज्ञा० स्व० १०१; ज्ञा० र० ९९. ०।
३१. ज्ञा० स्व० १०८।
३२. ज्ञा० र० ११६. १३।
३३. ज्ञा० स्व० ११३-११४।
३४. ज्ञा० स्व० १०४, १०९।
३५. ज्ञा० स्व० १०५, १०६।

सत्संग न करें, हमारे दुःखों का अन्त नहीं हो सकता है।[३६] उनके दर्शन मात्र से ही हमारे दुर्गुण और हमारी त्रुटियाँ भाग खड़ी होती हैं, दुख नष्ट होते हैं और सुख प्राप्त होता है।[३७] जिस प्रकार एक साधारण कीट भौंरे के संग में भौंरा बन जाता है, जिस प्रकार नदी की क्षुद्र धारा विशाल सागर में विलीन होकर तदाकार बन जाती है, जिस प्रकार सोने से मिलकर तांबा उससे अभिन्न हो जाता है, और जिस प्रकार पारसमणि से छू जाने पर लोहा भी पारसमणि बन जाता है; उसी प्रकार एक साधारण जन्ममरणशील प्राणी भी सच्चे सन्तों के सत्संग में रहकर स्वयं महात्मा बन जाता है।[३८] कौआ बदल कर हंस बन जाता है। जिस प्रकार तिल-तैल गुलाब के फूलों की सुगंधि अपने में खींच लेता है, उसी प्रकार शिष्य भी सन्त के गुणों को अपना लेता है।[३९] सन्त के दर्शन सदा गुणदायक एवं शान्तिदायक होते हैं। वह अपने भक्तों के लिए मानों अमृतपात्र में नवनीत परोसता है।[४०] यदि हम साधुओं का सत्संग करें तो हमारी निहित शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं और हमें कोटि-कोटि तीर्थ और दान-पुण्य करने का मनोवांछित फल प्राप्त हो जाता है।[४१] सच्चे साधुओं का विरोध करनेवाला नरक में पड़ता है।[४२] अतएव हमें साधुओं का सत्संग करके उस अमृत का पान करना चाहिए जिसे वे वितरण किया करते हैं।[४३]

---

३६. श० १. ४३; भ० हे० २. ५।

३७. श० १. ६१, ३ अ. २१।

३८. श० १२. ३।

३९. श० १७. १६।

४०. ज्ञा० र० ११२. ६।

४१. ज्ञा० र० ५७. २२, ९३. १३, ११०. ३; श० ५३. १३; ज्ञा० मू० १८. १०।

४२. श० ५३. १८; भ० हे० ५. ८।

४३. ज्ञा० र० ११२. ६–७; अ० सा० ८. ९।

सप्तदश परिच्छेद

सद्गुरु और 'शब्द'

दरिया साहब ने विभिन्न प्रसंगों में सद्गुरु (जो प्रायः हस्तलिपियों में 'सतगुर' लिखा गया है) शब्द का प्रयोग तीन विभिन्न अर्थों में किया है। यथा—

सद्गुरु की व्याख्या

(१) ईश्वर या सत्पुरुष, जो सर्वोपरि पथ-प्रदर्शक है;[१]

(२) दरिया साहब या सुकृत, जो इस पृथ्वी के ऊपर सबसे बड़े गुरु हैं[२] और

(३) वह गुरु जो किसी भक्त को गुरुमन्त्र देता है और उसे दरियापंथ में दीक्षित करता है।[३]

इस परिच्छेद में इस तीसरी कोटि के गुरु की ही चर्चा की जायगी।

दरिया साहब की विचारधारा में सद्गुरु का बड़ा ऊँचा स्थान है। सद्गुरु में एक आदर्श सन्त के सभी गुणों का निरूपण किया गया है।[४] वह सत्पुरुष का प्रत्यक्ष रूप है।[५] उसका स्थान इतना ऊँचा है कि तीर्थ से यदि एक फल प्राप्त होता है और साधु की संगति से यदि दो फल प्राप्त होते हैं, तो सद्गुरु की संगति से परम फल मुक्ति की ही प्राप्ति हो जाती है। मुक्ति ही तो जीवन का उच्चतम ध्येय है।[६] सद्गुरु का आशीर्वाद अनिवार्य है; वह हमारे माया के बंधनों को तोड़कर हमें त्रिविध तापों (दैहिक, दैविक और आध्यात्मिक) से विमुक्त कर देता है।[७] वह हमें सच्चा ब्रह्म-ज्ञान प्रदान करता है, हमारी दिव्य दृष्टि खोल देता है जिससे हम अदृश्य परमात्मा को देख सकें और परमानन्द प्राप्त कर सकें।[८] परमानन्द जन्म और मृत्यु के चक्र से पूर्णतया मुक्त हो जाने की अवस्था का नाम है।[९] बिना गुरु

सद्गुरु की वंदना

१. ज्ञा० स्व० १८, २०२, २१७।

२. स० रा० ५६४; श० २२. १४।

३. द० सा० १०—१०; विस्तार के लिए द्वितीय परिच्छेद देखिए।

४. सोलहवें परिच्छेद में 'साधु और उसका सत्संग' देखिए।

५. स० रा० ८।

६. स० रा० ७१०।

७. द० सा० २. १; श० ४. १५; ज्ञा० दी० ३२. ६—१०; ज्ञा० र० ११२. २।

८. श० ३ अ ४७, ८. ७।

९. श० ८. १८, १५. ५।

की सहायता के हम भव-सागर पार नहीं कर सकते हैं और अन्त में हम यम के आखेट बनेंगे ही।[१०] अतएव यदि जीवन-सागर में सद्‌गुरु द्वारा चालित चरित्र और सन्तोष की नौका पर जीव रूपी हंसों की टोली चल पड़े, तो वह निश्चय ही अपने लक्ष्य स्थान 'अमर पुर' पहुँच जायगी।[११] यदि कोई जीव समुचित 'छापा' और 'सनद', जो केवल योग्य व्यक्तियों को सद्‌गुरु द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं, लेकर न जाय तो उसे अमरपुर के भीतर प्रवेश की आज्ञा नहीं मिल सकती।[१२] सद्‌गुरु के बिना मनुष्य अंधा है और उसका जीवन दुखमय।[१३] बिना गुरु के प्राप्त ज्ञान की तुलना 'दीप बिनु मन्दिल' अथवा 'भाव बिनु भक्ति' या 'पिया बिनु सेज' से की जा सकती है।[१४] 'ज्ञानरत्न' में दरिया साहब ने गुरु की महत्ता का विशद रूप में वर्णन किया है। उस प्रसंग में काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि सद्‌गुरु के अभाव में ही उन्हें चौरासी लाख योनियों का चक्कर लगाना पड़ा और अन्त में एक सद्‌गुरु के आशीर्वाद से ही उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकी।[१५] कवि कहते हैं कि सद्‌गुरु के बिना मनुष्य कौए, कुत्ते या सूअर के समान नीच हैं; परन्तु सद्‌गुरु प्राप्त कर लेने पर कौआ हंस बन जाता है, और मर्त्य प्राणी भी देवता बन जाता है।[१६] कवि सत्य ज्ञान की उपमा एक शिकारी और मन की उपमा एक पक्षी से देते हैं। वे कहते हैं कि शिकारी अकेला सर्वथा असमर्थ है; क्योंकि उसका धनुष और प्रत्यंचा तो सद्‌गुरु के हाथों में है।[१७] यथार्थ बात तो यह है कि हम जितना भी ज्ञान प्राप्त कर लें, बिना गुरु के अनवरत सम्पर्क के हम अपनी तृष्णाओं पर अधिकार नहीं कर सकते। एक दूसरे प्रसंग में जगत् की उपमा कमल से, आत्मा की उपमा भौंरे से, और सद्‌गुरु की उपमा सूर्य से दी गई है। इसका अर्थ यह है कि संसार में जीव, बिना गुरु के पथ-प्रदर्शन के, सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता।[१८]

---

१०. श० २. २२, ३अ. ५, ४. ३१, ५. २, १८. २३, २४. १५, ३३. १, ३३. २।

११. द० सा० २७. ०; श० ३६. ८; स० रा० ३१०; ज्ञा० र० १८. ०।

१२. श० १८. २०, २३. १०।

१३. द० सा० १०. १०; श० ३६. २।

१४. श० ४. ३३; ज्ञा० र० ११८. ६।

१५. ज्ञा० र० ६०. २०, ६७. ०।

१६. स० रा० १६१; द० सा० ३०.०; श० ६.१, १५. ३–६। विस्तार के लिए **त्रयोदश** परिच्छेद देखिए।

१७. श० १५. ७।

१८. ज्ञा० र० १०७. ०।

दरिया साहब का कहना है कि वेदों का प्रभाव तीनों लोकों में व्याप्त है; पर सद्गुरु इनकी सीमा से परे, एक चौथे लोक में भी, अपना प्रभाव रखता है।[१९] वहाँ उसके शब्द ही विधान हैं; उसकी वाणी ही पंथ है—'पंथ सोई जो सतगुर भाखा।'[२०] उपर्युक्त बातें केवल सद्गुरु के संबंध में ही लागू है।

ढोंगी गुरु

दुनिया मे सैकड़ों ढोंगी और पाषण्डी लोगों ने गुरु का स्वांग रच कर धन जमा करने का ही अपना लक्ष्य बना रखा है। मानवता के दुःख-क्लेश निवारण की बात तो उनसे दूर रही, उलटे लोगों को ठग कर पैसा कमाना ही उनका पेशा बन गया है। ऐसे लोग सीधे नरक में जा पड़ते हैं।[२१] 'वेदों' के पढ़ने राख-भभूत लपेटने, जटा-जूट बढ़ाने, शरीर को कष्ट पहुँचाने, इन्द्रियों को कृत्रिम उपायों द्वारा निरुद्ध रखने, अथवा ऐसे ही अन्य झूठे पाषण्डों, से कोई गुरु के पवित्र स्थान को ग्रहण नहीं कर सकता।[२२] जो लोग कुछ पैसों या एक जोड़ी धोती के लिए लल्लो-चप्पो करते फिरते हैं अथवा जो शास्त्रों में पारंगत रहने पर भी मृग या भैंस आदि जीवों का वध करते या करने की आज्ञा देते है;[२३] ऐसे पाषण्डी गुरुओं से दरिया साहब सावधान रहने के लिए आग्रह करते हैं। ऐसे व्याघ्रजातिवाले लोग जंगल में मांसाहारी जीवों की टोली में रहने के योग्य है।[२४] अतएव सच्चा और उत्तम गुरु (करारा गुरु) प्राप्त करने में हमें पूर्ण सजग रहना चाहिए।[२५]

शिष्य

एक बार सच्चा गुरु मिल जाने पर शिष्य को उनके चरणों में अपना सर्वस्व—तन, मन और जीवन—अर्पण कर देना चाहिए[२६] और उनकी वन्दना करनी चाहिए।[२७] उनसे कुछ भी गुप्त नहीं रखना चाहिए और गुरु तथा शिष्य के बीच जो प्रेम की डोर रहती है, उसे वंचना की कैंची से काटना नहीं चाहिए। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध कटु हो जाता है और वे दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़े रहते हैं—वे अपने पक्ष का समर्थन तर्कों द्वारा करते हैं। पर ऐसा दृश्य देखने पर यही लगता है कि मानों दो कुत्ते किसी हड्डी के टुकड़े पर जूझ रहे हों।[२८] यह स्पृहणीय बात नहीं है। अपने गुरु के प्रति शिष्य का व्यवहार सचाई का होना चाहिए।

१९. द० सा० ४५. ८–९।
२०. श० १६. २।
२१. ज्ञा० दी० ३२. ४।
२२. श० १५. १–३।
२३. श० ६.९–१०।
२४. स० रा० ३१२।
२५. द० सा० २२. ०।
२६. स० रा० ८; ज्ञा० दी० १५. ४; ज्ञा० मू० १७. ०।
२७. द० सा० १०. १।
२८. श० १८ . २३।

वैसी दशा में ही गुरु अपनी पूर्ण सहृदयता प्रदर्शित कर शिष्य-हृदय की सुप्त महत्ता और सत्प्रवृति को उद्दीप्त करके उसके जीवन को ज्योतिर्मय बना सकेगा।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि सद्गुरु अपने शिष्य को वह गुप्त गुरु-मंत्र प्रदान करेगा जिसे 'शब्द' या 'गुप्त शब्द' अथवा 'अनाहत नाद' कहते हैं।[२९] शब्द को पा लेने का

शब्द अर्थ ब्रह्म को पा लेना है। कठिन योगसाधन तथा मानसिक एवं शारीरिक संयम के बाद ही शब्द की प्राप्ति होती है।[३०] आध्यात्मिक साधना की विभिन्न अवस्थाओं में मार्ग-निर्देशन के निमित्त सद्गुरु का होना अत्यन्त आवश्यक है। शब्द की उपमा अनेक प्रकार से दी गई है। यह पारस के समान है जिसके छू जाने से लोहा भी सोना हो जाता है। यह जीवन-शक्ति प्रदान करनेवाली संजीवनी है। यह वह चुम्बक है, जो अन्य धातुओं को आकर्षित कर लेता है और तलवे में चुभनेवाले काँटों को निकाल कर दूर कर देता है।[३१] यही साधक के लिए सब कुछ है। यही उसे 'अभयलोक' या 'छपलोक' तक पहुँचाता है।[३२] अतएव दरियासाहब कहते हैं कि जीव रूपी हंस को शब्द रूपी तुरंग पर चढ़ कर अपने इष्ट लक्ष्य मुक्ति की ओर तीव्र गति से बढ़ जाने दो।[३३] इन पक्तियों से यह स्पष्ट विदित होता है कि 'शब्द' का अर्थ केवल सद्गुरु द्वारा प्रदत्त गुरु-मंत्र ही नहीं, अपितु वह विराट् 'अनहद नाद' भी है जिसे योगी ध्यान की उच्चतम अवस्था के बीच में सुनता है।

---

२९. द० सा० ६६. २; ज्ञा० मू० ४. ६; का० च० ५. ०।

३०. चतुर्दश परिच्छेद देखिए और द० सा० ६७. ०, ६६. ३–४, ६६. ७।

३१. श० २२. १, २३. १; द० सा० ८. ८।

३२. द० सा० १७. १६, ८६. ७।

३३. द० सा० ८६. ८–९।

अष्टादश परिच्छेद

स्वरोदय*

'ग्यान सरोदे' (सं० ज्ञान-स्वरोदय) दरिया साहब की एक अत्यन्त प्रमुख रचना है। इसका विषय निम्नलिखित तीन खंडों में विभाजित किया जा सकता है—

१. साखी (पद) १ से १६४ तक;

२. „ „ १६५ से २७० तक;

३. „ „ २७१ से ३०४ तक।

इन खंडों में से प्रथम और तृतीय खंडों के विषय की आलोचना पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। उनमें आत्मसंयम, चित्तशुद्धि आदि उन विषयों की चर्चा की गई है जिनके बिना द्वितीयखंड के विषय 'स्वरोदय' का ठीक-ठीक ज्ञान तथा अभ्यास नहीं हो सकता।

द्वितीयखण्ड ('स्वरोदय') को भी हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। यथा—

(क) तत्त्व-सिद्धान्त ;

(ख) स्वर-सिद्धान्त ;

(ग) भविष्यकथन-सिद्धान्त।

(क) दरियासाहब ने पहुँचे हुए संत की जो कल्पना की है, उसके अनुसार उसमें अन्तर्ज्ञान की असाधारण शक्ति होती है। इसी शक्ति के बल पर वह एक ओर अपनी नासिका के 'स्वरों'

तत्त्वविधान तथा दूसरी ओर पाँचो 'तत्त्वों' और उनकी विकृतियों तथा प्रकृतियों के बीच ऐसा समन्वय स्थापित करता है, जिससे वह अमोघ भविष्य वाणी करने में समर्थ होता है।

बचन सरोद म्रिथा नहिं होई।

---

* 'स्वरोदय' का विषय दरिया साहब के लिए कोई नई चीज नहीं है। इस विषय पर सन्त कबीर के नाम का भी एक ग्रन्थ मिलता है। इसपर अन्य सन्तों द्वारा लिखित ग्रन्थों में सन्त 'चरनदास' की रचना अपेक्षाकृत लोकप्रिय है। संस्कृत-साहित्य में भी 'स्वरोदयों' का अभाव नहीं है और ये शैववाद तथा तांत्रिकवाद के विशिष्ट अंग हैं। संभवत: ये ही हिन्दी-सन्तों के 'स्वरोदयों' की प्रेरणा के मूलस्रोत हैं।

निम्नलिखित तालिका में पञ्चतत्त्व और उनकी विकृतियों-'प्रकृतियों' का वर्णन दिया जाता है।

स्तम्भ १	२	३	४	५	६	७
तत्त्व	उनका निवास स्थान	उनका वर्ण	उनमें से प्रत्येक की पाँच-पाँच प्रकृतियाँ	तत्त्वों के अनुकूल इन्द्रियाँ	ज्ञानेंद्रियों के विषय	तत्त्वों के अनुकूल गुण
अग्नि	चित्त	काला	आलस्य, तृषा, निद्रा, भूख, तेज	नेत्र	लोभ, मोह	रजस्
पवन	नाभि	हरा	चलन, गान, बल, संकोच, विवाद	नासिका	गंध सुगंध	तमस्
पृथिवी	हृदय	पीला	अस्थि, मज्जा, रोम, त्वचा, नाड़ी	मुख	भोजन आचमन	सत्त्व
नीर	भाल (ललाट)	लाल	रक्त, वीर्य, पित्त, लार, पसीना	जिह्वा और जननेन्द्रिय	मैथुन स्वाद	—
आकाश	मस्तक	उजला	लोभ, मोह, शंका, डर, लज्जा	कान	शब्द, कुशब्द	—

टिप्पणी—

(क) इन्द्रियों की संख्या ग्यारह है, जिनमें से आँख, नाक, जीभ, त्वचा और कान 'ज्ञानप्रधान' तथा हाथ, पैर, जननेन्द्रिय, गुदा और मुख 'कर्मप्रधान' हैं। ग्यारहवीं

स्तम्भ:—१. ज्ञा० स्व० १९३।
" २. ज्ञा० स्व० १८२–१८३।
" ३. ज्ञा० स्व० १७५।
" ४. ज्ञा० स्व० १८५—१९०।
" ५. ज्ञा० स्व० १७६—१८१
" ६. ज्ञा० स्व० १७६—१८१।
" ७. ज्ञा० स्व० १९१—१९२।

इन्द्रिय 'मन' सबका राजा है। इसपर जो विजय प्राप्त कर ले, वह सचमुच संतो की श्रेणी में आ गया।[८]

(ख) पाँचों इन्द्रियों के अनुरूप पाँच मुद्राएँ है। यथा—क्रमशः 'गोचरी', 'खेचरी', 'भोचरी', 'चंचरी' और 'उनमुनी'।[९]

(ग) आदि तत्त्व आकाश से पञ्च-तत्त्वों का विकास निम्नलिखित क्रम से हुआ—

आकाश ∠ पवन ∠ अग्नि ∠ जल ∠ पृथ्वी।[१०]

(घ) 'निर्भय-ज्ञान' नामक पुस्तक में पचीस प्रकृतियों का एक भिन्न विवरण दिया गया है। वहाँ उनके नाम इस प्रकार लिखे गये हैं[११]—(१) झूठ बोलना, (२) तीर्थयात्रा, (३) पत्थर की मूर्त्ति पूजना, (४) प्रस्तर-मूर्त्ति के सम्मुख जीव का बलिदान, (५) जीवहिंसा, (६) षड्दर्शन का अध्ययन और सूर्य को अर्घ्य देकर नमस्कार करना, (७) भूत-प्रेत की पूजा, (८) पाषंडपूर्ण व्रत और नियम, (९) झूठ-मूठ बड़ाई करना, (१०) काम-क्रिया में रति, (११) झगड़ा लगाना, (१२) बरबस बोलना, (१३) चंचलता-कुमति, (१४) पाषण्ड, (१५) सत्य की हँसी उड़ाना, (१६) माया में फंसे रहना, (१७) कंजूसी से धन बटोरना, (१८) मोह-पाश, (१९) कुल-कर्म में अंध-विश्वास, (२०) नैराश्य, (२१) लोभ, (२२) मूर्खों की संगति, (२३) त्रिगुण संसार, (२४) भ्रम-जाल में फँसे रहना और (२५) सगुणोपासना की नवधा भक्ति। इस प्रसंग में प्रकृति शब्द का व्यवहार मानवीय त्रुटियों एवं दुर्बलताओं के व्यापक अर्थ में किया गया है।

उपर्युक्त पाँचों तत्त्वों का निवास नासिका द्वारा बाहर निकलनेवाले 'स्वरों' में है। ये स्वर तीन हैं—

स्वर-विधान

(१) दक्षिण स्वर;
(२) वाम स्वर और
(३) उभय स्वर।

इन स्वरों की गति-विधि विभिन्न तत्त्वों द्वारा प्रभावित होती रहती है। यथा—

यदि तत्त्व	अग्नि	है	तो	स्वर	ऊपर की ओर भागेगा;
"	" पवन	"	"	"	की गति तिरछी होगी;
"	" पृथिवी	"	"	"	की गति चक्रवत्, घूम-घुमौआ होगी;
"	" नीर	"	"	"	नीचे की ओर चलेगा;
"	" प्रकाश	"	"	"	की गति सर्वथा अनिश्चित अर्थात् कभी दक्षिण और कभी वाम भाग में रहेगी।[१२]

८. टिप्पणी (क) —ज्ञा० स्व० १६४–१६७।
९. टिप्पणी (ख)—ज्ञा० स्व० १८४; विवरण के लिये अष्टम परिच्छेद देखिये।
१०. टिप्पणी (ग)—ज्ञा० स्व० २७१–२७४।
११. टिप्पणी (घ)—नि० ज्ञा० ६.१–२७।
१२. ज्ञा० स्व० १७१–१७३।

निम्नांकित तालिका में दरिया साहब द्वारा निर्मित 'स्वर'-विधान का रूप प्रस्तुत किया जाता है ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९
स्वर	उपनाम	स्वरों से सम्बद्ध नाड़ियाँ (स्वरों के तृतीय नाम)	नासिका	अन्त-र्देवता	सम्बद्ध नक्षत्र पुञ्ज	संबद्ध पक्ष	संबद्ध दिवस	स्वरों की अनुगामिनी क्रियाओं की विशेषता
चन्द्र	गंगा	इंगला (इड़ा)	वाम	चंद्रमा	वृश्चिक, सिंह, वृष, कुम्भ	शुक्ल	सोम, बुध, गुरु, शुक्र	स्थिर
भानु	यमुना	पिंगला	दक्षिण	सूर्य	कर्क, मेष, मकर, तुला	कृष्ण	रवि, मंगल, शनि	चंचल
सुषुम्णा	सरस्वती	सुखमना (सुषुम्णा)	दोनों साथ-साथ	उभय	कन्या, मीन, मिथुन, धन	—	—	—

स्तम्भ ७ की कुछ व्याख्या इस प्रकार है । यद्यपि सामान्यतः शुक्ल पक्ष के स्वामी चन्द्रमा हैं, फिर भी इस पक्ष के विषय में निम्नलिखित बातें स्मरण रखने की हैं—

तिथि	१,	२,	३	में	प्रधानता	चन्द्र	की	रहती	है ।
,,	४,	५,	६	,,	,,	सूर्य	,,	,,	,,
,,	७,	८,	९	,,	,,	चन्द्र	,,	,,	,,
,,	१०,	११,	१२	,,	,,	सूर्य	,,	,,	,,
,,	१३,	१४,	१५	,,	,,	चन्द्र	,,	,,	,,

इसके विपरीत कृष्णपक्ष में—

तिथि	१,	२,	३	में	प्रधानता	सूर्य	की	रहती	है ।
,,	४,	५,	६	,,	,,	चन्द्र	,,	,,	,,
,,	७,	८,	९	,,	,,	सूर्य	,,	,,	,,
,,	१०,	११,	१२	,,	,,	चन्द्र	,,	,,	,,
,,	१३,	१४,	१५	,,	,,	सूर्य	,,	,,	,,

स्तम्भ—१, ३, ४, ५—ज्ञा० स्व० १६७-१६९ ।
,, २—ज्ञा० स्व० २६० ।
,, ६—ज्ञा० स्व० १४२-२४४ ।
,, ७, ८—ज्ञा० स्व० २०३-२०९ ।
,, ९—ज्ञा० स्व० २१०-२११ ।
टिपण्णी (क) ज्ञा० स्व० २०३-२०७ ।

स्तम्भ ६ की भी कुछ व्याख्या आवश्यक है। क्रियाएँ अथवा व्यापार दो तरह के हैं—स्थिर और चल।

स्थिर क्रियाएँ ये हैं—वस्त्राभूषण प्राप्त करना, विवाह, उपचार (ओषधि), प्रेम, योग, ध्यान, पुस्तकलेखन, घर या महल का निर्माण, फुलवारी या वाटिका लगाना, कुएँ खोदना, गृह-प्रवेश और बीजवपन। ये सब स्थिर कार्य की श्रेणी में आते हैं और इनका आरम्भ यदि वाम स्वर की प्रधानता में किया जाय तो इनमें सफलता प्राप्त होती है।[१३] वाम स्वर की प्रधानता में दक्षिण और पश्चिम दिशा की यात्रा उत्तम और वाञ्छनीय है।[१४]

अस्थिर या चल क्रियाएँ ये हैं—रुपये उधार लेना या देना, भोजन करना, अध्ययन करना, हिसाब करना, मित्र या शत्रु के निकट जाना, युद्ध करना, भिक्षाटन, बोझा ढोने वाले पशु या शस्त्रास्त्र खरीदना, संयत उपभोग और संयत स्नान।[१५] इन कार्यों का आरम्भ यदि दक्षिण स्वर की प्रधानता में किया जाय तो इनमें सफलता प्राप्त होती है। उत्तर और पूर्व दिशाओं की यात्रा इस स्वर की प्रधानता में उत्तम और सफल होती है।[१६]

सन्त या साधक को शुक्ल पक्ष की प्रथमा तिथि के दिन प्रातः काल में भविष्य का विचार करना चाहिए[१७] और इस संबंध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं।

(ग) भविष्यवाणी का सिद्धान्त

परिस्थितियाँ	भविष्यकथन	
यदि चन्द्र में पृथिवी बहती है—	वर्षफल साधारणतया अच्छा रहेगा।	
यदि 'इंगला' में नीर बहता है—	"	उत्तम रहेगा।
यदि 'पिंगला' में नीर और पृथिवी बहते हैं—	"	कुछ मध्यम रहेगा।
यदि दक्षिण-स्वर में अग्नि और वायु बहते हैं—	वर्ष	सूखा रहेगा या असमय वर्षा होगी।
यदि दोनों स्वरों में आकाश प्रवाहित है—	वर्ष में	उपज अत्यन्त कम होगी और दुर्भिक्ष पड़ेगा।[१८]

१३. ज्ञा० स्व० २१२–२१५।
१४. ज्ञा० स्व० २२०।
१५. ज्ञा० स्व० २१६–२१६।
१६. ज्ञा० स्व० २२०।
१७. ज्ञा० स्व० २२३–२२४।
१८. ज्ञा० स्व० २२५–२२६।

जब कभी प्रश्नकर्त्ता कोई प्रश्न करे तो 'भविष्यवक्ता' को उसी क्षण अपना स्वर देखना चाहिए और स्वर (दक्षिण, वाम या उभय गति) का निश्चय करके उसी के आधार पर भविष्यवचन करना चाहिए।[१९]

यदि नक्षत्र, पक्ष, दिन (वार) और तिथि की गणना ठीक है तो भविष्यवाणी अवश्य सत्य होगी, और उनमें जितना ही अन्तर पड़ता जायगा, भविष्यवाणी की सचाई और सबलता उतनी ही घटती जायगी।[२०]

विस्तृत वर्णन—

प्रश्न करने की परिस्थितियाँ	भविष्य-कथन
यदि गर्भवती स्त्री प्रश्न करती हो और यदि—	
(क) दाहिना स्वर चलता हो, ...	सकुशल पुत्रोत्पत्ति होगी ;
(ख) बायाँ स्वर चलता हो, ...	कन्या उत्पन्न होगी ;
(ग) स्वर अनमिल हो, ...	प्रश्नकर्त्ता को कुछ हानि होगी;
(घ) दोनों स्वर साथ और सम्पूर्ण चलते हों, ...	उसे युग्म पुत्र उत्पन्न होंगे।[२१]
यदि कोई व्यक्ति प्रश्न करता है और यदि— (१) चंद्र प्रवाहित हो, (२) नक्षत्र, दिन और तिथि शुभ हैं और (३) प्रश्नकर्त्ता बाई ओर झुककर खड़ा हो,	कार्य्य सफल होगा।[२२]
यदि प्रश्नकर्त्ता— (१) नीचे, पीछे या दाहिनी ओर खड़ा हो, (२) दाहिना स्वर चलता हो, (३) नक्षत्रादि शुभ हों,	कोई शुभ घटना होनेवाली है।[२३]
यदि सुषुम्णा प्रधान हो,	कोई दुर्घटना होगी, ; अतएव किसी को कहीं आना-जाना नहीं चाहिए। बैठकर चिन्तन और ध्यान करना चाहिए।[२४]

१९. ज्ञा० स्व० २३५।
२०. ज्ञा० स्व० २४०।
२१. ज्ञा० स्व० २३१–२३४।
२२. ज्ञा० स्व० २३६–२३७।
२३. ज्ञा० स्व० २३८–२३९।
२४. ज्ञा० स्व० २४१।

प्रश्न करने की परिस्थितियाँ	भविष्य-कथन
यदि कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को प्रातः काल भानु प्रवाहित हो,	कुछ लाभ की सम्भावना है ।[२५]
यदि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को प्रातः काल में चन्द्र प्रवाहित हो,	भाग्य में अत्यधिक सुख है ।[२६]
यदि पक्ष का मेल स्वर से न होता हो,	कुछ हानि होगी ।[२७]
यदि किसी पक्ष की प्रतिपदा के प्रातः काल में सुषुम्णा प्रवाहित हो,	उस पक्ष में हानि और झगड़ा होगा ।[२८]
यदि 'गंगा', 'यमुना', और 'सरस्वती' सभी सूखी हों और श्वास मुंह से चलता हो,	परिणाम मृत्यु होगा ।[२९]
यदि आठयाम (२४ घंटे) तक पिंगला प्रवाहित हो,	तीन वर्ष में मृत्यु होगी ।[३०]
यदि सोलह याम तक पिंगला प्रवाहित हो,	दो वर्ष में मृत्यु होगी ।[३१]
यदि सूर्य एक पक्ष तक प्रवाहित हो,	छः मास में मृत्यु होगी ।[३२]
यदि एक मास तक रात्रि में चंद्र और दिन में सूर्य प्रवाहित हो,	छः मास में मृत्यु होगी ।[३३]

२५. ज्ञा० स्व० २४५ ।
२६. ज्ञा० स्व० २४६ ।
२७ ज्ञा० स्व० २४७ ।
२८. ज्ञा० स्व० २४८ ।
२९. ज्ञा० स्व० २६० ।
३०. ज्ञा० स्व० २५४ ।
३१. ज्ञा० स्व० २५५ ।
३२. ज्ञा० स्व० २५६ ।
३३. ज्ञा० स्व० २५७-२५८ ।

प्रश्न करने की परिस्थितियाँ	भविष्य-कथन
यदि एक मास तक पिंगला प्रवाहित हो,	दो दिन में मृत्यु हो जायगी।[३४]
यदि चन्द्र रात-दिन चार दिनों तक प्रवाहित हो,	एक सहस्र दिन में मृत्यु होगी।[३५]
यदि चंद्र का प्रवाह द्रुततर हो जाय,	मृत्यु निकट आ गई है।[३६]
यदि चंद्र बीस दिनों तक प्रवाहित हो,	शरीर मृत्यु की मुट्ठी में आ चुका है।[३७]
यदि एक याम तक सुषुम्णा प्रवाहित हो,	मृत्यु निश्चित है।[३८]
यदि दिन में पिंगला और रात्रि में इड़ा प्रवाहित हो,	हंस (आत्मा) के उड़ जाने की सम्भावना है।[३९]
यदि ध्रुवमंडल अर्थात् नासिकापुट का ऊपरी अग्रभाग दिखाई न पड़ता हो,	दो पक्षों के बाद मृत्यु हो जायगी।[४०]

३४. ज्ञा० स्व० २५६।
३५. ज्ञा० स्व० २६१-२६२।
३६. ज्ञा० स्व० २६३।
३७. ज्ञा० स्व० २६४।
३८. ज्ञा० स्व० २६५।
३९. ज्ञा० स्व० २६६-२६७।
४०. ज्ञा० स्व० २६८

तृतीय खंड

प्रथम परिच्छेद
कबीर और दरिया

दरिया साहब हिन्दी-सन्त कवियों के गगनांगन में एक देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति कबीर से प्राप्त ज्योति को, अपनी विशेष शैली में, उद्भासित करते दिखाई पड़ते हैं।

कबीर और दरिया एक ही माला की दो कड़ियाँ

अपनी कविताओं में वे अपनेको बहुधा कबीर का अवतार मानते हैं या यों कहिए कि वे कबीर को और अपनेको, सत्पुरुष (ईश्वर) के पुत्र *'सुकृत'* के अवतारों की अविच्छिन्न माला में, आगे-पीछे आनेवाली दो कड़ियाँ मानते हैं।[१] जब कभी वे कबीर का प्रसंग लाते हैं, बड़े ही सम्मानपूर्ण शब्दों में उल्लेख करते हैं; और इस प्रकार के प्रसंग बहुत अधिक संख्या में हैं।[२] यह सच है कि दरिया साहब ने अपना एक अलग पन्थ चलाया; परन्तु उन्होंने अपने शिष्यों को जो उपदेश दिये, उनमें कबीर की छाप असन्दिग्ध एवं स्पष्ट है। विगत परिच्छेदों के प्रस्तवन-क्रम को दृष्टि में रखते हुए कबीर की शिक्षाओं का निम्नलिखित सारांश, दरिया साहब के आध्यात्मिक विचारों के तुलनात्मक विवेचन के निमित्त, दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि दरिया साहब ने जिन सिद्धान्तों और उपदेशों का प्रचार किया, वे कबीर के मूल सिद्धान्तों और उपदेशों के अनुरूप थे।

कबीर के 'राम' दरिया साहब के 'सत्पुरुष' की भाँति जन-साधारण के सगुण 'राम' अर्थात् 'दशरथ सुत' नहीं हैं।[३] सगुण राम को हिन्दुओं के उन देवताओं की श्रेणी में ही रखा

कबीर के 'राम'

जा सकता है, जो माया और त्रिगुण के प्रभाव में जकड़े हुए ह।[४] परन्तु कबीर के 'राम' निर्गुण हैं अर्थात् वे ब्रह्मा, शंकर, हरि आदि सभी त्रिगुण-विशिष्ट शरीरधारियों से परे हैं।[५] वे रूप-रेखा-रहित निराकार, निर्विकार, उन्मुक्त अनन्त और सीमा-रहित हैं।[६] वे सभी जीवों में उसी प्रकार व्याप्त हैं, जिस प्रकार सभी काष्ठों में अग्नि अदृश्यरूप से निहित है।[७] केवल 'राम' ही जगत में व्याप्त नहीं हैं; बल्कि जगत् भी 'राम' में अन्तर्विष्ट है।[८] विस्तृत जलराशि में प्रतिफलित सहस्र-सहस्र प्रतिविम्बों की भाँति समस्त सृष्टि की अनेकता 'राम' अथवा ब्रह्म की व्यापक एकता में से प्रकट होती है और पुनः उसी में विलीन हो जाती है।[९] निर्गुणमत के दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन करते हुए बड़थ्वाल ने इस मत की त्रिविध दार्शनिक प्रवृत्तियों——अद्वैत, भेदाभेद और विशिष्टाद्वैत——की चर्चा की है और उन्होंने यह माना है कि इनमें से प्रथम

---

१. सभी उद्धरण एक साथ इस परिच्छेद के अन्त में दिये गये हैं।

अर्थात् 'अद्वैत' का प्रवर्त्तन कबीर ने किया है।[१०] इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि कबीर की विचार-धारा सामूहिक रूप से अद्वैतपरक है और वैसी ही है दरिया की भी।[११]

यद्यपि 'निर्गुण' शब्द से साधारणतया निर्गुण ब्रह्म का बोध होता है, तथापि कबीर की कविताओं में अनेक उद्धरण ऐसे हैं जो उस भावना की ओर इंगित करते हैं जिसे[१२] बड़थ्वाल ने परात्परवाद (Ultraism) कहा है और जिसके अनुसार ब्रह्म-तत्त्व सगुण और निर्गुण दोनों से परे है।[१३] इस प्रकार के उद्धरणों का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म-प्राप्ति के उच्चतम परमानन्द की अवस्था में भक्त सभी प्रकार के भेद-भाव, और 'बर्गसों' (Bergson) के शब्द में विवेचन-बुद्धि (Intelligence), से परे जा पड़ता है। वहाँ तर्क विफल हो जाता है, वाणी मूक हो जाती है और गुड़ का स्वाद लेनेवाले गूँगे के समान वह ब्रह्म-प्राप्ति-जन्य मधुरता का आस्वादन भर करता है--उसका वर्णन करने में असमर्थ रहता है।[१४] वस्तुतः कबीर के परात्परवाद (Ultraism) का अभिप्राय उस अवस्था से है[१५] जिसमें पहुँच कर भक्त आत्मविभोर हो ब्रह्म में लीन हो जाता है। अतएव, उसका वर्णन करने की क्षमता उसमें नहीं रह जाती है। उस अवस्था में ब्रह्म-तत्त्व केवल अनुभव-गम्य है। दरिया साहब के लेखों में भी हमें अनेक प्रसंग ऐसे मिलते हैं, जिनमें सत्पुरुष (ब्रह्म) को निर्गुण और सगुण--दोनों से परे एकमात्र अनुभूतिगम्य प्रतिपादित किया गया है।[१६]

परात्परवाद (Ultraism)

ईश्वर की जो निर्गुण कल्पना की गई है, उससे स्वतः निष्कर्ष निकलता है--मूर्तिपूजा का खंडन। पत्थर की मूर्ति में ईश्वर मानकर जो उसे पूजते हैं और उसपर भरोसा करते हैं, वे निश्चय ही 'काली धार' में बह कर डूब मरते हैं।[१७] पत्थर के शालिग्राम (सालिग-राम) को पूजने से कहीं अच्छा है सजीव आत्मा-राम की पूजा।[१८] दरिया साहब मूर्तिपूजा की निन्दा करने में कबीर से पूर्णतया सहमत हैं।[१९] किन्तु एक बात ऐसी है जिसमें हम दरिया को कबीर से कुछ भिन्न पाते हैं। वह है--'निरंजन' की कल्पना। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि 'नाथपंथ' के साहित्य में 'निरंजन' पद से साधारण रूपेण निर्गुण ब्रह्म और विशेषार्थ में 'शिव' का बोध होता है।[२०] कबीर ने भी इस पद का व्यवहार साधारणतया निर्गुण ब्रह्म के ही अर्थ में किया है।[२१] किन्तु उनके कुछ उद्धरणों में हमें सहज ही उस प्रक्रिया के आरम्भ की झलक मिलती है, जो आगे बढ़कर निरंजन की 'दुर्गति' का कारण बन गई।[२२] उदाहरणार्थ, एक पद में कबीर ने निरंजन को दस अवतारों की श्रेणी में रखा है तथा उसे 'कर्त्ता' (ईश्वर) से भिन्न बताया है।[२३] बाद की कुछ कृतियों में, जिनके भी रचयिता कबीर बताए जाते हैं, तथा 'कबीर-मंसूर'-जैसे बृहद् ग्रन्थों में, निरंजन को 'सत्पुरुष' अर्थात् ईश्वर का पुत्र बताया गया है और उसे संसार की अनन्त उलझनों और दुःखों का उत्तरदायी ठहराया गया है। दरिया साहब ने भी निरंजन को यही पद और यही रूप प्रदान किया है।[२४]

मूर्तिपूजा की निन्दा

कबीर और दरिया दोनों के अनुसार आत्मा अमरपुर का स्थायी निवासी है; किन्तु यह मर्त्यलोक में आ पड़ा है और जन्म-जन्मान्तर के चक्र में भटक रहा है।[२५] जन्म और मृत्यु की शृंखला से उन्मुक्त हो अमरलोक की प्राप्ति ही आत्मा का प्रधान कर्त्तव्य है।

आत्मा, शरीर और पुनर्जन्म

इस जगत से परे कहीं अन्यत्र स्वर्ग की कल्पना न तो कबीर और न दरिया ही करते हैं।[२६] उनका विचार है कि मनुष्य 'जीवन्मृत' बन कर ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है[२७] अर्थात् वह इन्द्रियों के प्रलोभनों तथा जीवन के दुःख-सुख आदि के प्रति मृतक-सा व्यवहार करके (उनसे अप्रभावित होकर) मुक्ति पा लेगा। जब ऐसा 'जीव-मृतक' मरता है, तब वह सदा के लिए मर जाता है; उसे पुनः कभी मरना नहीं पड़ता।[२८] कबीर द्वारा स्वर्ग अथवा योगी के दिव्य-दृष्टि-लोक का चित्रांकण दरिया के चित्रांकण से मिलता-जुलता है।[२९] योगी द्वारा अनन्त सौन्दर्यपूर्ण छवियों (अजब तमाशा) और आश्चर्यमयी दृश्यावलियों के उपभोग का वर्णन, दोनों ही कवियों के प्रिय विषय हैं।[३०] अधिकांशतः 'दिव्य-दृष्टि' के लोक की सुन्दरताओं के वर्णन के साथ योग के विशिष्ट पारिभाषिक पदों को सम्बद्ध कर दिया गया है, यथा—इंगला, पिंगला, सुखमना, गंगा, जमुना, सरस्वती, उनमुनी, चंद, सूर, सुरति, निरति, त्रिवेणी, सुन्न गगन, मेरुदण्ड, षट्-चक्र, षोडश कमल आदि।[३१] द्वितीय खंड के आठवें परिच्छेद में हम दो प्रकार के योगों की कुछ विशेष आलोचना कर आये हैं। हम यह भी बता आये हैं कि दरिया साहब ने उन्हें 'पिपीलक-योग' (जो हठयोग का ही दूसरा नाम है) और 'विहंगम-योग' के नाम से पुकारा है तथा इन दोनों में 'विहंगम-योग' को ही सरल और श्रेयस्कर माना है। इस विषय में कबीर का विचार भी दरिया के अनुरूप ही है। यद्यपि 'उलटे पवन चक्र-षट बेधा' तथा हठयोग की अन्य प्रक्रियाओं के अनेक प्रसंग उनकी रचनाओं में पाये जाते हैं, तथापि उनकी प्रवृत्ति अधिकतर एक सरलतर प्रक्रिया—जिसे वे 'सहज-समाधि' के नाम से पुकारते हैं तथा जिसमें साधक बिना आँख, कान मूँदे ही ईश्वर का ध्यान कर सकता है—के समर्थन की ओर रही है।[३२] कबीर की सहज-समाधि बहुत अंशों में दरिया के 'विहंगम-योग' के समान है। यह योग हठ-योग से सरलतर तथा भिन्न है और इसकी अपनी विशिष्ट प्रक्रियाएँ हैं।[३३]

स्वर्ग और 'दिव्य-दृष्टि' का लोक

श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी की 'कबीर' नामक पुस्तक के पाँचवें परिच्छेद में सृष्टि की कबीर-पंथ-सम्मत कल्पना का सारांश दिया गया है जो प्रधानतया 'कबीर-मंसूर' नामक ग्रंथ के आधार पर है। उस सारांश का और भी संक्षिप्त रूप नीचे दिया जा रहा है—

सृष्टि-सिद्धान्त

"सत्पुरुष (ईश्वर) ने छः पुत्रों की सृष्टि की—सहज, अंकुर, इच्छा, सोहम्, अचिन्त्य और अक्षर। एक सातवाँ भी था जो अण्डे के आकार का था। इसी अण्डे से

पीछे चल कर निरंजन का जन्म हुआ। तब सत्पुरुष ने निरंजन को जगत् की सृष्टि और उसका विकास करने की आज्ञा दी। पर निरंजन अकेला था, अतएव उसने आद्याशक्ति माया का निर्माण किया और उन दोनों के संसर्ग से ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति हुई। ये ही तीनों देवता चौरासी लाख जन्मों और उनके चक्रों के उत्तरदायी हैं।"[३४]

कबीर ने भी सृष्टि-सिद्धान्त की ओर बीज रूप में इंगित किया था। इस बात का पता उनके कुछ ऐसे उद्धरणों से मिलता है, जिनमें वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को इच्छा-रूपिणी गायत्री नाम की नारी के पुत्र बताते हैं;[३५] अथवा देवताओं, मुनियों, मानवों, अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भज जीवों, तीन गुणों, पृथिवी और आकाश को ब्रह्मा विष्णु और महेश और उनकी पत्नियों के संयोग से उत्पन्न बताते हैं।[३६]

जान पड़ता है कि दरिया साहब ने सृष्टि-निर्माण विषयक अपनी कल्पना अपने समय के प्रचलित कबीर-पंथ से ली थी, अर्थात् उस समय ली थी जब 'कबीर-मंसूर' में यह कल्पना पूर्ण विकास को प्राप्त हो चुकी थी। द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत दरिया साहब का सृष्टि-विवरण पढ़ने से उसपर कबीर-पंथ की भावना की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है। कुछ छोटी-मोटी विभिन्नताओं को छोड़ कर दरिया की कृतियों में वर्णित-सृष्टि-सिद्धान्त 'कबीर-मंसूर' में वर्णित सृष्टि-सिद्धान्त से मिलता-जुलता है।

माया की शक्ति

कबीर की विचारधारा में माया वह आदि-शक्ति है जिसके प्रकट रूप त्रिगुणात्मक जगत् और उसके पदार्थ हैं। माया वह 'महाठगिनी' है जो हाथों में 'त्रिगुणी फाँस' और मुख में 'मधुरी वाणी' लिए डोलती है[३७] और जीवों को पापों की ओर प्रेरित करती है। केवल सत्पुरुष ही इसके प्रभाव से बचे हैं; अन्यथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सन्त, ऋषि, भक्त-पण्डित, राजा और रंक---सभी इसके प्रलोभनों के आखेट बन चुके हैं। ये सभी सामान्य मरण-शील प्राणियों की भाँति जरा, जन्म, मृत्यु, रोग, सुख-दुःख आदि के वश में हैं। पतंग की भाँति मानव स्वयं मायारूपी दीपक की अग्नि-शिखा में कूद कर प्राण गँवा देता है।[३८]

कामिनी और कनक---ये दो माया के प्रबल प्रलोभनकारी दूत हैं[३९] और इनका परिहार किए बिना मुक्ति संभव नहीं है। दरिया ने माया के विषय में अपना वही दृष्टिकोण रखा है जो कबीर ने रखा था और उन्होंने भी इसकी निन्दा में कोई कटूक्ति उठा नहीं रखी है।[४०]

प्रेम और भक्ति

कबीर के निर्गुण 'राम' की यही विचित्रता है कि वे वैष्णवों के सगुण 'राम' की भाँति प्रेम और भक्ति के द्वारा आराध्य हैं। 'निर्गुण' शब्द से केवल निषेधात्मक भावना का बोध नहीं होना चाहिए। इसके निषेधात्मक अंश की उपयोगिता तो केवल अवतारवाद अर्थात् ईश्वर के शरीर धारण करने की विचार-धारा के प्रतिवाद में ही है। अन्यथा, इसमें बहुत सी विध्यात्मक भावनाएँ हैं जिनसे ईश्वर भक्ति के द्वारा आराध्य और योग द्वारा प्राप्य बन जाते हैं।

प्रभु के प्रति प्रेम ही आध्यात्मिक उन्नति और यौगिक साधनाओं का एकमात्र आधार है। पर यह कोई सुगम काम नहीं है। यदि भक्त प्रेम-मन्दिर में पैर रखना चाहता है, तो पैर बढ़ाने के पहले वह अपना सिर उतार कर हथेली पर रख ले।[४१] प्रेम खेतों में नहीं उपजता और न यह हाट-बाजार में ही बिकता है। जो भी इसे प्राप्त करना चाहे, वह अपने जीवन की बलि देकर ही इसे प्राप्त कर सकता है।[४२] त्याग की ऐसी ही उदात्त भावना कबीर ने प्रेम के साथ संयुक्त कर रखी है।

कबीर के पद्यों में दाम्पत्य-प्रेम की भाषा में प्रस्तुत ईश्वर-प्रेम के अनेकानेक वर्णन पाये जाते हैं। वे कल्पना करते हैं कि मैं एक 'दुलहिन' हूँ जो 'जोबन मे माती' अपने 'भरतार' 'राजाराम' के घर आकर प्रथम-मिलन का आनन्दास्वाद ले रही हूँ।[४३]

दरिया साहब भी भक्ति-पथ में प्रेम और विश्वास को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। उन्होंने भी रहस्यपूर्ण आध्यात्मिक प्रेम के वर्णन में दाम्पत्य-प्रेम की भाषा का प्रयोग किया है।[४४] परन्तु वह तीव्रता, मधुरता, उदारता और सरलता, जो कबीर की कविताओं में पाई जाती है, समग्र हिन्दी-साहित्य में दुर्लभ है। इसके अतिरिक्त कबीर ने 'प्रेम में विरह' की महत्ता और मोहकता का चित्रण जिस प्रौढ़ता से किया है,[४५] दरिया की कविताओं में उसका अभाव है।

हम जानते हैं कि कबीर ने अपने युग के निरर्थक रुढिवाद और कर्मकाण्ड के विरुद्ध विद्रोह का स्वर ऊँचा किया था। उनका विचार था कि ये निरर्थक रूढ़ियाँ और पाषण्डपूर्ण

पाषण्ड

कर्मकाण्ड धूर्त और धोखेबाज पण्डितों तथा मुल्लाओं की स्वार्थपूर्ण देन हैं। अतएव उन्होंने बहुधा इनकी कटु आलोचना और भर्त्सना की है। दरिया ने जिन पाषण्डों की कटु आलोचना की है, उनमें से कुछ रूढियों और रीतियों की विवेचना हम कर आए हैं। यथा—

(क) मूर्तिपूजा, (ख) तीर्थयात्रा, (ग) जातिपाँति और सम्प्रदाय, (घ) वेद और शास्त्र, (ङ) 'भेख' और कर्मकाण्ड तथा (च) हठयोग।

कबीर ने भी इन विषयों का निराकरण उग्र वाणी में किया है। उनकी कविताओं से कुछ ही उद्धरण उदाहरण के लिए पर्याप्त होंगे।[४६] पर इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि पण्डितों, वेदों, शास्त्रों और योग की जो निन्दा उन्होंने की है, वह व्यापक तथा विना अपवाद के नहीं है। तथाकथित 'पण्डित' से उनका अर्थ उस पाषण्डी विद्वान् से है जो धर्म का मिथ्या ढोंग धारण किये रहता है। 'वेदों और शास्त्रों' से उनका तात्पर्य इन मूल धर्म-ग्रन्थों से नहीं (क्योंकि उन्होंने कभी इन ग्रन्थों का अध्ययन करने और इनमें निहित रहस्यों को जानने का प्रयत्न नहीं किया), बल्कि उनके उस दुरुपयोगपूर्ण दुरर्थ से था जिसके आधार पर पण्डितों ने पशु-वध आदि हिंसाकृत्यों और कुरीतियों का समर्थन कर रखा था और जिनकी निन्दा कबीर सदा किया करते थे। निन्दित 'योग' से उनका अर्थ वासनाओं को बिना वश में किये ही यौगिक क्रियाओं द्वारा निरर्थक शारीरिक उत्पीड़न

था। जाति पाँति और छुआछूत के तो वे सर्वथा प्रतिकूल थे ही, अतः उन्होंने विश्व-बन्धुत्व का प्रचार किया है। कबीर और दरिया दोनों ने मुसलमानों की भी, उनकी अन्धपरंपरागत रूढ़ियों के लिए, कटु आलोचना की ह।

सन्त और सद्गुरु

कबीर और दरिया दोनों के लेखों में सन्त आध्यात्मिक गुरु का स्थान अत्यन्त सम्मानपूर्ण और पवित्र रखा गया है। ईश्वर के बाद सद्गुरु का ही स्थान है। उसकी महिमा अपार है और उसके उपकार अनन्त हैं। वह भक्तों के 'अनन्त लोचन' खोलकर 'अनन्त' का दर्शन करानेवाला है।[४७] कबीर अपने सद्गुरु की 'बलिहारी' लेते है, जिन्होंने पल-भर में ही उनको मनुष्य से देवता बना डाला।[४८]

कबीर और दरिया—दोनों ने संयम, अहिंसा, आत्मनिरोध, नम्रता, शालीनता और सचाई आदि सद्गुणों पर बल दिया है। इनके समर्थन करने वाले उद्धरणों की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।[४९]

सारांश यह है कि दरिया साहब अपनी शिक्षाओं का उद्गम-स्रोत कबीर में पाते हैं और वे अपनेको उनका 'अवतार' भी मानते हैं। किन्तु दरिया ने लगभग बीस स्वतंत्र काव्य ग्रन्थ—कुछ मुक्तक और कुछ प्रबन्ध—रचे हैं जिनमें उन्होंने अपूर्व मौलिकता, उच्चकोटि की शैली और उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है और जिसके बल पर वे हिन्दी, विशेषतः निर्गुण-भक्तिधारा, के कवियों में शीर्ष-स्थान के अधिकारी सिद्ध होते हैं। बिहार-राज्य के मध्यकालीन कवियों में तो उनका स्थान सर्वोपरि एवं मूर्द्धन्य है।[५०]

प्रथम परिच्छेद के उद्धरण

१. विस्तार के लिए प्रथम खण्ड का प्रथम परिच्छेद देखिए ।

२. ध्रुव प्रहलाद नामदेव भगता कासी (में) भए कबीरा ।। श० १८.४१

३. दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना ।
राम नाम का मरम है आना ।।

४. रजगुन ब्रह्मा तमगुन संकर, सतगुन हरि है सोई ।
कहै कबीर एक राम जपहु रे, हिन्दू तुरक न होई ।। क० ग्र० १०६

५. निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई ।
अबिगत की गति लखी न जाई ।। क० ग्र० १०४
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल, तब हमरो नाम राम राई हो । क० ग्र० १०४

६. कहै कबीर बिचारि कै, जाकै बर्न न गाँव ।
निराकार और निर्गुना, है पूरन सब ठाँव ।। क० व० २८
सो कछु बिचारहु पंडित लोई । जाकै रूप न रेष बरण नहीं कोई ।। क० ग्र० १००

७. जैसे बाढ़ी कस्ट हि काटै, अगिनि न काटै कोइ ।
सब घटि अंतर तू ही ब्यापक, धरै सरूपै सोइ ।। क० ग्र० १०५

८. लोका जानि न भूलो भाई ।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ।। क० ग्र० १०४
मैं सबनि मैं औरनि मै हूँ सब ।। क० ग्र० १०४
दुइ जगदीश कहां ते आये, कहु कौने भरमाया । क० श० ४.७५

९. ज्यूँ जल में प्रतिबिम्ब त्यूँ सकल रामहि जाणी जै । क० ग्र० ५६

१०. हिन्दी-कविता की निर्गुण-धारा—बड़थ्वाल, पृ० ३२

११. द्वितीय खण्ड के द्वितीय परिच्छेद का अन्त देखिए ।

१२. हिन्दी-कविता की निर्गुण-धारा पृ० २७

१३. सरगुन निरगुन तजहु सोहागिन, देख सबहिं निज धाम । क० व० ७५
सत्त नाम है सब तें न्यारा । निर्गुन सर्गुन शब्द पसारा । क० व० ८०
सर्गुण की सेवा करौ, निर्गुण का करु ज्ञान ।
निर्गुण-सर्गुण के परे, तहैं हमारा ध्यान ।। क० ग्र० १३६

१४. अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाई ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई ।। क० ग्र० १३६
कौन देस से आया हंसा, उतरना कौन घाट ।। क० व० १२
दरिया साहब के विस्तृत विचार के लिए द्वितीय खण्ड के ३, ४ और
५ परिच्छेद देखिए ।

१५. श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'कबीर' नामक पुस्तक के नवें परिच्छेद (निर्गुण राम) में इस विषय की पूरी विवेचना की है, जिसका सारांश निम्नलिखित वाक्यों में है—
इसी त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैतविलक्षण, भावाभावविनिर्मुक्त, अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेमपारावार भगवान को कबीर दास ने 'निर्गुणराम' कहकर संबोधन किया है। वह समस्त ज्ञान-तत्वों से भिन्न है, फिर भी सर्वमय है। वह अनुभवैकगम्य है—केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसी भाव को बताने के लिए कबीर दास ने बारबार 'गूँगे का गुड़' कहकर उसे याद किया है।··· पृ० १२६-२७

१६. द्वितीय खण्ड का द्वितीय परिच्छेद (सत्पुरुष) देखिए इस विषय की विवेचना 'ईश्वर (सत्पुरुष) की परात्परता और सार्वभौमता' शीर्षक में की गई है।

१७. पाहण केरा पूतला, करि पूजें करतार।
इही भरोसैं जे रहै, ते बूड़े काली धार॥ क० ग्र० ४३

१८. जेती देखौं आत्मा, तेता सालिगराम।
साधू प्रतषि देव हैं नहिं पाथर सूं काम॥ क० ग्र० ४४
कौन बिचारि करत हौ पूजा। असम राम अवर नहिं दूजा क० ग्र० १३१

१९. द्वितीय खण्ड के परिच्छेद २ और १४ देखिए।

२०. नाथपंथमें भी 'निरंजन' शब्द खूब परिचित है। साधारण रूप में 'निरंजन' शब्द निर्गुण ब्रह्म का और विशेष रूप से शिव का वाचक है।
'कबीर', परि० ५, पृ० ५२

२१. नाम निरंजन नैनन मद्धे, नाना रूप धरंत।
निरंकार निर्गुन अबिनासी, अपार अथाह अबंग॥ क० व० २६
तुम्ह घरि जाहु हमारी बहना, विष लागे तिहारे नैना।
अंजन छाड़ि निरंजन रातें, ना किसही का दैना॥ क० व० १३३
कहै कबीर यहु तन कांचा। सबद निरंजन राम नाम सांचा॥ क० ग्र० १३४

२२. स्वयं कबीरदास जी की उक्तियों में से ऐसी ढूँढ़ी जा सकती हैं, जिनमें उन्होंने निरंजन को परमाराध्य समझा है। पर आगे चलकर कबीरपंथ में निरंजन की बड़ी दुर्गति हुई है। निरंजन वहाँ पक्का शैतान बना दिया गया है।—'कबीर' (ह० प्र० द्वि०), पृ० ५३

२३. दस औतार निरंजन कहिये, सो अपना ना होई।
यह तो अपनी करनी भोगै, कर्ता और हि कोई॥ क० व० १३

२४. विशेष विवरण के लिए द्वितीय खण्ड के २ और १० परिच्छेद देखिए।

२५. हंसा कहो पुरातम बात।

कौन देस से आया हंसा, उतरना कौन घाट ।। क० व० १२
दरिया साहब के विस्तृत विचार के लिए द्वितीय खण्ड के तीन, चार और पाँच परिच्छेद देखिए ।

२६. उहाँ न दोजग भिस्ति मुकामा, इहाँ ही राम इहाँ रहिमाना । क० ग्र० १९७

२७. जीवत मृतक ह्वै रहै, तजै जगत की आस ।
तब हरिसेवा आपण करै, मति दुख पावै दास ।। क० ग्र० ६४

२८. मरता-मरता जग मुवा औसर मुवा न कोइ ।
कबीर ऐसै मरि मुवा, ज्यूं बहुरि न मरना होइ ।। क० ग्र० ६४

२९. द्वितीय खण्ड के ६, ७ और ९ परिच्छेद देखिए ।

३०. रस गगन गुफा मे अजर झरै ।
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै ।
बिना ताल जहँ कँवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै ।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै ।। क० व० ११०
चुवत अमीरस भरत ताल जहँ, शब्द उठै असमानी हो ।
सरिता उमड़ सिंधु को सोखै, कहि कछु जात बखानी हो ।
चाँद सुरज तारागण नहिं वहँ, नहिं वहँ रैन बिहानी हो ।
बाजे बजें सितार बांसुरी, ररंकार मृदुबानी हो ।। क० व० १११

३१. तुलना कीजिए :—
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।
उन्मुनि रहै ब्रह्म को चीन्हैं, परम तत्त्व को ध्यावै ।।
सुरत निरत सों मेला करके, अनहद नाद बजावै । क० व० ४०
गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट ।
तहाँ कबीरैं मठ रच्यों मुनि जन जावें बाट ।। क० ग्र० १८
बंक नाल के अंतरै, पछिम दिसा की बाट ।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे ।
त्रिबेणी मनाइ न्हवाइए, सुरति मिलै जो हाथि रे ।
गगन गरजि मघ जोइए, तहाँ दीसै तार अनंत रे ।
बिजुरि चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत है सब संत रे ।
षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गए श्रीबनवारि रे ।
जुरा मरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे । क० ग्र० ८८

३२. उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेरडंड सरपूरा ।
गगन गरजि मन सुन्न समाना, बाजे अनहद तूरा ।। क० ग्र० ९०
संतो सहज समाधि भली ।

आँख न मूँदूँ, कान न रूंधूँ काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन में हँसहँस देखूं सुंदर रूप निहारूँ।। क० व० ४१

३३. विस्तार के लिए द्वितीय खण्ड का आठवाँ परिच्छेद देखिए।

३४. श्रीहजारी प्रसाद द्विवेदी की 'कबीर' पुस्तक के पृष्ठ ५४-५६ देखिए।

३५. इच्छा रूप नारी अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी।।
तिहि नारी के पुत्र तिनि भाऊँ। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ।।
बीजक, रमैनी, सं० १

३६. ब्रह्मा को दीन्हों ब्रहमंडा। सात द्वीप पुहुमी नौ खंडा।।
सत्य सत्य के विष्णु दृढ़ाई। तीनि लोक महँ राखिनि जाई।।
लिंग रूप तब शंकर कीन्हा। धरती खिला रसातल दीन्हा।।
तब अष्टांगी रची कुमारी। तीनि लोक मोहि सब झारी।।
द्वितिय नाम पारवती भयऊ। सो कर्ता शंकर कहँ दयऊ।।
एकहिं पुरुष एक है नारी। ताते रची खानि भौ चारी।।
शर्मन बर्मन देव औ दासा। सतरज तम गुण धरति अकासा।।
बीजक, रमैनी, सं० २७

३७. माया महा ठगिनि हम जानी।
त्रिगुणी फांस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।। बीजक, शब्द २
'त्रिगुणी' में श्लेष देखिए।

३८. माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवैं पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत।। क० ग्र० ३

३९. माया की झल जग जल्या, कनक कामिणी लागि। क० ग्र० ३४

४०. दरिया साहब के विचार के लिए द्वितीय खण्ड का 'माया' शीर्षक परिच्छेद देखिए।

४१. कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसै घर मांहि।। क० ग्र० ६९

४२. प्रेम न खेती नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ।। क० ग्र० ७०

४३. दुलहिनि गावहु मंगलचार।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार।।
रामदेव मेरे पाहुने मैं जोबन में माती।। क० ग्र० ८७

४४. विस्तार के लिए पुस्तक के द्वितीय खण्ड का त्रयोदश परिच्छेद देखिए।

उन्होंने अपने प्रेम-सिद्धान्त की व्याख्या के उद्देश्य से 'प्रेममूला' नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ ही रचा है।

४५. बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिस घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ।। क० ग्र० ६

४६. (क) दूसरे खण्ड का दूसरा परिच्छेद भी देखिए।

(ख) सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौ कहाँ खुदाइ ।। क० ग्र० ४३
मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जाणि। क० ग्र० ४४
कबीर दुनिया देहुरे सीस नवावण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौ ल्यौ लाइ ।। क० ग्र० ४४

(ग) एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गदा।
एक जोति थैं एक उतपन्ना, कौन बाम्हन कौन सूदा ।। क० ग्र० १०६
जो तुम ब्राह्मण ब्राह्मणि जाया, और द्वार ह्वै काहे न आया।
जो तुम तुरक तुरकिनी जाया, पेटहि काहू न सुनत कराया ।। बीजक, रमैनी ६२

(घ) बेद पुरान पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा।
राम नाम तन समझत नाहीं, अंति पड़े मुख छारा ।। क० ग्र० १००

(ङ) हिन्दू ब्रत एकादशि साधै, दूध सिंघारा सेती।
अन्न को त्यागे, मन नहिं हटके, पारन करैं सगौती ।।
तुरुक रोजा निमाज गुजारैं, बिसमिल बांग पुकारैं।
इनको बिहिस्त केसक होइहैं, सांझहि मुरगी मारैं ।। बीजक, शब्द, २३

(च) तन कौ जोगी सब करै, मन को बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होइ ।। क० ग्र० ४६

४७. सतगुर की महिमा अनंत अनन्त किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखावनहार ।। क० ग्र० १

४८. बलिहारी गुर आपणैं, द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार। क० ग्र० १

४९. इस विषय पर दरिया के विचार द्वितीय खंड के परिच्छेद १४ में देखिए।

५०. कबीर की पूर्ववर्त्ती विचार-धारा के ऐतिहासिक प्रतिपादन के लिए पुस्तक के द्वितीय खंड का प्रथम परिच्छेद देखिए।

द्वितीय परिच्छेद

तुलसीदास और दरिया साहब

'रामचरित-मानस' और ज्ञानरत्न : तुलनात्मक अध्ययन

'ज्ञानरत्न' पर मानस का प्रभाव

दरिया साहब की एक रचना 'ज्ञानरत्न' के देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि तुलसीदास का उनपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। 'ज्ञानरत्न' के मुख्यांश में दरिया ने अपने ढंग से 'रामायण' की कहानी कही है। अगले पृष्ठों से यह विदित हो जायगा कि तुलसी के 'रामचरित-मानस' का कैसा और कितना प्रभाव उनपर पड़ा था। इस अध्याय में हम निम्नलिखित प्रणाली का अनुसरण कर समालोचना प्रस्तुत करेंगे।

(१) 'रामचरित-मानस' और 'ज्ञानरत्न' के कथानकों को बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप रखकर उनके साम्यबिन्दुओं को दिखाना; (२) कुछ परस्पर समान प्रमुख पदों, शब्दों और भावों को दोनों ग्रन्थों से उद्धृत करना; और (३) दोनों कवियों में पाई जानेवाली अन्य समानताएँ दिखाना।[1]

१—'रामचरित-मानस' की पद्य-संख्याएँ, गोरखपुर के गीता प्रेस द्वारा मुद्रित 'श्री रामचरित-मानस' (मूल-गुटका, चतुर्थ संस्करण, संवत् १९९७) से उद्धृत की गई हैं। बिन्दु के पहले की संख्या से 'दोहा' और उसके बाद की संख्या से 'चौपाई' का संकेत है। 'ज्ञानरत्न' की पद्य-संख्याएँ, 'मन्नू लाल पुस्तकालय' (गया) में सुरक्षित १८३४ संवत् में लिखित मूलहस्तलिपि के आधार पर दी गई हैं। ये संख्याएँ नये सिरे से बिठाई गई हैं।

(क) कथानकों के सादृश्य-विन्दु

	रामचरितमानस	ज्ञानरत्न	
प्रसंग-सूचक पद्य-संख्याएँ	प्रतिपाद्य विषय	प्रतिपाद्य विषय	प्रसंग-सूचक पद्य-संख्याएँ
आरम्भ से ४३.०. तक।	१. बालकाण्ड देवताओं, गुरु और ब्राह्मण की स्तुति; संत और खल का वर्णन; व्यास तथा अन्य कवियों की वंदना; अयोध्या, दशरथ, जनक, राम आदि का गुण-गान; राम के नाम की महिमा और उनके क्रियाकलाप की चर्चा; रामायण का संक्षिप्त वर्णन।	देवताओं की स्तुति; सत्पुरुष के नाम की महिमा; माया की व्यापकता।	
४३.१–१८६.६	भरद्वाज और याज्ञवल्क्य के संवाद का आरम्भ; शिव का अगस्त्य से मिलना; सती के मन में उत्पन्न रामविषयक संदेह का निवारण; शिव द्वारा सती का परित्याग; दक्ष का यज्ञ और उसका निष्फल होना; सती की मृत्यु; पार्वती रूप में पुनर्जन्म; उनकी तपस्या; शिव के साथ विवाह; पार्वती का रामविषयक तथ्य पर प्रश्न करना;	शुजाशाह और दरिया साहब के बीच संवाद का आरंभ; शुजाशाह के निम्नलिखित विषयों पर प्रश्न—पाप-पुण्य, मानव-स्वभाव, निर्गुण और प्राणायाम; दरिया का इन प्रश्नों का उत्तर देना तथा नाम, दिव्य-दृष्टि, माया, कर्म, मोक्ष और संतों के संबंध में प्रवचन; शुजा के मन में सीताराम-विषयक संदेह; दरिया का सत्पुरुष के सोलह पुत्रों का वणन जिनमें	२.७-८.०

प्रसंग-सूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंग-सूचक पद्य-संख्याएँ
	शिव द्वारा राम की महिमा और कथा का वर्णन; इस कथा द्वारा सगुण और निर्गुण का निर्धारण; रावण की जन्म-कथा; नारद का मोह; राजा शीलनिधि और उनकी कन्याओं की कथा; नारद का मोह-भंग; मनु और शतरूपा की तपस्या तथा विष्णु का उनके यहाँ जन्म लेने का वरदान; राजा भानुप्रताप और उनका रावण के रूप में पुनर्जन्म; देवताओं द्वारा विष्णु की आराधना और उनकी अवतार-ग्रहण करने की प्रतिज्ञा।	निरंजन और 'सुक्रित' भी सम्मिलित हैं तथा सृष्टि के समय की अवस्था का वर्णन।	
१८७.०—२०६.७	अयोध्या में दशरथ के यज्ञ से कहानी का आरम्भ और राम का जन्मोत्सव; अयोध्या में सूर्य का रुकना; अयोध्या में महादेव और काकभुशुण्डि का आगमन; राजकुमारों का बचपन; अध्ययन और आखेट; विश्वामित्र का अयोध्या	सीता के जन्म से कहानी का आरम्भ; माया का अवतार सीता; उनके कौमार्य और सुन्दरता का वर्णन; धनुष-स्वयंवर; राजकुमारों का एकत्र होना; रावण का विफल होना; अयोध्या में राम का जन्मोत्सव; राजकुमारों	६.०—१३.१८,

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	में आकर राम को माँगना; राम और लक्ष्मण का बिदा होना; ताड़का-वध और उसकी सेना का संहार; विश्वामित्र द्वारा शिक्षा; यज्ञ की रक्षा और बक्सर (वगसर) में वास।	का बचपन; विश्वामित्र का अयोध्या में आकर राम को माँगना; राम और लक्ष्मण का विदा होना; ताड़कावध तथा विश्वामित्र द्वारा शिक्षा-प्रदान।	
२०६.८—२८५.०	राम और लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का जनकपुरी में आगमन; जनक का आतिथ्य और कुमारों का नगर-दर्शन; नगरवासियों द्वारा राजकुमारों की प्रशंसा; पुष्पवाटिका में राम और सीता का परस्परावलोकन; राम द्वारा सीता की सुन्दरता का वर्णन; राम का रंग-भूमि में प्रवेश; राम का सौन्दर्य वर्णन; राजकुमारों से भरे धनुष-यज्ञ-मंडप में सीता का प्रवेश; रावण का विफल होना; राम द्वारा धनुर्भङ्ग; परशुराम का क्रोध; लक्ष्मण से विवाद; परशुराम का	राम और लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का जनकपुरी में आगमन; पुष्पवाटिका में राम और सीता का परस्परावलोकन; राम और सीता का रंगभमि-प्रवेश; राम द्वारा धनुर्भङ्ग; परशुराम का क्रोध; लक्ष्मण से विवाद; परशुराम का परास्त होना; दशरथ को निमन्त्रण-दान; जनकपुर में बारात के स्वागत की तैयारी; राम का शृंगार और विवाह; 'कोहबर' (प्रथम-मिलन) की विधि तथा बारात की बिदाई।	१३.१६—१७.१४

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	परास्त होना; दशरथ को निमंत्रण-दान; बारात की तैयारी; जनकपुर में बारातियों का स्वागत; राम तथा अन्य राजकुमारों का विवाह; 'कोहबर' (प्रथम-मिलन) की विधि; बारात की विदाई; अवधपुर में स्वागत और उत्सव तथा सीता की सुन्दरता का वर्णन।	[सीता का सत्पुरुष की पुत्री अथवा कन्या-कुमारी के रूप में वर्णन; माया-जाल की जड़ में उनका ही होना; राम का निरंजन के रूप में परिचय; उनका त्रिगुण-अवतार; वेदों की निस्सारता; ज्ञान, सत्गुरु और 'सत्तनाम' की महिमा।]	१७.१५-१८.२
		बारात के लौटने पर अवधपुर में उत्सव; सीता की सुन्दरता का वर्णन;	१८.३-१९.०
		[माया की व्यापकता और इसकी सम्मोहन शक्ति;	
		आत्म-ज्ञान की आवश्यकता।]	१८.४-१८.५
१.०-१४२.०	*२. अयोध्याकाण्ड*		
	राम के राज्याभिषेक की तैयारी; देवों द्वारा दानवों के विनाश की योजना; सरस्वती द्वारा कैकेयी के मन और जिह्वा पर आधिपत्य; मन्थरा-कैकेयी-संवाद; कैकेयी का कोप-भवन में प्रवेश;	राम के राज्याभिषेक की तैयारी; मंथरा-कैकेयी-संवाद; सरस्वती द्वारा कैकेयी के मन पर आधिपत्य; कैकेयी का कोपभवन में प्रवेश; राम के लिए वन और भरत के लिए सिंहासन	१९.१-२६.०

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरितमानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	राम के लिए बन और भरत के लिए सिंहासन की वरदान-याचना; राम का सुमन्त्र के साथ दशरथ के यहाँ जाना; राम की उदारता और उनका राजा-रानी को प्रबोध देना; सीता और लक्ष्मण का साथ चलने के लिए हठ करना; राम, लक्ष्मण और सीता का अयोध्या से प्रस्थान; शृंगवेरपुर पहुँचना और गुह का आतिथ्य ग्रहण; गंगा पार करना; इन-लोगों का प्रयाग में पहुँ-चना और भरद्वाज से भेंट; वाल्मीकि के निकट जाना; वाल्मीकि द्वारा राम की ईश्वर-रूप में प्रशंसा तथा राम का चित्रकूट में आश्रम-वास और तपश्चरण।	ी वरदान याचना; दशरथ का अचेत होना; राम का वशिष्ठ के साथ दशरथ के निकट जाना; राम की उदारता और उनका राजा-रानी को प्रबोध देना; सीता का साथ चलने के लिए हठ करना; राम लक्ष्मण और सीता का अयोध्या से प्रस्थान तथा वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचना। *अवधपुरी में*—दशरथ की मृत्यु; भरत के पास दूत भेजना; भरत का अवध आना; कैकेयी और मंथरा पर उनका कोप; दाह-संस्कार और श्राद्ध तथा राज्याभिषेक के विरुद्ध भरत की आत्मनिन्दा।	२६.१-२८.०
१४२.१-१८३.०	लौट कर सुमन्त्र की दशरथ से भेंट; भरत के पास दूत का भेजा जाना; भरत का अवध में आग-मन; कैकेयी और मंथरा पर उनका कोप; दाह-संस्कार और श्राद्ध तथा	*प्रयाग में*—राम का आगमन; लक्ष्मण और सीता सहित भरद्वाज के दर्शन; सीता के माया का अवतार लेने का वर्णन; कुम्भज ऋषि से भेंट तथा पर्णकुटी में तपश्चर्या।	२८.१-३०.०

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरितमानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	उनके राज्याभिषेक के प्रस्ताव पर उनकी आत्मनिन्दा।		
१८३.१–३२६.०	प्रजा और रानियों के साथ भरत का प्रस्थान; प्रयाग पहुँचकर भरद्वाज ऋषि के दर्शन; चित्रकूट के लिए प्रस्थान; वन में अशान्ति; लक्ष्मण का क्रोध और आकाशवाणी तथा राम द्वारा शान्त किया जाना; राम का भरत और अन्य लोगों से मिलना; दूतों से संवाद पाकर जनक का चित्रकूट में आगमन; राजा-रानी का राम और सीता से मिलना; राजमाता कौशल्या और सुनयना का मिलना; राम का लौटने से इनकार करने पर सब लोगों का लौट जाना तथा नन्दि-ग्राम में भरत की तपस्या।	जनक का साजबाज तथा सेना के साथ अवध में आगमन; भरत-मिलाप; दोनों का मिलकर नागरिकों, रानियों और साजबाज सहित प्रस्थान; प्रयाग पहुँच कर भरद्वाज ऋषि के दर्शन; वन में अशान्ति; लक्ष्मण का क्रोध और राम द्वारा प्रबोधन; राम का भरत और दूसरे लोगों से मिलना; राम के लौटने से इनकार करने पर सब का वापस जाना; भरत की तपस्या और जनक का लौट कर केवल पूजा-पाठ में लगे रहना।	३०.१–३४.८
		[माया और सद्गुरु का प्रवचन; नाम की महिमा; 'मुक्ति' का वर्णन; अवतारों के त्रिगुणों से निर्मित होने का वर्णन; वेदों और पाषण्डों	३४.९–३७.२

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरितमानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
		की निन्दा; माया और ज्ञान का विवेचन; कुरीतियों का निराकरण; सत्पुरुष, सद्गुरु और आत्म-ज्ञान की महिमा।]	
	३. अरण्यकाण्ड		
१.०–४६.०	जयन्त की कथा— सीता के पद में चोंच मारना; चित्रकूट से प्रस्थान, अत्रि-ऋषि के दर्शन, अत्रि का राम को ईश्वर मान कर उनकी स्तुति करना; सीता को अनसूया द्वारा शिक्षा-दान; विराध-वध तथा शरभंग और सुतीक्ष्ण से भेंट। दण्डक वन में निवास; राम और लक्ष्मण द्वारा ज्ञान और भक्ति का विवेचन; शूर्पणखा का आगमन; लक्ष्मण का उसका नाक-कान काटना; खर और दूषण का वध; रावण के निकट अभियोग; मारीच का स्वर्णमृग के रूप में प्रकट होना; सीता के कहने पर राम का उसका पीछा करना; सीता	*दण्डक वन में—* लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र का वध; शूर्पणखा का आगमन; लक्ष्मण का उसका नाक-कान काटना; खर और दूषण का वध; रावण के निकट अभियोग; स्वर्णमृग के रूप में मारीच का आगमन; राम द्वारा उसका पीछा किया जाना; सीता द्वारा लक्ष्मण का राम की खोज	३७.३–३६.१६

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंग-सूचक पद्य-संख्याएँ
	द्वारा लक्ष्मण को राम की खोज में भेजा जाना; पाषण्डवेश में रावण का आगमन; सीता को लेकर भागना; रावण का जटायु के साथ युद्ध और जटायु की मृत्यु; रावण का लंका पहुँचना; राम का सीता को खोजना; उनको विरह-दशा का वर्णन; जटायु से भेंट; जटायु का राम को भगवान जानकर उनकी प्रार्थना करना; कबन्ध-वध; शबरी से भेंट और उसे नवधा भक्ति का उपदेश; पम्पासर और वसन्त-ऋतु का वर्णन; नारद का आगमन तथा उनके द्वारा राम को भगवान मानकर उनकी पूजा।	में भेजा जाना; पाषण्ड वेष में रावण का आगमन; सीता को लेकर भागना; उसका जटायु से युद्ध और जटायु की मृत्यु; रावण का लंका पहुँचना; राम द्वारा सीता की खोज और उनकी विरह-दशा का वर्णन।	
	४. किष्किन्धा-काण्ड		
१.०–३०.०	हनुमान से परिचय; सुग्रीव से परिचय; वालि से युद्ध और उसका वध; सुग्रीव का राज्याभिषेक; वर्षा-ऋतु का वर्णन; शरद् ऋतु का वर्णन;	हनुमान से परिचय; सुग्रीव से परिचय; वालि से युद्ध और वालि-वध; वर्षा ऋतु का वर्णन; शरद् ऋतु का वर्णन; राम और लक्ष्मण का सुग्रीव के यहाँ	३९.२०–४२.०

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	सुग्रीव की अकर्मण्यता पर राम का क्रोध और लक्ष्मण का पम्पापुर जाना; सुग्रीव का सीता की खोज में बन्दरों को भेजना; बन्दरों का सम्पाति से भेंट और सम्पाति का सीता का पता बताना; बन्दरों का समुद्र-तट पर आगमन; जामवन्त के कहने पर हनुमान का लंका में जाने के लिए तैयार होना।	जाना; जामवन्त के कहने पर हनुमान का लंका जाने के लिए तैयार होना।	
	५. *सुन्दरकाण्ड*		
१.०–३७.०	हनुमान का प्रस्थान; सुरसा से भेंट; उसका वध; लंका में विभीषण के घर पहुँचना; रावण और उसके अनुचरों द्वारा सीता का डराया जाना; सीता को राम की अँगूठी देना; हनुमान और सीता में संवाद; वाटिका का विनष्ट करना; दैत्य-रक्षकों का वध; नाग-पाश में हनुमान को बँधना; हनुमान-रावण-संवाद; पूँछ में लगाई आग द्वारा लंका-दहन;	हनुमान का प्रस्थान; सुरसा का वध; लंका में विभीषण के घर जाकर उनसे परिचय और आलाप; सीता को राम की अँगूठी देना; हनुमान और सीता में संवाद; वाटिका विनष्ट करना; दैत्य-रक्षकों का वध; हनुमान का नाग-पाश में बँधना; हनुमान और रावण में संवाद; उनकी पूँछ की अग्नि से लंका दाह; सीता से भेंट; सीता को राम का संदेश	४२.१–४८.६

प्रसंगसचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	हनुमान की सीता से भेंट; सीता का राम को सन्देश; हनुमान का प्रस्थान; सीता का संदेश राम को देना; राम और उनकी सेना का समुद्र-तट के लिए प्रस्थान तथा रावण-मन्दोदरी संवाद ।	देना; हनुमान का प्रस्थान; हनुमान का राम को सीता का संदेश देना; सेतुबन्ध की तैयारी; रावण-मन्दोदरी-संवाद ।	
		शिव-पार्वती संवाद; राम का विरोध करने में रावण की धृष्टता; रावण का मस्तक देकर वर प्राप्त करना; पृथ्वी का भार कम करने के लिए ईश्वर का स्वयं अवतार लेना; राम की परीक्षा के हेतु पार्वती का सीता का रूप ग्रहण करना; उनकी शंका का निवारण; निर्गुण-त्रिगुण-विवेचन; शिव का यह बताना कि राम तीनों लोकों के स्वामी हैं; सत्पुरुष का सत्य रूप और उन्हें प्राप्त करने का उपाय तथा सगुण राम से इनकी भिन्नता का प्रतिपादन ।	४८.१०–५१.०

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
३७.१—६०.०	रावण-विभीषण-संवाद; विभीषण का अपमान; विभीषण का राम के आश्रय में आना; सुग्रीव, राम और विभीषण संवाद; समुद्र की स्तुति करने के लिए राम का तट पर जाना; रावण के गुप्तचरों का आना; उनका लौट कर रावण को संवाद देना; रावण के प्रति 'शुक' का प्रबोधन, पर रावण का न मानना; समुद्र पर राम का कोप और समुद्र द्वारा पुल बाँधने के हेतु नल तथा नील की सहायता लेने का अभिमत देना।		
	६. *लंका-काण्ड*		
१.०—३५.०	समुद्र पर पुल बाँधना; समुद्र-तट पर शिवलिंग की स्थापना और शिव की स्तुति; सेना का पार होना; रावण की चिंता; मन्दोदरी तथा मंत्रियों का उसे सुविचार देना; 'सुवेल' पर राम का ठहरना और चन्द्रमा का वर्णन; राम-प्रताप से भरी सभा	समुद्र पार करना; सुमेरु पर राम का ठहरना; राम के दूत अंगद का रावण के निकट प्रस्थान; रावण के पुत्र प्रस्तरकुमार से युद्ध और उसकी मृत्यु; रावण-अंगद-संवाद; अंगद का भूमि पर पैर रख कर उसे हटाने के लिए सबको	५१.१—५६.०

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	में रावण का मुकुट गिर जाना; मन्दोदरी के सुवचन; रावण के निकट राम के दूत अंगद का पहुँचना; रावण के पुत्र से युद्ध और उसकी मृत्यु; रावण - अंगद - संवाद; अंगद का भूमि पर पैर रखना और उसे हटा देने के लिए सभी को ललकारना; पैर हटाने में सबों का विफल हो जाना तथा रावण का अपमान करके अंगद का राम के निकट लौट आना।	ललकारना; अंगद का पैर हटाने में सबों की विफलता; रावण का अपमान करके अंगद का राम के पास लौट आना; राम की सेना का प्रस्थान; मंदोदरी - रावण-संवाद; रावण- विभीषण-संवाद; विभीषण का अपमान; विभीषण का राम के आश्रम में आना।	
		[सीता और द्रौपदी के माया का अवतार होने के विषय पर शुजा का प्रश्न और दरिया का उत्तर—सत्पुरुष ही ज्ञान की नौका है और सद्गुरु उसका नाविक; नाम की महिमा; अमरपुर का वर्णन आदि।]	५६.१–५७.५
		राम का विभीषण से परिचय; राम का विभीषण को अपने भक्त रूप में ग्रहण करना; विभीषण द्वारा हनुमान	५७.६–६०.६

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरितमानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्यसंख्याएँ
		और अंगद के वीरोचित कार्यों का वर्णन; राम प्रताप से रावण का मुकुट गिर जाना तथा रावण का मोहाग्हान।	
		[पार्वती का शिव से प्रश्न करना कि यदि रावण का विनाश ही होना था तो उसे उन्हों ने वरदान क्यों दिया? शिव का उत्तर देना कि राम का शत्रु उनका भी शत्रु है।]	६०.७–६१.०
१.०–७३.०	रावण - मन्दोदरी-संवाद, रावण का हठ; राम की सेना में युद्ध का उत्साह; युद्ध का आरंभ; माल्यवन्त का रावण को अभिमत देना और रावण का दुराग्रह; मेघनाद और वानरों से युद्ध; लक्ष्मण को शक्ति-बाण का लगना; जाम-वन्त द्वारा सुषेणवैद्य का नाम बताया जाना; सुषेण का पर्वत पर से संजीवनी जड़ी लाने का अभिमत; इसके लिए	रावण - मन्दोदरी-संवाद, रावण का हठ; राम की सेना में युद्ध का उत्साह, बाणों पर सत्पुरुष का नाम अंकित रहना; युद्ध का आरम्भ; मेघनाद और वानरों से युद्ध; रावण मन्दोदरी-संवाद; लक्ष्मण को शक्ति-बाण लगना; विभीषण का सुषेण वैद्य का नाम बताना; सुषेण का 'धवलगिरि' से संजी-वनी जड़ी लाने का आदेश करना; इसके	६१·१–७४·१

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरितमानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	हनुमान का प्रस्थान; कालनेमि से युद्ध और उसकी मृत्यु; भरत का हनुमान पर वाण चलना; हनुमान का गिरना; पुनः उड़ना; लक्ष्मण के लिए राम का विलाप; हनुमान का आगमन; लक्ष्मण का पुनः जीवित हो उठना; कुम्भकर्ण का जगाया जाना; रावण-कुम्भकर्ण-संवाद में कुम्भकर्ण का राम के पक्ष का समर्थन करना; कुम्भकर्ण का वानरों से युद्ध; राम से लड़ते हुए उसकी मृत्यु; मेघनाद का युद्ध-प्रवेश; राम और उनकी सेना पर उसका नाग-पाश डालना; गरुड़ द्वारा उनकी मुक्ति; मेघनाद द्वारा यज्ञारम्भ; लक्ष्मण और उसकी सेना द्वारा यज्ञ-भ्रंश; लक्ष्मण के वाण से मेघनाद का वध तथा मन्दोदरी का विलाप।	लिए हनुमान का प्रस्थान; कालनेमि से युद्ध और उसकी मृत्यु; हनुमान का पर्वत लेकर लौटना; लक्ष्मण के लिए राम का विलाप; हनुमान का आगमन; लक्ष्मण का पुनः जीवित हो उठना; रावण-कुम्भ-कर्ण-संवाद; संवाद में कुम्भकर्ण का राम के पक्ष का समर्थन करना; कुम्भकर्ण का वानरों से युद्ध; राम से लड़ते हुए उसकी मृत्यु; मेघनाद द्वारा यज्ञारम्भ; लक्ष्मण और उनकी सेना द्वारा उस यज्ञ का भ्रष्ट किया जाना; लक्ष्मण के वाण द्वारा मेघनाद की भुजा का सुलोचना के निकट पहुँच जाना और उसका वध; सुलोचना-विलाप; रावण द्वारा उसका प्रबोधन; सुलोचना का राम के आश्रय में आना; पति की चिता पर उसका सती होना; राम के आवास में रात्रि में महिरावण का प्रवेश;	

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरितमानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
		उसका राम और लक्ष्मण को बाँध कर ले भागना; हनुमान की वीरता से उनकी मुक्ति; रावण-मन्दोदरी तथा महिरावण और उसकी पत्नी के बीच संवाद जिनमें पत्नियों ने अपने-अपने पतियों का विरोध किया। [नाम की महिमा; सद्गुरु आदि की महिमा।]	
७७.१–१२१.०	रावण का युद्ध-प्रवेश; राम का रथ के बिना युद्ध-प्रवेश; लक्ष्मण को शक्ति का लगना; पुनः जीवित होना; राम रावण-युद्ध; रावण द्वारा यज्ञारम्भ और वानरों द्वारा यज्ञ-भ्रंश; रावण का राम, विभीषण और वानरों से युद्ध; त्रिजटा-सीता-संवाद; युद्ध में रावण की मृत्यु और उसके सिर तथा उसकी भुजाओं का बाण द्वारा मन्दोदरी के निकट पहुँचना; राम को भगवान मानकर उनकी प्रार्थना; मन्दोदरी-विलाप;	रावण का युद्ध-प्रवेश; हनुमान के साथ मुष्टि-प्रहार का आदान-प्रदान; गरुड़ द्वारा नाग-पाश से राम और लक्ष्मण का छुड़ाया जाना; रावण-हनुमान और राम-रावण युद्ध; रावण की मृत्यु और बंदी जनों की मुक्ति; सबों का राम का आधिपत्य स्वीकार करना; लक्ष्मण के साथ राम का सीता के निकट जाना; मिलन और हर्ष; विभीषण का राज्याभिषेक; मन्दोदरी का रानी बनना; घर के आदमी के फूट जाने पर	७४.१६–७६.०

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	रावण की दाहक्रिया; विभीषण का राज्याभिषेक; हनुमान के साथ सीता का राम के निकट आना; उनकी अग्नि-परीक्षा; देवों द्वारा राम की स्तुति; अवध के लिए पुष्पक विमान पर राम का प्रस्थान; राम का सीता से प्रासंगिक स्थानों और व्यक्तिगत स्मृतियों का वर्णन; मार्ग में ऋषियों से भेंट तथा हनुमान का पहले ही अयोध्यानगरी में पहुँचना।	प्रवचन; राम और दूसरों का स्वर्ण-पुरी से लौट कर सुमेरु और सेतुबंध रामेश्वर पहुँचना; सेना सहित चित्रकूट के लिए प्रस्थान; भरद्वाज आदि ऋषियों से मार्ग में भेंट तथा ऋषिपत्नियों द्वारा सीता का प्रबोधन।	
	७. उत्तर काण्ड		
१०–१३०.०	भरत की दुःखानुभूति; हनुमान द्वारा भरत को संवाद-दान; राम का स्वागत; हर्ष और मिलन; अयोध्या-प्रवेश; राम का राज्याभिषेक; देवों, वेदों और शंकर द्वारा राम की स्तुति; राज्याभिषेक की कथा की महिमा; वानरों की विदाई; अंगद की भक्ति और उनकी विदाई; निषाद-राज की	अवधपुर में आगमन; हर्ष और मिलन; राम का राज्याभिषेक; वानर-सेना की विदाई; राम-कथा-वर्णन का उद्देश्य।	७८.०–८१.०
		[दरिया का जगत में आगमन; सगुण उपासना, पाखण्ड, हठयोग आदि की निन्दा; सत्पुरुष की महिमा; 'निर्गुण' तथा 'त्रिगुण'; मांसभक्षण की निन्दा।]	८१.१–८५.०

प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ	रामचरित-मानस	ज्ञानरत्न	प्रसंगसूचक पद्य-संख्याएँ
	विदाई; रामराज्य का वर्णन; अयोध्या का वर्णन; सनक-सनन्दन-संवाद; भरत को राम की शिक्षा; वसिष्ठ द्वारा वंदना; शंकर का पार्वती से प्रश्न करना कि कौन कथा कही जाय।	गरुड़ के ज्ञान पर शुजा का प्रश्न; शिव-पार्वती-संवाद के रूप में काकभुशुण्डि की कथा की भूमिका।	२५.१–१०३.०
	काक भुशुण्डि की कथा की भूमिका; गरुड़ का मोह और काक के निकट आगमन; काक द्वारा राम-कथा का सारांश-कथन; काक द्वारा अपने पूर्व जन्मों की कथा का वर्णन; कलि आदि का वर्णन; मानसिक रोगों का वर्णन; ज्ञान और भक्ति के महत्त्व पर प्रवचन; रामायण की महिमा तथा राम की ईश्वर रूप में वन्दना।	दक्ष का यज्ञ और उसका विफल होना; सती की मृत्यु; शिव का काक से मिलना; गरुड़ के प्रति काक द्वारा निम्नलिखित विषयों की शिक्षा—ज्ञान, आत्म-निरोध, माया, विश्व-बन्धुत्व गुरु की महिमा, राम का देवत्व, भक्ति आदि; काक की लोमश से भेंट तथा अयोध्या में दुष्टता आदि; अपने पूर्व जन्मों की कथा तथा राम की महिमा की चर्चा।	

(ख) तुलनात्मक समीक्षा : कथावस्तु के आधार पर

प्रस्तुत तुलनात्मक समीक्षा 'ज्ञानरत्न' और 'रामचरितमानस' की कथावस्तुओं के आधार पर दी जाती है:—

दोनों ग्रन्थों में मुख्य कथावस्तु के अतिरिक्त अन्यान्य प्रसंगों को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। इन प्रसंगों से 'राम' के वास्तविक स्वरूप की विवेचना की गई है। जिस

प्रकार रामायण की कथा भरद्वाज-याज्ञवल्क्य संवाद, पार्वती-शिव-संवाद और गरुड़-काक भुशुण्डि-संवाद के रूप मे लिखी गई है, उसी प्रकार 'ज्ञानरत्न' की कथा भी शुजाशाह और दरिया साहब के बीच के संवाद तथा पार्वती-शिव-संवाद के रूप में वर्णित है। अन्तर इतना ही है कि 'रामचरितमानस' का काव्य 'काण्डों' में विभक्त है; परन्तु 'ज्ञानरत्न' में ऐसा कोई विभाजन नहीं है और आरम्भ से अन्त तक एक ही अनुवृत्तिक्रम है।

१. *बालकाण्ड*--सबसे प्रमुख अन्तर-विन्दु यह है कि 'मानस' का आरम्भ राम के जन्म से होता है; पर 'ज्ञानरत्न' का आरम्भ सीता के जन्म से होता है। दरिया साहब ने सम्भवतः विचारा होगा कि प्रस्तुत कथानक को पूरा करने के लिए सीता की जन्म-कथा का समावेश आवश्यक है और इसीलिए उन्होंने रामायण के 'क्षेपक' में वर्णित इस कथा को पहला स्थान दिया होगा। अनेक छोटे-छोटे प्रसंग, यथा—सूर्य, महादेव और भुशुण्डि का अयोध्या आना आदि छोड़ दिये गये हैं। इन्हें छोड़ने के दो प्रधान ध्येय हो सकते हैं:--(अ) ग्रन्थ के विस्तार को कम करना,—क्योंकि मुख्य उद्देश्य केवल राम की कहानी का वर्णन करना था; और (आ) सगुण देवों के प्रति अपेक्षाकृत उदासीनता—, क्योंकि दरिया साहब राम के ईश्वरत्व की कल्पना के विरुद्ध थे। सीता को सत्पुरुष की पुत्री और राम को त्रिगुणात्मक अवतार तथा निरंजन-रूप प्रतिपादित कर मानों उन्होंने तुलसी द्वारा प्रस्तुत राम के ईश्वरत्व का विपक्ष-सा उपस्थित किया है।

२. *अयोध्याकाण्ड*--निम्नांकित अन्तर प्रधान हैं:—

(क) 'रामायण' में विलाप करते हुए पिता के पास राम, सुमन्त के साथ जाते हैं; पर 'ज्ञानरत्न' में वे वसिष्ठ के साथ जाते हैं। (ख) 'रामायण' म शृंगवेरपुर और 'गुरु' के आतिथ्य का वर्णन आता है; परन्तु 'ज्ञानरत्न' में प्रासाद से निर्वासन के बाद प्रथम आवास वसिष्ठ के आश्रम में होता है और गुरु की कथा की चर्चा और कहीं नहीं आई है। (ग) राम और उनके साथियों के प्रयाग और वहाँ से चित्रकूट जाने के उपरान्त, रामायण की कथा में पुनः अयोध्या की घटनाओं (दशरथ की मृत्यु आदि) का वर्णन होने लगता हैं; परन्तु 'ज्ञानरत्न' में अयोध्या की ये घटनाएँ राम और उनके साथियों के वसिष्ठ के आश्रम पहुँचने तथा प्रयाग पहुँचने के बीच में रखी गई है। सम्भव है कि दरिया साहब ने राम के वनवास और दशरथ की मृत्यु के बीच निकट-सम्बन्ध स्थापित करना चाहा हो, और इसीलिये चित्रकूट तक के कथा-संधान में विलम्ब पसन्द न किया हो। (घ) 'रामायण' मे चित्रकूट में कुटी बनाने के पहले राम वाल्मीकि से भेंट करते हैं; परन्तु 'ज्ञानरत्न' में वे कुम्भजऋषि से मिलते है। (ङ) 'रामायण' में जनक सीधे चित्रकूट जाते है; पर 'ज्ञानरत्न' में वे पहले अयोध्या जाते हैं और तब भरत के साथ चित्रकूट जाते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि मार्ग में चित्रकूट को छोड़ कर जनक पहले अयोध्या क्यों गये? इसकी व्याख्या संभवतः यही हो सकती है कि दरिया साहब ने दशरथ की दाहक्रिया और श्राद्ध-संस्कार

में जनक का उपस्थित रहना आवश्यक समझा हो; और यदि ऐसी बात न भी हो, तो दशरथ की मृत्यु आदि तात्कालिक विषम एवं आकस्मिक घटनाओं का संवाद पाकर जनक का अयोध्या जाना ही समुचित लगता है।

३. *अरण्य काण्ड*--(अ) 'रामायण' मे अरण्यकाण्ड के आरम्भ में वर्णित अनेक विषयों का उल्लेख 'ज्ञानरत्न' में नहीं है। यथा--

(क) जयन्त-कथा,
(ख) अत्रि से भेंट,
(ग) विराध-वध,
(घ) शरभंग से भेंट,
(ङ) सुतीक्ष्ण से भेंट,
(च) अगस्त्य से भेंट।

(आ) सीता को शिक्षा देनेवाली बात 'ज्ञानरत्न' में राम-कथा के अन्त में रखी गई है और वह भी 'अत्रि' की पत्नी 'अनसूया' के मुख से नहीं, बल्कि भरद्वाज की पत्नी के मुख से। सीता के विवाहोपरान्त नवीन जीवन में पदार्पण करने के अवसर पर इन शिक्षाओं के युक्तिसंगत होने के प्रश्न पर कोई वैमत्य नहीं हो सकता है। परन्तु इससे छोटी-छोटी घटनाओं को स्थानान्तरित कर प्रस्तुत की दरिया साहब की अभिरुचि का पता चलता है।

(इ) रावण-जटायु के युद्ध की कथा दोनों ग्रन्थों में वर्णित है; परन्तु 'ज्ञानरत्न' में जटायु से राम के मिलने की बात नहीं आती। संभवतः दरिया साहब ने इस घटना को कहानी का अनिवार्य अंग नहीं समझा हो; क्योंकि अन्ततः सीता का पता जटायु के द्वारा नहीं प्राप्त हुआ था। उन्होंने कहानी को आगे बढ़ाने के लिए जल्दी से राम को हनुमान और सुग्रीव से मिला दिया।

(ई) उसी प्रकार 'कबन्ध' की मृत्यु, शबरी का आतिथ्य और उसकी भक्ति, पम्पासर और वसन्त ऋतु का वर्णन, नारद का आगमन और राम के प्रति उसकी भक्ति आदि घटनाएँ 'ज्ञानरत्न' के रचयिता द्वारा छोड़ दी गई हैं।

४. *किष्किन्धा काण्ड*--'ज्ञानरत्न' मे निम्नलिखित प्रसंगों को काट-छाँट कर कथा को संक्षिप्त बना दिया गया है--

(अ) सुग्रीव की अकर्मण्यता पर राम का क्रोध;
(आ) सीता की खोज में सुग्रीव का वानरों को भेजना;
(इ) वानरों का सम्पाति से मिलना और सम्पाति द्वारा सीता का पता बताया जाना।

५. *सुन्दरकाण्ड*--(अ) 'ज्ञानरत्न' की कथा, संक्षिप्त रूप में ही सही, राम और उनकी सेना के समुद्र-तट तक पहुँचने के वर्णन तक 'रामायण' के अनुरूप ही कही गई है। अन्तर केवल इतना है कि 'ज्ञानरत्न' में हनुमान के साथ सुरसा की लड़ाई की बात नहीं आती।

(आ) किन्तु इसके बाद 'ज्ञानरत्न' में क्षेपक रूप म निम्नांकित विषयों का कुछ विशद वर्णन किया गया है—रावण का घमण्ड; उसके वर-प्राप्त करने की रीति; ईश्वर का अवतार ग्रहण करना; पार्वती द्वारा राम की परीक्षा; त्रिगुण की तुलना में निर्गुण का उत्कर्ष-प्रतिपादन और सगुण राम से सत्पुरुष की मित्रता। इन विषयों की विवेचना शिव-पार्वती-संवाद के रूप में दी गई है। (इ) 'रामायण' के बालकाण्ड के आरम्भ में दिये हुए अनेक विषयों को दरिया साहब ने इस काण्ड में समाविष्ट किया है। उन्होंने इन विषयों को वहाँ न रखकर यहाँ क्यों रखा? इसका कारण यही जान पड़ता है कि राम के हाथों रावण के वध की घटना के प्रतिपादन के साथ-साथ उन्होंने इस समस्या को भी हल करना ठीक समझा हो कि क्यों एक देवता एक ही व्यक्ति को तो वरदान देता है और दूसरा उसका विनाश करता है। (ई) 'रामायण' के इस काण्ड के अन्त की अनेक घटनाएँ—जैसे, सुग्रीव-राम-संवाद, रावण के गुप्तचरों का लौटकर आना, रावण को शुकदेव मुनि की सलाह, राम का समुद्र पर क्रोध करना आदि—छोड़ दी गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दरिया साहब ने इनका वर्णन आवश्यक नहीं माना। इसके अतिरिक्त समुद्र का शरीर-धारण आदि कुछ कल्पनाएँ उन्हें हास्यास्पद जान पड़ी हों, तो आश्चर्य नहीं। (उ) 'रामायण' के इस काण्ड के अन्त में वर्णित रावण-विभीषण-विवाद को दरिया साहब ने 'ज्ञानरत्न' में रावण-अंगद-विवाद के बाद दिया है। सम्भव है कि रावण-विभीषण-वैमनस्य को दरिया साहब ने अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं के बाद ही देना उचित समझा हो।

६. *लंका-काण्ड*--(अ) अंगद की घटना तक दोनों पुस्तकों की कहानी एक ही तरह चलती है। अन्तर केवल निम्नलिखित हैं--

(क) 'ज्ञानरत्न' में शिवलिंग की स्थापना और पूजा की बात नहीं लिखी गई है।

(ख) 'ज्ञानरत्न' में रावण के मुकुट का राम के प्रताप से अपमानित होने की बात बहुत पीछे दी गई है।

(आ) 'ज्ञानरत्न' में रावण-विभीषण-विवाद के बाद कहानी की कड़ी टूट जाती है और शुक्रा और दरिया के विभिन्न विषयक संवाद जोड़ दिये गये हैं। यथा--सीता और द्रौपदी को माया का अवतार प्रतिपादित करना; सत्पुरुष और सद्गुरु की महिमा; नाम की महिमा; अमरपुर का वर्णन आदि।

(इ) जब विभीषण और राम का परस्पर परिचय होता है और वानरों की वीरता का चर्चा आरंभ होती है, तब कहानी की कड़ी फिर जुट जाती है।

(ई) इस स्थान पर भी 'ज्ञानरत्न' में एक क्षेपक है, जिसमें शिव और पार्वती रावण की नियति की विवेचना करते हैं और शिव के वरदान के विरुद्ध राम के कार्यों का औचित्य बताते हैं।

(उ) अधोलिखित विशेषताओं के अतिरिक्त, युद्ध के आरंभ से मेघनाद-वध तक, दोनों ग्रन्थों की कहानी समान ढंग से ही चलती है--

(१) 'ज्ञानरत्न' में छोटी-छोटी बातों (माल्यवान् के सुविचार आदि) का कहीं उल्लेख नहीं है।

(२) रावण-मन्दोदरी-संवाद 'ज्ञानरत्न' में जिस स्थान में रखा गया है, उसके अनुरूप वह 'रामायण' में नहीं मिलता।

(३) नाग-पाश और इससे मुक्ति की घटना 'ज्ञान-रत्न' में बहुत पीछे चलकर वर्णित की गई है।

(४) अयोध्या में हनुमान और भरतवाली घटना 'ज्ञान-रत्न' में नहीं दी गई है। जान पड़ता है, कवि ने हनुमान को लंका वापस लाने की शीघ्रता में, भरत द्वारा प्रस्तुत विलंब को नहीं समाविष्ट करना ही ठीक समझा।

(५) 'रामायण' में वर्णित सिर और भुजाओं के कटकर पत्नी के निकट गिरने की बात रावण के सम्बन्ध में न कहकर 'ज्ञान-रत्न' में मेघनाद के सम्बन्ध में कही गई है।

(ऊ) मेघनाद-वध के बाद 'ज्ञान-रत्न' में दो ऐसे विषयों का समावेश कर दिया गया है, जो 'रामायण' में क्षेपक के रूप में दिये गये हैं। यथा--(१) सुलोचना-विलाप और उसका पति की चिता पर सती होना तथा (२) राम-लक्ष्मण के विरुद्ध महिरावण की दुष्टता।

(ए) रावण के युद्ध में प्रवेश करने से लेकर उसकी मृत्यु तक वर्णित 'ज्ञानरत्न' की कथा 'रामचरित मानस' की कथा से अनेक विषयों में भिन्नता रखती है। यथा--

(१) 'ज्ञानरत्न' में लक्ष्मण को दूसरी बार शक्ति-वाण लगने का उल्लेख नहीं आता। जान पड़ता है, दरिया साहब ने पुनरावृत्तिभय और संक्षिप्त प्रतिपादन के विचार से एक ही घटना को दुहरा कर वर्णित करना ठीक न समझा हो। (२) 'ज्ञानरत्न' में रावण के यज्ञ करने का भी उल्लेख नहीं है। (३) कुछ ऐसी छोटी बातें, यथा--रावण का विभीषण से युद्ध आदि, 'ज्ञानरत्न' में नहीं हैं; किन्तु बन्दियों को मुक्त कर देने आदि की कुछ बातें जोड़ दी गई हैं।

(ऐ) विभीषण के राज्याभिषेक के बाद राम की लौटती यात्रा को, पुष्पक विमान की चर्चा का सर्वथा परिहार करके, एक नवीन रूप प्रदान कर दिया गया है। 'मानस' में वर्णित कल्पित विमान की बात संभवतः दरिया साहब को नहीं जँची हो। इसके अतिरिक्त यात्रा के बीच की कुछ छोटी-छोटी बातें भी काट-छाँट दी गई हैं।

८. उत्तर *काण्ड*--(अ) राम के अयोध्या पहुँचने के बाद से उनके राज्याभिषेक और वानरों की विदाई तक की घटनाओं का दरिया साहब ने बहुत संक्षेप में वर्णन किया है और राम की कहानी कहने का लक्ष्य बता कर उसे समाप्त कर दिया है। (आ) तुलसीदास की भाँति ही दरिया साहब ने भी कथावस्तु को अन्य प्रसंगागत विषयों के वर्णन से लाद दिया है। प्रायः कहा जाता है कि उत्तर काण्ड में 'प्रचारक तुलसी' ने 'कवि तुलसी' को ढँक दिया है। यह बात दरिया साहब के साथ और भी अधिक मात्रा में लागू है। (इ) 'रामायण' में दक्ष-यज्ञ की कथा 'बालकाण्ड' में बदल दी गई है; परन्तु दरिया साहब ने इसका वर्णन राम-कथा के अन्त में किया है।

(घ) तुलनात्मक समीक्षा : वाक्यगत, शब्दगत तथा भावनागत सादृश्य

यह सादृश्य निम्नलिखित तालिका द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है :—

ज्ञानरत्न की पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रेस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
६.३	आदि अंत निजु कथा सुनाई। होहु देआल भर्म सम जाई ।।	रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ।।	बा.का. ४५.६
६.६	टीका मल सत्त यह भाखौं। तुम से गोय ज्ञान नहिं राखौं ।।	जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोइ दयाल राखहु जनि गोई ।।	,, ११०.४
८.५	अब किछु कथा कहों निज आगे। सुनहु संत निजु प्रेम सुभागे ।।	कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहुँ सुजन मन लाई ।।	,, ३४.१३
९.१	अति बिचित्र सोभा बहु भाँती।	अति बिचित्र रघुपति चरित।	,, ४९.०
९.३	ताकर कबि किमि करो बखाना।	तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल।	,, २४७.०
११.४	माहा कठिन प्रन रोपेव जनक यह शंक चाप चढ़ावहीं। धेनुख तुरै सो महा बीर भट बेद बिदित जग गावहीं।	सोइ पुरारि कोदंड कठोरा। राज समाज आजु जेहि तोरा। त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं विचार बरइ हम तेही ।।	,,२४९.३–४
११.७	धनुख तुरै सो ब्याहै सीता। राव रंक जोई प्रन जीता ।।	द्वीप-द्वीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पनु ठाना ।।	,, २५०.७
११.९	देश-देश के भूपति आये। रंगभूमि जाहाँ धनुख धराए ।।	रंगभूमि जब सिय पगु धारी।	,, २४७.४
११.१४	केहि जग कंद्रप केहि नहिं भीना।	को जग काम नचाव न जाही।	उ.का. ६९.७

१. चतुर्थ स्तम्भ में दी गई संख्याओं में प्रथम दोहे की संख्या है, और विराम चिह्न के बाद दूसरी चौपाई की है। यथा ४५.६=४५वें दोहे के बाद की ६ठीं चौपाई।

ज्ञानरत्न पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रेस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
११.१७	कोइ-कोइ भूप निकट होए देखा। टारै ना टरै धनुख के रेखा॥	भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरहिं न टारा॥	बा.का. २५०.१
१२.०	बीस भुजा दससीस रावना रंगभूमि रजनी आए। बल पौरुख सभ तौलि के लंका चला लजाए॥	रावन बान महा भट भारे। देखि सरासन गवँहि सिधारे॥	,, २४६.२
१२.१	देखहिं धनुख भयंकर भारी। बैठि रहैं सभ पौरुख हारी॥	श्रीहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज-निज जाइ समाजा॥	,, २५०.५
१२.४	टुटे ना धनुख परिहिं जग गारी।	तौ पनु करि होतेउ न हँसाई।	,, २५१.६
१२.५	सिया मुख देखि बिकल भइ रानी। यह प्रन कठिन धनुख तुम्ह आनी॥	जनक बचन सुनि सब नर-नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥	,, २५१.७
१२.६	राम जनम जग परगट भयऊ	भय प्रगट कृपाला	,, १६१.१
१२.७	आरति मंगल सभ मिलि गाया।	करि, आरति नेवछावर करहीं।	,, १६३.५
१२.८	सहन भंडार लुटावहि झारी।	सर्बस दान दीन्ह सब काहू।	,, १६३.७
१२.६	बाजन बाजत बहुत सोहाई। नट नागरि सभ नाचु बनाई।	बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ-तहँ जुवतिन्ह मंगल गाए॥	,, २६२.२
१२.११	चारो पुत्र जनमे अति नीका।	चारिउ सील रूप गुन धामा।	,, १६७.६
१३.५	विश्वामित्र दुखित मुनि भारी।	गाधितनय मन चिंता ब्यापी।	,, २०५.५
१३.६	पहुँचे रिषी जहाँ नृप राया।	गए भूप दरबार	,, २०६.०
१३.७	महाप्रसाद भोजन फल कीजै।	बिबिध भाँति भोजन करवाया।	,, २०६.४
१३.८	भाग हमार अवध पगु दीन्हा।	मो सम आजु धन्य नहिं दूजा।	,, २०६.३
१३.१६	बेद बिहित करि बिमल पढ़ाए।	विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्हीं।	,, २०८.७

ज्ञानरत्न की पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
१३.२२	ललचि लगी मोरि बदन में अंगी।	देखि रूप लोचन ललचाने।	बा.का.२३१.४
१३.२५	जनक त्रिया औ सखिन्ह समेता। राम के देखि मगंन मन हेता।।	रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ। सीता मातु सनेह बस, बचन कहइ बिलखाइ।।	,, २५५.०
१४.२	टूटै धनुख सबद भौ भारी।	तेहि छन मध्य राम धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।	,, २६०.८
१४.४	बोलै बचन क्रोध करि तीता। को तुरि धनुख ब्याहे सीता।।	अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।।	,, २६६.८
१४.६	यह पिनाक तौ बहुत पुराना।	छुअतहिं टूट पिनाक पुराना।	,, २८२.८
१४.७	अति सुन्दर है बिखि के मूला।	बिष रस भरा कनक घट जैसे।	,, २७७.८
१४.८	जो लरिका करै लरिकाइ। बाड़ा होए सो करै समाइ।।	जो लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।	,, २७६.३
१५.४	पहुँचे दूत अवधपुर जबहीं। पांती नृप के दीन्हों तबहीं।।	पहुँचे दूत रामपुर पावन। करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्ही।	,, २८९.१ ,, २८९.३
१५.६	राजा उठी भवन में गैऊ। रानीन्हि से निजु कथा सुनैऊ।।	राजा सब रनिवास बुलाई। जनक पत्रिका बाँच सुनाई।	,, २९४.१
१५.७	भई अनंद कोसिल्या रानी।	मुदित असीस देहिं गुर नारी। अति आनंद मगन महतारी।।	,, २९४.४
१५.७	तलफत मिन बरखा जनु पानी।	तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि।	,, १५४.०
१६.०	हरखेव संत समाज सभ गुरुपद पंकज लीन्ह मुनि बासिष्ठ के आगे, जनक कथा करि दीन्ह।	तब उठी भूप बसिष्ठ कहुँ, दीन्ह पत्रिका जाइ। कथा सुनाई गुरहिं सब, सादर दूत बोलाइ।।	,, २९३.०

ज्ञानरत्न की पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रेस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
१६.२	बिग्ति बिग्ति कै लगन सोचाया। सुदिन सुफल मुल मंगल गाया ।।	मंगल मूल लगन दिनु आया।	बा. का. ३११.४
१६.६	जूथ जूथ गार्वाहि बर नारी।	जहँ तहँ जथ जथ मिलि भामिनि। गार्वाहि मंगल मंजुल बानी।	,, २९६.१-३
१८.४	राम के देखि सभ भए सुखारी।	देखत रामहिं भए सुखारे।	,, ३४७.५
१८.५	परिछन करि तब लीन्ह उतारी।	मुदित मातु परिछनि करहिं।	,, ३४८.०
१९.३	अब बिलंब किमि करिए कामा।	बेगि बिलंबु न करिय नृप।	अयो० ४.०
२०.५	राम के तिलक हमें निक लागी।	राम तिलक जौं साँचेहुँ काली।	,, १४.४
२०.६	जाहाँ मंगल ताहाँ बोलसि कुफारी।	हरष समय बिसमउ करसि।	,, १५.०
२०.७	नैनन्हि नीर तुरत हीं ढारी।	नारि चरित करि ढारइ आँसू।	,, १८.६
२०.१२	बहुत अनिन्दित बाजन बाजा।	बार्जाहि बाजन बिबिध बिधाना।	,, १०.१
२१.१	तब गीरा मति दीन्हो फेरी। मंथरि भई अजस की ढेरी ।।	नामु मंथरा मंदमति, चेरि कैकई केरि। अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ।।	,, १२.०
२१.५	कहे राजा सुनु प्रान पियारी। कवन कष्ट उपजा तन भारी ।।	जाइ निकट नृप कह मृदु बानी। प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी ।।	,, २४.८
२१.१४	राम जाहिं बन प्रान न रहई।	जीवनु मोर राम बिनु नाहीं।	,, ३२.२
२३.६	केकईहिं देत जग्त सभ गारी।	जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी ।।	,, ४६.१
२३.१२	रही निहारि राम मुख माता।	धरि धीरजु सुत बदन निहारी। गदगद बचन कहति महतारी ।।	,, ५३.५
२५.५	अवध बिकल भौ राम बिनु।	चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा ।।	,, ८२.३

ज्ञानरत्न की पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रेस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
२६. ०	आगे राम सिया बीच में, पीछे लखन कुमार। तीनु प्रान जग बिदित है, जानत सभ संवसार ।।	आगे राम लखन पुनि पाछें। तापस वेष बिराजत काछें ।। उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ।।	अयो० का० १२२.१ ,, १२२.२
२६. १	माया रूप जगत सभ मोहै।		
२६. ८	भरथ सोच हिरदै बिच आना।	हृदय सोच बड़ कछु न सोहाई।	,, १५७.३
२७.१०	कीन्हों दाह करम सभ।	एहि बिधि दाह क्रिया सभ कीन्हीं।	,, १६९.५
२८.१३	कंद मूल सभ मेवा मँगाई।	कंद मूल फल मधुर मँगाए।	,, १२४.३
२९.१८	कोल्ह किरात भील सभ धाए। पत्रकुटी ताहाँ बहुबिधि छाए ।।	कोल किरात वेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए ।।	,, १३२.७
२९.१९	कंद मूल कोड़ि किन्ह मेहमानी।	कंद मूल फल भरि भरि दोना।	,, १३४.२
३०. ४	रंथ बहल सभ साजत भएऊ।	हय गय रथ बहु जान सँवारे।	,, २७१.४
३१.२३	भरथ न होंहि राजमद सोऊ।	भरतहि होई न राजमद।	,, २३१.०
३३. ०	ब्रह्मा बुधि बांकी बड़ी, सिया फेन को फूल। ताहि कराल टांकी दियो, लिखा बिरंचि बेतूल ।।	सीय मातु कँह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी ।।	,, २८०.८
३५. ४	सत्त कहों यह कागज कोरे।	सत्य कहहूँ लिखि कागद कोरे।	बा०का० ८.११
३७.१०	रावन बहिनि अहै सुपनेखा।	सूपनखा रावन कै बहिनी।	अरण्य० १६.३
३७.१५	पकरी नाक कान धरि काटा।	नाक कान बिनु कीन्हि।	,, १७.०
३७.१८	खर दूखन तब लागु गोहारी। मारि कटक पुहुमी तन डारी ।।	खरदूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ।।	,, २१.११

ज्ञानरत्न की पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रेस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
३८. ५	फिरि फिरि रहत अलोप लुकाई। फिरि फिरि परगट देत देखाई ।।	कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई ।।	अरण्य० का० ,, २६.१२
३६.१०	रथ पर लीन्ह चढ़ाइ।	लीन्हिसि रथ बैठाइ।	,, २८.०
३६.१२	चोंचन्हि मारि उन्हि कीन्हं लराई।	चोंचन्हि मारि बिदारेसि देही।	,, २८.२०
३६.२०	चले प्रात उठि दोनों भाई। खोजत बनखंड जाहाँ ताहाँ जाई।।	पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ।।	३२.४
३६.२३	बिप्र रूप मिलै हनुमाना।	बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।	कि०का० ०.६
३६.२४	की तुम्हँ देव देवन्हि महँ धीरा।	की तुम्हँ तीनि देव महँ कोऊ।	,, ०.१०
,, ,,	अति कोमल पद सुन्दर सरीरा।	कठिन भूमि कोमल पद गामी।	,, ०.८
३६.	नगर अजोध्या दसरथ राई। ताकर सुत हम दोनों भाई ।। पिता हुकुम हम बन तप कीन्हां। सुनो बचन यह बिप्र प्रबीन्हां ।।	कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए ।।	,, १.१
२६.३०	हरेव निसाचर मम प्रिया नारी। सो हम बनखंड खोजत झारी ।।	इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजह तेही ।।	१.३
२६.३१	अब निश्चै प्रभु पद पहचाना।	प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।	,, १.५
३६.	अहै सुग्रिव निज दास तुम्हारा।	सो सुग्रीब दास तब अहई।	,, ३.२
३६.३७	ताकै कटक प्रकट अधिकारा ।। सिता खोज वोए तुरंत कराई। जाहाँ ताहाँ मरकट बेगि पठाई ।।	सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ।।	,, ३.४
४०. ४	सूनी स्रवन कीपि करि धएऊ।	सुनत बालि क्रोधातुर धावा।	,, ६.२७
४०. ७	मारा राम बान उर लागा।	मारा बाली राम तब, हृदय माँझ सर तानि।	,, ८.०

ज्ञानरत्न की पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रेस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
४०.८	धरम रूप नीगम कहे कैसें। मारहु मोहि ब्याध सर जैसें।।	धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहिं ब्याध की नाईं।।	कि० का० ,, ८.५
४०.९	मैं बैरी सुग्रिव हितकारी। कारन कवन मोहि तुम्ह मारी।।	मैं बैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।	,, ८.६
४०.१०	तेहि हते कछु पाप ना होई।	ताहि बधें कछु पाप न होई।	,, ८.८
४२.५	राम नाम सुनि स्रवन बिसेखा।	राम-राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।	सु०का० ५ ३
४२.८	सुनो पवन सुत रहनि हमारा।	सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।	,, ६.१
४२.१९	सुनु माता मैं राम कै बीरा।	रामदूत मैं मातु जानकी।	,, १२.९
४३.९-१०	चुनि चुनि फल खाइसि मनमाना। •••••••••••••••••••••	खाएसि फल अरु बिटप उपारे।	,, १७.४
४५.५	किछु उपारि सेंधु महं डारी। तेल लगाइ लपेटहु लाता।	तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ।।	,, २४ ०
४५.६	अधिक लंगूर बढ़ाइसि भारी।	बाढ़ी पूंछ कीन्ह कपि खेला।	,, २४.५
४५.८	एक भभीखन के ग्रिह बांचा।	एक बिभीषण कर गृह नाहीं।	,, २४.६
४५.१५	जरत सो नगर अनाथ।	जरइ नगर अनाथ कर जैसा।	,, २५ ५
४५.१६	कूदि परा सभ सागर माहीं।	कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।।	,, २५.८
४५.१८	हुकुम ना कीन्ह मोहिं रघुराई। तुम कहं लेइ तुरंतहि जाई।।	अबहिं मातु मैं जाऊँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।।	,, १५.३
४५.२०	तुम्हं कहं लेइ अवधपुर जइहै।	निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं।	,, १५.५
४८.५	सुर सभ बांधि कियो बस अपने।	देव दनुज नर सब बस मोरे	लंका काण्ड ,, ७.४
४९.८	ज्ञान के मग पग धरै ना कोई। धार क्रिपान त्रिछुन अति होई।।	ज्ञान कै पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होई नहिं बारा।।	उ० ११८ ०

ज्ञानरत्न की पद्य-संख्या	ज्ञानरत्न (हस्तलिपि) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण (गीता प्रेस, गुटका) से उद्धृत पंक्तियाँ	रामायण की पद्य-संख्या
५३.४०	चलसि ना गहसि राम कर चरना	गहसि ना रामचरण सठ जाई ।।	लं० ३४.३
५८. ०	कहब कठिन करनी कठिन, कठिन बिबेक बिचार ।	कहत कठिन समुझत कठिन । साधत कठिन बिबेक ।	उ० ११८.०
६६. ८	सामरथ के नर दोख ना आनै	समरथ कहुँ नहिं दोष गोसाईं ।।	बा० ६८.८
६६.१०	अरध राति है पंथ निहारी ।।	अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ ।	लंका० ६०.२
६६.१५	अवध जाए कहब किमि बाता ।	जैहउँ अवध कैन मुँहु लाई ।	,, ६०.११
६७. ५	बिबिध भांति करि तेहि जगाई ।	बिबिध जतन करि ताहि जगाना ।	,, ६१.६
६७ १२	महिखा मद मंगावहु ताता ।	महिष खाइ करि मदिरा पाना ।	,, ६३.१
६७.२०	लेइ लपेटी मुख महं नाईं । कान नाक देह जाहिं पराई ।	मुख नासा श्रवनहिं की बाटा । निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ।।	,, ६६.४
७९. ५	क निछावरि देहिं सब दाना ।	नाना भाँति निछावरि करहीं ।	,, ४६.५
७९. ६	गुरु के चरन धरा बहुँ भाँती ।	धाइ धरे गुरु चरण सरोरुह ।	,, ४.३
७९. ८	दछिना दान दीन्ह रघुराई ।	विप्रन्ह दान बिबिध बिध दीन्हें ।	,, ११.७
७९.११	अवध के लोग सभ सुखद अनंदा । जल में कुमुदिनि पूरन चंदा ।।	नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति – बिरह दिनेस । अस्त भए बिगसत भईं, निरखि राम राकेस ।।	,, ९.०

ऊपर की तालिका में जो वाक्यगत, शब्दगत तथा भावनागत सदृशताएँ दिखाई गई हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि दरिया साहब ने तुलसीदास की रामायण से बहुत-से शब्द तथा वाक्यांश लिए हैं। फिर भी 'ज्ञानरत्न' को पढ़ने से उनकी अनुपम काव्य-प्रतिभा और मौलिकता असंदिग्धरूप से सिद्ध होती है और कथा कहने की उनकी अपनी शैली पाठकों को मुग्ध एवं प्रभावित किए बिना नहीं रहती। उनके व्यक्तित्व की छाप पद-पद पर विद्यमान है।

मौलिकता की छाप

उपसंहार--संभव है, जनता में तुलसी की 'रामायण' की व्यापक प्रसिद्धि ने दरिया के हृदय में यह भावना उत्पन्न की हो कि निर्गुणवाद की पृष्ठभूमि पर राम-कथा का इस प्रकार का वर्णन किया जाय जिससे जनता की अभिरुचि उसके प्रति प्रवृत्त हो और दरिया के मन्तव्यों की ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हो, तथा साथ ही जनता को अपनी भावनाओं के अनुकूल राम-कथा का एक सुलभ रूप मिल जाय। तुलसी के ग्रंथों से छन्द या वाक्यांश लेने की बात केवल 'ज्ञानरत्न' तक ही सीमित नहीं है। दरिया के अन्य ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र तुलसी की छाप स्पष्ट रूप से दीखती है। गोस्वामी जी को दरिया साहब बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। जिस आदर और सम्मान से वे गोस्वामी जी का वर्णन करते हैं तथा अपनी उक्ति के समर्थन में उनकी कविताओं को उद्धृत करते हैं, उससे उनकी सद्‌भावना का स्पष्ट परिचय मिलता है। उदाहरण स्वरूप 'ज्ञानस्वरोदय' में तुलसी का एक लोकप्रसिद्ध दोहा सम्मानपूर्वक उद्धृत कर दरिया साहब पाठकों को उसका अर्थ और भाव हृदयंगम करने की सम्मति देते हुए कहते हैं--

--'ज्ञान-रत्न' की रचना का उद्देश्य

"बूझहु तुलसी कर यह साखी।"

तृतीय परिच्छेद

कवि दरिया

दरिया साहब ने कम-से-कम बीस काव्य-ग्रंथों की रचना की है और भारत के निर्गुणवादी सन्त-कवियों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। कबीर की भाति ये भी पहले प्रचारक, तब कवि थे। वस्तुतः 'कला कला के लिए' वाली आधुनिक धारणा हिन्दी के किसी प्राचीन कवि के काव्य के सम्बन्ध में लागू नहीं होती। काव्य-गगन के परम चमत्कृत नक्षत्र तुलसी और सूर भी इस आधुनिक मापदण्ड से नहीं आँके जा सकते।

पहले प्रचारक तब कवि

बात यह है कि 'सत्यम्' और 'शिवम्' से विरहित केवल 'सुन्दरम्' के आधार पर निर्मित तटस्थ काव्य का आदर्श वास्तविकता का रूप नहीं ग्रहण कर सकता। जीवन एक पूर्ण इकाई है और कविता को यदि उसके अनुरूप पूर्णता प्राप्त करनी है, तो उसे उसका पूर्ण प्रतिनिधित्व करना होगा। 'कविता कविता के लिए' वाले सिद्धान्त की विवेचना करते हुए ब्राडले (Bradley) साहब कहते हैं—"कविता-कविता के लिए' वाले सिद्धान्त के आधार पर काव्यानुभूति का क्या अभिप्राय है? इससे तो मेरी समझ में तीन बातें ज्ञात होती हैं। पहली यह कि अनुभूति अपना लक्ष्य आप है, इसकी प्राप्ति इसी के लिए करनी है तथा इसका अपना आन्तरिक मूल्य है। दूसरी यह कि इसका आन्तरिक मूल्य ही इसका काव्यगत मूल्य भी है। संस्कृति या धर्म के प्रतिष्ठापन-सम्पादन के रूप में कविता का एक बहिर्गत मूल्य भी हो सकता है; क्योंकि ये शिक्षाएँ प्रदान करती हैं, कामनाओं में मधुरिमा का आधान करती हैं, किसी तात्त्विक योजना को आगे बढ़ाती हैं और कवि के लिए यश, धन या शान्तिमय जीवन भी प्रदान करती हैं। ये सभी इसके महत्त्व हों; अच्छी बात है। इन कारणों से भी कविता का मूल्यांकन होने दीजिए। परन्तु कल्पनाभूतिपरक तात्त्विक काव्यगत मूल्य किसी बहिर्गत उपयोगिता के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है; इसका निर्धारण इसी में अन्तराश्रित है।"[1]

काव्य के आदर्श

काव्य के आदर्श

काव्य की इतनी सूक्ष्म, तटस्थ एवं सीमित धारणा कभी भी पूर्वीय कवियों का प्रश्रय नहीं पा सकी। उदाहरणस्वरूप संस्कृत साहित्यशास्त्र के निपुण आलोचक मम्मट कविता के निम्नलिखित उद्देश्य बताते हैं :—

---

१. ए० सी० ब्राडले; 'ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑन पोयट्री', पृ० ५।

(१) यश, (२) धन, (३) व्यावहारिक ज्ञान, (४) जनहित-साधन, (५) सद्य: परमानन्द, और (६) प्रेयसी की सम्मति की तरह मधुर-मनोहर शब्दों में उपदेश-प्रदान।[२]

दरिया साहब के विचारानुसार काव्य में आनन्द और उपदेश दोनों का साथ-साथ स्थान होना चाहिए।[३] उन्होंने इन दोनों का समन्वय किया भी है; किन्तु इतना अवश्य है कि उनकी रचनाएँ श्रृंगार को सीमित एवं नियन्त्रित रखने के पक्ष में हैं।

संयत श्रृंगार

कवियों और छन्दःशास्त्रियों ने 'श्रृंगार' को काव्यरसों में सर्वोच्च स्थान दिया है, उसे 'रसराज' माना है; परन्तु दरिया साहब जैसे सन्तकवि श्रृंगार को अत्यधिक महत्त्व देने के पक्ष में नहीं थे। फलतः इन्होंने उन कवियों की निन्दा की है, जिन्होंने केवल श्रृंगारपूर्ण कविताओं की ही रचना की है और मल-मूत्र-युक्त इस मानव शरीर के ही आकर्षक वर्णन में अपनेको खपा दिया है।[४] उनके विचारों में वैसे कवि पाखण्डी हैं, जो मानव-श्रृंगार का नग्न वर्णन करके अपनी काम-पिपासा की तृप्ति करते हैं।[५]

दरिया में सन्त और कवि का पूर्ण समन्वय हुआ है। निम्नलिखित शीर्षकों में हम दरिया की काव्य-प्रतिभा का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं:—

दरिया की काव्य-प्रतिभा

(१) कथावस्तु और काव्य-वस्तु;
(२) भाव-विन्यास;
(क) रस, (ख) चरित्र-चित्रण, (ग) वर्णनात्मक प्रतिभा और (घ) कल्पनोत्कर्ष।
(३) भाषा-सौष्ठव;
(४) रचना शैली।

***(१) कथावस्तु** और काव्य-वस्तु*:—'ज्ञानरत्न' की काव्यवस्तु को छोड़कर, जो तुलसी की 'रामायण' के ढाँचे में ढाली गई है और जिसका कुछ विशद विवेचन हम पिछले अध्याय में कर आये हैं[६], अन्यत्र कहीं भी कवि किसी कथानक के निर्माण की चिन्ता नहीं करता। अनेक कथा-वस्तुएँ हैं। यथा—निर्गुण भगवान, सगुण अवतार, त्रिगुण देह, शरीरस्थ आत्मा, जगत् और माया, स्वर्ग और नरक, अमरलोक की दिव्य झांकी, मुक्ति, ज्ञान, भक्ति, आध्यात्मिक प्रेम, विहंगम और पिपीलक योग, सन्त और सद्गुरु के चरित्र, तीर्थ-यात्रा जाति, कुरीतियाँ और पाषण्डों की निन्दा आदि। जीवन के नियम (जैसे—सत्यवादिता, अहिंसा,

---

२. "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।"—काव्यप्रकाश, परि० १, पद १।

३. हारेस (Horace) की यह उक्ति भी देखिए—"कवि चाहता है-शिक्षा देना, आनन्द देना या दोनों। ठोस और व्यावहारिक के साथ आकर्षक का भी आधान हो!"
—रिचार्ड साहब की 'प्रिन्सिपल्स ऑफ लिटररी क्रिटिसिज्म', पृ० ६८ में उद्धृत।

४. श० १. ३२, १—७०।

५. श० १८. १७।

६. तृतीय खण्ड का द्वितीय परिच्छेद देखिए।

संयम, आत्म-निरोध, गरीबी आदि) तथा स्वरोदय। दरिया साहब ने इन सभी विषयों के वर्णन अपनी विभिन्न पुस्तकों में, संक्षिप्त अथवा विशदरूप में, एक अविच्छिन्न विचार-धारा के अन्तर्गत किये हैं। ऐसे वर्णनों में विषय की पुनरुक्ति की सम्भावना सदा बनी रही है और पुनरुक्तियाँ हुई भी हैं। कवि की ओर से शृंखलाबद्ध वस्तु-विधान द्वारा अपनी कविताओं को सजाने अथवा पुनरावृत्ति से बचने का कोई सजग प्रयत्न नहीं किया गया है। 'अधिकस्याधिकम् फलम्' मानों यही उनकी कविता के माध्यम द्वारा धर्म-प्रचार की प्रणाली का मूल मंत्र जान पड़ता है।

(२) *भावविन्यास* :--(क) रस--दरिया साहब एक सन्त हैं और उनकी मूल प्रेरणाएँ धार्मिक हैं, अतएव उनकी कविताओं में शान्त रस की प्रधानता स्वाभाविक है। किन्तु 'ज्ञानरत्न' में राम-कथा के वर्णन में उन्होंने अन्य रसों का भी उपयोग किया है। यथा--राम की शिशुलीला के वर्णन में वात्सल्य, सीता की सुन्दरता के वर्णन में शृंगार, लंका में युद्ध की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में वीर, करुण, अद्भुत, भयानक और रौद्र तथा कुम्भकर्ण से वानरों के युद्ध में हास्य।[७] 'ज्ञानदीपक' या 'शब्द' आदि अन्य ग्रन्थों में भी कुछ कम अंशों में इन रसों का यत्रतत्र समावेश किया गया है। किन्तु सामान्यतः उस चित्रपट में शान्त रस की भाव-भूमि पर ही अन्य रसों के तानेबाने बुने गये हैं।

(ख) चरित्र-चित्रण--'ज्ञानरत्न' के अतिरिक्त दरिया साहब की कृतियों में शायद ही कहीं चरित्र-चित्रण के लिए अवसर आया हो। ज्ञान, भक्ति, आदि विषयों पर अवलम्बित मुक्तक काव्य प्रायः उपदेशात्मक काव्य (Didactic Poetry) के रूप में ही होते हैं और उनमें सूक्ष्म भावाभिव्यंजन की कला का अवसर नहीं आता।

(ग) वर्णनात्मक (Descriptive) प्रतिभा--'ज्ञानरत्न' के विभिन्न स्थानों में विशिष्ट घटनाओं के वर्णन में दरिया साहब ने जिस प्रतिभा का परिचय दिया है, उसके अतिरिक्त अनेकानेक ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे उनके वर्णन-सौन्दर्य की सूक्ष्मताओं का परिचय मिलता है। उदाहरणस्वरूप, राजसत्ता में विभोर राजकुमार की अवस्था के वर्णन में कवि ने उसके विशाल-कोष, अनगिनत हाथियों, अंगरक्षकों की सेना, सिंहासन का ठाट-बाट, राजमहल के गान-वाद्य, अन्तःपुर की सुर-सुन्दरियों, मणि-मुक्ताओं, आभूषणों आदि उपादानों द्वारा राज-प्रासाद की अनुपम छवि का सजीव चित्रण किया है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए--शीलनिधि और उनकी कन्याओं के उपाख्यान में राजकन्याओं के सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन किया गया है। यथा--मसृण कुन्तल-राशि, मोतियों की माला, वाण की नोक के समान बेधनेवाली तिरछी चितवन, शुकनासिका के समान नाक, तारों के समान चमकते हुए कर्णफूलों में जड़ी हुई मणियाँ, अनारदाने-सी सुव्यवस्थित दन्तपंक्ति, स्मितपूर्ण अधर, मोहक ग्रीवा, स्वर्ण-कलश-से उन्नत उरोज, कमलनाल-सी सुकोमल भुजाएँ,

७. तृतीय खण्ड के द्वितीय परिच्छेद में 'राम चरितमानस' और 'ज्ञानरत्न' की कथावस्तुओं की तुलना देखिए।

केसरिकटि-सी क्षीण कटि, कदली-स्तम्भ-सी कोमल और सुडौल जंघाएँ, गज-सी मतवाली गति, मणियों से उद्ग्रथित अमूल्य वस्त्राभरण और हाथों में फूल की जयमाल।[८]

ऊपर उद्धृत दो उदाहरण कवि की वर्णनकला एवं मौलिक प्रतिभा का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं।

(घ) कल्पनोत्कर्ष—दरिया साहब की कविताओं में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जिनमें कल्पना को प्रश्रय मिला हो। कल्पना ही कविता का प्राण है और यही पद्य को गद्य से भिन्न करती है। उदाहरण स्वरूप-'शब्द' का वह छन्द[९] लीजिए, जिसमें कवि 'दुर्मति' को साकार रूप प्रदान करके उसे अलग खड़े रहने और कवि की उपस्थिति में विनम्र व्यवहार करने की आज्ञा देता है। एक दूसरे छन्द[१०] में भी माया को एक कर्कशा नारी का रूप प्रदान किया गया है और उसका उसी रूप में विस्तृत वर्णन किया गया है। एक और भी उदाहरण लीजिए[११], जिसमें माया की सुन्दरता को दर्पण में प्रतिबिम्बित सुन्दरता की भाँति बताया गया है और यह कहा गया है कि माया कभी हमारी पकड़ में नहीं आ सकती।

यत्र-तत्र कवि ने संक्षिप्त, किन्तु सारगर्भित पदों या उक्तियों द्वारा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं के प्रकट करने में असाधारण क्षमता प्रदर्शित की है। यथा—"रहे नयन मुसकाय"[१२]। मुख की विशेषता को आँखों में संक्रमित कर देने की ललित और कल्पनापूर्ण भंगिमा का यह अनुपम उदाहरण है। ऐसी कलित कल्पनापूर्ण छवियों के संक्षिप्त चित्रों की संख्या अगणित हैं। अतएव इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि दरिया साहब में मौलिक काव्य-प्रतिभा थी। उन्होंने अलंकारों की जो अपार विभूति अपनी रचनाओं में संजोई है—जिनमें से कुछ की विवेचना हम अभी करेंगे—उससे भी इस उक्ति की पुष्टि हो जाती है। दरिया साहब एक पद में सच्चा कवि उसीको बताते हैं, जो असुंदर वस्तुओं को भी इस प्रकार मनोमोहक बना दे जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित उत्कृष्ट छवि।[१३] स्पष्ट है कि कवि यहाँ उस कल्पना की ओर संकेत करता है जो, 'शेक्सपियर' के शब्दों में, "अज्ञात सत्ताओं को भी रूपरेखा और आकार प्रदान करती है और उन्मुक्त वायु की शून्यता को भी नाम और ग्राम में परिणत कर देती है।"

(३) *भाषा-सौष्ठव*:—दरिया साहब ने अलंकारों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग किया है।

---

८. ज्ञा० दी० ५४. १—१५।
९. श० १६. ६।
१०. श० २२. २२।
११. श० २०. २।
१२. ज्ञा० र० ४६—०।
१३. ज्ञा० र० ८४. १।

शब्दालंकार में अनुप्रास की ही प्रधानता है। अर्थालंकारों में तुलसी की भाँति इन्हें भी रूपकों से विशेष प्रेम जान पड़ता है। यद्यपि अनेक अलंकार कवि की रचनाओं को अलंकृत करते हैं; तथापि कहीं भी हमें ऐसा आभास नहीं मिलता कि कवि ने कथावस्तु की बलि देकर सिर्फ भाषा-सौष्ठव की वृद्धि की चेष्टा की हो। इनकी रचनाओं में भाषा की सुषमाएँ आप-से-आप अनायास निखर उठी हैं।[१४]

अलंकार

(४) *रचना-शैली*:—जिन विभिन्न भाषाओं और शब्दावलियों का व्यवहार दरिया साहब ने किया है, उनके अनुकूल उनकी शैली में विभिन्नता भी पाई जाती है। 'दरिया नामा' की रचना-फारसी में और 'ब्रह्म चैतन्य' की रचना संस्कृत में हुई है। उनकी फारसी या संस्कृत-भाषा व्याकरण-सम्मत नहीं हैं और इस विषय में कवि ने अत्यधिक स्वतंत्रता का उपयोग किया है। संभवतः यह उनके इन भाषाओं के अल्प ज्ञान का परिणाम है।

शैली की विभिन्नता

उदाहरण:—(१) 'ब्रह्मचैतन्य' से—

परब्रह्म परचिन्न पर ई प्रगासम्।
कायम् न क्रोधम् न माया न साधम्।

(२) 'दरियानामा' से—

अये दरिया ज् तो बेरूँ यके नीस्त।
तु हस्ती हर चे हस्ती रा शके नीस्त।।

अन्य रचनाओं की भाषा अवधी-प्रधान हिन्दी है; पर यह दो रूपों में पाई जाती है—

(१) पंजाबीपन लिये फारसी और अरबी के शब्दों से युक्त; और (२) संस्कृत शब्दों के तत्सम और तद्भव रूपों से युक्त।

द्वितीय प्रकार की भाषा में देशज शब्दों का भी पर्याप्त समावेश है।

उदाहरण:—

(१) जरबवस जरबवस जरबुंद जरबुंद
दिलजांक दिलजांक रब पावंदा रे।
कदरदान कदरदान फरामोस फरामोस
यह गैब का फूल झरि आवंदा रे।।[१५]

(२) रचेउ विरंचि चित्र बहु भाँती।
सोइ सोहागिन पिया रंग राती।।[१६]

---

१४. उदाहरणों के लिए परिशिष्ट देखिए।

१५. श० २. १।

१६. ज्ञा० र० २८. १२।

कवि की रचनाशैली की विवेचना करने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है--

(क) शब्दों और पदखण्डों की आवृत्ति का प्रभाव ;
(ख) सारगर्भित और मुहावरेदार उक्तियाँ;
(ग) छन्दों के परिवर्त्तन की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि ;
(घ) लाक्षणिक या रूपक भाषा का प्रयोग; तथा
(ङ) छन्दों की विभिन्नता ।

(क) ऐसे अनेकानेक उदाहरण हैं, जिनमें कवि ने कलापूर्ण ढंग से शब्दों और पदखण्डों का इस प्रकार पुनः व्यवहार किया है कि उक्ति में सशक्तता आ गई है । छन्दः शास्त्रियों द्वारा सामान्यतः पुनरुक्ति एक दूषण मानी जाती है । परन्तु दूषण भी भूषण में बदल जाता है, यदि कवि की कलातूलिका उसमें रंग भर देती है । इन पंक्तियों में ऐसा ही एक चमत्कार देखिए--

देखिहैं तोर बल दैत समेता
देखिहैं सुर नर रोपिहौ खेता
देखिहैं राम और पुर्ख पुराना
. . . .

देखिहैं शिव और संग भवानी
देखिहैं जल थल पौन औ पानी ।१७

उद्धृत अंश रावण की सभा में अंगद की उक्ति है; और पंक्तियों के आरम्भ में 'देखिहैं' पद की पुनरुक्ति से इस कविता में ओज आ गया है ।

(ख) कवि ने जनता के विचारों तक अपनी शिक्षाओं को पहुँचाने के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया है, उनमें से एक साधन सारगर्भित और मुहावरेदार उक्तियों और कहावतों का प्रयोग है । कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है--

घर घर पाँडे दिच्छा देवहिं बोझ लिए सिर भारी।
है जेहूं तेहूं का सिखवा पर हित है हितकारी।।१८
नेम कहाँ जब प्रेम उपासी ।१९
प्रेम गली अति साँकरी ।२०

---

१७. ज्ञा० र० ५३. २२--२५ ।
१८. श० ५. २८ ।
१९. श० १. ४१ ।
२०. श० १. ३८ ।

आगे नाथ न पीछे पगहा एहि विधि गदहा मोटा ।२१
चेला बहिर गुरु है अन्धा ।२२
पंथ न थाकि पथिक थकि गयऊ ।२३

(ग) बहुधा यह बात पाई जाती है कि एकरसता अथवा नीरसता को निराकृत करने के लिए कवि सरल के बाद दुरूह या दुरूह के बाद सरल छन्द का प्रयोग करता है और उसके ऐसा करने का कोई न कोई मनोवैज्ञानिक औचित्य रहता है। उदाहरणस्वरूप पूर्व की उद्धृत पंक्तियों में 'देखिहैं' शब्द की पुनरुक्ति से अंगद की प्रतिज्ञा में ओज आ जाता है और इससे परिस्थिति विषम और गंभीर बन जाती है। इस परिस्थिति को सूचित करने के लिए चौपाई के सरल चरण के बदले 'छन्द' के दुरूह लम्बे चरण का प्रयोग होता है। यथा—

रोपवो चरन यह चाँपि चक पर प्रगट सभहिं पुकारहीं ।२४

(घ) लाक्षणिक भाषा का व्यवहार कबीर से लेकर परवर्ती सभी निर्गुण कवियों की विशेषता रही है। उन्होंने इस पद्धति को 'बौद्ध-सिद्धों' और नाथपंथ के 'योगियों' की परम्परा से प्राप्त किया था। लाक्षणिक भाषा से उस रहस्यमय वातावरण की सृष्टि होती है, जो सन्त-मत की एक प्रमुख विशेषता है। दरिया साहब ने इस लाक्षणिक भाषा का प्रयोग प्रधानतया 'शब्द' में किया है। अनेक छन्दों को 'उलटा' की उपाधि दी गई है; क्योंकि उनमें लाक्षणिक भाषा और विरोधोक्तियों का पर्याप्त पुट है। कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

जग में अजब कहानी देखा।
कहे सुने कैसे बनि आवै बिरला जब कोइ पेखा ।।
परबत-परबत फिरे मछरिया अगम बहे जल जँहवाँ,
धीमर जाल लिए यह फीरे तित्तिर बाझा तँहवाँ।
घायल हुआ तेहि चोट न लागा निर्घायल सो मूआ,
निर्पंछ रहा सो उड़ि के भागा पकरा पच्छ का सूआ ।२५

इस पद में 'मछरिया' और तित्तिर' से भ्रम में भटके हुए आत्मा का बोध होता है, 'धीमर' (मछुआ) से मन या माया का, 'निर्पंछ सूआ' और 'घायल व्यक्ति' सन्त है,

२१. श० १८. ३७।
२२. ज्ञा० र० ८५. ६।
२३. ज्ञा० दी० २२. ३।
२४. ज्ञा० र० ५३. २५।
२५. श० १७. ५।

तथा 'पच्छ का सूग्रा' श्रौर 'निर्घायल' व्यक्ति ऐहिक सुखों श्रौर वासनाओं में लिप्त जीव।[२६]

(ङ) दरिया साहब ने लगभग चालीस प्रकार के विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है।[२७] **यह स्वयं ही एक चमत्कार है। इसके श्रतिरिक्त जितने रागों में उन्होंने श्रपने पदों की रचना की है, उनसे उनके गायक होने की भी सूचना मिलती है।**

---

२६. 'कबीर' नामक पुस्तक के सप्तम परिच्छेद में कबीर की लाक्षणिक भाषा का विवेचन करते हुए श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बहुत-सी बातें अनुमान द्वारा ही जानी जाती हैं और कबीर द्वारा प्रयुक्त रूपकों का अर्थ लगाने का कोई विशेष मापदंड नहीं है। उदाहरणार्थ उन्होंने यह दिखाया है कि किस प्रकार कबीर के पदों के दो भाष्यकारों ने उनकी लाक्षणिक उक्तियों का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाया है। मैंने भी हनुमानदास (खड्गविलास प्रेस) नामक एक अच्छे विद्वान् की आलोचना देखी है और उन्हें भी अपनी अलग राह चलते पाया है। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश अवस्था में, विशेषतः उन पदों को छोड़कर जिनमें योग की क्रियाओं की विवेचना की गई है, लाक्षणिक उक्तियाँ बड़ी लचीली हैं और उनसे पाठकों की अपनी भावनाएँ प्रतिध्वनित हो सकती हैं। यही बातें दरिया साहब द्वारा प्रयुक्त लाक्षणिक उक्तियों के विषय में भी लागू हैं; क्योंकि जिन भिन्न साधुओं से मेरा संपर्क हुआ है, उन्होंने दरिया साहब की 'उलट-बाँसी' की एक ही पंक्ति का भिन्न अर्थ बताया। परन्तु, उनके सभी 'उलटा' पदों का मूल निष्कर्ष उन आत्माओं की हतभाग्यता है जो मन और माया, त्रिगुणों, इन्द्रियों तथा जरा-मरणशील जगत् के प्रलोभनों में उलझ जाते हैं।

२७. दरिया साहब द्वारा प्रयुक्त छन्दों के विश्लेषण के लिए 'परिशिष्ट' देखिए।

———

चतुर्थ खण्ड

दरिया साहब की भाषा

'ज्ञानस्वरोदय' और 'शब्द' के विशिष्ट अध्ययन तथा
अन्य ग्रन्थों के सामान्य अध्ययन
पर आधारित

प्रथम परिच्छेद
वर्ण-विन्यास

उन हस्तलिखित पोथियों के वर्ण-विन्यास की आलोचना करने में, जिनके आधार पर दरिया साहब सम्बन्धी प्रस्तुत निबंध रचा गया है, हमें निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ।

(१) विभिन्न लेखन-तिथियों, विभिन्न प्राप्तिस्थानों तथा लिपिकारों के विभिन्न बौद्धिक स्तरों के कारण, इन लिपियों में अनेक प्रकार की विभिन्नताएँ पाई जाती हैं।

(२) हस्तलिखित पोथियाँ दो लिपियों में लिखी गई हैं—देवनागरी और कैथी। दोनों की लेखनशैली में यह समानता है कि एक पंक्ति के सभी अक्षर एक ही शीर्ष-रेखा से जुड़े होते हैं। शब्दों अथवा शब्दसमूहों को पृथक्-पृथक् दिखलाने की चेष्टा नहीं की गई है। अतः पाठक के सम्मुख कभी-कभी बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। उसको बहुधा यह भय लगा रहता है कि कहीं अक्षरों को मनमाने ढंग से जोड़जाड़ कर मूल ग्रंथ को विकृत रूप में न पढ़ ले।

(३) पोथियों के लिपिकार प्रायः सामान्यजन अथवा अल्पशिक्षित व्यक्ति होते थे। वे विद्यालयों की नियमित शिक्षा से वंचित होते थे, और उनके ज्ञान का स्तर भी सामान्य होता था। अतएव पोथियाँ अशुद्धियों, विशेषतः स्वरसंबंधी अशुद्धियों, से भरी हैं।

(४) वर्ण-विन्यास का निम्नलिखित विवरण उन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर दिया गया है, जो सं० १८५१ और १९५५ के बीच की हैं। परन्तु सुविधा और स्पष्टता के विचार से उदाहरण प्रायः 'शब्द' (सं० १९५५) से लिये गये हैं।[1]

(क) स्वर-वर्ण—

स्वर-वर्ण और संयुक्त-स्वर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ आवश्यकतानुसार अपने दोनों रूपों में पाये जाते हैं, अर्थात् (१) अविकल रूप में, जब वे स्वतंत्र व्यवहृत होते हैं और (२) मात्रा-रूप में, जब वे व्यंजन के बाद व्यवहृत होते हैं। निम्नलिखित स्थितियों को छोड़कर वे उसी प्रकार लिखे हुए पाए जाते हैं, जैसे आजकल प्रचलित हैं—

(१) ऋ का शुद्ध स्वर-मूल्य लुप्त हो गया है और प्रायः सदा उसे 'रि' के रूप में लिखा गया है। यथा—

अम्रित	(अमृत)	श. १. ३७
क्रिपाल	(कृपालु)	श. १. १०४
जाग्रित	(जागृत, तत्सम-जाग्रत्)	श. १. १०३

१. हस्तलिपियों की लेखनतिथियों के लिए ग्रन्थ का प्रारम्भ देखिए।

यह प्रवृत्ति प्रायः सभी मध्ययुगीन तथा नवयुगीन भारतीय आर्यभाषाओं में पाई जाती है। कुछ हस्तलिखित पोथियों में ऐसे अपवाद भी हैं जिनमें 'ऋ' का मूलरूप ही रखा गया है। ऐसे स्थलों में संस्कृत की परम्परागत विवरण-शैली का प्रभाव ही मुख्य कारण है। यथा—

तृखा	(तृषा)	ज्ञा० स्व० १८८

(२) इ, ई की मात्राओं का स्वरूप वही ह, जो वर्त्तमान देवनागरी में हैं। किन्तु लिपिकारों ने मूल संस्कृत उच्चारण के अनुरूप दीर्घ एवं लघु स्वरों के विन्यास की ओर ध्यान नहीं दिया है। अतएव प्रत्येक पृष्ठ इस प्रकार के व्यत्ययों अथवा विपर्ययों से भरा पड़ा है। देखिए—

लिखित रूप		उच्चरित रूप
दरीया	श० १. ६२	दरिया
नीजू	श० १. ६२	निजु
बीखि	श० १. ६७	बिखि
लीये	श० १. ६३	लिये

(३) उ, ऊ के संबंध में भी वही वस्तुस्थिति है—

बिनू	श० १. ७५	बिनु
भरिपुर	श० १. ७१	भरिपूर
भुलि	श० १. ६८	भूलि

(ख) *व्यंजन-वर्ण*—

(१) व्यंजन-वर्णों के निम्नलिखित रूपों का व्यवहार हस्तलिपियों में किया गया है—

	अवरोध	महाप्राण	अवरोध	महाप्राण	अनुनासिक (नासिक्य)	
स्पर्श	क	ख, ष	ग	घ	ङ	
	च, य	छ	ज	झ, ह	ञ[२]	
	ट	ठ	ड	ढ	ण, ण[३]	
	त	थ	द	ध, ध्य	न	
	प	फ	ब, व	भ	म	
तरल —	य	र, ञ	ल	व़	ड़	ढ़
ऊष्म —	श	ष	स			
महाप्राण —	ह					

२. ३. ञ और ण का व्यवहार बहुत कम हुआ है।

(२) संयुक्त व्यंजन-वर्णों का भी व्यवहार प्रचुर रूप से किया गया ह। इस संबंध में निम्नलिखित विशेषताएँ ध्यान में रखने योग्य हैं—

(क) प्र के दो उच्चरित रूप हैं—प्र और पर्। यथा—

प्रिति	(प्रीति)	श० १. २८
प्रमेस्वर	(परमेश्वर)	श० १. २७

(ख) इसके अतिरिक्त ब्र, भ्र, त्र आदि अन्य रकारान्त संयुक्त वर्णों के भी दो उच्चरित रूप हैं। इनसे आधुनिक भाषाओं की उच्चारण संबंधी उस विशेषता की ओर संकेत होता है, जिसके अनुसार किसी संयुक्त-वर्ण को स्वरभक्ति द्वारा पृथक्-पृथक कर दिया जाता है। यथा—ब्रत > बर्त > बरत। निम्नांकित उदाहरणों में र् को पूर्व व्यंजन से संयुक्त करके लिखा गया है—

ग्रजि	श० ३. ५८	गर्जि
ग्रब	श० ३. ५८	गर्ब
द्रुमति	श० ३. ५७	दुर्मति

रेफ (र्) को सदा पूर्ववर्त्ती व्यंजन से संयुक्त नहीं किया गया है। अधिकांशतः प्रचलित लेखन-प्रणाली के अनुसार उत्तरवर्त्ती व्यंजन के ऊपर जोड़ा गया है। यथा—

आचर्ज	श० ३ अ० ७१
धर्म	श० ३ अ० १३

(३) नवीन भारतीय आर्यभाषाओं में प्रचलित प्रवृत्ति के अनुरूप पोथियों के लिपिकारों में श, ष और स के उच्चारण-भेद को मिटाकर तीनों का बोध बहुधा दन्त्य स के द्वारा कराने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। परिणामस्वरूप श, ष, स वाले शब्दों के विवरण में बहुत अव्यवस्था आ गई है। निम्नोद्धृत उदाहरण पर्याप्त होंगे—

अकस्ट	श० १. १०८	परन्तु कष्ट श० १. ४३
दससीश	श० ४. ७	(दशशीश)
द्रीष्टि	श० ३. ४३	परन्तु द्रीस्टांत श० ३. ४२
मश्त	श० १. ६४	(शुद्ध रूप—मस्त)
श्रिष्टि	श० ३ अ० १४	(शुद्ध रूप—सृष्टि)

(४) ष से, विशेषतया जब इसका संयोग किसी अन्य व्यंजन के साथ नहीं हुआ हो, बहुधा ख का बोध होता है और दोनों के लिखने में अव्यवस्था रहती है। यथा—

खून और षून	श० ३ अ० ६०
दुष (दुख) और सुख	श० १. ३४
बिखाद (विषाद)	श० ३ अ० ५१

बिखै (विषय) श० १. ३०
षट (षट) और खट श० ५. २

(५) सामान्यतः श और ष के स्थान में स का व्यवहार अधिक, तथा स के स्थान में अन्य दोनों ऊष्मों का व्यवहार अपेक्षाकृत बहुत कम किया गया है। सच तो यह है कि प्रायः जहाँ भी 'श' और 'ष' पाये जाते हैं, वहाँ तत्सम संस्कृत के मूल विवरण का प्रभाव ही मुख्य कारण है, न कि कोई विशेष विवरण-पद्धति। कैथी लिपि में भी उपर्युक्त प्रवृत्ति दीख पड़ती है; किन्तु अन्तर यह है कि लिखने में श, ष, स, तीनों के बदले केवल 'श' लिखा जाता है, यद्यपि उच्चारण की दृष्टि से उसका मूल्य दन्त्य 'स' मात्र है।

(६) ज्ञ को प्रायः सदा ग्य, लिखकर उसपर या उसके साथ संबद्ध मात्रा पर अनुस्वार-चिह्न (ं) लगाकर व्यवहृत किया गया है। इस प्रकार लिखित रूप के साथ उच्चरित रूप की अनुरूपता संपादन की गई है। यथा—ग्यांन श० १. ३८। ग्यांनी के स्थान में गेयानी श० १. ६० से प्रकट होता ह कि स्वर-भक्ति की प्रक्रिया भी जारी थी। कुछ स्थलों में 'ज्ञ' भी व्यवहृत हुआ है। यथा—ज्ञान श० १. ४२। ऐसे स्थलों में तत्सम का प्रभाव ही मुख्य प्रेरक है।

(७) ण (ग्गु) का व्यवहार तो प्रायः अलभ्य है। इनका स्थान दन्त्य न ने ले लिया है। कुछ शब्दों में उनके तत्सम रूप के प्रभाव-स्वरूप मूर्द्धन्य ण को भी प्रश्रय दिया गया है। यथा— लखण (श० १. ३९)।

(८) अ व और य तथा उनकी ध्वनियों का बहुधा निम्नलिखित रूप से परस्पर अव्यवस्थित प्रयोग हुआ है। यथा—

व़ का व्यवहार य के लिए : की़ो (कियो) श० १. ८९
: पव़ोधर (पयोधर) श० १. ५२
: बि़ोग (वियोग) श० २.२९
य का व्यवहार अ के लिए : हुया (हुआ) श. १.४२
व़ का व्यवहार अ के लिए : वोहि (ओहि) श० १. ५३।

नवीन भारतीय आर्यभाषा के आरम्भकाल में व और य की श्रुति-ध्वनियों से व्यंजनत्व का प्रायः लोप हो चुका था और उनका उत्तरवर्ती स्वर के साथ समीकरण हो गया था। इस समीकृत स्वर-युग्म (इ-अ, उ-अ, आदि) का संबंध फिर भी उस श्रुति-ध्वनि से जोड़ा जाता रहा जिसका लोप बिहारी भाषाओं से बहुत पहले हो चुका था। हस्तलिखित पोथियों में बहुधा यह को इअह के रूप में लिखा देखकर कुतूहल की सृष्टि होती है।

(९) 'य' का समावेश कभी-कभी अकारण भी किया गया है, यथा भ्यौ (भौ या भव)—ज्ञा० स्व० ४८।

(१०) बहुधा 'ड' और 'ड़' के लिखने में परस्पर अव्यवस्था दीखती है। यथा—

खडे	(उच्चरित खड़े)	श० ३. ५६।
घोडा	(उच्चरित घोड़ा)	श० १. ४७।

सामान्यतः ड ने ड़ और ड दोनों का स्थान ग्रहण कर लिया है। डेरा—श० ३. ६५। उपर्युक्त ड़ का व्यवहार भी पाया जाता है, यद्यपि बहुत कम। यथा—बाछड़ा, श०४.१०। ये ही बातें ढ और ढ़ के संबंध में भी लागू हैं।

यथा—गढ (उच्चरित गढ़) श० ३. ६०।

ढाल (उसी रूप में उच्चरित) श० ३. ६३।

(११) संयुक्त 'ह्म' (ह् + म) अपने तत्सम रूप के अनुसार गड्डलिकाप्रवाहन्याय से लिखा जाता है; किन्तु वास्तविक उच्चारण में संयुक्त वर्णों के क्रम को उलट कर उसे 'म्ह' बना लिया गया है। अतः जब लिपिकार लिखता है—ब्रह्मचारी (श० १. २६), तब यह उसके वास्तविक उच्चारण का द्योतक नहीं है; क्योंकि उच्चरित रूप है ब्रम्हचारी। निम्नलिखित उदाहरण ध्यान देने योग्य हैं—

कुह्म (उच्चरित-कुर्म्ह, शुद्ध-कूर्म) श० ३ अ० १४।

खंह्म (उच्चरित-खम्ह, संस्कृत—स्कम्भ)।

(१२) विसर्गः (:) प्रायः अप्रयुक्त है; और इसका काम पूर्ण 'ह' से लिया गया है।

यथा—निहततु (निःततु; संस्कृत—निस्तत्त्व) श० १. १६।

(१३) वर्तमान प्रचलित हिन्दी-लेखन-शैली के अनुसार अनुस्वार (ं) का व्यवहार समान रूप से विभिन्न अनुनासिकों को सूचित करने के लिए किया गया है। संयुक्त वर्ण के लेखन की सरलता और मितव्यय की दृष्टि से ही ऐसा व्यवहार चल पड़ा होगा।

यथा—अलंम	(म् के लिए)	श० १. ८२।
द्रिश्टांत	(न् के लिए)	श० ३. ४२।
संघति	(ङ के लिए)	श० १. ५३।

कुछेक व्यतिरेकों को छोड़कर ण, ङ ञ, का व्यवहार नहीं ही हुआ है, और दन्त्य न के द्वारा उनके उच्चारण का काम लिया गया है।

यथा—डंड (दण्ड के लिए) उच्चरित डन्ड—श० १. ३२।

परिपंच (प्रपञ्च के लिए) उच्चरित परिपन्च—ज्ञा० दी० १०.४।

ञ और ण की ध्वनियाँ तो आधुनिक बिहारी भाषाओं से लुप्तप्राय हो गई हैं।

(१४) चन्द्रबिन्दु (ँ) द्वारा स्वरों की अनुनासिक-ध्वनि को प्रकट करने की प्रथा नहीं है, और इसका काम अनुस्वार से ही लिया जाता है।

यथा—कहं	(कहँ के लिए)	ज्ञा० स्व० ३।
संवसारा	(सँवसारा, संसारा के लिए)	ज्ञा० स्व० २१५।

द्वितीय परिच्छेद

ध्वनि और ध्वनि-प्रक्रिया

[१] व्यंजन वर्णों की ध्वनि-संबंधी चर्चा पिछले परिच्छेद में 'वर्णविज्ञान' के प्रसंग में की जा चुकी है।

[२] स्वर वर्णों की ध्वनि के सम्बन्ध में प्रथम परिच्छेद में दी गई विशेषताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित बातें ध्यातव्य हैं--

(क) वर्ण की आकृति की दृष्टि से 'अ' का एक ही रूप है; परन्तु ध्वनि की दृष्टि से इसके तीन रूप हैं, जैसा निम्नलिखित उद्धरणों के छन्दोगतरूप से ज्ञात होगा--

१. लघु अ, यथा पटकि में (एक-मात्रिक);

२. द्विमात्रिक अथवा संतत अ, यथा पठऽकि में (द्वि-मात्रिक) श० १. १२। धऽके (पकड़ कर) ज्ञा० र० ४७. ३। यह द्विमात्रिक अकार बिहारी भाषाओं की एक ध्यान देने योग्य विशेषता है।

३. अतिलघु अथवा अल्पमात्रिक अ यथा 'प्रेम-रस' उच्चरित प्रेम्-रस् (अर्द्धमात्रिक या उससे भी कम)।

इस अन्तिम उदाहरण में अ ध्वनि संसर्प का सहारा मात्र है। वाक्यखंड देखिए--

सितल् (अ) सर्वदा प्रेम् (अ) रस् (अ) स० रा० ३१।

यह विदित है कि नवीन भारतीय आर्यभाषाओं में अ-कारान्त व्यंजन वर्णों के अन्त्य स्वर की मात्रा प्रायः घट गई है और वास्तविक उच्चारण में उसका रूप हलन्त मात्र रह गया है। उपर्युक्त अल्पमात्रिक अ का स्थान उच्चरित पूर्ण अ और हलन्त के बीच में मानना होगा।

(ख) आ की ध्वनि भी दो प्रकार की है--दीर्घ और लघु। लघु आ--एक-मात्रिक है तथा दीर्घ आ द्वि-मात्रिक। उदाहरणार्थ--

माँया काहु की भई नाँ होनी--ज्ञा० स्व० ५५।

'मा' में जो आ है, वह लघु है; किन्तु 'या' में जो आ है, वह दीर्घ है। देखिए--श० १. ५६ जिसमें उस शब्द का विवरण मया दिया गया है।

(ग) ए दीर्घ और लघु दोनों हैं। यथा--

नेउरी नाचै सीस पर नीचे नाचे भुअंग--स० रा० २५। यहाँ नेउरी में ने लघु है; पर नाचे में चे दीर्घ है।

अनेक स्थलों में, प्रधानतया किसी शब्द के अन्त में, ए का व्यवहार य के स्थान में किया गया है। यथा—

भए-भंजन (भय-भञ्जन के लिए)—श० १. ३४।

(घ) उसी प्रकार ओ भी लघु और दीर्घ है। यथा—

'जेंव चकोर चित लाइया"—स० रा० २२। यहाँ चकोर में ओ दीर्घ है; किन्तु 'दुइ जहान सम सुभग सोहावा"—ज्ञा० स्व० २८७। यहाँ 'सोहावा' में ओ लघु है।

(ङ) ऐ (जो बहुधा ऐ और कभी-कभी अै के रूप में लिखा जाता है) के भी दो उच्चारणभेद हैं—अइ और अय्। यथा—

नैबेद (उच्चारण नइबेद)।

बैकुंठ (उच्चारण बय्कुन्ठ)।

दोनों प्रकार के शब्दों का लिखना एक ही ढंग का होता है, परन्तु इनका उच्चारण भिन्न-भिन्न होता है। इस भिन्नता की पुष्टि एक और बात से होती है। वह है एक ही शब्द का भिन्न स्थानों में दो तरह से लिखा जाना। निम्नलिखित तरह की लिखावट से ध्वनि-गत रूप का ही बोध होता है। यथा—

नैबेद—लिखावट—नइबेद —ज्ञा० दी० ४६. १०।

बैकुंठ— " —बएकुंठ —श० १. ६१।

(च) ऐ के समान औ के भी दो उच्चारणभेद हैं। यथा अउ और अव्। पिछला उच्चारण अधिक प्रचलित है और अधिकांशतः लिपिकार ने औ के स्थान में अ और व को पृथक् करके लिखा है। यथा—

"अव कवि तुलसी दास"—स० रा० १२०। कवि को "औ कवि तुलसीदास" लिखना अभिप्रेत था। शब्द नामक ग्रन्थ में लिपिकार ने मनमाने ढंग से औ के दोनों रूपों का व्यवहार किया है। यथा—

अव श० १. ८०।

औ श० १. ७८।

औ का अउ उच्चारण सारन या शाहाबाद (बिहार) में बोले जानेवाले कौआ जैसे शब्दों में होता है। यथा—

"औअल असल पीर एह चारा"—ज्ञा० स्व० ३१७।

यहाँ उच्चारण संभवतः औ-अल् है, न कि अव्-अल्, अथवा अव्-वल्।

[३] विभिन्न पोथियों में व्यवहृत कुछ चुने हुए शब्दों की परीक्षा और उनके विश्लेषण के फलस्वरूप ध्वनि की विशेषताओं के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष दिये जा सकते हैं। परन्तु ये विशेषताएँ प्रायः सभी नवीन भारतीय आर्यभाषाओं में पाई जाती हैं; अतएव इनकी चर्चा संक्षेप में ही की जायगी। जो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये गए हैं, उनपर दरिया साहब अथवा उनके निवास-स्थान भोजपुर का विशेष प्रभाव लक्षित है।

रिया साहब की शिक्षात्मक कविताए सामान्य जनता को लक्ष्य में रखकर रची गई थीं ो अधिकांशतः अपढ़ या कम पढ़ी-लिखी थी। अतः उनकी भाषा में जनसाधारण में चलित शब्दावली का व्यवहार प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

क) स्वर-वर्ण--

(१) दीर्घ स्वर-वर्णों का लाघव--

बिख्यान (व्याख्यान) ज्ञा० दी० ५०. १ (व्या<व्य<वि<बि)।

बितान्ति (वृत्तान्त) ज्ञा० र० २६. १०।

(२) ह्रस्व स्वर वर्णों का दीर्घत्व--

अमरापूर (अमरपुर) ज्ञा० र० ८२. ०।

जलामई (जलमयी) ज्ञा० दी० १८२. २३।

धवलागीर (धवलगिरि) ज्ञा० र० ६५. १८।

(३) अन्तर्निहिति (शब्द के अन्तर्गत स्वर की निहिति)--

अनैगन्हि (अनेक) ज्ञा० र० १६. १२।

जोइनि (योनि) ज्ञा० दी० ६. ८।

स्रियरामा (श्री राम) ज्ञा० र० ६५. १७।

(४) अग्रागम (शब्द के आरम्भ में स्वर का आगम):--

असनान (स्नान) ज्ञा० स्व० ३७।

अस्तुति (स्तुति) ज्ञा० दी० २६. ४।

इस्त्री (स्त्री) ज्ञा० र० १२०. ३।

(५) आरम्भिक स्वर का लोप--

रहट (अरघट्ट) ज्ञा० दी० १२४. ४।

(६) मध्यम स्वर का लोप--

ओद्र (उदर) ज्ञा० दी० १०. ५।

गंध्रप (गंधर्व) ज्ञा० दी० २६. ८।

जग्त (जगत्) ज्ञा० स्व० १५।

नग्र (नगर) ज्ञा० दी० ६५. ४।

(७) अन्तिम स्वर का लोप--

नाभ् (अ) (नाभि) ज्ञा० स्व० १८२।

(८) य-श्रुति--

उत्पन्य (उत्पन्न) श० १. ५७।

लज्या (लज्जा) ज्ञा० र० ११. १३।

सिध्या (सिद्ध) ज्ञा० दी० ४४. ७।

सिल्या (शिला) ज्ञा० दी० १२५. ३।

(६) व-श्रुति—

सवँसारा	(संसारा)	ज्ञा० स्व० २१५ ।

(१०) सानुनासिकत्व (स्वाश्रित)—

अंजोर	(उज्ज्वल)	ज्ञा० स्व० ७५ ।
निरंकार	(निराकार)	ज्ञा० दी० १७. १ ।
मंख	(मख)	ज्ञा० दी० ४. २ ।
मुंद्रा	(मुद्रा)	ज्ञा० दी० २१०. ५ ।
संजन	(सज्जन)	ज्ञा० र० १२३. ३ ।

(११) सानुनासिकत्व (अन्याश्रित)—

अचँवन	(आचमन)	ज्ञा० स्व० १७६—म का प्रभाव।
अइसन	(ऐसन)	ज्ञा० र० १२२. १२-न का प्रभाव
मिनती	(बिनती)	ज्ञा० र० ४५.२३—ं का प्रभाव।

(१२) स्वर-विपर्यय—

अंडुज	(अंडज)	ज्ञा० ५. १० ।
खुशबोई	(खुशबू)	ज्ञा० स्व० ३८० ।
देवाकर	(दिवाकर)	ज्ञा० र० ३१. ६ ।
सेंधुर	(सिन्धु)	ज्ञा० स्व० ४६ ।

(ख) असंयुक्त व्यंजन

(१) मध्य व्यंजन का लोप—

भुअंग	(भुजंग)	स० रा० २५ ।
भेव (ओ)	(भेद)	ज्ञा० दी० १५४. ४ ।
साएर	(सागर)	ज्ञा० र० ४१. १४ ।

(२) व्यंजन वर्णों का सघोषत्व—

बग	(वक)	ज्ञा० दी० १६६. १३ ।
सोग	(शोक)	ज्ञा० स्व० ४८ ।

(३) व्यंजन वर्णों का अघोषत्व—

धनाढ	(धनाढ्य)	ज्ञा० दी० १२६. १२ ।

(४) ण का न में परिणमन—

पूरन	(पूर्ण)	ज्ञा० स्व० २३४ ।
रजगुन	(रजोगुण)	ज्ञा० स्व० १६१ ।

(५) श का स—

विश्वास	(विश्वास)	ज्ञा० स्व० ३६२ ।

(६) म का वँ—

अँचवन	(आचमन)	ज्ञा० स्व० १७६।
कंवंडल	(कमण्डलु)	श० १. ४।

(७) इसके विपरीत व का म—

घीमर	(धीवर)	ज्ञा० दी० ४८. १०।
परमीन	(प्रवीण)	ज्ञा० दी० ५. १५।
प्रिथिमी	(पृथिवी)	ज्ञा० स्व० १८३।

(८) स का ह—

महजीद	(मस्जिद)	ज्ञा० र० २. ११।
निहचिन्त	(निश्चिन्त)	ज्ञा० दी० १०४. १५।
निहफल	(निष्फल)	ज्ञा० स्व० ३५६।
नेहान	(स्नान)	ज्ञा० स्व० २१६।

(९) रेफ का अन्तःसमावेश—

त्रिमिर	(तिमिर)	ज्ञा० दी० १६७. ३।
त्रीछन	(तीक्ष्ण)	ज्ञा० स्व० १७१।
त्रीथी	(तिथि)	ज्ञा० स्व० २०५।
धिरकार	(धिक्कार)	श० १. ३१।
ध्रिग	(धिक्)	ज्ञा० स्व० ५८।
ब्रिगसै	(विकास)	ज्ञा० दी० ६४. ६।
म्रिथ्या	(मिथ्या)	ज्ञा० स्व० २६२।
सराप	(श्राप)	ज्ञा० र० ६५. १३।
सेंधुर	(सिंधु)	ज्ञा० स्व० ४६।
सम्प्रदा	(सम्पद्)	ज्ञा० दी० १३७. ६।
स्रगुन	(सगुण)	ज्ञा० दी० ४१. २६।

उपर्युक्त उदाहरण शब्दों के प्रचलित बोलचाल के रूप के द्योतक हैं।

(१०) ष का ख—

औखद	(औषध)	ज्ञा० र० ६२. १।

(११) य का ज—

ब्रम्हचर्ज	(ब्रह्मचर्य)	ज्ञा० दी० ४६. ६।

(१२) ल और र का परस्पर विपर्यय—

(ख) ल का र—

थरिया	(थाली)	ज्ञा० दी० १६८.०।
मंगर	(मंगल)	ज्ञा० स्व० २०६।

(ख) र का ल—

कुंजल	(कुंजर)	ज्ञा० दी० १११. ६।
मंदिल	(मंदिर)	ज्ञा० दी० ५. २१।
सलिता	(सरिता)	ज्ञा० र० १०५. ७।
सैल	(सैर)	ज्ञा० स्व० ३३१।[४]

(१३) ड़ का र—

लराई	(लड़ाई)	ज्ञा० दी० १६५. २७

(१४) व का ब—

बाव	(वायु)	ज्ञा० स्व० ३२०।

(१५) अल्पप्राण का महाप्राणत्व—

अभिनासी	(अबिनासी, अविनाशी)	ज्ञा० र० ६५. ८।
आर्हति	(आरति)	ज्ञा० र० १२. ७।
खाधि	(खाद्य)	ज्ञा० दी० ११८. ८।
चिखुर	(चिकुर)	ज्ञा० दी० ५४. २।
जढ़	(जड़)	ज्ञा० दी० १. ६।
पातख	(पातक)	ज्ञा० र० ५७. १७।
भरथ	(भरत)	ज्ञा० दी० ५. ६।

(१६) महाप्राण का अल्पप्राणत्व—

अबिलाख	(अभिलाष)	ज्ञा० दी० ६७. ०।
धनुक	(धनुष)	ज्ञा० र० १०. ०।
बीखब	(वृषभ)	ज्ञा० दी० ४२. ७।
रजदानी	(राजधानी)	ज्ञा० दी० ८८. २१।
सिंगासन	(सिंहासन)	ज्ञा० र० १६. ३।

(१७) ह का अन्य महाप्राणों में परिणमन[५]—

संघति	(संहति)	श० १. ५३।
संघार	(संहार)	ज्ञा० दी० १६. ६।
सिंघ	(सिंह)	ज्ञा० स्व० १३०।

४ 'ज्ञानस्वरोदय' में ल के स्थान में र के पाँच उदाहरण हैं; परन्तु र के स्थान में ल का एक ही उदाहरण है।

५ सुनीतिकुमार चटर्जी द्वारा उल्लिखित "महाप्राण स्पर्श का पूर्ववर्ती अनुनासिक के साथ समीकरण' भी इसी कोटि में आयगा। देखिए—'वर्णरत्नाकर' पुराना संस्करण, पृ० ४३।

(१८) सम्प्रसारण (य का इ और व का उ)—

(क) बिख्यान	(व्याख्यान)	ज्ञा० दी० ५०. १।
बिभिचारी	(व्यभिचारी)	ज्ञा० र० ८४. ११।
(ख) तत्तु	(तत्त्व)	ज्ञा० स्व० १७०।
सुभाव	(स्वभाव)	ज्ञा० स्व० १०७।

(१९) व और य का परस्पर व्यत्यय—

बेस्वा	(वेश्या)	ज्ञा० स्व० ३६६।
तपेस्वा	(तपस्या)	ज्ञा० र० ३०. ०।

(२०) विपर्यय—

नालति	(लानत)	ज्ञा० स्व० ५९।

(२१) समीकरण : पश्चाद्गामी—

डंड	(दण्ड)	ज्ञा० दी० ५. ०।
भभीखन	(विभीषण)	ज्ञा० र० ४२. ४।

(२२) समीकरण : पुरोगामी—

दंदबंद	(द्वन्द्व-बंध)	ज्ञा० दी० १०८. २।
सोमार	(सोमवार)	ज्ञा० स्व० २०८।

(२३) विषमीकरण (पुनरावृत्ति के निराकरण की दृष्टि से उच्चारण विन्दु का परिवर्त्तन)

कोताहल	(कोलाहल)	ज्ञा० दी० ५२. ११।
मदत	(मदद)	ज्ञा० स्व० ३५७।

(२४) मिथ्यासादृश्य—

चतुरानन्द	(चतुरानन)	ज्ञा० दी० ७२. ८।
चतुरगुन	(शत्रुघ्न)	ज्ञा० दी० १३३. २३।
जग्यपवित्र	(यज्ञोपवीत)	ज्ञा० र० १०. ५।
पुरातम	(पुरातन)	ज्ञा० दी० १५४. २५।
म्रिगनाल	(मृणाल)	ज्ञा० दी० ५४. ९।
रिगजुग	(ऋग्-यजुष्)	ज्ञा० स्व० ३२१।
सिवलोचना	(सुलोचना)	ज्ञा० र० ६९. ०।
सुखसैना	(सुषेण)	ज्ञा० र० ६५. १०।

(ग) संयुक्त व्यंजन

(१) वर्णलोप—

कलऊ	(कलियुग)	ज्ञा० दी० १२९. ०।
नजीक	(नजदीक)	ज्ञा० दी० १४२. ८।
परिबा	(प्रतिपदा)	ज्ञा० स्व० २०५।
स्रोसती	(सरस्वती)	ज्ञा० स्व० २६०।

(२) समीकरण—

दिगम्मर	(दिगम्बर)	ज्ञा० र० ६२. ८।
पुन्न	(पुण्य)	ज्ञा० दी० ११०. ५।

(३) स्वरभक्ति—

खरग	(खड्ग)	ज्ञा० स्व० ६६।
परिपंच	(प्रपञ्च)	ज्ञा० दी० १०. ४।
परियास	(प्रयास)	ज्ञा० दी० ५४. १९।
पुहुप	(पुष्प)	ज्ञा० दी० ६. १६।
रकत	(रक्त)	ज्ञा० स्व० १८७।

(४) वर्णोपजन—

खुसबोई	(खुशबू)	ज्ञा० स्व० ३८०।
सरजुग	(सरयू)	ज्ञा० दी० ९६. १।

(५) क्ष का छ—

छंछेप	(संक्षेप)	ज्ञा० र० ५७. ५।
दुरभिछ	(दुर्भिक्ष)	ज्ञा० स्व० २२९।

(६) सरलीकरण—

कँड़हार	(कणहार>कण्णहार>कर्णधार)	ज्ञा० स्व० ५१।
रहट	(रहट्ट>अरहट्ट>अरघट्ट)	ज्ञा० दी० १२४. ४।

———

तृतीय परिच्छेद

शब्दाकृति एवं वाक्यविन्यास

१. संज्ञा

दरिया साहब की भाषा में शब्दाकृति तथा वाक्य-विन्यास की विशेषताएँ प्रायः वैसी ही हैं जैसी तुलसी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' की अवधी-प्रधान भाषा में; और जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में तुलसी की अवधी पर अन्य बोलियों और भाषाओं ब्रजभाषा, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, खड़ीबोली आदि) का प्रभाव पड़ा है[१], उसी प्रकार दरिया साहब की अवधी-प्रधान भाषा में भी इतर भाषाओं तथा बोलियों की विशेषताओं का मिश्रण है। अन्तर इतना है कि इनकी भाषा में भोजपुरी और खड़ीबोली का पुट अपेक्षाकृत अधिक है। निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगा कि दरिया साहब ने विभिन्न क्रिया-रूपों का निर्बाध व्यवहार किया है—

ता संग प्रीति कीन्ह लौलीन्हाँ।
बिसरि गया जनु जोग ना कीन्हाँ॥
सात मास रहु ताके ंगा।
नित नित प्रीती करहि प्रसंगा॥ अ० सा० १७.१—२

(१ प्रातिपदिक--

(क) प्रातिपदिकों का अन्त –अ, –आ, –इ, –ई, –उ, –ऊ, –ए, –ऐ, –ओ, –औ, स्वरों से होता है। यथा[२]—

–अ	आलस	ज्ञा० स्व० १८८ (सं० –आलस्य)।
–आ	परिबा	„ „ २०५ (सं० –प्रतिपदा)।
–इ	चिति	„ „
–ई	प्रिथिमी	„ „ १८३ (सं० –पृथिवी)।
–उ	सेंधु	„ „ २९५ (सं० –सिन्धु)।

१. 'तुलसीदास और उनकी कविता'—ले० रामनरेश त्रिपाठी, द्वि० भाग, पृष्ठ ४११।

२. उदाहरणों की दृष्टि से 'ज्ञान-स्वरोदय' नामक ग्रंथ का अच्छी तरह अध्ययन किया गया है। व्यवहृत संख्यावाचक शब्दों और सर्वनामों के परिगणन के लिए भी उसी ग्रंथ को आधार माना गया है। अतः 'उद्धरण-भाग' में उस ग्रंथ को संपूर्ण रूप में उद्धृत किया गया है।

–ऊ	तराजू	ज्ञा० स्व० ३०० ।
–ए	संसे	ज्ञा० दी० ३४. ८ (सं०–संशय) ।
–ऐ	बिखै	श० १. ३० (सं० –विषय) ।
–ओ	दानो	श० ३. ५६ (सं० –दानव) ।
–औ	भौ	ज्ञा० र० १२२. ६ (सं० –भव) ।

(ख) इनमें से अन्तिम चार प्रकार के प्रातिपदिक अन्यों की तुलना म बहुत कम व्यवहृत हुए हैं और ये प्रायः तत्सम शब्द के अन्तिम य अथवा व के अ के लाघव अथवा लोप के फलस्वरूप बने हैं। यथा––

दानव < दानव् < दानौ < दानो।

भव < भव् < भौ।

(ग) तुक अथवा अनुप्रास के कारण अन्तिम स्वर के दीर्घीकरण के अनेक उदाहरण हैं। यथा––

दुइ जहान एहि भाँति बिसाला ––ज्ञा० स्व० २६२।

यहाँ बिसाला में आ इसलिए जोड़ा गया है कि पूर्वगत पंक्ति के पताला के साथ तुक मिले।

पताला के अन्तिम स्वर का दीर्घीकरण भी छन्द की दृष्टि से ही हुआ है। अन्य उदाहरण भी देखिए––

अस्थाना (स्थान) ज्ञा० दी० ६. २४; सँचेतू (सचेतस्) ज्ञा० स्व० ३३२।[3]

(२) *लिंग*––

(क) संज्ञाओं के दो लिंग हैं––पुंलिंग और स्त्रीलिंग।

(ख) कुछ संज्ञाएँ, विशेषतया अप्राणिबोधक संज्ञाएँ, लोकसंमत व्यवहारानुसार पुंलिंग या स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुई हैं। यथा––

बेद को मूल	(मूल––पु०)	ज्ञा० स्व० २।
रतन की खानि	(खानि––स्त्री०)	ज्ञा० स्व० १।

(ग) कुछ संज्ञाओं को उनके अन्त में स्त्री-प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग बनाया गया है। ये प्रत्यय प्रायः –ई, –इन (–इनि), –आइन (–आइनि) हैं। यथा––

देवादेई	ज्ञा० दी० ६१. १०।
बाघिनि	श० ५. १।
महिखाइनि	श० ५. १।

(घ) आ– कारान्त स्त्रीलिंग प्रायः मूल संस्कृत रूप से प्रभावित है। यथा––

पतिबरता (पतिव्रता) ज्ञा० स्व० ३६३।

---

३. नामधातुओं की चर्चा 'क्रिया' के प्रसंग में की जायगी।

(ङ) दरिया साहब कारक-विभक्ति और क्रिया का रूप संज्ञा के लिंगानुसार रखने की चेष्टा करते हों, ऐसी बात नहीं है; विशेषतः जब संज्ञा अप्राणिबोधक हो। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित पंक्तियों में तो विभक्ति और क्रिया के रूप ठीक हैं—

माया काहु की भई ना होनी — ज्ञा० स्व० ५५।

टुटलि पतवारी — ज्ञा० दी० १६. ६।

बनी बराता — ज्ञा० र० १६. १२।

परन्तु नीचे के उदाहरणों में लिंग-सामंजस्य का पालन नहीं किया गया है:—

बंदगी मेरा — ज्ञा० स्व० ६६।

प्रलै की डर — ज्ञा० स्व० ७१।

बुंद एक जल स्रिष्टि सँवारा — ज्ञा० स्व० ३१२।

उपर्युक्त पंक्तियों में उपयुक्त रूप क्रमशः मेरी, का और सँवारी होना चाहिए था। लिंग-संबंधी ऐसी अव्यवस्था के तीन कारण जान पड़ते हैं—

(१) नवीन भारतीय-आर्य भाषाओं में—विशेषतया भोजपुरी, बंगला आदि भाषाओं में—धीरे-धीरे लिंग-संबंधी नियमों में शैथिल्य और उनके प्रति उपेक्षा।

(२) व्याकरण का अपूर्ण ज्ञान और व्याकरणसंयत रचना के प्रति अनवधानता।

(३) छन्दों और तुकों की अपेक्षाएँ।

लिंग की अव्यवस्थाओं का एक ज्वलन्त उदाहरण नीचे दो पंक्तियों में मिलता है। इनमें एक ही ग्रन्थ में एक ही शब्द 'बाग' को दोनों लिंगों में व्यवहृत किया गया है।

नव बहार है बाग तुम्हारा — ज्ञा० स्व० ८०।

यार मिलन की बाग अमाना — ज्ञा० स्व० ११३।

(३) कारक—

(क) कारक दो हैं—ऋजु (अविकृत) और अनृजु (विकृत)।

(ख) ऋजु का व्यवहार एकवचन में (१) कर्त्ता, (२) संबोधन और (३) अप्राणिवाचक कर्म का बोध कराता है। यथा—

(१) और (३) ज्ञान स्वरोदय कहेउ कबीरा — ज्ञा० स्व० ४।

(२) कहे भाट सुनु भूप सुजाना — ज्ञा० र० ११. ६।

(ग) एकवचन के अन्य उदाहरणों में ऋजु का व्यवहार विभक्ति अथवा परसर्ग के साथ किया जाता है। यथा—

रतन की खानि — ज्ञा० र० १।

दोजख आँच से डरहू — ज्ञा० स्व० ३८ आदि।

(घ) बहुवचन में कर्त्ता अथवा अप्राणिवाचक कर्म के रूप में ही ऋजु कारक का व्यवहार हुआ है। यथा—

असी लाख पैगम्मर आवा — ज्ञा० स्व० १५।

कामादिक भट मारु ज्ञा० स्व० ६६।

(ङ) अन्य कारकों में भी यत्र-तत्र ऋजु रूप का व्यवहार हुआ है—विशेषतः अधिकरण कारक या सप्तमी विभक्ति में। यथा—

पति चित राखी (चित—अधि०) ज्ञा० स्व० ३६३।

निज मुख क्रिस्न सो कहा बखानी (मुख—करण) ज्ञा० स्व० ६१।

(च) अनृजु रूप का व्यवहार भी एकवचन और बहुवचन दोनों में तथा विभिन्न कारकों में हुआ है। यथा—

(१) एकवचन—

–ई :	का माया मइ पियहु दुकानी	(अधि०) ज्ञा० स्व० ४६।
–ए :	मदे मताए भरम करि डारी	(करण) ज्ञा० स्व० २२।
	बैंकुंठे जाई (अधि०)[४]	ज्ञा० दी० १५४. २८।
	बिनु पंखे[५] (संबन्ध)	(बिना पंख के) ज्ञा० ५. १।
–ऐ :	देखु निजु पलकै (करण)	ज्ञा० स्व० २५।
	देखु हिऐ (अधि०) निज निज करु अनुमाना	ज्ञा० स्व० २८५।
–अहिं:	जौन अछै बट नामहिं जाना (कर्म)	ज्ञा० स्व० ६२।
	तस जिव सभहिं पिआर (संप्र-संबंध)	ज्ञा० स्व० २६।
	जिवहिं कृतारथ हेत (संबंध)	ज्ञा० स्व० २८८।
	भोरहिं बहई (अधि०)	ज्ञा० स्व० २४६।

(२) बहुवचन —

–न्हं :	साधुन्हं (कर्त्ता) जाना	ज्ञा० स्व० ११३।
–अहिं :	ठग बटवारहिं (कर्म) नास	ज्ञा० स्व० ३६१।
	–बरसै नैनन्हि (अपा०) नीर	ज्ञा० स्व० ३०७।
	रहु सिंघन्हि (संबंध) पासा	ज्ञा० स्व० ३४८।
	सिंघ ठवन्हि (अधि०) रहु	ज्ञा० स्व० ३४८।
–इन :	इमि दुइ भाँतिन[६] (संबंध) सरबस देहा	ज्ञा० स्व० २६१।

४. ज्ञा० स्व० में 'ए' के साथ अधिकरण का प्रयोग नहीं है।

५. ज्ञा० स्व० में 'ए' के साथ संबंध का प्रयोग नहीं हुआ है।

६ ज्ञा० स्व० में –'इन' का यह एकमात्र उदाहरण है। अर्थ है—सभी शरीर इन्हीं दो प्रकार के है।

(४) *बलार्थक रूप* —

'ज्ञान-स्वरोदय' में इसके केवल चार उदाहरण हैं। इसका व्यवहार मुख्यतः अन्तर्विष्ट करने के अर्थ में किया गया है, और कारकों के रूप अनृजु हैं। यथा—

दुखै सुखै दिन काटिऐ ज्ञा० स्व० ८५।

(दुखै-सुखै=दुःख में भी सुख में भी। ये करण कारक भी हो सकते हैं।

खूधो रहिए सोय ज्ञा० स्व० ८५।

खूधो—भूख में भी। यह अधिकरण कारक है।

(५) *अर्थप्रकाशक बहुवचन*—

यह मूल एकवचन में सभ, जन, गन, लोग आदि लगाकर बनाया जाता है। यथा—

सुनहु दोस्त सभ ज्ञा० स्व० ९६।

ज्ञानी जन कंहं दुख नांहि भाई ज्ञा० स्व० ३४५।

तारागन लिलार में रहहीं ज्ञा० स्व० ३०८।

इस प्रकार के प्रयोगों से समूहवर्ग या समुच्चय का बोध होता है।

२. विशेषण

(१) *वर्गीकरण*—

विशेषण के निम्नलिखित भेद हैं—

१. गुणवाचक, २. परिमाणवाचक, ३. संख्यावाचक और ४. सार्वनामिक।[७]

(२) *लिंग-निर्णय*—

(क) सामान्यतः विशेषणों के दो लिंग हैं—पुंलिंग और स्त्रीलिंग। यथा—

तिर्गुन त्रिविध धार अति बांकी (स्त्री०) ज्ञा० स्व० ५१।

हरा तुम्हारा सुमन बगीचा (पु०) ज्ञा० स्व० ७९।

(ख) स्त्रीलिंग बनाने के लिए प्रायः पुंलिग के –आ को–ई में बदल देते हैं। यथा—

एहि नाहिं होइहैं बंदगी पूरी ज्ञा० स्व० १०२।

(ग) बहुत-से विशेषण दोनों लिंगों में व्यवहृत हुए हैं। यथा—

उज्जल (वि०) दसा हंस गुन होई ज्ञा० स्व० २३।

पिअहु अघाय नाम मद भारी ज्ञा० स्व० ८४।

(घ) कहीं-कहीं –अ, को लघु –इ, में मनमाने ढंग से बदलते हैं। यथा—

मकुर मैलि नहिं होय ज्ञा० स्व० ३०।

यहाँ मकुर (मुकुर) पुंलिंग है, अतएव मैल को मैलि में बदलने की कोई आवश्यकता नहीं थी। यह परिवर्त्तन ध्वनि-विकास की उस प्रवृत्ति का प्रतिफल हो सकता है जिसके

---

७. सर्वनाम-बोधक अथवा सार्वनामिक विशेषण की चर्चा 'सर्वनाम' शीर्षक के अन्तर्गत की जायगी

अनुसार नवीन भारतीय आर्य भाषाओं की मैथिली आदि कुछ बोलियों में शब्द के अन्तिम –अ, को हल्के –इ का रूप प्रदान कर दिया जाता है ।

(३) *कारक*—

(क) विशेषण के दो कारक हैं—ऋजु और अनृजु । यथा—

ऋजु : करु असनान बिमल मन होई ज्ञा० स्व० ३७ ।

अऋजु : सगरे लंका दैत पसारा ज्ञा० र० ४२. ८ ।

यहाँ सगरे में ए लंका के अधिकरण होने का द्योतक है । इस चिह्न को प्रधान पद लंका में न लगाकर उसके विशेषण सगरे में संयुक्त किया गया है ।

(ख) विशेषण का व्यवहार विशेष्य के पूर्व और पश्चात् दोनों प्रकार से किया गया है । यथा—

जस पिआर जिव आपनो
तस जिव सभहिं पिआर ज्ञा०स्व० २९ ।

इस एक ही पद में पिआर (प्यारा) का व्यवहार दोनों तरह से हुआ है ।

परन्तु कविता में इसकी विशेष विवेचना अनावश्यक है; क्योंकि कवि का मुख्य लक्ष्य छंदों की संस्थिति होता है, न कि विशेषण-विशेष्य का समन्वय ।

(४) *तुलनात्मक विशेषण*—संस्कृत के समान तुलना अथवा अतिशायनबोधक (Comparative and Superlative) कोई विशेष रूप नहीं है । इन अर्थों को अधिक, जादा, बहुत, सभमें, सभसे आदि जोड़कर प्रकट करते हैं । यथा—

अधिक पाँच से भयउ पचीसा ज्ञा० स्व० १९२ ।

यहाँ 'अधिक' का अर्थ अपेक्षाकृत 'अधिक' है ।

३. संख्या-वाचक शब्द

(१) *गणनात्मक*—(क) निम्नलिखित संख्याएँ ज्ञान स्वरोदय में व्यवहृत हुई हैं । कोष्ठ की संख्याओं से पद-संख्या का संकेत है । यथा—

१ एक (१२१)
२ दुइ (२०४), दोउ (३०१)
३ तीनि (१२२), त्रि (२०५)
४ चारि (२)
५ पांच (६६)
७ सात (२९७)
८ आठ (२५४)
९ नव (२९७)

१० दस (१६८)
११ एकादस (१६७)
१२ बारह (२२७)
१८ अष्टादस (३)
२० बीस (२६४)
२५ पचीस (६६)
३० तीस (१६२)
३३ तैंतिस (१६२)
८० असी (१५)
८४ चौरासी (३७५)
१०० सत (१५४)
१००० सहस्र (२६२), हजार (१५१)
१००००० लाख (१५), लच्छ (३७५)
१०००००० कोटि (१६) ।

(ख) अष्टादस, एकादस, त्रि, सत, सहस्र आदि के व्यवहार से पता चलता ह कि दरियासाहब ने तत्सम शब्दों का निर्बाध व्यवहार किया है।

(ग) कुछ संख्या-बोधक शब्द –इ–कारान्त हैं। यथा––चारि (संस्कृत–चत्वारि)।

(घ) दुई (ज्ञा० र० ६२.१२) के स्थान पर द्वि का व्यवहार बहुत ही कम किया गया है। दुइ के दो रूप हैं––दुइ और दोउ।

(२) क्रमसूचक––(क) क्रमसूचक संख्याओं के भी दो लिंग हैं। यथा––

पु० दुजा नाम नहिं कोई धरई ज्ञा० स्व० १२८।
स्त्री० तीजी तिथि लगि चंद प्रकासा ज्ञा० स्व० २०६।

इ का व्यवहार ध्वनि की अनुरूपता के कारण भी हो सकता।

(ख) निम्नलिखित क्रमसूचक संख्याएँ ज्ञा० स्व० में आती हैं :—

पहिलै : प्रथम
दुजा : (दूजा)
तीजि

एकादस : मन एकादस सभ कर राजा ज्ञा० स्व० १६७।

पहिलै और प्रथम का व्यवहार प्रायः क्रियाविशेषण जैसा किया गया है। यथा–

पहिलै गुर सक्कर हुआ ज्ञा० स्व० १४८।
प्रथम प्रेम मगु मोहकम पाऊं ज्ञा० स्व० ३५८।

(ग) दूज (–इ), तीज (–इ) आदि से जब महीने की तिथि का बोध होता है, तब इनका व्यवहार विशेष्यवत् किया गया है। यथा—

परिवा *दूजि तीजि* लगि भानू ज्ञा० स्व० २०५।

(३) गुणक संख्याएँ :—इनका निर्माणसंख्या-शब्दों के अन्त में गुना (पु०) लगा कर किया जाता है। यथा—

दुगुना— ताकर दुगुना सो सुर बहई ज्ञा० स्व० २५५।

(४) निश्चयात्मक और समावेशात्मक संख्याएँ :—निश्चयात्मक और समावेशात्मक संख्याओं का जिस प्रकार 'ज्ञान-स्वरोदय' में व्यवहार किया गया है, उससे निम्नलिखित नियम प्रकट होते हैं—

(क) यदि संख्या –अ–कारान्त हो तो –अ को बदल कर—

अहु : पांचहु ज्ञा० स्व० ३३८।
इउ : चारिउ ज्ञा० स्व० २४२।
ओ : चारो ज्ञा० स्व० ३१७ बनाते ह।

(ख) यदि संख्या के अन्त में –उ, –ऊ, या –ओ हों तो निम्नलिखित प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं—

–ई : दोई ज्ञा० स्व० २२९।
–उ : दोउ ज्ञा० स्व० ३२४।
–नहू : दुनहू ,, ,, १५४।
–नो : दुनो ,, ,, ३६६, दुनो—ज्ञा० स्व १६९।
–वो : दुवो ,, ,, २८६, ३०५।

बीज एक से भयउ *हजारा* (ज्ञा० स्व० १५१)

में हजारा के अन्तिम –आ से अनिश्चित समूह का बोध होता है।

नाम भानु सत कोटि प्रगासा (ज्ञा० स्व० १६)

में सतकोटि से भी वैसे ही अनिश्चित समूह का बोध होता है।

४. सर्वनाम

(१) कारक—

(क) सर्वनाम के भी दो रूप हैं—ऋजु और अनृजु। ऋजु सर्वनाम का व्यवहार, विना विभक्ति के, कर्ता या निर्जीव कर्म के रूप में किया गया है। निर्जीव कर्म स्वभावतः अन्य पुरुष में व्यवहृत हुआ है। यथा—

ऋजु कर्ता— कहै जो वह मैं हौं भगवाना ज्ञा० स्व० १२४।

ऋजु कर्म-- सो जानै एह अवरि न कोई --ज्ञा० स्व० १३२।

वह और मै प्रथम पंक्ति में तथा एह दूसरी पंक्ति में।

(ख) अनृजु सर्वनाम का प्रयोग अनेक कारकों का बोध कराने के लिए या तो विभक्ति के साथ, अथवा बिना विभक्ति के, हुआ है। नीचे के उदाहरणों में अनृजु रूपों से अलग करके विभक्ति को कोष्ठक में लिखा गया है।

	पृथग्विभक्तिरहित	पृथग्विभक्तिसहित
कर्ता--	उन्हँ (बहु०)	——
कर्म--	तेहि	जा कहँ
करण--		जा ते
सम्प्रदान--	जेहि	ता के
सम्प्रदान / सम्बन्ध	--जेहि	——
अपादान--	....	ताहि सै
सम्बन्ध--	तेहि	ता कर
अधिकरण--		ता मौं [८]

(ग) यदि सर्वनाम के उत्तम या मध्यम पुरुष के एकवचन और बहुवचन में भिन्न-भिन्न रूप होते हैं, तो प्रायः एकवचनवाले रूप के स्थान में बहुवचनवाला रूप ही व्यवहार में आया है। यथा--

हम तुमहिं बतावा --ज्ञा० स्व० ६५ (मैंने तुम्हे बताया)।

(घ) अन्य पुरुष में बहुवचन का व्यवहार प्रायः सम्मानसूचन के लिए हुआ है (गौरवे बहुवचनम्)। यथा--

तेहि कुल जन्म लीन्ह उन्हँ आई --ज्ञा० स्व० ४४

(ङ) सम्बन्ध कारक में सर्वनाम का विशेषण-जैसा स्त्रीलिंग या पुंलिंग रूप होता है। यथा--

मेरी (स्त्री०) उमत करै हकतायत --ज्ञा० स्व० ९७।

सो साहब भौ सतगुरु *मेरा* (पु०) --ज्ञा० स्व० १८।

(२) *पुरुषवाचक सर्वनाम*--

उत्तम पुरुष

एकवचन	बहुवचन
कर्ता--मैं, मम	हम

८. ये सभी उदाहरण 'ज्ञानस्वरोदय' से लिये गये हैं।

	एकवचन	बहुवचन
कर्म—	मोहिं	——
करण—	मोसे	——
सम्प्रदान—	मोहिं	——
सम्प्रदान, सम्बन्ध	—मोहिं	——
अपादान—	——	——
संबन्ध—	मेरा, मेरी, मोरा, मम	हमारा, हमारे[9]

मम का व्यवहार कर्त्ता और सम्बन्ध दोनों कारकों में किया गया है। यथा—

ज्ञान सरौदे ग्रन्थ *मम* (कर्त्ता) तबहि अरम्भन कीन्हँ —ज्ञा० स्व० ११।

या

सो *मम* (कर्त्ता) कहेवँ बिबेक बिचारी —ज्ञा० दी० २.८।

साहब *मम* (संबंध) अन्तरगत जानी —ज्ञा० स्व० ५।[10]

मध्यम पुरुष

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	तै, तैं (ते)	तुम, तुम्हँ
कर्म—	तै, तैं	तुमहिं
करण—	——	——
सम्प्रदान—	——	——
सम्प्रदान, संबन्ध	—तोहि	——
संबन्ध—	तौ (सं० तव); तेरा, तेरे, तोरा, तोहि	तुम्हार, तुम्हारा
अधिकरण—	तोहि में	

अन्य पुरुष

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	वह, बोए	उन्हँ

९. ये उदाहरण 'ज्ञानस्वरोदय' से लिये गये हैं।

१०. **मम** और **मैं** के सम्बन्ध में यह गड़बड़ी सम्भवतः संस्कृत व्याकरण का अनुगमन न होने के कारण ही जान पड़ता है; अथवा उस समय की प्रचलित धारा भी ऐसी हो सकती है।

(३) *निर्देशात्मक सर्वनाम* (*Demonstrative Pronoun*)—

ये दो प्रकार के हैं—दूर के और निकट के।

(क) दूर-निर्देशक सर्वनामों के रूप उपर्युक्त अन्य पुरुष के रूपों के समान होते हैं।

सो और तौन प्रायः सापेक्ष-सम्बन्धसूचक सर्वनाम हैं; किन्तु इनका प्रयोग सापेक्ष-सम्बन्ध (correlation) का प्रसंग न रहने पर भी, सामान्य निर्देशक सर्वनाम-जैसा किया गया है। यथा—

सभ घट एकै *सोय* —ज्ञा० स्व० ३०।

तैं पंछी *तेहि* अजर अमाना —ज्ञा० स्व० ३३१।

इन पंक्तियों में सोय और तेहि से सापेक्ष संबन्ध का नहीं, अपितु अतुलनीयता अथवा एकमात्रता का बोध होता है।

(ख) निकट-निर्देशक सर्वनाम—

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	एह, यह	इन्हँ
कर्म—	एह, यह	

इनके अनृजु रूप एहि और एही से बल अथवा ऐकान्तिकता का बोध होता है। यथा—

एहि दोजक की आँच —ज्ञा० स्व० ३९।

यहाँ एहि=यही (खड़ी बोली)।

कभी-कभी एहि के बाद विभक्ति भी प्रयुक्त हुई है। यथा—

एहि में (अवि० का०) खाक *एहि मैं* सोना —ज्ञा० स्व० ३२४।

(४) *सापेक्ष सम्बन्धसूचक* (*Correlative*) *सर्वनाम*—

जो, जौन, सो, तौन, बिना विभक्ति के, अथवा विभक्ति-सहित, अपने ऋजु और अनृजु रूपों में सापेक्ष-सम्बन्धसूचक सर्वनाम के अन्तर्गत आते हैं। परन्तु, जैसा दूर-निर्देशक सर्वनाम के प्रसंग में कहा गया है, इन्हें भी स्वतंत्र निर्देशक की भाँति प्रयुक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त अधिकांशतः दो अपेक्षासूचक सर्वनामों में से एक ही को व्यक्त रूप दिया गया है; दूसरे को अवगत कर लेना होता है। यथा—

यार मिलन की *जो* फुलवारी

दरसै देखहु द्रिष्टि पसारी —ज्ञा० स्व० ८२।

इस पद में जो प्रकट है; परन्तु इसका दूसरा सम्बद्ध पद सो अवगत है।

(ख) 'ज्ञान-स्वरोदय' में मिलनेवाले विभक्तिहीन या विभक्तिसंयुत रूपः—

(१) जो, जौन

	विभक्तिहीन	विभक्तिसंयुत
कर्त्ता —	जो, जौन, जवना (एकवचन) जिन्हं, जिन्हिं (बहुवचन)	———
कर्म———		जा कहँ
करण———		जाते
सम्प्रदान संबंध	जाहि, जेहि	———
अपादान	——	———
संबन्ध	जेहि	जा कर
अधिकरण	———	———

जब जेहि विशेषण की भाँति प्रयुक्त हुआ है, तो वह अपने विशेष्य की विभक्ति को आप ग्रहण कर लेता है। यथा—

जेहि बारी = जिस बारी (फुलवारी) में —ज्ञा० स्व० ७३।

जेहि बिधि = जिस विधि (प्रकार) से —ज्ञा० स्व० १५८।

(२) सो, तौन

	विभक्तिहीन	विभक्तिसंयुत
कर्त्ता—	सो, सोइ, सोई, सोय	—
कर्म —	तेहि	—
करण—	—	—
सम्प्रदान—	तेहि	—
संप्रदान संबन्ध	—	—
अपादान—	—	ताहि सै
संबन्ध —	तेहि	ताकर, ताके, तासु कर, ताहु कर, तेहि केरा
अधिकरण—	—	ताम, तामौं

सोइ और सोई का व्यवहार प्रायः बल देने के अर्थ में किया गया है। यथा—

सोइ देखावहिं सकल ठेकाना —ज्ञा० स्व० ३५१।
(वे ही सभी सत्य दिखाते हैं)

तेहि और ताहि जब विशेषण जैसे व्यवहृत होते हैं तो या तो वे स्वयं विभक्ति ग्रहण कर लेते हैं अथवा अपने विशेष्य की विभक्ति द्वारा नियंत्रित होते हैं। यथा—

(१) *तेहि* कुल (अधि०) जन्म लीन्हँ उन्हँ आई —ज्ञा० स्व० ४५।
तेहि कुल=उस कुल में।

(२) *ताहि* बाटिका कर तैं माली —ज्ञा० स्व० ७७।

यहाँ ताहि अपने अनुगामी बाटिका की 'कर' द्वारा नियंत्रित है।

(५) *प्रश्नबोधक सर्वनाम* —

(क) 'ज्ञान-स्वरोदय' में निम्नोक्त प्रश्नबोधक सर्वनाम पाये जाते हैं—

	विभक्तिहीन	विभक्तिसंयुत
कर्त्ता–	कवन, को	—
कर्म–	का	—
सम्बन्ध——		का, कर

विशेषण के रूप में केहि का व्यवहार देखिए। यथा—

केहि कारन —ज्ञा० स्व० २८४।

यहाँ कारण की विभक्ति से प्रयुक्त नहीं है, और इसका भाव केहि में ही अन्तर्निष्ट है।

(६) *अनिश्चयबोधक सर्वनाम*—

(क) 'ज्ञान-स्वरोदय' म निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं और ये प्रश्नबोधक सर्वनाम के आधार पर अवस्थित ह।

	विभक्तिहीन	विभक्तिसंयुत
कर्त्ता–	को, कोए, कोइ, कोई, कोउ, कोय, कवन, केहु, काहु	—
संबंध / सम्प्रदान	–काहु	—
अपादान–	—	काहु से
संबंध–	—	काहुकी

किछु और कछु से प्रायः निर्जीव का बोध होता है। यथा—

किछु दिन बीतै सो अँकुराना —ज्ञा० स्व० १५०।

जा प्रसंग कछु पूछैं कोई —ज्ञा० स्व० २३५।

(ख) कुछ अनिश्चयबोधक सर्वनामों के संयुक्त रूप भी हैं; संयुक्त रूपों के प्रथम पद अवरि, जो, सभ आदि शब्द होते हैं। यथा—

अवरि न कोई —ज्ञा० स्व० १२२।

जो कोइ —ज्ञा० स्व० ३२६।

सभ केहु —ज्ञा० स्व० ३०९।

(ग) अनिश्चयबोधक सर्वनाम विशेषणवत् भी व्यवहृत किये गये हैं। यथा—

कवनो जल —ज्ञा० स्व० १२८।

(७) *प्रतिवर्त्तक (Reflex) सर्वनाम*—

(क) 'ज्ञान-स्वरोदय' में व्यवहृत आप और निज (निजु) ये ही दो प्रतिवर्त्तक सर्वनाम हैं।

(ख) आप के निम्नलिखित रूप आये हैं—

	विभक्तिहीन	विभक्तिसंयुत
कर्त्ता—	आपु	—
कर्म—	आपु	—
करण—	अपने, आपुहिं	—
सम्बन्ध—	अपने, अपाना, अपाने अपने, आपुन	—
अधिकरण—	—	आपुमें

अपाने मुख (ज्ञा० स्व० ३३४)—जैसे प्रयोगों में मुख के बाद की मे करण विभक्ति अवगत है, प्रकट नहीं।

(ग) निज और निजु का व्यवहार विशेषणवत् हुआ है। यथा—

निज कर बिसमिल कीन्हँ न भाई —ज्ञा० स्व० ४४।

(८) *सार्वनामिक विशेषण*—

(क) उत्तम और मध्यम पुरुष के सर्वनामों को छोड़ कर उपर्युक्त सभी सर्वनामों का प्रयोग विशेषणवत् किया गया है।

(ख) सर्वनामों से कुछ अन्य विशेषण भी बने हैं जो ऊपर के विवरण में सम्मिलित नहीं हैं। वे निम्नलिखित शीर्षकों में आते हैं—

(१) गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण यथा—अस, ऐसी आदि।
(२) परिमाणवाचक ,, ,, अतना, कत,
(३) संख्यावाचक ,, ,, केतनो आदि।

(ग) सार्वनामिक विशेषणों का लिंग उनके विशेष्य के अनुसार होता है। यथा—

ऐसी (स्त्री०) काली —ज्ञा० स्व० १३५।

परन्तु अधिकांशतः उनका प्रयोग दोनों लिंगों में किया गया है। यथा—

कत मीठा *कत* खटा कसेला —ज्ञा० स्व० ३६६।

यहाँ मीठा को मीठी में बदलने पर भी कत अपरिवर्तित ही रहेगा। यही स्थिति जस, तस आदि की भी है।

५. क्रियाएँ

(१) धातु—

(क) धातु (१) व्यंजनान्त या (२) स्वरान्त हैं; और वे अपनी क्रियार्थक संज्ञा (Infinitive) में से ना हटाकर बनाये जाते हैं।

(१) स्वरान्त धातु—

√सो — सोना से।
√पी — पीना से।
√जा — जाना से आदि।

(२) व्यंजनान्त धातु—

√कर् — करना से।
√मर् — मरना से।

(ख) बहुत से धातु संज्ञाओं के क्रियार्थक रूपों से बने हैं और उनका प्रयोग दरियासाहब ने किया है। यथा—

√अंकुर् — अँकुराना से : किछु दिन बीते सो *अँकुराना* —ज्ञा० स्व० १५०।
√लोभ् — लोभना से : आनन्द मंगल ललित *लोभेऊ* —ज्ञा० दी० १.२।

(ग) बहुत से धातु विशेषण से लिये गये हैं। यथा—

अधिक से √अधिक् : जस जस चंद उदय *अधिकाना* —ज्ञा० स्व० २६३।
नियर से √नियर् : तस तस काल निकट *नियराना* —ज्ञा० स्व० २६३।

(२) कृदन्त—

(अ) वर्तमानसूचक कृदन्तः—

(क) वर्तमान कृदन्तों के अन्त में प्रायः निम्नलिखित प्रत्यय होते हैं—

(१) –अत—व्यंजनान्त धातुओं में; यथा—

ढूँढ़त—ज्ञा० स्व० ३२७।

हुलसत—स० रा० ६७०।

(२) –त और – वत—स्वरान्त धातुओं में; यथा—

आवत —ज्ञा० स्व० २६६।

जात —ज्ञा० स्व० २६६।

(ख)—ता वाले अनेक रूप खड़ी बोली की भाँति पाये जाते हैं (—अता, बहुवचन—अते)—

डरता	ज्ञा० स्व० ५७।
बोलता	स० रा० ५४३।
लड़ते	स० रा० ६८१।

(ग) निम्नलिखित प्रत्ययों से जोर देने का भाव प्रकट होता है—

—अहि (—अहिं) : जियतहिं—ज्ञा० स्व० १७५।

—ऐ : बहतै —ज्ञा० स्व० २५०।

(घ) नियमतः वर्तमान कृदन्त बिना किसी सहायक क्रिया के स्वतन्त्र क्रिया के रूप में व्यवहृत नहीं होता है। किन्तु 'शब्द' में एक प्रकार के मुहावरे हैं जिनसे कृदन्त (शतृ, शानच्) के स्वतन्त्र क्रिया-जैसा प्रयोग होने का बोध होता है। इस प्रकार के प्रयोगों पर पंजाबी भाषा का प्रभाव लक्षित है। यथा—

इस झूलना में दिल झूलदा रे—श० २.२।

(इस झूले में दिल झूलता है)

झूलदा के समान अन्य रूप चाहदा, जावंदा, आवंदा, पहचांदा आदि हैं।

(आ) अतीतसूचक कृदन्तः—

(क) अतीतसूचक कृदन्तों के अन्त में निम्नलिखित प्रत्यय होते हैं—

(१) अवधी—

—आ : संवारा —ज्ञा० स्व० २१५।

—ना (आना) : लपटाना—ज्ञा० दी० १३.२१।

(२) खड़ी बोली—

—ल (—अल,—इल,—इलि)

बरल —ज्ञा० स्व० १३३।

भजल —ज्ञा० र० ८७,११।
(बिना) बोलावलि —ज्ञा० र० ११५.२।

चलो मरोरे हाथ—(स० रा० ७०१) में—ए आ (मरोरा) का बहुवचन रूप है। कभी-कभी –ऐ लगाकर भी बहुवचन बनाया जाता है। यथा—जुझै (स० रा० १०२३)।

(ख) कभी-कभी कवि ने क्तान्त कृदन्त भी संस्कृत से ले लिये हैं और उनपर अपनी भाषा का रंग चढ़ाया है। यथा—

थकित—ज्ञा० र० १२२.४ (√स्थग्—क्त),
जाग्रित—स० रा०—१७०) (√जागृ—क्त)

(ग) पुनरावर्त्तन (Frequency) या सन्तनन (Continuity) के भाव में कृदन्त को दुहराया भी गया है। यथा—

चलल चलल माता पहँ अयऊ—ज्ञा० दी० ६०.५।

(घ) यत्रतत्र अतीतसूचक कृदन्त क्रिया का रूप धारण कर लेते हैं। यथा—

बाघिनि एक तिनि डँवरु *बियानी* (भूतकाल)—श० ५.१।
जाए *बिकाने* (भूतकाल) हाट महँ—स० रा० ६३२।

३. काल—

(१) वर्तमान काल—

(क) निर्देशक (Indicative)—उत्तम पुरुष।

(१) विभक्ति—

एकवचन	बहुवचन
—औं	—

उदाहरण—

(२) कहौं —ज्ञा० स्व० १०७।
सकौं —ज्ञा० स्व० १३।

(३) वर्तमान कृदन्त के बाद उत्तमपुरुष एकवचन का √हौं बहुधा वर्तमान निर्देशक (Present Indicative) का बोध करता है। यथा—कहत हौं।

(४) सहायक क्रिया √ब, के उत्तम पुरुष का एक विरल प्रयोग निम्नलिखित पंक्ति में पाया जाता है—

हमहू सरकार के चाकर *बाटी* —श० १.१०६।

बाटी का उत्तमपुरुष बहुवचन में शुद्ध रूप बाटीं होना चाहिए। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने पूर्व की पंक्तियों में आये हुए काटी और पाटी आदि से तुक मिलाने के लिए बाटी रहने दिया।

(ख) निर्देशक—मध्यम पुरुष—

(१) प्रत्यय—

एकवचन	बहुवचन
—सि	—हु—हू
—असि	—उ—अहु—अहू ।

(२) उदाहरण—

चाहसि	ज्ञा० स्व० ६७।
चीन्हु	„ „ २१।
खाहू	„ „ २१।
रहहु	„ „ ३०३।
चहहू	„ „ ५६।

मध्यम पुरुष सर्वनाम प्रायः अवगत रहता है। यथा—

का मद माया बिसै रस खाहू —ज्ञा० स्व० २१।

(३) वर्त्तमान कृदन्त के बाद मध्यम पुरुष के एकवचन का √हो और √अह् (सं० अस्) लगाने से वर्त्तमान निर्देशक का प्रचलित रूप होता है। यथा—

कहत हौ (पु०) जानति हौ (स्त्री०)

—ज्ञा० र० ८७.१।

(४) सहायक क्रिया के मध्यम पुरुष के रूप जो 'ज्ञान-स्वरोदय' में मिलते है, वे ये हैं—
—अहसि, —अहहु, —हौ आदि।

(५) सहायक क्रिया का व्यवहार बहुधा स्वतंत्र एवं पूर्ण क्रिया के रूप में ही किया गया है। यथा—

तैं तेहि बन कर अहसि पखेरू —ज्ञा० स्व० ७८।

(ग) निर्देशक—अन्य पुरुष—

(१) प्रत्यय—

एकवचन	बहुवचन
—ए, —इ (—ई), —हि	—हिं (—हीं)

(२) उदाहरण—

एकवचन	बहुवचन
होए—स० रा० ६०२।	जाहीं ज्ञा० स्व० ३१०।
आई—ज्ञा० स्व० १०।	हैं „ „ २२१।
लेहि— „ „ १०।	करहिं „ „ ६।
जाने—ज्ञा० स्व० १२९।	रहहिं—ज्ञा० स्व० ३०१।
बरै —„ „ २६।	

लहई—,, ,, २२२ ।
गँवाई—,, ,, ३४७ ।

—उकारान्त प्रत्यय का बहुत कम प्रयोग हुआ है । यथा—

काया सुखी तन *ब्यापु* न रोगा—ज्ञा० स्व० २६७ ।

(३) वर्तमान कृदन्त के बाद √हो और √अह् के अन्य पुरुष एकवचन के प्रयोग से वर्त्तमान निर्देशक का भी बोध कराया गया है। 'ज्ञान-स्वरोदय' में √हो और √अह् के निम्न-लिखित रूप मिलते हैं—

अहै
अहई
है
हैं (बहुवचन)
हहिं (,,)
होई
होए (—य)

(४) कभी-कभी वर्त्तमान कृदन्त से ही पूर्ण क्रिया का बोध होता है । यथा—

आपु न चीन्है ढूँढ़त घासा —ज्ञा० स्व० ३७८ ।
यहाँ ढूँढ़त=खोजता है ।

(५) अन्य पुरुष में सहायक क्रिया बहुधा पूर्ण क्रिया के रूप म व्यवहृत की गई है । यथा—

जैसे म्रिग मद है म्रिग पासा —ज्ञा० स्व० ३७८ ।
यहाँ है=रहता है ।

(घ) विधेयात्मक—

पुरातन भारतीय आर्यभाषा का इच्छार्थक (Optative) भी इसी विधेयात्मक (Imperative) में अन्तर्विष्ट है ।

(१) प्रत्यय—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन	आदरसूचक
उत्तम—	—उँ,—ऊँ —ओं, (—वों)	—	—
मध्यम—	—अ,		
	—उ,—ऊ	—ओ, —औ	—इए, —इए
	—ए	—हु, —अहु	—ईजै
	—सि, —असि	—हू, —अहू	—ईजिए

अन्य——-ए (—य),—ई (—अई) } —एँ (ए-ह्रस्व)।
—अइ

(२) उदाहरण—

उत्तम पुरुष—करूँ —ज्ञा० दी० ६६.२४।

मिलावों —ज्ञा० स्व० ३५।

मध्यम पुरुष—एकवचन	बहुवचन	आदरसूचक
नास—ज्ञा० स्व० ३६१	गहो—ज्ञा० स्व० ६६	बिचारिए—स०रा०५४३।
करु—ज्ञा० स्व० २४	पहचानौ—ज्ञा०स्व०३२१	देखिए—ज्ञा० स्व० २०।
पिबै „ „ ३२	गहहु— „ „ ६८	पीजै—ज्ञा० स्व० ४.१।
कहसि—ज्ञा० र० ५३.७	होहु— „ „ ८६	कीजिए—ज्ञा० स्व० ८५।
	पतियाहू—„ „ १०७।	
	परिहरहू—„ „ ५६।	

—सि (—असि) और—ऐ प्रत्ययान्त रूप बहुत कम व्यवहृत हुए हैं।

—अ-कारान्त को इस धारणा के आधार पर बहुवचन माना जा सकता है कि नास, नासो का लघुतर एवं सुगमतर रूप है। यथा अन्य उदाहरण—

फैलाओ (दीर्घ ओ) <फैलाओ (एकमात्रिक ओ) <फैलाव (व्) (अल्पमात्रिक—अ)।

—ओ और —औ वाले रूप प्रायः खड़ीबोली से प्रभावित है।

अन्य पुरुष—एकवचन	बहुवचन
बुड़े गिरे उतराय—स० रा० ५२०	कहैं—स० रा० ५६६।
आई—ज्ञा० स्व० १५२।	
पराई—ज्ञा० स्व० १२५।	
चलै—ज्ञा० स्व० २३२।	

होखै—जैसे रूपों (ज्ञा० स्व० ८४७) पर भोजपुरी का प्रभाव स्पष्ट है।

(ङ) वर्तमान योजक (Conjunctive) अथवा आपेक्षिक (Conditional)—

ऐसी स्थिति में भी विधेयात्मक रूपों का ही प्रयोग होता है। इच्छा या शर्त जो, जौ आदि योजक कृदन्त द्वारा प्रकट कर दी जाती है।

(२) *भविष्यत् काल*—

(क) निर्देशात्मक—

(१) प्रत्यय—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु०	—इन्हौं (—इहौं)	—ब (—अब, —एब, —इब, —इबि)
मध्यम पु०	—बे, —बै, —एगा	—इहो (—इहौ) —अब, —अबहु

—हुगे (—अहुगे, —अहुगै)

अन्य पु०—इहि, —इही, इहै (—इहे) —इहें (—ईहें), —इहैं

—एगा (—एगा : दीर्घ ए) —अँहिगे

(ऐगो—स्त्री०)

—नी (स्त्री०)

(२) उदाहरण—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०—	मनिहौं—स० रा० ६६७ ।	देब—ज्ञा० र० २१.१२ ।
	सुनैहों—ज्ञा० र० ६९.३ ।	चलब—„ „ ३१.८ ।
		छोड़ाइब—ज्ञा० दी० ७७.४ ।
		लेआइबि—ज्ञा० र० ५४.६ ।
म० पु०—	चलबे—ज्ञा० र० ३०.६ ।	होइहौ—ज्ञा० दी० ६३.६ ।
	जैबै—ज्ञा० दी० ८२.७ ।	भगिहौ—स० रा० ८४ ।
	पछताएगा—स० रा० ९१३ ।	कहब—ज्ञा० र० ४५.२५ ।
		करबहु—ज्ञा० र० ४३.४ ।
		खाहुगे—स० रा० ६९१ ।
		मारहुगे—ज्ञा० ३१.१६ ।
		लरहुगै—स० रा० ६९३ ।

—अब वाले मध्यमपुरुष बहुवचन बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं।

अन्य पु०—	मिलिहि—ज्ञा० र० ४५.२६ ।	दिहैं—स० रा० ८४६ ।
	टुटिहे—स० रा० ६४४ ।	जुझिहैं—स० रा० ६७८ ।
	बिगरिहे—„ „ ६४६ ।	मरहिंगे— स० रा० ७१२ ।
	टुटेगा „ „ ८४३ ।	
	रहैंगी „ „ ७१२ ।	

—गा, —गे, —गै, —गी प्रत्ययान्त रूप खड़ीबोली से प्रभावित हैं।

(२) सहायक क्रिया के भविष्यत्कालिक रूप √हो के पहले यदि वर्त्तमान कृदन्त हो तो उसको भविष्यत् में गिना जायगा।

(३) भविष्यत्काल में भी सहायक क्रिया से पूर्ण क्रिया का कार्य लिया जाता है। यथा—

होएगा—स० रा० १०२७ ।

(४) —नी (स्त्री०) और —ना (पु०) के उदाहरण बहुत कम हैं। यथा—

माया काहु की भई ना होनी

यहाँ होनी=होगी ।

(ख) विधेयात्मक

(१) "विधेयात्मक भविष्य एक विचित्र काल है जो विधेयात्मक होते हुए भी भविष्यत् काल है ।"[११]

(२) यद्यपि दरिया साहब ने वर्त्तमान विधेयात्मक और भविष्यत् विधेयात्मक के रूप में कोई अन्तर नहीं रखा है, फिर भी उन्होंने एक ही प्रत्यय का इस प्रकार प्रयोग किया है जिससे यथावसर दोनों प्रकार के भावों की व्यंजना हो। आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी में 'तुम इस काम को करना' भविष्यद् विधेयात्मक का उदाहरण है । वर्त्तमान विधेयात्मक होगा 'तुम इस काम को करो' । दरिया साहब ने भी इस भविष्यत् विधेयात्मक का निम्नलिखित प्रकार से प्रयोग किया है--

जीवत ही मुरदा होए रहना ।

(३) कभी-कभी भविष्यत् विधेयात्मक का भाव ब-- प्रत्यय से भी प्रकट होता है । यथा--

लखन से कहब अशीष हमारा --ज्ञा० र० ४५.२५ ।

(कृपया लखन से मेरा आशीर्वाद कहना) ।

(३) भूत काल--

(क) निर्देशक : उत्तम पुरुष--

(१) प्रत्यय--

एकवचन	बहुवचन
--ईन्हँ (--ईन्हाँ)	--ईन्हँ (--ईन्हाँ)
--एऔं (एवं)	

(२) उदाहरण--

एकवचन--ग्यांनसरोदै ग्रन्थ मम (मैं)

तबहिं अरम्भन कीन्हँ--ज्ञा० स्व० ११ ।

सो मम (मैं) कहेवँ बिबेक बिचारी--ज्ञा० दी० २.८ ।

बहुवचन--यह जहान पैदा हम कीन्हाँ--ज्ञा० स्व० ६५ ।

---

११. डॉ० बाबूराम सक्सेना के अंग्रेजी के निबंध 'तुलसीदास की रामायण में क्रिया' से उद्धृत ।

(ख) निर्देशक : मध्यम पुरुष—

(१) प्रत्यय—

एकवचन	बहुवचन
—आ, —इया	—एव
—इस	—एहु

(२) उदाहरण—

एकवचन	बहुवचन
बिसारा —ज्ञा० स्व० ८० ।	बसेव स० रा० ९७० । (—ब्रजभाषा—बस्यो) ।
धरिया —ज्ञा० दी० ६७.०	परेहु—ज्ञा० स्व० ९० ।
समुझिस—ज्ञा० दी० ६६.१७	

—इस प्रत्यय सदा असम्मानसूचक नहीं होता। यथा—

तुहि गुन *समुझिस* नाथ —ज्ञा० दी० ६६.१७ ।

यह वाक्य अपनेसे बड़े को सम्बोधन कर लिखा गया है ।

(ग) निर्देशक : अन्य पुरुष—

(१) प्रत्यय—

एकवचन	बहुवचन
—आ, —वा, —या, —इया	—आ, —इया
—उ, —औ, —इयो, —अयऊ (ऐऊ)	—इन्हँ, —ईन्हौं
—इयऊ	
—एउ, —एव, —एऊ, —अएऊ	—ईन्हों, —इन्हीं
—इ, —ई, —आई	—ए, —ऐ
—सि (—असि, —इसि)	
—अल (—इल), —अलि (—इलि) स्त्री० में	—अले (ऐले)

(२) उदाहरण—

एकवचन	बहुवचन
लिखा—ज्ञा० स्व० ९७ ।	जानिया (तीनि लोक हम जानिया)। —ज्ञा० दी० ६७.० ।
पावा—„ „ १५ ।	
भया—„ „ २९९ ।	कीन्हँ—स० रा० ६१० ।
लाइया—स० रा० ६३६।	चीन्हाँ—स० रा० ६१० ।
रहु—अ० सा० १७.६ ।	कीन्हों—स० रा० ६०९ ।
गौ (गया)—ज्ञा०स्व० १८ ।	लीन्हौं—स० रा० ६३९ ।

कियो	—स० रा० ५३६ ।	मुए (गलि मुए)	—स० रा० ५८२ ।
पयऊ	—ज्ञा० स्व० १७८ ।	भए	—स० रा० ५७६ ।
कियऊ	—,, ,, ४३ ।	भइले (तब नहिं भइले दसो अवतारा)	—ज्ञा० र० ७.६ ।
सोभेऊ	—,, ,, ३०४ ।		
हँसेव	—स० रा० ६०४ ।		
लहेऊ	—ज्ञा० स्व० ६० ।		

बसएऊ (प्रेरणार्थक) —ज्ञा० दी० १५५.८ ।

जीति (जमनें जीति) —स० रा० ६२३ ।

भई —ज्ञा० स्व० २७० ।

समुझाई (प्रेरणार्थक) —ज्ञा० स्व० ३७४

पाइसि —ज्ञा० स्व० ४८.१७ ।

रहलि (स्त्री०) —ज्ञा० र० ७.७ (तब नहिं गंगा रहलि बेचारी) ।

(क) —आ और —इया प्रत्ययान्त पदों में विशुद्ध खड़ी बोली के रूप प्रचुर मात्रा में हैं। वे यत्रतत्र कर्त्ता के 'ने' चिह्न के साथ भी पाये जाते हैं। यथा—

अलह ने खलक पैदा *किया* । श० ३.१ ।

(ख) –ई और –आई प्रत्ययान्त पद प्रायः स्त्रीलिंग हैं; पर इनका पुंलिंगों में प्रयोग भी कम नहीं है। निम्नलिखित पंक्ति में –ई–कारान्त दो क्रियाएँ हैं, जिनमें एक तो पुंलिंग कर्म के अनुसार और दूसरी स्त्रीलिंग कर्म के अनुसार प्रयुक्त हुई हैं। यथा—

नाम उचारन जीभ (स्त्री०) *सँवारी*
सुनन नाम गुन स्रवन (पुं०) *सुधारी* । —ज्ञा० स्व० ३३७ ।

यहाँ सँवारी जीभ (स्त्री०) के अनुकूल है, और सुधारी स्रवन (पुं०) के अनुकूल। -ई- प्रत्यय के स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होने का एक दूसरा शुद्ध रूप नीचे है—

नाव *फुटी* पतवार *टुटी* —स० रा० ६३६ ।

(ग) √हो (सं० अस् और भू) के निम्नलिखित रूप स्वतंत्ररूप में व्यवहृत पाये जाते हैं—

भो, भौ, भया, भई, (स्त्री०), भैऊ, भयऊ
हुआ, होते (खड़ी बोली में थे)। यथा—

तब नहिं *होते* पवन और पानी । —ज्ञा० र० ७.३ ।

(घ) आसन्न भूत—दरिया साहब ने इस काल का सामान्यरूप से प्रयोग नहीं किया है; पर कभी-कभी इसके अंशात्मक भाव को √हो के वर्त्तमान काल के साथ कृदन्त का प्रयोग करके प्रकट किया है। यथा—

घने जुझै हैं खेत (अनेकों ने युद्ध-क्षेत्र में रण किया है) — स० रा० १०२१

(४) कर्मवाच्य—

(क) सकर्मक क्रियाओं से बने हुए भूत कृदन्त का प्रायः कर्मवाच्य में ही व्यवहार किया गया है। यथा—

चंदा के दिन चार बखानी —ज्ञा० स्व० २०८।

(चार दिन चांद के वर्णित ह)।

(ख) कभी-कभी –ओ और –इये (–ईजिये) वाले रूपों का प्रयोग कर्मवाच्य अथवा वाच्यहीन के रूप में वर्त्तमान या विधेयात्मक कालों में किया गया है। यथा—

(१) उहां से कोउ नहिं आइया, जासों पुछो संदेस —स०रा० ५८२।

यहाँ पुछो=पूछा जाय।

(२) जा सुमिरे सुख पाइये। —स०रा० ६४२।

यहाँ पाइये=पाया जाय।

खुशी तुम्हारी चाहिये। —स० रा० ८५४।

यहाँ चाहिये=आवश्यक अथवा अपेक्ष्य है।

(ग) कुछ धातु ऐसे हैं जो तात्पर्य में कर्मवाच्य, पर व्यवहार में कर्तृवाच्य हैं। यथा—

सूझत (दिखाई देता है) —ज्ञा० स्व० १३९।

नसाई (नष्ट होता है) —ज्ञा० स्व० २६८ आदि।

(घ) अर्थप्रकाशक (*Periphrastic*) कर्मवाच्य क्रिया के –इ और –ई कारान्त रूप के साथ –√आ, –√जा और –√पर के रूपों को संयुक्त किया जाता है। यथा—

सिकिल बनि आई (बन जाती है) —ज्ञा० स्व० १५२।

छुटि (छुटी) जाय (छुट जाय) — ” ” ८६।

दीख ना परई (दिखाई नहीं पड़ता) — ” ” १३७।

(५) प्रेरणार्थक (*Causative*):—प्रेरणार्थक रूप का निर्माण धातु के अंतिम –आ अथवा –अ के बाद प्रायः य (–श्रुति) अथवा व (–श्रुति) लगाकर और धातु के स्वर का ह्रस्वत्व करके होता है। यथा—

खिआया (भोजन कराया) √खा —ज्ञा० र० १६.८।

जेंवावहु („ „) √जेंवना —ज्ञा० स्व० १२७.७।

नचाया (नचाया) √नाचना —ज्ञा० दी० ६.२५।

पौढयऊ (सुलाया) √पौढ़ना —ज्ञा० दी० १५५.८।

(६) *संयुक्त क्रियाएँ*—संयुक्त क्रियाओं का सामान्य प्रकार से सभी काल में प्रयोग किया गया है। प्रायः निम्नलिखित धातु संयुक्त क्रिया के अन्तिम खण्ड में प्रयुक्त हुए हैं—

√आ	: बनि आई	—ज्ञा० स्व० १५२ ।
√कर्	: करै पहिचानी	„ „ १०३ ।
√कह्	: कहेउ बखानी	„ „ २१६ ।
√चह्	: सुनन सभ चहेऊ	—ज्ञा० र० ६५.१।
√जा (गम्)	: रहि गई	—ज्ञा० स्व० ५५ ।
√डार्	: करि डारी	„ „ २२ ।
√दे	: कहि दीन्हा	„ „ ६५ ।
√पर्	: समुझि परा	„ „ २८ ।
√फिर्	: मटका फिरै	„ „ ३८० ।
√रह्	: रहहु भुलाई	„ „ ३२३ ।
√लाग्	: सिखावन लागै	—ज्ञा० र० ६४.७।
√ले	: लेहु बिचारी	„ स्व० ३०५।
√सक्	: सकौं न बरनी	„ „ १३ ।

√कर् के साथ संयुक्त क्रिया का एक रोचक व्यवहार निम्नलिखित पद-खण्ड में है—
जगबे नहिं कीया—ज्ञा० र० ६३.१६ (जागा ही नहीं)।

(७) *क्रियार्थक (Infinitive) और क्रियात्मक संज्ञा (Gerund)*—

(क) क्रियार्थक क्रिया धातु में –न, और –अन, लगा कर बनाई जाती है। यथा—

उपारन चहई —ज्ञा० र० ५३.३५।

जान चहत है —ज्ञा० स्व० ३५२।

लगा बकन —ज्ञा० र० ६७.१४।

–ए–युत अनृजु रूप भी पाये जाते हैं। यथा—

रहे देहु (रहने दो)।

(ख) धातु के साथ –न, (अन), –ना (–अना) और –ब (–अब) को जोड़कर क्रियात्मक संज्ञा बनती है। यथा—

(१) *मरना* से पहिलै मरि रहहू —ज्ञा० स्व० ११७।

(२) *कथब* कठिन करनी कठिन —ज्ञा० र० ५८.०।

—अब के रूप बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं।

—नी, (–अनि) युत स्त्रीलिंग रूप भी अपेक्षाकृत कम व्यवहृत हुए हैं। प्रायः –न (–अन) वाले रूपों से क्रिया का भाव क्षीण होकर भाववाचक संज्ञा का भाव प्रबल हो गया है। यथा—

देन *लेन* औ *भोजन* करई—ज्ञा० स्व० २१७।

—न युत क्रियात्मक संज्ञावाले (*Gerundial*) कुछ उदाहरण भी पाये जाते हैं। यथा—

दरब *होन* हित फिरहिं उदासी —ज्ञा० स्व० ५४।

(८) *निरपेक्ष* (*Absolutives*) *अथवा पूर्वकालिक क्रियाएँ* —(क) जब किसी क्रिया का धातु व्यंजनान्त होता है तब उसे निरपेक्षता अथवा पूर्णत्व प्रदान करने के लिए उसके अन्त में –इ लगाते हैं। यथा—

नेवति —ज्ञा० दी० १२७.७।
बिहँसि —ज्ञा० स्व० ५।
मारि —„ „ ८३।
संघारि —ज्ञा० र० २६.१५।

इस –इ को कभी-कभी छंद के अन्त में दीर्घ –ई भी बना दिया जाता है। यथा—

पंडित जानु ना कहै *बिचारी*—ज्ञा० स्व० ६३।

(ख) जब धातु के अन्त में स्वर हो तब –य (ए), –इ (ए) का प्रयोग अधिक उदाहरणों में पाया जाता है। यथा—

अघाय —ज्ञा० स्व० ८४।
चलाए —ज्ञा० र० १२२.३।

होए को बहुधा लघु करके ह्वै बनाते हैं। यथा—ज्ञा० स्व० ११८, ३३२ में।

(ग) उपर्युक्त (क) और (ख) में वर्णित साधारण निरपेक्ष क्रियाओं में –कै जोड़कर एक अन्य निरपेक्ष क्रिया की सृष्टि कर ली जाती है। यथा—

जानि कै —ज्ञा० ज्ञा० स्व० ११।
बिचारि कै —„ „ २८८।

—कै को कभी-कभी –के भी लिखते हैं। यथा :—

धऽ के (अर्थात धर कर) —ज्ञा० र० ४७.३।
बाँधि के —ज्ञा० दी० ६.२०।
वारि के —ज्ञा० स्व० ३४३।

(घ) परहारू (परहारी के बदले) जैसे प्रयोग केवल छन्द की सुविधा पर ही निर्भर है। (ज्ञा० स्व० ८३)।

६. क्रियाविशेषण

(क) क्रियाविशेषण के आधार प्रायः निम्नलिखित हैं --

(१) संज्ञा--यथा छिनु (एक क्षण के लिए) --ज्ञा० स्व० १७३।

(२) सर्वनाम--यथा कब--ज्ञा० स्व० ३८।

(३) विशेषण--यथा नीकै--,, ,, १६१।

(ख) क्रियाविशेषणों के निम्नलिखित भेद है--

(१) समयबोधक--यथा सबेरे (सबेरै)--ज्ञा० स्व० ११०।
(सबेरा का भी व्यवहार क्रि० वि० जैसा किया गया ह--ज्ञा० स्व० ६४)।

(२) स्थानसूचक--यथा--बाहर, भीतर--ज्ञा० स्व० ८।

(३) संख्यासूचक-यथा-बहुरि-ज्ञा० दी० ६.१३ ; दुगुना -ज्ञा० स्व० २५५।

(४) प्रकारबोधक-यथा-अवसि (अवश्य) -ज्ञा० स्व० ६३।
जोरा (तेजी से) --ज्ञा० स्व० १७२।

(५) कारणबोधक-यथा-का-ज्ञा० स्व० ४६ (का माया मद पियहु दुकानी। अर्थात् दुकान पर मोह की मदिरा क्यों पीते हो ?)।

(६) परिमाणबोधक-यथा-अति --ज्ञा० स्व० ६३।
अधिक --ज्ञा० स्व० ७०।

(७) स्वीकार या अस्वीकार-बोधक--यथा--
जनि --ज्ञा० स्व० ३८। मति --ज्ञा० स्व० २७।
ना --,, ,, ५५। नहिं --,, ,, १०४।

(८) संयुक्त क्रियाविशेषण-यथा-किमिकरि --ज्ञा० दी० ८६.३।
दिन-दिन--ज्ञा० स्व० ७० ('दिन-दिन अधिक मस्त सरसारा')।

(ग) दरियासाहब द्वारा व्यवहृत क्रियाविशषणों के रूप खड़ी बोली, अवधी, व्रजभाषा और भोजपुरी भाषाओं से स्वतंत्रतापूर्वक लिये गये हैं; किन्तु उनके प्रयोग की एकरूपता निभाई नहीं गई ह। यथा--
तहँ--ज्ञा० स्व० १६६--तहां ज्ञा० स्व० ७३।
दहिने (ए के साथ)--ज्ञा० स्व० १७३।
पर आगै (ऐ के साथ) --ज्ञा० स्व० १५५।

(घ) जोर देने के अर्थ में, सम्मिलित करने अथवा निर्देशन के अर्थ में, बहुधा रूप में परिवर्त्तन हो जाते हैं। यथा--
अजहूं --ज्ञा० दी० ८२.१०।
उँहई -- ,, ,, २६.८।

कबे (कऽबे) —ज्ञा० र० ४८.३१ ।
कतहीं —ज्ञा० दी० १६६.२७ ।
जहँवे —„ „ ६२. २६ ।

७. प्रत्यय

प्रत्यय में (क) विभक्ति तथा (ख) प्रत्ययपरक शब्द का अन्तर्वेश है ।

(क) विभक्ति —

निम्नलिखित विभक्तियों का प्रयोग हुआ है:—

(१) कर्त्ता—ने (यदाकदाचित्) ।

कर्त्ता सामान्यतः विना विभक्ति के ही व्यवहृत होता है । ने प्रायः वैसे ही वाक्यों में आता है जिनकी क्रियाओं के अन्त में –आ, अथवा –इया (भूतकाल) हों । यथा—

अलह ने खलक पैदा किया —श० ३.१ ।

परन्तु खड़ी बोली के ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं । 'ज्ञान-स्वरोदय' में ऐसा एक भी नहीं है ।

(२) कर्म, सम्प्रदान }—

कहँ —ज्ञा० स्व० ७१ ।
के —ज्ञा० स्व० ८.० ।
को —ज्ञा० स्व० २११ ।

(३) करण, अपादान }—

से —ज्ञा० स्व० १०५ ।
सै —ज्ञा० स्व० ६७ ।
सैं —„ „ ७५ ।
सों —„ „ १७० ।
सौ —„ „ २३७ ।
ते —ज्ञा० दी० ६.६ ।

से, सै और सैं का व्यवहार कर्मकारक में भी होता है । ऐसा तभी होता है जब कर्म पर प्रभाव डालनेवाली क्रिया में कथन या वर्णन का भाव रहता है और कर्म अनृजु (*Indirect*) रहता है । यथा—

इमि रसूल से रब कहि दीन्हां —ज्ञा० स्व० ६५ ।
खास खोदाय नबी सैं बरनी — „ „ ५८ ।

(४) संबंध—

कहँ	ज्ञा० स्व० १२६ ।	कर	ज्ञा० स्व० ५० ।
का	ज्ञा० दी० ६.६ ।	की (स्त्रीलिंग)	,, ,, ७१ ।
के (बहुवचन)	ज्ञा० स्व० २०८ ।	के (एकवचन)	,, ,, १६६ ।
केरा	,, ,, ६४ ।	केरी (स्त्री०)	,, ,, २७८ ।
कै	,, ,, १९९ ।	को	,, ,, ५७ ।

(५) अधिकरण—

महँ	ज्ञा० स्व० ६० ।	माँहि	,, ,, १३६ ।
माहीं	,, ,, २७ ।	माहीं	,, ,, ३२७ ।
में	,, ,, ४५ ।	पर	,, ,, ३४७ ।

(ख) प्रत्ययपरक शब्द—

प्रत्ययपरक शब्द से उन शब्दों का बोध होता है, जिनमें स्पष्ट कारक-विभक्ति न लगी हो; पर जिनका व्यवहार विभक्तियुक्त कारक-जैसा ही किया गया हो। ऐसे शब्दों का अन्यत्र भी स्वतन्त्र प्रयोग किया जाता है। यथा—

अंदर : उर अंदर जब होय उजियारा —ज्ञा० स्व० २६ ।
बिहून : नैन बिहूनहिं कवन बेलासा — ,, ,, १७ ।
संग : जौ तें चहसि मदिप संग वासा — ,, ,, ३४ ।

दरिया साहब ने प्रत्ययपरक शब्दों का प्रचरमात्रा में व्यवहार किया है।

८. संयोजक अथवा समुच्चायक अव्यय

दरिया साहब द्वारा व्यवहृत संयोजक शब्द दो प्रकार के हैं[१२]—

(१) प्रधान योजक—यथा—

औ : देन लेन औ भोजन करई —ज्ञा० स्व० २१७ ।

(२) सापेक्ष योजक—

जौ तोहि खून सांच मन भावा
करहु खून हम तुमहि बतावा —ज्ञा० स्व० ६५ ।

---

१२. रो और बेब (Rowe and Webb) की पुस्तक : Hints on the Study of English, पृष्ठ १२५ (१६१०) देखिए।

उपसंहार

(क) *शब्दसमूह*—दरिया साहब द्वारा व्यवहृत शब्दसमूह पर अपढ़ साधारण जन में प्रचलित शब्दसमूह का पूर्ण प्रभाव दीखता है । शब्द अधिकांश संस्कृतमूलक हैं और उनके तत्सम और तद्भव दोनों ही रूपों का प्रयोग हुआ है । अरबी और फ़ारसी के भी शब्द प्रचुरमात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।

(ख) *वाक्य-विन्यास*—वाक्य-विन्यास की रूपरेखा प्रधानतः अवधी की है। यद्यपि दरिया साहब भोजपुर (शाहाबाद) के रहनेवाले थे; तथापि उन्होंने अपनी काव्य-रचना के लिए भोजपुरी को नहीं अपनाया था और अपना आदर्श तुलसीदास द्वारा 'रामचरितमानस' में व्यवहृत अवधी को माना था। अनुमानतः तुलसी की 'रामायण' की लोकप्रियता ने उन्हें राम की कहानी अपने शब्दों में कहने को प्रोत्साहित किया हो। अपनी रचना 'ज्ञानरत्न' में उन्होंने तुलसी के काव्य से भाव और भाषा दोनों ही प्रचुर रूप में लिये हैं। अवधी की प्रधानता रहते हुए भी भाषा में भोजपुरी और खड़ी बोली का यथेष्ट सम्मिश्रण (जो अनिवार्य था) पाया जाता है,—विशेषतः क्रियाओं तथा कृदन्तों के व्यवहार में।

(ग) *शब्द-क्रम*—यद्यपि वाक्यगत शब्दों का ठीक-ठीक क्रम निर्धारित करना कठिन है। क्योंकि काव्य होने के कारण शब्द-क्रम प्रायः छन्दःशास्त्र की अपेक्षाकृत अपेक्षाओं से ही अनुशासित है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः कर्त्ता क्रिया के पहले रहता है और पूर्ण क्रिया प्रायः वाक्य के अन्त में ही रखी जाती है । ग्रन्थ के अन्तिम अंश में मूल ग्रन्थों से जो उद्धरण दिये गये हैं, उनसे दरिया साहब के छन्दों और उनके अन्तर्गत आये हुए शब्दों के क्रम का स्पष्ट परिचय प्राप्त होगा ।

पंचम खण्ड

मूल ग्रन्थों के उद्धरण

उद्धरणों की तालिका

अग्र-ज्ञान

रहै निरंजन हमरे पासा, सदा प्रेम सेवक निजु दासा । ७. १
अब दुल्लह दुल्लह तब कहैऊ, दुलहिनि दिल में मनसा भैऊ । ७. २
इछा दिछा हम ता कहं दीन्हां, मनसा रूप कामिनि रचि लीन्हां । ७. ३
भयउ अनंग रंग तब अयऊ, अब दुल्लह दुलहिनि रस पयऊ । ७. ४
भोग भाग यह सभ बिधि अयऊ, तीनिउ देव जोईनि जनमयऊ । ७. ५
हंस बंस सभ हमरे पासा, इहां जिव से जिव कीन्ह प्रगासा । ७. ६
सेसनाग जिमि बरिसन लागा, काम बीज तब खेतहिं जागा । ७. ७
अंकुर अंग संग तब भयऊ, काम बीज कीसानहिं दियऊ । ७. ८

बिज से बिज उतपति किया, सो बिज सभ के दीन्ह ।
जीव जीव सभ जीव है, ब्रह्म इन्हते भीन्ह । ८. ०

भयो बिबिधि जिव जग में केता, अंडुज पिंडुज उखमज एता । ८. १
मन है सभ में मने लरावे, मन ऐगुन करि जीव बुलावै । २१. २
मन है कठिन क्रोध बड़ बीरा, कठिन कमान खिंचै एह तीरा । २१. ३
मन है सूर साधु जन सोई, मन बिनु काम किछू नहिं होई । २१. ४
मन है तर्क त्याग एह जोगा, मन संजोग ज्ञान रस भोगा । २१. ५
मन है तेग देग औ दाना, मन लिए ज्ञान गमी परवाना । २१. ६
जब निजु मन होय मिथ्या त्यागै, मनहि बिचारि ज्ञान रस पागै । २१ ७
मन जागे मन जोगी सांचा, चिन्हें बिना सुर मुनि नहिं बांचा । २१. ८

मन ऐगुन मन ज्ञान है, मने सभन्हि के साथ ।
मनहि बिचारि ज्ञान निजु राखे, सो जन भए सनाथ । २२ ०
निर्गुन निअच्छर नाम है, सरगुन सरी तोहार ।
ऐन झरोखा देखिए, (हम) रहे दुनों से न्यार । २६.०
ऐसन सहर हमार है, जाहां देवस नाहि राति ।
चांद सुरुज नाहि ताहांवां, नाहि उड़िगन की जाति । २८.०

भांग अफीम पान नाहि खावै, सदा सपेद रंगीन ना भावै । ३२. ३
नाहि ताहां उड़िगन गगन अकासा, नाहिं ताहां दुख सुख भूख पिआसा । ३७. ६

दरसन देखि कंवल बिगसाना, वह निर्गुन गुन रहित अमाना। २. २
प्रबल माया है मोह बिचारा, जेव तपत पर पातक जारा। ४.१३
होखे ज्ञान न आवै जोगा, तन भौ छीन ब्यापेवो रोगा। ६. ६
खोजहु सतगुरु सो पंथ लागा, पियहु सुधा सम प्रेम सुभागा। ८. ६
तेजि चतुरापन प्रीति लगाई, मानो सुधा समेत सनाई। ६. ६
जाकी बुधी भरम होय जाई, सो ज्ञान गति नहिं काहु लखाई। १२. ६
जनु दह कंवल फुला है केता, तेहि महं उगे भान छबि सेता। १२. ७
अलि पंकज सो परा भुलाई बिखि माला महं पैठा जाई। १२. ८
पैठत प्रान बिलग होय जाई, भली बुधी पै कहां भुलाई। १२. ६
ज्यों दीपक-रोसन करि दीन्हां, बहे समीर खंडित कै लीन्हां। १२.११
जबहिं पौन जो बहे सुधारा, दीपक छीन भया अंधियारा। १२.१२
रहा दिपक सो गया बुझाई, अंधकूप किछु नजरि ना आई। १२.१३
काम लहरि जाके मन आवै, ज्ञान दिपक के जाए बुझावै। १२.१४

जोगी या तन कसिकें, रहे जग्त कहं त्यागि।
बिरला बांचे लपट से, रगरि काठ की आगि। १३.०

जग को प्रीति चित्र को रेखा, मोहिनि प्रीति जग्त सभ देखा। १४. १
ब्रह्मादिक सनकादिक आदी, सत्त बात कहै सो बादी। १४. २
इन्द्र समान को कहिए बीरा, गौतम घरनी से रस भीरा। १४. ३
अहै अहीला सुंदरि नारी, कपट चंद्र में बात बिगारी। १४. ४
पतिबरता पतिब्रत जो करई, इन्द्र जाए बरत जो टरई। १४. ५
गौतम ताके जो दीन्हो स्रापा, सो जानै नर ऐसन पापा। १४. ६
महादेव संग कंवला रानी, म्रिगनैनी औ कोकिल बानी। १५. १
नख सिख सुंदर चित्र उरेहा, अहै पदुमनी सुंदरि देहा। १५. २
बिस्वामित्र तपेस्वा कीन्हा, करमकांडि पूजा लवलीन्हा। १६. १
अहै सरवर एक सुंदर तहंवां, पत्रकुटी बैठे रहे तहवां। १६. २
जोग कर्म बिधि बेदी बांधै, बैठे तहां जोगतत्तु राधै। १६. ३
प्रात उठी करहीं असनाना, बाहर जाय बैठहिं मैदाना। १६. ४

भीछ एक तहं सुन्दर छाया, चौका चंदन तहां बनाया। १६. ५
माथे तीलक कांधे जनेऊ, पूजा करहि इष्ट कर सेऊ। १६. ६
फूल कारन कानन जब गयऊ, पुहुप इष्ट तहवां ले अयऊ। १६. ७
फूल के लेइ पूजहिं बहु भांती, मनसा लीन रहै दिन राती। १६. ८
मोहिनि एक जो सुंदर सरीरा, फूल के गेंदवा खेलहि तीरा। १६. ९
म्रिगनैनी औ कोकिल बैनी, कटि केहरि औ चाल सलोनी। १६.१०
लोल कपोल सुंदर अति नीका, मोती चिकुर बिंदु कै टीका। १६.११
नख सिख ले सब भुखन बनाई, बसन झलाझलि पैन्धे आई। १६.१२
रीषी ध्यान छोरि के ताका, नैन तिरीछन भहुं अति बांका। १६.१३
भुजा उठाए जो लीन्ह बोलाई, काम बान लागा तन आई। १६.१४
आवत निकट जो बदन निहारा, देखत नैन बान सर मारा। १६.१५

बहुत प्रीति करि बोले, निकट जो लीन्ह बोलाए।
पट डारि बैठाए के, रूचिर वचन सोहाय। १७.०

ता संग प्रीति कीन्ह लौ लीन्हां, बिसरि गया जनु जोग न कीन्हां। १७ १
सात मास रहु ताके संगा, नत नित प्रीती करहिं प्रसंगा। १७ २
एकदिन खटपटि बोली बानी, रीषी प्रीति थोरि कै जानी। १७. ३
तुरंत जाए कीन्ह असनाना, जहां पुहुप तहां कीन्ह पयाना। १७ ४
तब तौ फूल हाथन्हि में आई, अब तौ दुरी मेटि नहिं जाई। १७. ५
तुरत गए मोहिनि रहु जहंवां, बोले बिकल वचन अब तहंवां। १७ ६
नेम करहिं हम नित असनाना, पूहुप ले हम करहि बिधाना। १७. ७
सो कानन हम फुल कहँ गयऊ, डार नजीक भेंट नाहिं भयऊ। १७. ८
तब मोहिनि अस बोली बानी, सात मास पूजा नहिं जानी। १७. ९
आजु कवन बरत तुंह ठानी, बोलि बचन अस कही गुमानी। १७.१०
बिधि प्रपंच यह काल तुलाना, रिपि अपने मन निश्चै जाना। १७.११
तब रिषि क्रोध नैन महं ताका, देखत गर्भपात भौ वाका। १७.१२
मोहिनि चलि भइ आपु ठेकाना, बहुरि जोग फिरि कीन्ह बिधाना। १७.१३

कहे दरिया जग जाने, सो रिषि काम अधीन।
बिरला बांचे मोह बसि, रहे नाम लवलीन। १८.०

सो जल घटै बढ़ै नहिं जाई, ऐसो संत सदा सुखदाई। २१. ३
ऐम अंजीर एक करु मेला, देखहु अबिगति आपु अकेला। २३. २

अमर-सार

दरसन देखि कंवल बिगसाना, वह निर्गुन गुन रहित अमाना। १. २
प्रबल माया है मोह बिचारा, जेव तपत पर पातक जारा। ४.१३
होखे ज्ञान न आवै जोगा, तन भौ छीन ब्यापेवो रोगा। ६. ६
खोजहु सतगुरु सो पंथ लागा, पियहु सुधा सम प्रेम सुभागा। ८. ९
तेजि चतुरापन प्रीति लगाई, मानो सुधा समेत सनाई। ९. ९
जाकी बुधी भरम होय जाई, सो ज्ञान गति नहिं काहु लखाई। १२. ६
जनु दह कंवल फुला है केता, तेहि महं उगे भान छबि सेता। १२. ७
अलि पंकज सो परा भुलाई, बिखि माला महं पैठा जाई। १२. ८
पैठत प्रान बिलग होय जाई, भली बुधी पै कहां भुलाई। १२. ९
ज्यों दीपक-रोसन करि दीन्हां, बहे समीर खंडित कै लीन्हां। १२.११
जबहिं पौन जो बहे सुधारा, दीपक छीन भया अंधियारा। १२.१२
रहा दिपक सो गया बुझाई, अंधकूप किछु नजरि ना आई। १२.१३
काम लहरि जाके मन आवै, ज्ञान दिपक के जाए बुझावै। १२.१४

जोगी या तन कसिकें, रहे जग्त कहं त्यागि।
बिरला बांचे लपट से, रगरि काठ की आगि। १३.०

जग को प्रीति चित्र को रेखा, मोहिनि प्रीति जग्त सम देखा। १४. १
ब्रह्मादिक सनकादिक आदी, सत्त बात कहै सो बादी। १४. २
इन्द्र समान को कहिए बीरा, गौतम घरनी से रस कीरा। १४. ३
अहै अहीला सुंदरि नारी, कपट चंद्र में बात बिगारी। १४. ४
पतिबरता पतिब्रत जो करई, इन्द्र जाए बरत जो टरई। १४. ५
गौतम ताके जो दीन्हो सापा, सो जानै नर ऐसन पापा। १४. ६
महादेव संग कंवला रानी, म्रिगनैनी औ कोकिल बानी। १५. १
नख सिख सुंदर चित्र उरैहा, अहै पदुमनी सुंदरि देहा। १५. २
बिस्वामित्र तपेस्वा कीन्हा, करमकांडि पूजा लवलीन्हा। १६. १
अहै सरबर एक सुंदर तहंवां, पत्रकुटी बैठे रहे तहवां। १६. २
जोग कर्म बिधि बेदी बांधे, बैठे तहां जोगततु राधे। १६. ३
प्रात उठी करहीं असनाना, बाहर जाय बैठहिं मैदाना। १६. ४

नीछ एक तहं सुन्दर छाया, चौका चंदन तहां बनाया। १६. ५
माथे तीलक कांधे जनेऊ, पूजा करहि इष्ट कर सेऊ। १६. ६
फूल कारन कानन जब गयऊ, पुहुप इष्ट तहवां ले अयऊ। १६. ७
फूल के लेइ पूजहिं बहु भांती, मनसा लीन रहै दिन राती। १६. ८
मोहिनि एक जो सुंदर सरीरा, फूल कै गेंदवा खेलहि तीरा। १६. ९
म्रिगनैनी औ कोकिल बैनी, कटि केहरि औ चाल सलोनी। १६.१०
लोल कपोल सुंदर अति नीका, मोती चिकुर बिंदु कै टीका। १६.११
नख सिख ले सब भुखन बनाई, बसन झलाझलि पैन्धे आई। १६.१२
रीषी ध्यान छोरि के ताका, नैन तिरीछन भहुं अति बांका। १६.१३
भुजा उठाए जो लीन्ह बोलाई, काम बान लागा तन आई। १६.१४
आवत निकट जो बदन निहारा, देखत नैन बान सर मारा। १६.१५

बहुत प्रीति करि बोलै, निकट जो लीन्ह बोलाए।
पट डारि बैठाए के, रूचिर बचन सोहाय। १७.०

ता संग प्रीति कीन्ह लो लीन्हां, बिसरि गया जनु जोग न कीन्हां। १७ १
सात मास रहु ताके संगा, नत नित प्रीती करहिं प्रसंगा। १७ २
एकदिन खटपटि बोली बानी, रीषी प्रीति थोरि कै जानी। १७. ३
तुरंत जाए कीन्ह असनाना, जहां पुहुप तहां कीन्ह पयाना। १७ ४
तब तौ फूल हाथन्हि में आई, अब तौ दुरी मेटि नहिं जाई। १७. ५
तुरत गए मोहिनि रहु जहंवां, बोले बिकल बचन अब तहंवां। १७ ६
नेम करहिं हम नित असनाना, पूहुप ले हम करहि बिधाना। १७. ७
सो कानन हम फुल कहँ गयऊ, डार नजीक भेंट नाहिं भयऊ। १७. ८
तब मोहिनि अस बोली बानी, सात मास पूजा नहि जानी। १७. ९
आजु कवन बरत तुंह ठानी, बोलि बचन अस कही गुमानी। १७.१०
बिधि प्रपंच यह काल तुलाना, रिषि अपने मन निश्चै जाना। १७.११
तब रिषि क्रोध नैन महं ताका, देखत गर्भपात भौ वाका। १७.१२
मोहिनि चलि भइ आपु ठेकाना, बहुरि जोग फिरि कीन्ह बिधाना। १७.१३

कहे दरिया जग जाने, सो रिषि काम अधीन।
बिरला बांचे मोह बसि, रहे नाम लवलीन। १८.०

सो जल घटै बढ़ै नहिं जाई, ऐसो संत सदा सुखदाई। २१. ३
ऐन अंजीर एक करु मेला, देखहु अबिगति आपु अकेला। २३. २

आपुहि गुरू आपु है चेला, आपुहि ब्रह्म ज्ञान संग मेला। २३. ३
आपुहिं गुंगा आपुहि बोलै, आपु अकेला आपुहि डोलै। २३. ४
आपा मेटि आप कहँ देखै, दूजा नाम ताहि कह लेखै। २३. ५
तखत सेत तहां सुन्दर सोहाही, जहवां पुरुख अमरपुर आही। २८. ८
सत सुगंध सुख सागर खानी बैठे हंस सुख कहै बखानी। २८. ६
अम बास तहां रहु निर्द्वन्दा, पुहुप सेज पर करहि अनंदा। २८.१०
सो बैकुठ अटल नहिं भाई, फिरि भरमै चौरासी जाई। ३०. ४
ब्रह्मलोक ब्रह्म असथाना, तहां काल फिरि करै पेआना। ३०. ६
इन्द्रलोक कहं दानी धावै, दान करै फल इहंई पावै। ३०. ८
एक निरंजन सभइ नचावै, चीन्है बिना कोइ मुक्ति न पावै।] ३०. ६
कहै दरिया निश्चै हम देखा, लिखी ज्ञान नीके यह पेखा। ३२. ४
मछ कछ नाहिं बराह सरूपा, बोए साहब है अबिगति रूपा। ३२. ५
बामन रूप नहिं बलि के जांचेवो, पैठि पताल नाग नहि नाथेवो। ३२. ६
नहिं देवकी घर जनमे वारा, नाहीं कंस हत्यौ परचारा। ३२. ७
नहिं गोवरधन कर गहि लीन्हां, नहिं गोपिन्हं संग क्रीड़ा कीन्हां। ३२. ८
नहि हरिनाकुस उदर बिदारा, दैत अनेग नहिं छलि छलि मारा। ३२. ६
नहिं निकलंकी धरेउ सरीरा, नाहिं तेग कर लीन्हों बीरा। ३२.१०

बोए साहब सामर्थ है, हारि जीति नहि जाए।
उपजि बिनसि खपए नाहीं, मातु पिता नहिं भाए। ३२.०

काल-चरित्र

त्रिकुटी मध्ये साधिए, जहां कमल परकास।
गंगा जमुना सोरसती, जहां अमी का बास। ४.०
जमुना गंगा त्रिकुटी तीरा, देखे मोती अबिगत हीरा। ४.१
अतना जोग यह जुक्ति बतावे, ज्ञान बिना फिरि मुक्ति ना पावे। ४.८
सतगुरु ज्ञान बिचारिके, करो गमी गुरु ज्ञान।
भव सागर में बांचिहो, सत्त सब्द बिख्यान। ५।।०
होय सिद्ध काम धरि मारै, पांच पचीस भसम करि डारै। ५.३
कामिनि कनक संग नहिं बासी, इमि जोगी जग फिरै उदासी। ५.४
पांच पचीस कहं साधिके, रहनी जोग करार।
सिद्ध साधु सभ जानहों, एही मता हमार। ६ ०
तेजादास दरसन के गयऊ, करि सलाम तब पूछत भयऊ। ८.५
राजपूर को ब्राह्मन वासी, हमसे प्रेम सदा परगासी। १४.१०
दल्ल कहा अगरा काहे कीजै, साहब बचन मानि के लीजै। २१.३
वोजीरदास के हम कह दीन्हां, छरीदार हम तुम कहं कीन्हां। २१.७
जाके तुम्ह बिमल एक कहई, ताकी बरती कहवां अहई। २१.१०
कोकिलदास मनी है नाऊं, तीनिउ जना गए एक ठाऊं। २२.२
मेहरबान से निती बोलावे, बहुत प्रीति करि राग सुनावे। २६.१
जागादास के दीहिसि गारी, एकर सिर इमि भार उतारी। ४१.११
बुद्धिमती अति प्रीति करि, साहमती संग लाय।
दस्त जोरि कोर्निसि किया, प्रेमप्रीति लव लाय। ४२.०
नन्दादास सो कहा बोलाई, तुम इमि करि पीछे चलि जाई। ४८.३
चुरामन दुबे दिल कीन्ह बिचारा, तुम हो सुकित सत्य उपकारा। ६२.५
सिवदत दुबे धरा मन धीरा, भक्ति बिबेक नाम निजु हीरा। ६२.८
सिवनाथ हाथ जोरि कर लागे, तुम्ह सतगुरु गुन जगमें जागे। ६२.६
केसठि ग्राम तहां चलि अयऊ, बैठि निरंतर इमि गुन गयऊ। ६३.२
सेशदास बचन मम जाना, ...। ६४.११
मनीदास कहं बकसी कीन्हां, मनसफ है कागद लिखि दीन्हां। ७७.१
खीरनदास फकीर जो रहेऊ, देह के छुटे बरख एक भएऊ। ७६.६

गणेश-गोष्ठी

करि षटकर्म देवन को पूजा, आतम राम देव नहिं दूजा। १. ४
सालिग्राम ज्ञान कहं जाना, पाहन पुजिके पंडित भुलाना। ३.११
बेदे अरुझि रहा संसारा, जाल मीन जिव करे अहारा। ५. २
प्रथमें छीर सभे केहु जाना, छिर में बास जो रहा समाना। ५. ५
अंवटि छीर अनल पर जाई, जोरन दे तब दही जमाई। ५. ६
मथनी मथी लैन जो लीन्हा, लैन लीन्ह बास नहिं दीन्हा। ५. ७
जब तावै तब निर्मल अंगा, भौ परगट परिमल के संगा। ५. ८
का भौ फिरै दिगंबर लंगा, का भौ उलटि आपु कहं टंगा। ५.१२
पानी रहे मच्छ औ दादुर, टांगे रहे बने महं गादुर। ५.१३
पसु पंछी लंगे सब खाड़ा, रहा कुंभार भस्म से भारा। ५.१४
नीच ऊंच के कवन बखाना, आदि अंत है ब्रह्म अमाना। ८. १
हिंदू तुरुक दुई तुम कहई, हममें तुममें दुजा ना अहई। ११. १
मलेछ सोई जो मल के खावे, मलेछ सोई जो ब्याज बढ़ावे। ११. २
मलेछ सोई मुख मदिरा भरई, मलेछ सोई पर तिरिया हरई। ११. ३
मलेछ सोई मिन मांस जो खावे, मलेछ सोई जेहि ज्ञान न भावे। ११. ४
मलेछ सोई संत निंदा करई, मलेछ सोई जो नरकहिं परई। ११. ५
मलेछ सोई मुत पूजा करई, खंसि बकरा जीव सब मरई। ११. ६
अठई दसई करै पसारा, महिखा मारि करै खैकारा। ११. ७

एतना जाति मलेछ है, पंडित करो बिचार।
कहें दरिया तब बांचिहो, (जब) समुझि परै टकसार। १२. ०

बिल्ली कबहीं मुख ना धोवे, हांड़ी चाटि सकल नेम खोवे। १२. ३
माखी काहुके हाथ न आवे, गंध सुगंध सबे जुठियावे। १२. ५
एतना जूठ खाय संसारा, तापर करहि नेम आचारा। १२. ६

ज्ञान-दीपक

आवहि जाहि करहि जग रचना, ज्यों किसान खेती करु जतना। ३. ८
माया प्रबल है अगम सरूपा, एहि तिर्गुन माया कर रूपा। ३. ६

वह तिर्गुन से रहित है, बिमल बिरोग अमान।
ज्ञान चेतन जब चेतिए, पाए पद निर्बान। ४. ०

जोग न जाप न मंख पुराना, तीरथ बर्त सकल गुन ज्ञाना। ४. २
कोइल कुहुके अपने भाऊ, बंक नाल बस नाभी ठाऊ। ५. ३१

चुगु मोत मुकता जानि, जहां मान सरवर खानि। ६. ६
जोति गंभीरा जगमग हीरा, मनि उड़िगन तहाँ छबि छाई।
छत्र बिराजे सब गुन राजे, अटल राज पद सो पाई।
पुहुप बेलासा सब भ्रम नासा, भरि भरि अम्रित सो आई।
अति सुख सागर सब गुन आगर, दरिया दरसन सो पाई। ६. १६

ये सुख अमरापूर, सत्त सब्द पहिचानिए।
प्रेम निकट नहिं दूर, जहां देखो तहां सांच है। ६. १७

सिष्य कहा जब सिर नहिं देवै, सतगुरु सो भवसागर खेवै। १५. ४
बिनु नासा बास सुबास, सत्र कहत है हरिदास। १७. ४
जब पांच तत्त नहिं तीन, तब कौन करता चीन्ह। १७. ६

सत्त नाव नर जो चढ़ै, जाय अमरपुर गांव।
आवागवन रहित भयो, अजर अमर निज ठांव। २१. ०
तीन लोक के बाहरे, सो सतगुरु का देस।
जो जन जानि बिचारहीं, जम नहिं पकरै केस॥ २१.०

दर्ब हरहि परलोक ना हरहीं, सो गुरु नर्क अघोरहि परहीं। ३२. ४
चीन्हहु सतगुरु जो अनुरागी, आदि अन्त ज्ञान में जागी। ३२. ६
सो गुरु ज्ञान मुक्ति की खानी, सतगुरु भेद करो पहचानी। ३२.१०
तहां से पांच पचीस जो आई, तहां से काम क्रोध फैलाई। ३८. ६

देखि निरजन रहेव लोभाई, सक्ति संग सुख बेलसेव जाई। ५६.६
तबहिं तीन देव जो भएऊ, रजगुन सतगुन तमगुन कहेऊ। ५६.१०

मंथन करो समुंद्र के, जगजननी कहि दीन।
पाए रतन जतन करो, इमि मत होय न मीन॥ ६० ०

मथेव समुंदर जबहीं जाई, तीन वस्तु तब निकली आई। ६०. १
तेज बेद बिषि तीनू पाई, तीन भाग तब लीन्ह लगाई। ६०. २
तेहि पीछे स्रिस्टी जो ठयऊ, अंडुज तौं माता से भयऊ। ६०.१०
पिंडज ब्रह्म लीन्ह बनाई, उखमज सब बिश्नू ते आई। ६०.११

चारि खानि बनि जक्त में, यह सब रचना कीन्ह।
जीन्हि पुर्ष जग जननि रची, ताको भेद न चीन्ह। ६१. ०
मन धरेव दस अवतार, मन जानु जग करतार। ७०. १
यह सब चरित्र बिचारि, तुमहिं निरंजन देव हो।
पुरुष तुम्हे ते पारि, आदि ब्रह्म गुन इमि कहो। ७०.१७

सत बचन सत्त तुम कहऊ, सत्त पुरुष दूजा हम अहऊ। ७०.१८
चीन्हे बिना यह सब मत ठयऊ, निर्गुन सर्गुन दो पंथ चलयऊ। ७१. ६
संग निरंजन सुत जो अहई, जुग जुग सेवा पुरुख पहं लहई। ७४.२०
जीव सीव माया मत कीन्हा, यह छोड़ कर्त्ता दुजा न चीन्हा। ७५.१०

ऐसो मता जक्त में, तीन देव परनाम।
अमर लोक जाने बिना, तिर्गुन किन्ह बिस्राम। ७६. ०

जम्बू द्वीप तुम जाहु उजागर, हंस बोधि आवहु सुख सागर। ७६. ५
छव चक्र औ पांचों मुन्द्रा, खिचरी भोचरी कहि अनुकारा। ८४. १
चंचरी चारिउ कही बिचारी, कर्म जोग यह कीन्ह बिस्तारी। ८४. २
पिपिलक छोड़ि बिहंगम कहेऊ, मुंद्रा माह उनमुनी रहेऊ। ८४. ३
सुई अग्र तहां द्वार संवारी, झलके मनि तहां जोति उजियारी। ८४. ४
अजपा मूल दरस तहां देखे, सोहंग सुरति द्रिस्टि महं पेखे। ८४. ५
सोरह दल कमल बिगसाई, मधुकर ध्रानि रहा लपटाई। ८४. ६
गंधारी सुपट खुले जब आई, अग्र बास नासिका पाई। ८४. ७
कुंभ पत्र अमी अस्थाना, चुवै प्रेम पिवै संत सुजाना। ८४. ८

वेहां बसन बासु सुगंध, नहिं टूट फाट ना रंध। ११३. ६
सब तेजु संसे सूल, सत नाम गहु निज मूल। ११७. १
जहां सजल जल सुखकंज, मन मंजन लोचन अंज। ११७. २
म्रिग मीन खंज पहचान, करु तरक तरनी जान। ११७. ३
भव भर्म भवजल थीर, घय धरनि सोखेव नीर। ११७. ४
इमि वार पार ना भेद, इमि त्रिबिध ताप निखेद। ११७. ५
भयो ब्रह्म पूरो ज्ञान, दिबि द्रिस्टि इमि पहिचान। ११७. ६
झरि झरेव निर्मल रंग, घन घटा बहुत तरंग। ११७. ७
इमि सर्ब स्वर्ग है सेत, इमि चन्द्र सुरगन जेत। ११७. ८
अदेख देखु निरंत, तेजि मिर्ग मद को मंत। ११७. ९
इमि प्रानि घन तेहि पास, सब भर्मित ढूंढ़त घास। ११७.१०
जब गुरु गमी होए ज्ञान, सुगंध गंध पहचान। ११७.११
इमि द्रिस्टि स्रिस्टि समाय, सब रूप एक छबि छाय। ११७.१२
तेजि आवागवन के सोक, इमि अमरपुर लोक। ११७.१३
सत कहे सतगुरु जानि, इमि परम पद पहचानि। ११७.१४
यह म्रिथा मत नहिं होए, सब भर्म जात बिगोए। ११७.१५

सत्त बिचारं कहत पुकारं, तारं भवजल इमि तरिए। ११७.१६
हंस उबारं औ भ्रम टारं, तरनी तिरछन सो धरिए। ११७.१७
प्रेम हुलासं सतगुरु पासं, संसे सागर सब दहिए। ११७.१८
परम पुनीतं, सतगुरु हीतं, चिंता तन की दुरि करिए। ११७.१९

ज्ञान-मूल

सत्त बर्ग सर्ब ऊपरै, साखा पत्र सब जीव।
जल थल सभ में व्यापिया, सांच सुधा रस पीव। १. ०

वार कहे फेरि पार बखाना, वह है ब्रह्म अलेप अमाना। १. ६
वोए ब्रह्म अखंडित नाहिं कहई, सो जिंदा जग जाग्रित अहई। १. ८

वोए साहब अतीत अपार है, तिर्गुन गुन ते पार।
उपजि बिनसि रहि जात सभ, वोए तौ रंग करार। २. ०

कइे राम फिरि धरिकै मारै, मीन मांसु लै मुख में डारै। ४. १
पंडित मूरख एक सम भएऊ, जीव कै घात पाप सिर लहेऊ। ४. ५
बेद पढ़ा पर भेद न जाना, भेद सतगुर संग रहा अमाना। ४. ६
असी हजार फौद चलि आई; गढ़ि ढहाए सभ गर्द मिलाई। ४ १०
छप लोक जहां हंस बिराजै, छत्र मनोहर बहु बिधि छाजै। ५. ३
अम्रित झरि मेवा बहु भांती, लागि झरी बरिसै चहु पांती। ५. ४
उहाँ किसान खेती नहिं करई, भरि भरि पिवै सदा सुख लहई। ५. ५
हद पर अधरस देउ देखाई, अधालोक कसमीर कहाई। ५. ६
अहे मेवा की बहुबिधि खानी, है सुगंध फुल गूल बखानी। ५. ७
बारह कोस सहर वह रहेऊ, भाला है लोग सांच सभ कहेऊ। ५. ८
बहुत गुलाब अंत्र तहां भएऊ, अति सुगंध साधु गुन लहेऊ। ५. ६

भौ जल में सभ काग है, बक बाउर है अंध।
मीन मांसु कहं खात है, दूढ़त वाकी गंध। ७. ०

एहि बिधि भरमहिं भवन में जाई, चारि चरन दुइ सिंघ बनाई। ८. ६
जोइनि संकट में फिरि फिरि आवै साधु संघति कबहीं नहिं पावै। ८. ७
पसुअत ज्ञान ताहि धरि बांधै, आंखि छपाय कोल्हू में नाधै। ८. ८
कहीं रहट में गिर्द फिरावै, कहिं बनिया बहु बोझ धरावै। ८. ८
पारा चकोह चाक नहिं घूमा, भेड़ि बाघ कहिं भइगौ दूमा। ८.१०

करहा कर कहं खीचिया, बोझ बड़ा घर दूर।
तब नाहिं कसन संभारहू, (जब) ग्रहन गरासैवो सूर। १०.०

साह फकर औ बस्तीदासा, तुम्ह से कीन्ह ज्ञान परगासा। ११. १
निरगुन गुन है निरगुन निरासा, निरालेप गुन तरनी पासा। ११. ३

सरग नरक एह दुख सुख दाता, दुख है नरक सोई उतपाता। १२. २
अब अब कहत गया दिन सारा, भुले गर्बे सो मूढ गंवारा। १४. २
दुइ सहिजादा मम ग्रिह रहेऊ, भए चेतनि चित गुन इमि कहेऊ। १४. ३
सिरें दाफा ताही कंहं भाखा, ज्ञान बिचारि एक मत राखा। १४. ४
साहि फकर फकीर हमारा, भए दास गुन ज्ञान बिचारा। १४. ५
लघु औ दीर्घ दुनो है भाई, समुभि ज्ञान गुन कहा बुझाई। १४. ६
बस्ती साहि छोटा एह अहई, छापा सनदि मूल सो गहई। १४. ७
दफा हमार सभै सिर नावै, अदब आदाब भग्ति गुन गावै। १४. ८
तेहि परवाना हुकुम जो दीन्हां, लिखा हमार होइ नाहि भीन्हां। १४. ९
छापा सनदि ज्ञान परवाना, करै भग्ति सभ संत सुजाना। १४.१०

दोए साहिजादा जानिके, लिखी दिया हम सांच।
आगे पीछे जो कहै, सोई बचन है कांच। १५.०

देह तेरी नाहिं माया मेरी, ई नाहिं बसि भइ काहू केरी। १६. ७

गुर कहं सर्बस दीजिए, तन मन अरपेवो सीस।
गुर बहियां गुरदेव है, गुर साहब जगदीस। १७.०

जब परसाद सुरति महं आवै, बहु भांतिन्ह एह जुगुति बनावै। १७. २
सकर सोहारी औ दधि मेवा, भक्ति भाव से लावै सेवा। १७. ३
तापर कपरा सेंत ओहारी, पानि जोरि कै बिनै हमारी। १७. ४
जाति पांति किछुवो नाहि अहई, बड़ा सोई साहब गुन गहई। १८. ३
साधु सोई कमला जल माहीं, संग रहे जल परसत नाहीं। १८. ७
कोटि तीर्थ साधुन्ह के पासा, मंजन करै जाए जम त्रासा। १८.१०
भेख बनाए ब्याध सर जोरा, भमुत भरम है भितर कठोरा। २०. ६
कामिनि कनक लता लपटाना, अभुरत सफुरत संत सुजाना। २५. १
साधु के महिमा कहि नहिं जाई, जैसे सेंधु जल थाह ना पाई। २५. ७
जाति पांति सभ तेजै बड़ाई, भया सिरखुला सभो सिर नाई। २६. १
संत कि संग रंग सभ त्यागै, जल रंग मिलि गौ ज्ञान ना जागै। २६. २
उतिम मधिम का एही बिचारा, सिरै जामा का भग्ति पिआरा। २६. ३
सांच कहो लिखि कागद कोरै, सोउ साहब आए ग्रिह मोरै। २७. ३
जब साहब छप लोक बतएऊ, कोर्निसि करी अरज मम लएऊ। २८. १
इहां अंनवां उहां है की नाहीं, सोइ बचन कहिए मम पाहीं। २८. २

अमर फूल औ अमर दोलैचा, फेरि नाहि उलटी फेरि नाहि येंचा। २८. ४
पलंग पुहुप छत्र सिर छाजै, एहि बिधि हंस सदा सुख राजै। २८. ५
बहुत बिलंद म्रितुलोक बसाया, मन रंभा सभै अरुझाया। २८. ६
हद ही पर छप लोक जो कहई, हद से बाएव वह नाहिं अहई। २८. ७
उत्तर दिसि है सहर हमारा, अमरलोक ताहां हंस करारा। २८. ८
मैंने कहा कहीं तुम्ह दीजे, निश्चै रहै प्रेम नाहिं छीजै। २८. ९
कुदरति मेवा उहवां सब पाई, जुग जुग कै सभ छुधा बुताई। २८.१०

उतर दिसा पांजी अहै, पल पल करै जनि भोर।
ताहां कै हंस गवन करै काहा जो मानै मोर। २९.०

साहब कहेवो गुपुत करि राखा, सो मम भेद प्रगट एह भाखा। २९. १
खाक बाव अब आतस लाया, सिकम मार कै मर्कव बनाया। २९. २
सीन साफ मुख नूर बिराजै, सोभा सुन्दर बहु बिधि छाजै। २९. ३
गिर्द महल चहु दीस बनाया, बिच बिच कनक चित्र लिखाया। २९. ४
तखत बनाए खड़ा ताहां कीया, हिरा जवाहिर ता बिच दीया। २९. ५
कहि न जात तखत की सोभा, बैठा तापर मन इमि लोभा। २९. ६
आम खास खुसबोई केता, मोती झालरि झलकै सेता। २९. ७
कंचन पलंग तहवां ले डारा, हीरा मानिक है उजियारा। २९. ८
बेगम अवर सहेली केता, कोर्निसि करहिं प्रेम निजु हेता। २९. ९
खोजा खावस सिर चवर जो ढारा, अंतर चिराक कीन्ह उजियारा। २९.१०
अठारह लाख फौद है एता, तुरुकी ताजी पाएल केता। २९.११
तब मम देखा द्रिस्टि पसारी, इन्हके किमि कर लेउ निकारी। २९.१२
खुसिहाल दास फकीर है नीका, रुखा सुखा नहिं जानत फीका। ३६. ५
अन कपरा कहीं नहिं जोवै, प्रेम प्रीति दुर्मति कहँ खोवै। ३६. ६
मुरलिदास देवान करि लीन्हा, जो गुन सो रहा परगट कीन्हा। ३६. ७
साहिजादा दोए हमरे पासा, साह फकर औ बस्तीदासा। ३६.१९
मेहरबान दास मम बालक अहई, मातु के संग सदा वह रहई। ३७. १
सोई सोहागिनि पिया रंग राती, सोई सोहागिनि कुल नहिं जाती। ३८. १
राएमती कुल सभ कहं त्यागी, भग्ति बिचारि ज्ञान में जागी। ३९. १
साह फकर कै दासी अहई, पतिबरता वोए निसदिन गहई। ३९. ६
जो हम कहा लिखा इन्हि दासा, बस्ती नाम है गुन परकासा। ३९.१०

ज्ञान-रत्न

परम ब्रह्म पंडित सो ज्ञाता, निरालेप पुरइनि ज्यों पाता। १. ३
पुर्ख नाम निजु पारस अहई, भौ मुकुताहल जग में लहई। १. ४

टीका मूल निजु नाम है, रहै प्रान लव लाए।
हंस 'बंस मुकुताइहै, जिंदा जग महं आए। २.०

कामिनि कनक फंद जम जाला, तन भौ थकित ब्यापेयो साला। ४. २
कोइ दुखिया दुख कहत भुलाना, कोइ संत सुजान भक्ति गुर ज्ञाना। ४. ७
मनि मानिक महिम डल मूला, संसित प्रेम सहस दस फूला। ४. ६

करो बिबेक बिचारि, अमर लोक अम्रित पिवै।
भव जल जाहि ना हारि, सतगुर दया तरनी दिवै। ५.५

संत सुबुद्धि बचन सत भाखा, सील संतोख रोख रचि राखा॥ ५.१५
अछै ब्रीछ वोह पुर्ख अकेला, सुत नीरंजन सो संग चेला। ६. ८
सोरह सुत सब लोकन वासा, सुक्रित सदा पुर्ख के पासा। ६. ६
सत्तरि जुग रहु सुंन बेसूना, तब नाहिं होते पाप ना पूना। ७. १
तब नाहिं राम रमिता जग आए, जाके बेद लोक सभ गाए। ७. २
तब नाहिं होतै पवन औ पानी, तब नाहिं संग नाहिं सीव भवानी। ७. ३
तब नाहिं होतै बेद कर मूला, तब नाहिं गर्ब ना ज्ञान अंकूला। ७. ४
तब नाहिं कच्छप ब्राह सरूपा, राव रंक नाहिं अबिगत रूपा। ७. ५
तब नाहि होतै फरह न फूला, तब नाहिं होतै गर्ब अंकूला। ७. ६
तब नाहिं ब्रह्मा बेद उचारी, तब नाहिं गंगा रहलि बेचारी। ७. ७
तब नाहिं कान्ह रहै कर जोरी, तब नाहिं मुरली मुख महं मोरी। ७. ८
तब नाहि चांद सुर्ज बिसतारा, तब नाहिं भइले दसो अवतारा। ७ ६
आदि अंत नाहीं कुल कोऊ, नाहिं कुल पंडित नाहिं कुल दोऊ। ७.१०
सत्तरि जूग सैन सुख बासा, सत्त पुर्ख कै अजब तमासा। ७ ११
पहिले हुकुम धरती तब कीन्हा, हारि सुमेर जाकन तब दीन्हा। ८. १
मन माया कर ऐसन साजा, अरुझै राव रंक सभ राजा। ८, ६ ✓

कहीं जोग कहि भोग बेलासा, कहीं दान कहिं पुंन कै आसा। ८
केहि नहिं परम सुन्दरि अति सोभा, केहि नहिं गही माया कर लोभा। ११.१२

भौ गुन ज्ञान नाव सत, करौ बिबेक बिचार।
कहै दरिया सतगुर मिलै, तरनी खेवनिहार। १८०

माया अगम है अनत अगाधी, तिर्गुन तेज सभन्हि कहँ बांधी। १८ १०

मूरति में सूरति बसै, नीरति रही अमान।
(दिल)दरिया दरसन देखिए, तामें पद निर्बान। १६.०

बूझहु ज्ञानी करहु बिबेखा, इह तिर्गुन माया कर रेखा। ३५ १३

जिंदा जीवहिं जग्त में, औ सभ खपै निदान।
आदि पुर्ख वोए अमर है, देखहु निर्मल ज्ञान। ३६.०

माया अनल है बिखम बेकारा, परै पतंग सकल तन जारा। ३६. ५
पवन भछै सो होए भुअंगा, करहि जोग मलेया के संगा। ३६.१६
फिरि फिरि जोइनि संकट महं परई, आतम ज्ञान होए तब तरई। ३६ १७
अति जो गर्ब करै नर लोई, निहचै गर्ब गरंद महं होई। ३७. १
तुम्ह तपसी हो तप जो कीन्हा, तोहरो चरन पद पंकज लीन्हा। ३७.१२
आदि अनादि जाहि कह कहई, सो तिर्गुन में कैसे रहई। ४८.२५
जब जब पुहुमी होखै भारा, तब तब लीला धरै अपारा। ४८.२७
मुए जिवै नाहिं ब्रह्म सरूपा, माया त्रिगुन है अबिगति रूपा। ४८.२८
पुर्ख एक तिर्गुन ते न्यारा, जाकर जल थल स्रिस्टि पसारा। ४८.४०
सतगुर बचन पुछौं मैं तुझसे, सीता लछन कहे निजु हमसे। ५६. १

अकह अंक यह बंक नाल में, पदुम झलाझलि पावही। ५७. २
मिलै सतगुर सब्दकै धुनि, दरस दरिया पावही। ५७. ४

जेहि कुल भक्ति, सोई कुल लायक, नग है नाम सदा मोछ दायक। ५७.१८
साधु दरस गुन महिमा कैसा, कोटिक तीर्थ दान पुन जैसा। ५७.२२
साधु सरस गुन सब नर नीचा, जैसे दिनमनि दिन है ऊँचा। ५७.२४

लखन कहा सतपुर्ख है, जाकर मैं निजु दास।
मोर सेवक हनुमान है, (जो) रावन मानत त्रास। ७४. ०

माया प्रबल है फंद अनंता, ज्ञान घेरि माया बिच तंता। ७६.१६

ज्ञान-रत्न

परम ब्रह्म पंडित सो ज्ञाता, निरालेप पुरइनि ज्यों पाता। १. ३
पुर्ख नाम निजु पारस अहई, भौ मुकुताहल जग में लहई। १. ४

टीका मूल निजु नाम है, रहै प्रान लव लाए।
हंस 'बंस मुकुताइहै, जिंदा जग महं आए। २.०

कामिनि कनक फंद जम जाला, तन भौ थकित ब्यापेयो साला। ४. २
कोइ दुखिया दुख कहत भुलाना, कोइ संत सुज़ान भक्ति गुर ज्ञाना। ४. ७
मनि मानिक महिम डल मूला, संसित प्रेम सहस दस फूला। ४. ६

करो बिबेक बिचारि, अमर लोक अम्रित पिवै।
भव जल जाहि ना हारि, सतगुर दया तरनी दिवै। ५.५

संत सुबुद्धि बचन सत भाखा, सील संतोख रोख रचि राखा॥ ५.१५
अछै ब्रीछ बोह पुर्ख अकेला, सुत नीरंजन सो संग चेला। ६. ८
सोरह सुत सब लोकन बासा, सुक्रित सदा पुर्ख के पासा। ६. ६
सत्तरि जुग रहु सुंन बेसूना, तब नाहिं होते पाप ना पूना। ७. १
तब नाहिं राम रमिता जग आए, जाके बेद् लोक सभ गाए। ७. २
तब नाहिं होतै पवन औ पानी, तब नाहिं संग नाहिं सीव भवानी। ७. ३
तब नाहिं होतै बेद कर मूला, तब नाहिं गर्ब ना ज्ञान अंकूला। ७. ४
तब नाहिं कच्छप ब्राह सरूपा, राव रंक नाहिं अबिगत रूपा। ७. ५
तब नाहि होतै फरह न फूला, तब नाहिं होतै गर्ब अंकूला। ७. ६
तब नाहिं ब्रह्मौ बेद उचारी, तब नाहिं गंगा रहलि बेचारी। ७. ७
तब नाहिं कान्ह रहै कर जोरी, तब नाहिं मुरली मुख महं मोरी। ७. ८
तब नाहिं चांद सुर्ज बिसतारा, तब नाहि भइले दसो अवतारा। ७ ६
आदि अंत नाहीं कुल कोऊ, नाहिं कुल पंडित नाहिं कुल दोऊ। ७.१०
सत्तरि जूग सैन सुख बासा, सत्त पुर्ख कै अजब तमासा। ७ ११
पहिले हुकुम धरती तब कीन्हा, हारि सुमेर जाकन तब दीन्हा। ८. १
मन माया कर ऐसन साजा, अरुझै राव रंक सभ राजा। ८. ६

कहीं जोग कहि भोग बेलासा, कहीं दान कहि पुंन कै आसा। ८
केहि नहिं परम सुन्दरि अति सोभा, केहि नहिं गही माया कर लोभा। ११.१२

भौ गुन ज्ञान नाव सत, करौ बिबेक बिचार।
कहै दरिया सतगुर मिलै, तरनी खेवनिहार। १८०

माया अगम है अनत अगाधी, तिर्गुन तेज सभन्हि कहँ बांधी। १८.१०

मूरति में सूरति बसै, नीरति रही अमान।
(दिल)दरिया दरसन देखिए, तामें पद निर्बान। १६.०

बूझहु ज्ञानी करहु बिबेखा, इह तिर्गुन माया कर रेखा। ३५.१३

जिंदा जीवहिं जग्त में, औ सभ खपै निदान।
आदि पुर्ख वोए अमर है, देखहु निर्मल ज्ञान। ३६.०

माया अनल है बिखम बेकारा, परे पतंग सकल तन जारा। ३६. ५
पवन भछै सो होए भुअंगा, करहि जोग मलेया के संगा। ३६.१६
फिरि फिरि जोइनि संकट महं परई, आतम ज्ञान होए तब तरई। ३६ १७
अतिं जो गर्ब करै नर लोई, निहचै गर्ब गरद महं होई। ३७. १
तुम्ह तपसी हो तप जो कीन्हा, तोहरो चरन पद पंकज लीन्हा। ३७.१२
आदि अनादि जाहि कह कहई, सो तिर्गुन में कैसे रहई। ४८.२५
जब जब पुहुमी होखै भारा, तब तब लीला धरै अपारा। ४८.२७
मुए जिवै नाहिं ब्रह्म सरूपा, माया त्रिगुन है अबिगति रूपा। ४८.२८
पुर्ख एक तिर्गुन ते न्यारा, जाकर जल थल स्रिस्टि पसारा। ४८.४०
सतगुर बचन पुछौं मैं तुझसे, सीता लछुन कहे निजु हमसे। ५६. १

अकह अंक यह बंक नाल में, पदुम झलाझलि पावही। ५७. २
मिलै सतगुर सब्दकै धुनि, दरस दरिया पावही। ५७. ४

जेहि कुल भक्ति, सोई कुल लायक, नग है नाम सदा मोछ दायक। ५७.१८
साधु दरस गुन महिमा कैसा, कोटिक तीर्थ दान पुन जैसा। ५७.२२
साधु सरस गुन सब नर नीचा, जैसे दिनमनि दिन है ऊँचा। ५७.२४

लखन कहा सतपुर्ख है, जाकर मैं निजु दास।
मोर सेवक हनुमान है, (जो) रावन मानत त्रास। ७४. ०

माया प्रबल है फंद अनंता, ज्ञान घेरि माया बिच तंता। ७६.१६

अरट जोग कस्ट करि बांधै, उलटि पवन बहमंड हि साधै। ८०.१३
नेउरी नट नाचै बहुतेरा, काम कठिन तन छोड़ै ना डेरा। ८०.१४

ज्ञान भक्ति निजु भाव, गुरुपद पंकज मन करो। ८३. ५

बैठि बैठि कपि देखहि कैसे, मंकुर बिच प्रतिमा रहु जैसे। ८४. १
जल कुकुरी जल ही में बासा, किमि करि जाए सिंधु कर पासा। ८४.१२
ज्यौं बक खाहि कुसुम्ह कड़ीता, मच्छ भच्छि भच्छि गावहिं गीता। ८४.१३

हंस बंस मति संतगात, सदा सुखी मन सेत।
कहे दरिया दल कंवल पर, भंवरा भौ निजु हेत। ८५. ०

कहे गरुर सूनो हरि संता, तुंह दरसन फल महा अनंता। ६०.२०
मोह पदारथ सब जग हीता, महा महा मुनि मोहन जीता। ६१. ३
अनचर चर अचल महि जेता, राम रूप प्रतिमा सभ सेता। ६३. ६
यह द्रिस्टान्त द्रिस्टि में ऐसा, ज्यों जल उपल पला है तैसा। ६३. ७
पद प्रयाग सो हरिपद नीका, तीरथ बर्त भक्ति बिनु फीका। ६३.१३
जैसे बसन तन पेन्हें बनाई, होत पुरान तब देत अडाई। ६६. ८
इमि करि जन्म बिता चौरासी, काल कर्म ग्रिव कटि जाय फांसी। ६६.१०

भव जल लहरि उतंग अति, गुरु तरनी करि पार।
कन्हरि कर गहि खेवहीं, का करता करुआर। ६७. ०

आवै जाए माया कर रूपा, होए पतन फिरि धरै सरूपा। ६८. ८

जोग जाप तप ध्यान करि, नाना भेष बनाए।
भ्रमति फिरै भव भवन में, फिर फिर जाए नसाए॥ ६६. ०

सुखद संत गुन परदुख हीता, ज्यों द्रुम सरिता जल फल हीता। १०२.१७
परमारथ करि स्वारथ नाहीं, ज्यों जल बुड़ा उबारेउ बांही। १०२.१८
जादु जोग में इमि मति फिरई, बुधि सब छलै फहम नाहिं रहई। १०३.२०
तीनी लोक निरंजन राई, राम रूप है क्रिसुन कन्हाई। १०४.१३
सत पुर्ख छल कबहिं ना करई, माया निरंजन सब बुधि छलई। १०४.१४

सेंधु लहर यह सगुन है, किमि तरनी होय पार।
निरगुन नाम जहाज है, गुन गहि खेंचनिहार॥ १०६. ०

सतगुर भान मिसाल सम, कमल भया संवसार।
बिगसै भंवरा भाव रस चाखै, इमि करि करो बिचार॥ १०७. ०
जल थल सपत पताल लहि, किमि करि करों बखान।
ज्यों प्रतिबेंबु घट देखिए, आपु अकेल अमान॥ ११०. ०
ताहां दीपक के कवन कामा, कोटि तिरथ भरमै का कामा। ११०. ३
संत बचन जनि जानहु मिर्था, आपु सांच नाहिं सकलइ मिर्था। ११०. ७
अइसन संत सुबुद्धि सुजाना, औ नग घना हिरा इन्हें जाना। १११. २
ज्यों द्रुम चंदन परिमल रंगा रगरित चरचित सीतल अंगा। १११. ३
संत सुगंध सितल सम बानी, बिगसित कली भंवर रस सानी। १११. ४
चरन कंज में मंजन तन करु, त्रिबिध ताप नसावही। ११२. २
सतगुर दरस संत सुख हीता, ढारेउ अमीपत्र नवनीता। ११२ ६
पियत प्रेम दुरि मोह दुरंता, बिमल ज्ञान मन एक अनंता। ११२ ७
इमि करि जग में संत सुजाना, ज्यों जल पुरइनि लेप न आना। ११२.१०
सुन्दर नर तन पाइके, भगति ना कीन्ह बिचारि।
भयो किमी बिनु नैन को, बास बिगिंधि संवारि॥ ११३. ०
आरजुन किसुन कथा किछु कहिहै, इमि करि ज्ञान भक्ति किछु लहिहै। ११३.१
निरालेप निरभै पद, संत सदा सुख हीत।
भय भंजन भगवान हो, दनुज दैंत कहँ जीत॥ ११४. ०
इमि करि पुर्ख नाम ते भीन्हा, ज्यों प्रतिबेंबु घट परगट दीन्हा। ११५. ६
घट फूटै फिर जाए समाई, तब प्रतिबेंबु खोजे नाहिं पाई। ११५.१०
अछै असोक पुर्ख सत अहई, अजर अमर गुन इमि करि लहई। ११६. १
भेख सुभेख देख निक लागा, उपर हंस भीतर है कागा। ११६ १३
गुर बिन होहिं न ज्ञान, ज्ञान न होखे भक्ति बिनु।
करि देखो अनुमान, दया जबहिं दिल में बसै॥ ११८. ५
तब सिख कहेउ सुनो गुर ज्ञाता, कहेवो ज्ञान प्रेम निजु बाता। ११८.६
कहो बचन सुनो निज दासा, बिगसै कंवल भंवर सुख बासा। ११९.१
जल में रहै सो जल से भीन्हा, इमि करि संत जगत महँ बीन्हा। ११९.८
चारि अवस्था सभ कहं होई, जागत सपन सुखोपति सोई। १२०.१४
तूरि तेल जरि निर्मल नीका, सर्बस पुरन बेद को टीका। १२०.१५

सत्तनाम

ग्रन्थ-ग्यांन सरोदे (ज्ञान-स्वरोदय)*

भाखल दरिया साहब
मुक्ति के दाता हंस उबारन।

साखी

दरिया अगम गंभीर है, लाल रतन की खानि।
जौ जन मीलै जौहरी, लेहि सब्द पहिचानि ॥ १
सुछुम भेद महिमा अगम, चारि बेद को मूल।
कहें स्वरोदय ज्ञान यह, कमल मानसर फूल ॥ २

ग्रन्थ अस्टदस कहा बखानी, तब सरोद कहं दिल अनुमानी। ३
ज्ञान स्वरोदय कहेउ कबीरा, अपर साधु निज ज्ञान गंभीरा। ४
साहब मम अंतर गति जानी, बोले बिहंसि मधुर म्रिदु बानी। ५
दरिया करहु सरोद उचारा, हंस बंस गमि करहिं बिचारा। ६
आदि अन्त मध्यम तुम्ह जानी, त्रिगुन सगुन वो सत सहिदानी। ७
बाहर भीतर देहु देखाई, जिव दिढ़ होय भगति मन लाई। ८
करै बिचार सुबुधि जन सोई, जाते आवागमन न होई। ९
चीन्है सतगुरु लेहि मुकुताई, लोक जाय जिव काल न खाई। १०

साखी

अन्तर गति मम जानि कै, करता आइसु दीन्ह।
ज्ञानसरोदै ग्रंथ मम, तबहि अरंभन कीन्ह ॥ ११

अजर नाम गुन सत करतारा, धन साहब तुम सिरजनिहारा। १२
धन साहब तुम अदभुदकरनी, अबिगति महिमा सकौं न बरनी। १३
बिधि सिव सेस सारदा डरहीं, नाम अमोल मोल को करहीं। १४
असी लाख पैगंमर आवा, बेकीमति कर अंत न पावा। १५
धन सतगुरु भवनिधि कंड़हारा, आय जगत जिव करहिं उबारा। १६
नाम भानु सत कोटि प्रगासा, नैन बिहूनहिं कवन बेलासा। १७
सो साहब भौ सतगुरु मोरा, गौ दोबिधा भौ नैन अंजोरा। १८
आपुहि हुकुम दीन्ह मोहिं जानी, दरिया ज्ञानसरोद बखानी। १९

---

* यह ग्रन्थ सर्वांश में उद्धृत है और पद्यों की संख्या एक ही क्रम में है।

साखी

उर लोचन मगु देखिये, हाजिर हाल हजूर।
प्रगट प्रताप नाम कर, प्रेम भग्ति बिन दूर॥ २०

चीन्हु न सतगुरु देख पराहू, का मद माया बिषै रस खाहू। २१
एह संसार माया कलवारी, मदे मताए भरम करि डारी। २२
खोजहु सतगुरु प्रेम समोई, उज्जल दसा हंस गुन होई। २३
मुरुचा मकुर सिकिल करु नीकै, तेजि छल कपट साफ करु हीकै। २४
नाम निसान देखु निज पलकै, जगमग जोति झलामल झलकै। २५
उर अंदर जब होय उजियारा, बरै जोति दिल निरमल सारा। २६
मति करु जोर जुलुम जग माहीं, निज स्वारथ रत यह भल नाहीं। २७
भूलेहु जीव बध जनि करहू, वोएल क वोएल जानि परिहरहू। २८

साखी

जस पिआर जिव आपनो, तस जिव सभहि पिआर।
जानहि संत सुबुद्धि जन, जाके बिमल बिचार॥ २९

सोरठा

मकुर मैलि नहि होय, दिल चसमा कहं साफ करु।
सभ घट एकै सोय, महल महरमी होय रहे॥ ३०

निज जिव सम सभ जव जग माहीं, जानहिं साधु ज्ञान जेहि पाहीं। ३१
मति करु खून पिवै जनि दारू, गर्ब गरूरि दूरि करि डारू। ३२
मोह माया मद तेजहु बिकारा, करहु भगति सतगुरु गुन सारा। ३३
जौ तें चहसि मदिप संग बासा आय पिवो मद मय बिनु कासा। ३४
लेहु प्रेम करि ढारि पिलावों, प्रीति नीति करि पियहिं मिलावों। ३५
मंजन जलनिधि संगम गंगा, सत्त सुकित को उठै तरंगा। ३६
करु असनान बिमल मन होई, बारु दया दीपक दिल सोई। ३७
कब तक दोजक आँच से डरहू, भरम सै भिश्ति भरोसा करहू। ३८

साखी

बिनु मसूक की आस की, एहि दोजक की आंच।
मिलि रहना महबूब सै, सोइ भिश्ति है सांच॥ ३९

नबी महंमद दीन पैगंबर, कहा खूब समुझो दिल अन्दर। ४०
गुजर गरीबी बुजुरुग होई, फाका फकर फकीरा सोई। ४१

राज किया दुख काहु न दीन्हां, लेकर करद जबह नहि कीन्हां। ४२
खून खराब मना सभ कियऊ, पहिलहि इबराहिम सै भयऊ। ४३
तेहि कुल जन्म लीन्ह उन्ह आई, निजु कर बिसमिल कीन्ह न भाई। ४४
जौ तुम्ह उमत महम्मद अहहू, मानहु बचन दीन में रहहू। ४५
का माया मद पिअहु दुकानी, तेजि अम्रित बिख अंचवहु जानी। ४६
पिअहु नाम मद असल करारा, रहहु मस्त कल्पन्हि मतवारा। ४७

साखी

एहि भव सोग संताप बहु, निकसि सिताबी आव।
माया कांट अति कठिन है, अब जनि कर फैलाव ॥ ४८

एहु भव सेंधुर कत सभ खाई, भंवर तरंग धार कठिनाई। ४९
जिवहि बोहाय चकोह घुमावै, बिना जहाज पार किमि पावै। ५०
तिर्गुन त्रिबिध धार अति बांकी, बूड़ि मुए भव सभ पौराकी। ५१
नाम जहाज सुकित कंड़हारा, चढ़हिं संत जन उतरहिं पारा। ५२
करहु मान सरवर तुम बासा, मोती मुक्ति सीप गुन दासा। ५३
दरब हीन हित फिरहिं उदासी, एह माया कहु का कर दासी। ५४
माया काहु की भई न होनी, नेक नाम गुन रहि गइ छोनी। ५५
नेक नाम जग जौ तुम चहहू, जोर जुलुम सब से परिहरहू। ५६

साखी

बदी जालिमी जो करै, यह काफर को काम।
नेक मरद डरता रहै, जानै अलह कलाम ॥ ५७

खास खोदाय नबी सैं बरनी, ध्रिग जीवन जग जालिम करनी। ५८
पिवै सराब खून करि खाई, नालति नबी देहु तेहि जाई। ५९
तैसेहिं किस्न गिता महँ कहेऊ, बिरला करि बिबेक सो लहेऊ। ६०
निजु मुख किस्न सो कहा बखानी, जीव दया गीता महं जानी। ६१
सो तेजि पंडित दुरुगा पाठा, मचा सकल जग अवघट घाटा। ६२
जिव बध महा पाप अतिभारी, पंडित जानु ना कहै बिचारी। ६३
जिवन जन्म ध्रिग पंडित केरा, आवहु सतगुरु सरन सबेरा। ६४
जौ तोहि खून सांच मन भावा, करहु खून हम तुमहिं बतावा। ६५

साखी

ज्ञान खरग दिढ़ कर गहो, कामादिक भट मारु।
पांच पचीसहि जीतिकै, करम भरम सभ झारु॥ ६६

सोरठा

जौ चाहसि मदपान, रहु बेहोस भौ सोग सै।
तेजि पांखंड अभिमान, नाम अमल मतवार हो॥ ६७

जौ तुम नाम अमल सुचि चहहू, मिलै तबहि सतगुरु पद गहहू। ६८
प्रेम प्रीति सै देहि पिआई, करै कैफ दिल रोसन भाई। ६९
दिन दिन अधिक मस्त सरसारा, रहै सो कलप कोटि मतवारा। ७०
महा प्रलै की डर नहिं आवै, जा कहं सतगुरु ढारि पिलावै। ७१
बैठहि साधु संत जेहि बारी, यार मिलन की सो फुलवारी। ७२
चुनहीं फूल अधिक रुचि जाहां, दास भाव करि बैठहु ताहां। ७३
साकी सतगुरु प्रेम पिआला, जो जेहि लाएक तेहि तस ढाला। ७४
नाम ज्ञान मद देहि मताई, कैफ सें दिल अंजोर भै जाई। ७५

साखी

छत्र फिरै सिर मनि बरै, झलकै मोती सेत।
कहें दरिया दरसन सही, गुर ज्ञानी का हेत॥ ७६

ताहि बाटिका कर तैं माली, भूलि परा भव भरम कुचाली। ७७
तैं तेहि बन का अहसि पखेरू, इहां आए भौ जम कर चेरू। ७८
हरा तुम्हारा सुमन बगीचा, भूलें तुम आपुन दिल हींचा। ७९
नव बहार है बाग तुम्हारा, भरम करम में भूलि बिसारा। ८०
अब सतगुरु पद परसहु आई, दया द्रिस्टि करि देहिं लखाई। ८१
यार मिलन की जो फुलवारी, दरसे देखहु द्रिस्टि पसारी। ८२
मुलाकात करु तेग परहारू, सोग जुदाई मारि निकारू। ८३
पिअहु अघाय नाम मद भारी, मिटै माया मद सकल खुमारी। ८४

साखी

दुखै सुखै दिन काटियै, खूधो रहिऐ सोय।
ता तर आसन कीजियै, (जो) पेड़ पातरो होय॥ ८५

होहि बेहोस मस्त मतवारा, छूटि जाय भव रुज परिवारा । ८६
माया बिलग की सोग न आवै, आस मिलन की माया न भावै । ८७
यह भव जरा मरन को देसा, छोड़ि देहु जिव कठिन कलेसा । ८८
अछै बीछ छपलोक निनारा, तैं बिहंग तेहि द्रुम की डारा । ८९
भव सागर में परहु भुलाई, चेतहु तबहि भला है भाई । ९०
का सुख एह मुरदा कर गांऊं, मरि मरि जनम होय जिहि ठांऊं । ९१
जौन अछै बट नामहि जाना, एह भव सुख निज सपन समाना । ९२
कहैं दरिया रहु सतगुरु सरना, अवसि एक दिन आखिर मरना । ९३

साखी

प्रेम पियाला पीइ कै, तन मन डारहु वारि ।
होहि बेहोस जग से रहो, ज्ञान सरोद बिचारि ॥ ९४

इमि रसूल से रब कहि दीन्हां, यह जहान पैदा हम कीन्हां । ९५
करै बंदगी सभ दिन मेरा, सुनहु दोस्त सभ उंमत तेरा । ९६
लिखा नबी कोरान में आयत, मेरी उमत करै हकतायत । ९७
करहु बंदगी असल करारा, सो तेजि का तुम्ह मकर पसारा । ९८
अलफी गुदरी सेल्ली डारी, पीर कहावहु दरद बिसारी । ९९
माला कंठी तिलक बनावै, बुत पूजै कोइ संख बजावै । १००
नाना पाखंड भेख संवारा, गुरू कहावहिं एहि संसारा । १०१
गरब गुमान करै मगरूरी, एहि नाहिं होइहैं बंदगी पूरी । १०२

साखी

सरिकत तरिकत मारफत, कहै हकीकत जानि ।
दरद राखै दरबेस है, करै भिश्ति पहिचानि ॥ १०३

मकर बंदगी छाडु सबेरा, नाहिं राजी होय साहब मेरा । १०४
एहि बंदगी से नाहिं बड़ाई, हरगिज भिश्ति मिलै नहिं भाई । १०५
दोजक आंच सहै अति भारी, मकर बंदगी देहु बिसारी । १०६
पाखंड सै प्रभु मिलै ना काहू, कहौ सुभाव सांच पतिआहू । १०७
बरबस पाखंड करहु बनाई, दरब हरहु सभ जग्त रिझाई । १०८
पाखंड मकर सभै बिसरावहु, सुनहु ना स्त्रवन टारि बहलावहु । १०९
गफलत रुई कान महं तेरे, का दे राखु निकालु सबेरे । ११०
मकर बंदगी करि दुख होई, छोड़ दे मकर फकर है सोई । १११

साखी

दरबेसा दिल दरद है, दरबेसा दरबेस।
दरबेसा दिल सबुर है, दरबेसा नहि नेस॥ ११२

अंसल बंदगी साधुन्हं जाना, यार मिलन की बाग अमाना। ११३
सांच बंदगी संतन्हि केरा, मस्त सो मगन गगन में डेरा। ११४
ताहां जाय बैठहु तुम्ह भाई आसिक फूल चुनहिं जेहि ठाईं। ११५
पहिले दिल से बदी बिसारो, गरब गरूरि दूरि करि डारो। ११६
मरना सै पहिले मरि रहहू, असल जो हद है जौ तुम चहहू। ११७
जीवत ही मुरदा ह्वै रहना, अवसि तुमहिं तब पारा कहना। ११८
जेहि बिधि पारा मरै ना मारा, मलकल मौत सो करै बिचारा। ११९
कहै फिरश्तन्हि से अस बरनी पारा जीव हुआ करि करनी। १२०

साखी

निकट जाय जमराज नहि, सिर धुनि जम पछुताय।
बुंद सिंधु में मिलि रहा, कवन सकै बिलगाय॥ १२१

पांच पचीस तीनिउ कर रीती, मन कहं अंवंटि सभन्हि कहं जीती। १२२
अनलहक वोए कहै पुकारी अनलहक है तेहि लाएक सो अधिकारी। १२३
कहै जो वह मैं हौं भगवाना, तौ तेहि कहे ना ताजुब माना। १२४
अगिनि में जाय काठ जो परई जरिकै अगिनि होय सो बरई। १२५
भयउ अदग सो लाल अंगोरा, कहै आगि में अगिनि अंगोरा। १२६
को अब काठ कहै तेहि आई, चीन्है कवन काठ तेहि भाई। १२७
कवनो जल समुंदर में परई, दुजा नाम नहिं कोई धरई। १२८
सभ कोइ जाने सिंधु अपारा, सो जल को बिलगाव निहारा। १२९

साखी

सिंघ निकट नहिं आवहु, करि सिंआर सो प्रीति।
साधु सिंघ मत सरस है, लियो संतगहिं जीति॥ १३०

कहा भेद एह गहिर गंभीरा, ज्ञान करार असल रंग हीरा। १३१
गोप भेद सै जेहिं गमि होई, सो जानै एह अवरि न कोई। १३२
देखहु कोरान पुरान बिचारी, सभ घट अलह बरल उजियारी। १३३
बड़ मुसकिल एह पारख केरा, पारब्रह्म सभ घट घट डेरा। १३४

ऐसी कली अनूपम सोई, बड़ा कस्ट करि चुनें सो कोई। १३५
गरब गुबार भरा दिल तेरा, चिन्है ना सभ घट अलह बसेरा। १३६
मुरुचा जाहि मुकुर में लागा, प्रतिमा देखि ना परै सुभागा। १३७
जैसे भानु तेज परगासा, नैन हीन नहिं देखै तमासा। १३८

साखी

है मगु साफ बरोबरै, माड़ा लोचन माहि।
कवन दोस मग भानु कह, अपने सूझत नाहिं॥ १३९

नाहिं सुरुज अंधरन्हि देखलावै, नाहिं मगु अंधरन्हि चलन चलावै। १४०
दगा कीन्ह परनाम गरूरी, जीव द्रोह अरु गरब गरूरी। १४१
हवा हिरिस कामादिक जेता, आंखि मंड़ा दिल मरुचा तेता। १४२
ब्रह्म सांच जैसे ध्रुव तारा, परा परदा में धड़ा पसारा। १४३
संत सिकिलिगर खोजहु जाई, मुरचा सिकिलि करहु तुम भाई। १४४
दिल ऐना होए साफ तुम्हारा, दिन दिन अधिक जोति उजियारा। १४५
ऐना सिकिल साफ जो करहू, तौ एहि मगु पगु मोहकम धरहू। १४६
तन मन सैं जिन्हि सिकिलि कराई, सहि संकट होए साफ सफाई। १४७

साखी

पहिलै गुर सक्कर हुआ, चीनी मिसरी कीन्ह।
मिसरी सै तब कंद भौ, एहि सोहागिन चीन्ह॥ १४८

जैसे बीज जिमीं महं परई, खाक में मिलै खाक सिर धरई। १४९
किछु दिन बीते सो अंकुराना, मैलि छुटा भूसा बिलगाना। १५०
जीव साफ होय भयउ निनारा, बीज एक से भयउ हजारा। १५१
ऐसी सिकिल जाहि बनि आई, फेरि मुरचा नहिं लागै भाई। १५२
जाम एक जमसेद बनावा, ऐना साह सिकंदर पावा। १५३
है दूनहु कर एक परभाऊ, कहा सो ताकर सुनहु सुभाऊ। १५४
आगै धरि देखै जो कोई, दुइ सत जोजन दरसै सोई। १५५
होय साफ दिल निपट नगीना, कह सिकन्द्र कर वह आईना। १५६

साखी

कहां जाम जमसेद है, कहां सिकन्दर ऐन।
दिल चसमा सभ ऊपरै, अबिगति सूझै नैन॥ १५७

अंजन कहा आंखि कर भाई, दीदा जेहि बिधि होय सफाई। १५८
दिल करु दीप ज्ञान करु तेला, इस्क राखु दिल बदी सकेला। १५९

आसा एक नाम चित धरहू, तै मैं दोबिधा सभ परिहरहू। १६०
प्रेम सुती बाती करु नीकै सत चिनिगी लै बारहु ही कै। १६१
निज दिल दीपक रोसन करहू, सो धूंआं नैनहिं अनुसरहू। १६२
लोचन बिमल होय जब तेरा, अंधपट मिटै होय अंजोरा। १६३
है सुरुमा महं गुन यह भाई, जो बिनु सतगुर काहु न पाई। १६४
सरग नरक की सुधि बिसरावै, जियतहिं मरै तबहिं बनि आवै। १६५

साखी

एकै ब्रह्म सभै घट, जहां देखु तंहं एक।
हिदै कमल उजियार भौ, करहु सरोद बिबेक॥ १६६

इंगला पिंगला सुखमनि नारी, बूझहु ताकर भेद बिचारी। १६७
इंगला नाम चंद करु बासा, पिंगला दहिन भानु परगासा। १६८
ताके मद्ध सुखमना अहई, चलै सो दूनो सुर में लहई। १६९
पांच तत्तु तंहं करै प्रकासा, अगिनि पवन छिति नीर अकासा। १७०
अगिनि तत्तु सुर ऊपर बहई, त्रीछन चाल पवन कर अहई। १७१
प्रिथी सौंह जो चलै चकोरा, नीचै बहै नीर ततु जोरा। १७२
छिनु बामे छिनु दहिने बासा, दुबो सुर चलै सो तत्तु अकासा। १७३
पांचों तत्तु चलै सुर माहीं, पारख अहै साधु जन पाहीं। १७४

साखी

अगिनि स्याम हरिअर पवन, प्रिथी पीत रंग होय।
अरुन नीर आकास ततु, सेत बरन है सोय॥ १७५

पांच तत्तु कर इन्द्री पांचा. भयउ बचन यह मानहु सांचा। १७६
अगिनि तत्तु से नैन प्रकासा. लोभ मोह ताहां करै निवासा। १७७
नासिका पवन तत्तु से भयऊ गंध सुगंध बास तिहि पयऊ। १७८
प्रिथी तत्तु कर मुख भौ आई, भोजन अंचवन ताकर भाई। १७९
रसना लिंग नीर ततु अहई, मेथुन कर्म स्वाद सो लहई। १८०
ततु अकास से स्रवन बनावा. सब्द कुसब्द सुनै कहं पावा। १८१
चित में अगिनि नाभ में पवना, कहां सो लखहु जहां रहु जवना। १८२
प्रिथिमी हिदै नीर ततु भाला, तत्तु आकास सांस में डाला। १८३

साखी

कान नाक मुख आंखि सुर्ती, पांचो मुद्रा सांच।
गोचरि खीचरि भोचरी, चचरी उनुमुनि पांच॥ १८४

तत्तु एक तेहि पांच प्रकीती, लखहिं साधु जन ताकर प्रीती। १८५
अस्ती मेद रोम तचु नारी, प्रिथी तत्तु से पांच सुधारी। १८६
रकत बीज पित लार पसीना, नीर तत्तु से भयउ नबीना। १८७
आलस त्रिखा नींद भुख तेजा, अगिनि तत्तु से पांच सहेजा। १८८
चलन गान बल सकुच बिबादा, पवन तत्तु कर एहि मरजादा। १८९
लोभ मोह संका डर लाजा, ततु आकास कर सकल समाजा। १९०
रज गुन अगिनि तमोगुन बाऊ, सतगुन प्रिथिमी नीर सुभाऊ। १९१
अधिक पांच से भयउ पचीसा, तिन गुन मिली तीस तैंतीसा। १९२

साखी

पांच तत्तु की कोठरी, तामें जाल जंजाल।
जीव ताहां बासा करै, निपट नगीचहिं काल॥ १९३

आंखि नाक जिभ्या तुचु काना, पांचो इन्द्री ज्ञान प्रधाना। १९४
कर पगु लिंग गुदा मुख होई, पांचों इन्द्री कर्म समोई। १९५
एह दस इन्द्री कर परकारा, बूझै पंडित करै बिचारा। १९६
मन एकादस सभकर राजा, जो जीतै सो साधु समाजा। १९७
पांच पचीस सबै बस होई, मन इन्द्री कहं जीतै सोई। १९८
सो मन रहु ब्रह्मा कै पासा, सो मन सिव संग करै बिलासा। १९९
सो मन राम क्रिस्न संग रहेऊ, सुर नर मुनि कोई पार न लहेऊ। २००
सो मन चारि बेद बिस्तारा, सो मन ब्यास ग्रन्थ अनुसारा। २०१

साखी

सो मन तीनी लोक महं, काहु परा नहिं चीन्ह।
धन साहब सतगुरु धनी, मोही लखाय जिन्हं दीन्हं॥ २०२

चन्द सुरुज कर सुनहु बिधाना, दहिने बामें सुर अनुमाना। २०३
एक मास पछ दुइ समोई, क्रिस्न पच्छ सूरज कर होई। २०४
परिवा दूजि तीजि लगि भानू, त्री तिथि चन्द भानु त्री जानू। २०५
सुकल पच्छ चंदा कर बासा, तीजी तिथि लगि चंद प्रकासा। २०६
त्रीथी सूर त्रिथी है चंदा, एहि बिधि दूओ करहि अनंदा। २०७
सोमवार बुध गुरु सुक जानी, चंदा के दिन चारि बखानी। २०८
रबि सनि मंगर तीनिउ बारा, सूरुज के दिन करहु बिचारा। २०९
थिर चर कारज दुइ जग माहीं, चर सूरज थिर चंदा पाहीं। २१०

साखी

थिर कारज को चंद है, चर कारज कहं भानु।
तत्तु को पारख पाय कै, जग्त काज करि जानु॥ २११

भूखन बसन बिवाह बिधाना, ओषध प्रीति जोग अरु ध्याना। २१२
ग्रंथ लिखै घर महल बनावै, बाग बाटिका कूप खोदावै। २१३
गढ़पति होय सो गढ़ में जाई, बोए अनाज किसान बनाई। २१४
बामें सुर में सुफल संवारा, एह सभ थीर काज संवसारा। २१५
चर कारज कछु कहा बखानी, दहिने सुर एह सब ठानी। २१६
लेन देन औ भोजन करई, बिद्या पढ़ै वही लिखि धरई। २१७
हित अनहिंत चाहै तहं जाई, जुधी करै कछु मांगे भाई। २१८
पाहन मोल लेइ हथियारा, भोग नेहान न्याव अनुसारा। २१६

साखी

पूरब उत्तर जाइये. दहिने सुर परवेस।
बामे सुर करु जात्रा, दच्छिम पच्छिम देस॥ २२०
जो सुर चलै पगु सोई, पहिलै राखु संभारि।
तीनि डेग हैं भानु के चंदा के पग चारि॥ २२१

प्रथिमी नीर तत्तु दुइ अहई, थिर चर कारज दुइ सभ लहई। २२२
सुकल पच्छ मधुमास सोहावा, क्रिस्न पच्छ सभ बीति बितावा। २२३
परिवा प्रातहिं करै बिचारा, चलै कवन सुर तत्तु निहारा। २२४
जो चंदा में प्रिथिमी बहई, संमत साल नीक सो अहई। २२५
नीर चलै जौ इंगल माहीं, उत्तिम संमत जो चलि जाहीं। २२६
नीर अवनि पिंगल परकासा, टुक मद्धिम है बारह मासा। २२७
अगिन बाउ ततु दहिने सूरा, परै अकाल जल होवै न पूरा। २२८
तत्तु अकास चलै सुर दोई, अन ना उपजै दुरभिछ होई। २२६

साखी

संमत भरि को फल कहै, जेहि ततु भेद लखाय।
परगट कहा सरोद मैं, चाल रंग समुझाय॥ २३०

सोरठा

गरभवती जो कोय, औचक पूछै आनि जौ।
दहिने बेटा होय, बामे सुर कन्या कही॥ २३१

जों पूछै ताकर सुर सोई, चलै तो कुसल छेम सभ होई। २३२
अनमिल सांस न मिलै ठेकाना, तहाँ हानि कछु निश्चै जाना। २३३
पूरन दोउ कर दोउ सुर बहई, दुइ सुत होय सरोदै कहई। २३४
जो परसंग कछु पूछै कोई, करहु बिचार स्वांसा में सोई। २३५

चंदा चलत जौ पूछै आई, लगन बार तिथि जोग सोहाई। २३६
बामै सौ ऊँचै होय कहई, जानहु सुफल काज सो अहई। २३७
नीचैं पीछै दाहिनै ओरा, सुर दाहिने कोउ पूछै तोरा। २३८
लगन बार तिथि जोग ठेकाना, सुभ कारज निश्चै परवाना। २३९

साखी

जोग लगन तिथि बार पछ, मिलै सो पूरन काज।
इन्हं महं दुइ एक ना मिलै, तस तस मद्धिम साज॥ २४०

सोरठा

कोइ कहीं मत जाय, सुखमनि के परगास में।
ज्ञान ध्यान लव लाय, जगत काज कहं हानि है॥ २४१

बिछिक सिंघ बिख कुंभ पुनीता, चारिउ रासि चंदा कर हीता। २४२
करक मेख मंकर और तूला, चारिउ रासि भानु कर मूला। २४३
कन्या मीन मिथुन धन चारी, कस्ट भाव सुखमना बिचारी। २४४
किस्न पच्छ परिवा कहं भानू, प्रातहि चलै लाभ किछु जानू। २४५
सुकल पच्छ परिवा कहं चंदा, भोरहिं बहै सो परम अनन्दा। २४६
मास एक पाख दुइ अहई, अनमिल चलै हानि कछु लहई। २४७
प्रातहिं परिवा सुखमन जाना, सो पख हानि कलह अनुमाना। २४८
लखै साधु जन भेद बिचारी, ज्ञान गमी जा कहं अधिकारी। २४९

साखी

का इंगला का पिंगला, कवनो सुर कहं होय।
बहतै सुर पूछै कोई, पुछै ताकर सुर सोय॥ २५०

सोरठा

कारज पूरन होय, पूछै पूरन वो रही।
सुर दूनो कहं जोय आपन पूछै ताहु कर॥ २५१

अहै सरोद बहुत बिस्तारा, ज्ञानी जन निजु करहिं बिचारा। २५२
असल भेद सुर कहा बखानी, थोरहि मैं समुझै सब ज्ञानी। २५३
आठ जाम पिंगल परकासा, तीनि बरख में काया बिनासा। २५४
ताकर दुगुना सो सुर बहई, जुगल बरख काया तब रहई। २५५
उदै भानु जों होय पखवारा, अब जीवन खट मास बिचारा। २५६
रैनि चंद बासर होय सूरा, एहि बिधि उगै मास एक पूरा। २५७

जिवन मास खट करहु बिचारी, भेद सरोदे लेहु निरुआरी। २५८
मास एक सुर पिंगल बहई, अब दुइ दिन कर जीवन अहई। २५६

साखी

गंगा जमुना स्रोसती, तीनिउ परिगो रैत।
मुख से स्वांसा चलत है, काया बिनासन हेत ॥ २६०

चन्दा निस दिन होय परकासा, दिवस चारि करु एहि बिधि बासा। २६१
दिन सहस मे काया बिगोई, बचन सरोद म्रिथा नहिं होई। २६२
जस जस चंद उदै अधिकाना, तस तस काल निकट नियराना। २६३
बासर बीस उदै होय चंदा, तब हीं काया परा जम फंदा। २६४
एक जाम सुखमना प्रकासा, निश्चै जानहु काया बिनासा। २६५
रजनी पिंगला बहै सुधारा, बासर इंगला करु पैसारा। २६६
हंस गवन को दुरि संजोगा, काया सुखि तन ब्यापु न रोगा। २६७
ध्रुव मंगल नहिं दरसे आई, दुइ पख ऊपर काया नसाई। २६८
पवन साधना जोगी करई, अंतहु काया पतन होय मरई। २६६

साखी

काया पतन सभ की भई, रुधिर नीर को अंग।
जरा मरन को देस है, भवनिधि बिखम तरंग ॥ २७०

पांच तत्तु यह जेहि बिधि भयऊ, भेद सरोदै कहि समुझयऊ। २७१
तत्तु अकास सभन्हिको भूला, तासो पांचतत्तु समतूला। २७२
पवन अकास तत्तु से होई, पवन से अगिनि तत्तु भौ सोई। २७३
पावक से जल भौ परकासा, जल से प्रिथी तत्तु सुनु दासा। २७४
परम मगन से सभै देखाई, बिनु देखै नहिं कोउ पतिआई। २७५
जैसे कछुआ मिटी समाना, आपु में आपु देख दिल माना। २७६
इश्क प्रेम घन जीवन सारा, साहब सतगुरु भयउ हमारा। २७७
नरक सरग को सुधि बिसराई, तन मन बारि सभै किछु पाई। २७८

साखी

बेबाहा के मिलन सै, नैन भया खुसहाल।
दिल मन मतवाला हुआ, गंगा गहिर रसाल ॥ २७६

एह भव सोग सभै बिसराई, कामिनि कनक ना कर फैलाई। २८०
तब मैं आपु आपु मैं देखा, समुझि परा मोहिं सकल बिसेखा। २८१

मै फरजंद पुरुख सत केरा, रोसन दिल चिराग है मेरा। २८२
जस मैं तस तैं देखु बिचारी, सुझै ना बिनु दीपक अंधियारी। २८३
केहि कारन भूला तुम रहहू, एहि भव सोग कहां दुख सहहू। २८४
देखु हिऐ करु निज अनुमाना, लीला जाकर जुगल जहाना। २८५
बादसाह सोइ साहब मेरा, दुनियां दीन दुवों तेहि केरा। २८६
तन तुम्हार जिन्हिं सकल बनावा, दुइ जहान सभ सुभग सोहावा। २८७

साखी

गहिर भेद यह कहत हैं, जिवहि कितारथ हेत।
बुझहु बिबेक बिचारि के, अब जनि रहहु अचेत॥ २८८

तन सरबस है जुगल जहाना, दहिने बामे भांति दुइ जाना। २८९
दुइ पग दुइ कर पल्लौ पांती, नासा स्रवन नैन दुइ भांती। २९०
रद मुख दसन कपोल उरैहा, इमि दुइ भांतिन सरबस देहा। २९१
दुइ जहान एहि भांति बिसाला, तामें जल थल सरग पताला। २९२
पद पताल सीस असमाना, मधि भवसागर अवनि समाना। २९३
माटी मासु रकत सोइ नीरा, नदी नार रग सकल सरीरा। २९४
दिल गरकाब संधु अनुमानी, गिरिवर तन में अस्ति बखानी। २९५
रोम बार तन उपर पसारा, बन उपबन बाटिका संवारा। २९६

साखी

दरिया भेदहि जानियै, एह तौ काया ब्रह्मंड।
सात गिरह नव टूक तन, सात दीप नव खंड॥ २९७

सोरठा

काया मसाला चारि, गंज भेद दिल जानियै।
ज्ञान सरोद बिचारि, ज्ञानी होय सो गुन लहै॥ २९८

पुल समान नासिका अहई, आवत जात सांस जहां रहई। २९९
मेहर तराजू भौंह बनावा, तेहि दुइ पलरा नैन लगावा। ३००
दोउ दम चांद सुरुज नित चलही, तारागन लिलार में रहही। ३०१
स्रमकन होय झलकि तब आवै, बुझै भेद जो गमि करि पावै। ३०२
जागत रहहु सो दिन है भाई, सोय रहहु सो निसु भौ आई। ३०३
खुसदिल तेरा सो भएउ बिहाना, दिल में सोग सांझ सोइ जाना। ३०४
सरग नरक दुवो लेहु बिचारी, सुख है सरग नरक दुख भारी। ३०५
जौ नहिं रोग सोग दुख लहई, एहि तेजि सर्ग भिश्ति का चहई। ३०६

साखी

दिल समुंद्र घन सोग है, सुंठ विबेक समीर।
लै जल उपरे घीचिया, बरसै नैनन्हि नीर॥ ३०७

बिरह बिबेक सो बरखा होई, बिहसहु दामिनि दमकै सोई। ३०८
हंसहु ठठाय सो घन घहराना, उदै अस्त भरि सभ केहु जाना। ३०९
जो पल दम संस चलै तन माहीं, दिंन पख मास बरख जुग जाहीं। ३१०
जब जीवहि जमराज सतावा, तबहिं कल्प मै प्रलै जनावा। ३११
धन धन साहब सिरजनहारा, बून्द एक जल स्रिष्टि संवारा। ३१२
दुनो जहान काया जिन्हि कीन्हां, ता मौं सभ एह उपमा दीन्हां। ३१३
काबा किबिला सभ निजु हेरा मुलुक महम्मद दिल है तेरा। ३१४
जिभ्या नैन नासिका काना, प्रथम काया संग चारि प्रधाना। ३१५

साखी

एही किताबे चारि हैं, कहै बोलो कोउ जान।
तौरैते अंजील है औ जमूर फुरकान॥ ३१६

एही नबी कर चारो यारा, औअल असल पीर एह चारा। ३१७
एही तरीकत चारो जानी एही वजीफा चारि बखानी। ३१८
एही फिरिश्ता चारि कहाया, एही चारि खम्हां तन लाया। ३१९
एही चारि चारो अंस सोहावा, खाक बाव एह आतस आवा। ३२०
एही चारि बेद पहचानौ, रिग जुग साम अथरबन जानौ। ३२१
एही चतुरमुख ब्रह्मा सोई, एही चारि मुद्रा है सोई। ३२२
पावक अवनि पवन औ पानी, चारो तत्तु एही कहं जानी। ३२३
एही चारि हैं चारिउ कोना, एहीं में खाक एही में सोना। ३२४

साखी

दरिया तन सैं नहि जुदा, सभ किछु तन के मांहि।
जुगुति जोग सो पाइयै, बिना जुगति कछु नाहिं॥ ३२५

जो कोइ जुगुति जाग में आवै दीद बदीद देखि सभ पावै। ३२६
तीनि लोक गुन तन का माहीं, ढूंढ़त अंत मिला काहु नाहीं। ३२७
धन कारीगर सिरजि संवारा, मानुख तन सभ ऊपर सारा। ३२८
हहु सरोद तुम साहब केरा, अलख ब्रह्म गुन भेद बसेरा। ३२९
तुमहिं सुभग मंकुर हौ भाई, तोहि में साहब सुरत देखाई। ३३०

तैं पंछी तेहि अजर अमाना, सैलि करत इहां आय भुलाना। ३३१
गाफिल आनि परा केहि हेतू, देखु आपु होय आपु संचेतू। ३३२
तेजहु गाफिलत लहहु बड़ाई, अब जनि एहि भव रहहु भुलाई। ३३३

साखी

खास अपाने मुख कहा, नबी से अलह बिचार।
बुजुरुग आदम जात है, जीव चराचर झार॥ ३३४

जुगित जोग मानुख तन माहीं, कस्तूरी गुन दिल तेहि पाहीं। ३३५
अकिल वोजीर साथ करि दीन्हां, दरस दिदार आंख दुइ कीन्हां। ३३६
नाम उचारन जीभ संवारी, सुनन नाम गुन स्रवन सुधारी। ३३७
घ्रानि नासिका अजब सोहावा, पांच सीप मनि पांचहु पावा। ३३८
है हदीस में नबी बखाना, हाफिज फाजिल होय सो जाना। ३३९
पाक मोम दिल बंदा तेरा, कहा अलाह असर है मेरा। ३४०
बहुत ऊंच पदवी तुम पावा, दिल तुम्हार रब के मन भावा। ३४१
एह सुनि जो तुम्हें होहु सयाना, तुरित करहु दिल साफ अपाना। ३४२

साखी

काम क्रोध मद लोभ जत, गरब गरूरी झारि।
बिमल प्रेम मनि बारि के, राखहु दिल उजियारि॥ ३४३

बादसाह रब दुनो जहाना, ता सै मिलि रहु अबहि मिलाना। ३४४
का भूलन्हि संग रहहु भुलाई, ज्ञानी जन कहं दुख नहिं भाई। ३४५
सिंघ करै लौखरि संग प्रीती मरद करै हिजरन्हि सै रीती। ३४६
अपन मान मरजाद गंवाई, अस कुसंग करि अपजस पाई। ३४७
सिंघ ठवन्हि रहु सिघन्हि पासा, मरद मरद संग मजलिस बासा। ३४८
प्रेम पंथ पर तन मन वारो यार मिलन की राह संवारो। ३४९
जब होय प्रगट प्रेम दिल माहीं, तब मगु पूछहु सतगुरु पाहीं। ३५०
सोई देखावहिं सकल ठेकाना, आपु में आपु मकान अपाना। ३५१

साखी

जैसे अनभो किछु कहीं, सुनै काहु से कोय।
आपु कबहिं देखा नहीं, जान चहत है सोय॥ ३५२

किमि कर पावै ठौर ठेकाना, अनभो जग चाहै कोइ जाना। ३५३
रहबर मिलै तौ पहुंचै जाई, जिन्हि देखा सो देहि देखाई। ३५४

जैसे बीच जिमीं में परई, समै सजीवन जाय अंकुरई। ३५५
जौं कोउ मदत न करै सहाई, निहफल जाय फलै नहि भाई। ३५६
तेहि बिधि प्रेम हिदै में होई, बिन सतगुरु फल लहै न कोई। ३५७
प्रथम प्रेम मगु मोहकम पांऊं, यार मिलन कर खोजहु ठांऊं। ३५८
पहिलै सतगुरु सौं कर प्रीती, संत वचन मानहु परतीती। ३५९
इश्क प्रेम पथ वड़ कठिनाई, ठग बटवार लागै बहु भाई। ३६०

साखी

दरिया डरु मत ताहि से, ज्ञान वान तोहि पास।
मदत बेवाहा साह का, ठग बटवारन्हि नास॥ ३६१
एक भरोसा एक बल, एक आस विसवास।
एक भरोसा नाम कर, जाचक तुलसीदास॥ ३६२

बूझहु तुलसी कर यह साखी, पतिबरता एक पति चित राखी। ३६३
एह जग बेस्वा बहुतभतारी, एक भगति करु तन मन वारी। ३६४
एकै नाम आस चित धरहू, दूजा दोबिधा सब परिहरहू। ३६५
एकै ब्रह्म सकल घट बासी, बेद कितेब दुनो परगासी। ३६६
धेनु अनेक बरन जिव जानी, छीर सेत एक रंग बखानी। ३६७
जो कोइ सुनै अचंभौ करई, बीझ एक सभ मेवा फरई ३६८
कत मीठा कत खाटा कसेला, कत करुआ तीता कत मेला। ३६९
कत बिख कत अम्रित सम होई, देखहु करि विचार जग सोई। ३७०

साखी

जैसे स्वाती बून्द से, कत उपजै संसार।
बिलग बिलग सभ जानियै, गुन कीमति बिस्तार॥ ३७१

सीप सिंधु में मोती भयऊ, गज मस्तक गजमुकुता पयऊ। ३७२
केदलि कपूर सुगंध सुहावा, बेनु बंसलोचन होय आवा। ३७३
अहि मुख बिखम गरल भौ आई, एहि बिधि सकल जीव समुझाई। ३७४
एक बूंद से सब संसारा, भयउ चौरासी लच्छ पसारा। ३७५
स्वाती अमर पुरुख निज मूला, इहां आय भव सभ कोइ भूला। ३७६
जहां तहां ढूंढ़ै सभ कोई, आपु में आपु सुझै नहिं सोई। ३७७
जैसे म्रिगमद है म्रिंग पासा, आपु न चीन्है ढूंढ़त घासा। ३७८
आगै पीछै दौरि सो जाई, कहां से ग्रानि बासना आई। ३७९

साखी

है खुसबोई पास में, जानि परै नहि सोय।
भरम लगे भटका फिरै, तिरथ बरत सभ कोय॥ ३८०
अंमर लगा अकास मैं, महि मंडल के पार।
सुरति डोरि कहें चेतिए, जौं मकरी गहि तार॥ ३८१
[प्रेम धगा अति सुबुक है, सुन्दर साधन एत।
ज्यों मकरी महि तार गहि, टूटे परा अचेत॥ ३८२]

जो तुम निजु आपुन घर चहहू, आपु में आपु देखु मिल रहहू। ३८२
जियतहि मुकुति होय तब सांचा, मुए चौरासी करिहै नाचा। ३८३
तब नहिं यार मिलन संयोगा, एहि भौ चौरासी बड़ सोगा। ३८४
जग से निकलि रहहु मैदाना, बदी बुराई तेजहु जहाना। ३८५
सभ तोंहि पास जुदा किछु नाहीं, मानुख तन अनूप जग माहीं। ३८६
साहब भेद सरोद बतावा, जोग जुगुति कहि प्रगट जनावा। ३८७
पाप पुन्य आसा बिसराहू, अजपा सोहं सुती समाहू। ३८८
जाति बरन कुल देह कर नाता, मुए परा झरि तरिवर पाता। ३८९
काया माया सकल पसारा, बिलग बिहरि होय रहहु निनारा। ३९०
सत महिमा कछु कहि नहि जाई, सुभग मनोहर सुन्दरताई। ३९१
महिमा नाम ना कछु कहि जाई, सुनहु संत हिरदै चित लाई। ३९२

साखी

दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअंत।
सभ मैं तै तौहि मैं सभै, जानु मरम कोइ संत॥ ३९३
दरियानामा पारसी, पहिले कहा किताब।
सो गुन कहा सरोद में, गहिर ज्ञान गरकाब॥ ३९४

[ग्रन्थ ग्यांन सरोद सम्पूरन जो आदर्स मो देखा सो लिखा ग्रन्थ लिखल तय२ भेल सावन सुकल पछ तिथी एकादसी रोज सोमवार के सवा पहर दिन उठे लिखल भेल सकल दरयापथी साधु संत और गुरुजन जन को सतनाम सतनाम पहुँचै तारीख २६ सावन रोज मंगल सन १२६६ साल फसली]

दरिया-सागर

तीनि लोक के ऊपरै, (तहं) अभय लोक बिस्तार।
सत्त सुकित परवाना पावै, पहुँचै जाय करार ॥ २.०

क्रिपावंत किरपा जब कीन्हा, दयासिंधु सुखसागर दीन्हा। २.१

कोटि कामिनि चंवर ढारहि कोटि किरना द्वारहीं ॥ २.१३
कोटि ब्रह्मा बेद भनते अनंत बाजा बाजहीं। २.१४
जोति मंडल कोटि कलसा हीरन्ह की परगासहीं ॥ २.१५
झलक झालरि लागु चहुँ ओर मोति मनि छबि छावहीं। २.१६

जम जालिम जग करै बिकारा, पाखंड धरम करै संसारा। ५. १
चौदह चौकी जम कै होई, बिनु सतगुरु नहि पहुंचै कोई। ५. ३
चौदह मंत्र भेद जो पावै, जाइ छ्पलोक बहुरि नहि अवै। ५. ४
इगला पिंगला सुखमनि नारी, सार पवन तहं करै पुकारी। ५.१७
ओही पवन षट चक्रहि छेदा, होय गुरु ज्ञान बुझै यह भेदा। ५.१८
तह त्रिकुटी में रहा समाई, तहवां काल सकै नहिं जाई। ५.१९
कोटिन्ह तेज जोति परगासा, कोटिन्ह पंडित बेद निवासा। ६. ३

ज्ञान रतन की खानि, मनि मानिक दीपक बरै।
सब्द सजीवन जानि, अमर पुरी अम्रित पियै ॥ ७. ०

अभय निसान धुनी तहं होई, अजर अमर पद पावै सोई। ८. २
पारस सब्द कहा समुझाई, सतगुरु मिलै तो देहि देखाई। ८. ८
चौदह मंत्र बान संधाना, मारहु जम के पद निर्वाना। ९. ८
कामिनि कनक फंद. जम जाला, चौदह चीन्हि करम का काला। ९.१०
सतगुरु जानि के बंदहु पाँऊ, भरम त्यागि तब हिरदै लाँऊ ॥ १०. १
तीन लोक जम दारुन अहई, चौथे लोक पुरुष वह रहई। १० ७
सत्तलोक सत्त का बंधा, बिनु सतगुरु जस जड़मति अंधा। १०.१०
जब पांजी पर पहुँचै जाई, मांगै मोहर देउ देखाई। ११. ८
अति आनंद सुख बरनि न जाई, अमरपुर अम्रित रस पाई। ११.१३
सत्त पुरुष सत लोकहि डेरा, काया कबीर करहिं जग फेरा। १२ ७
हरि भगतन भगताई कीन्हा, तिरगुन फंद तेहु नहिं चीन्हा। १२.१४

अमरलोक महं पहुँचै दासा, देखहिं अबिगति अजब तमासा। १२.१६
गर्ब गुमान भुले सब ज्ञानी, बिद्या बेद पढ़ि मरम न जानी। १२.२१
पानी पबनहु ते मन तेजा, जहाँ कहो तहवां मन भेजा। १२.२३
सो मन मिलेऊ दरिया दासा, सबद देखि मिटि जम कै त्रासा। १२.२४

कोटि कंचनं दान देइह, कोटिन्ह कथा पुराननं। १२.२७

आवें जाय मया कर चीन्हा, उपजै बिनसै तन होइ भीना। १३. ५
मन के पछ सब जगत भुलाना, मन चीन्है सो चतुर सुजाना। १४. ६

अठ दस कंवल भँवर तह गुंजै, देखहु सब्द बिचारि।
कह दरिया चित चेतहू, देहु भरम सब डारि॥ १५. ०

मूल सब्द धुनि होत अंजोरा, सुरति बांधि राखौ एक ठौरा। १५. १
सुरति डोरि चेतो चित लाई, मूल सब्द की यही उपाई। १५. २
सूर चंद एक घर आवै, तबही डोरी ले बिलमावै। १५. ३
ठीका आगे हैगा मूला, प्रेम सब्द जहवाँ अस्थूला। १६. ६
सेत धजा निस दिन फहराई, अम्रित झरि तहं बहुत सोहाई। १६.१०
हीरा मानिक है परगासा, संखन्हि मनी रचे चहुंपासा। १६.११
ऐसा है निजु लोक निवासा, झरै गुलाब मुख अम्रित बासा। १६.१२
अमी तत्तु सुरती लव लावै, सहजहि लोक पयाना पावै। १६.१३
सत्त सब्द निजु प्रेम बढ़ावै, संत साधु का सेवा लावै। १६.१४
चोर साधु चीन्है चित लाई, तेहि से प्रेम करौ कछु भाई। १६.१५
गूंगा गहिरा ज्ञान बिचारा, दिब्य द्रिस्टि का करु अनुसारा। १६.१६
सत्त सब्द जिन्ह केवल जाना, अभय लोक सो संत समाना। १७.१६
जीया जंतु एक जिव जाना, एकै ब्रह्म सभन्हि पहचाना। १७.२२
निसु बासर जो ध्यान लगाई, सत्त नाम दूजा नहिं गाई। १७.२४

माया चेरि है बंस की, जो बूझै निजु सार।
ज्यों आवै त्यों खरचई, अदल चलै संसार॥ २०. ०
मिटहि संसय सत सब्द से, जो गुरु मिलै करार।
सतगुरु बिना पार नहिं, भरमि रहा संसार॥ २२. ०

ऐसन गुरु जो मीलै आई, तब हंसा छप लोकहिं जाई। २२. ३
जाय छप लोक जहं पुरुष अमाना, अछै ब्रिच्छ जहं सेत निसाना। २२. ४

हीरा एक त्रिकुटि महं होई, हीरा ध्यान धरहु नर लोई। २२. ६
ताला कुंजी गहि लागु केवारा, चोर न मुसै ज्ञान रखवारा। २२. ८
मन की फंद परा संसारा, जाल मीन ज्यों करै अहारा। २४. १
आतम देव पुजहु तुम भाई, का जग पाती तोरहु जाई। २४. ७

जोति मंडल रबि कोटि है, को करि सकै बखान।
दरिया पदहिं बिचारिये, ब्रह्म रूप को ज्ञान॥ २६. ०
दरिया भव जल अगम है, सतगुरु करहु जहाज।
तेहि पर हंस चढ़ाइ कै, जाय करहु सुख राज॥ २७. ०

सब घट ब्रह्म और नहिं दूजा, आतम देव कै निर्मल पूजा। २८. ६

खरच खजाना मालवर, महल करै बहु ख्याल।
सतगुरु के परचे बिना, (ज्यों) काग कुबुद्धी ब्याल॥ ३०. ०
चौरासी के भवन में, कलप कोटि बहि जाहिं।
ज्ञान बिना नहिं बांचिहैं, फिरि फिरि भटका खाहिं॥ ३१. ०

काया अग्र द्रिस्टि अस्थाना, अगम निगम खबरि जो जाना। ३३. ६
छत्र आठ कै पावै भेदा, तब ही करिहै सबद निषेदा। ३४. १

जहां साँच तहं आपु हहिं, निसि दिन होहि सहाय।
पल पल मनहि बिलोइये, मीठो मोल बिकाय॥ ३५. ०

भगति बिहूना सो नर जानी, सूनी मसक रहै बिनु पानी। ३५. ६

कनक कामिनि के फंद में, ललची मन लपटाय।
कलपि कलपि जिव जाइहै, मिथ्या जनम गंवाय॥ ३६. ०

कर्म कागद सब जाइ ओराई, जब जमदूत निकट चलि आई। ३६. ३
हंस अकुलान फिरै दस दीसा, जबहिं दूत भेजा जगदीसा। ३६. ५
ले जगदीस नरक महं डारा, जनम कतेको करै पुकारा। ३६. ७
जीव ब्रह्म का कहौं उपाई, खोजो जीव ब्रह्म मिलि जाई। ४१. ३
सत्त पुरुष की एह प्रभुताई, कोटि पाप जन निजुपुर जाई। ४२. २
सब्द पाय के दृढ़ करि धरई, जाय छप लोक नरक नहिं परई। ४२. ११
उनुमुनि मूल कंवल कर फूला, उपजै प्रेम होइ अस्थूला। ४३. १२
गुप्त चरन में प्रान समाना, त्रिकुटी सुख पवन अस्थाना। ४३. १३
पांच पचीस अपने बसि होई, क्रोध मोह त्रिस्ना सब खोई। ४५. ३
तीनि लोक भौ बेद पसारा, ता में चीन्हों ज्ञान बिचारा। ४५. ८

ता में सतगुरु सबते न्यारा, चौथ लोक ताको पैसारा। ४५. ६
जुग जुग रहै पुरुष के पासा, अविगति देखै अजब तमासा। ४५. १३
जिवन मुक्ती जन रहत भव, सिंधु पार उतारहीं। ४५. १५
सोई गुरु निहचय चित भावै, जो जन जियतहि मुक्ति बतावै। ४६. ६
कह दरिया एक नाम है, मिथ्या यह संसार।
प्रेम भगति जब ऊपजै, उतरि जाय भव पार॥ ५०. ०
सो सठ रठकठ मति का हीना, साधु संगति नहिं चिन्हे बिहीना। ५५ २
आतम देव अनंत कै पूजा, आतम छोड़ि देव नहि दूजा। ५५. ८
बोलता पुजै सब संसय मिटाई, तब हंसा छप लोक समाई। ५५. १६
जाय छप लोक बहुरि नहिं अवना, जुग अनंत सुख सागर पवना। ५५. २०
पुरुष ज्ञान भगति है नारी, ज्ञानहि भगति बीच नहिं डारी। ५८. ७
पहिले भगति तब होखै ज्ञाना, पहिले सत तब पुरुष अमाना। ५८. ८
नेम अचार षट कर्म नहीं, नाहीं पांति को पान।
चौका चंदन ठहर नहीं, मीठा देव निदान॥ ६१. ०
पहिले मुख में प्रेम लगावै, तब पीछे ले हाथ उठावै। ६१. २
जो दाफा जन होय हमारा, ताहि देहु परसाद बिचारा। ६१. ३
हिंदु तुरुक हमैं एकै जाना, जो एह मानै सब्द निसाना। ६१. ७
जो दाफा में आवै जानी, तासे भर्म केहु जनि मानी। ६१. ८
अन पानी सब एकै होई, हिंदु तुरुक दूजा नहिं कोई। ६१. १०
पेरे तिलहि तेल अलगाना, सबद चीन्हि ऐसे बिलगाना। ६३. १
चौथ लोक सतगुरु की बानी, ताको खोजहु पंडित ज्ञानी। ६५ ६
गुप्त सबद जो पावै कोई, ताही देखि चला जम रोई। ६६ २
बारह मंडल नौ खंड पृथवी, तामें सबद निनार।
उलटि पवन षट चकहि छेदै, देखहु कया बिचार॥ ६७. ०
ओइ अनहद जब लागै ताला, सूर चढ़ाय चंद मनि माला। ६८. २
(यह) झिनझिन जन्तर बाजै भाला, पीवै प्रेम होय मतवाला। ६८. ३
अजपा कै यह भेद बताई, पांच तत्तु तहं परगट पाई। ६८. ४
बिना तत्तु नहिं सबद समोई, कह दरिया समुझै जन कोई। ६८. ७
मूल बिहंगम डोरी भाई, रबि ससि पवन जो सुन्न समाई। ७०. ४
होय निरति तब सुरति देखावै, सार सब्द तब परगट पावै। ७०. ६

गगन मंडल बिच सुरति संवारी, इंगला पिंगला सुखमन नारी। ७०. ७
हठ निग्रह करि भूले जोगी, आसन बांधि पवन रस भोगी। ७१. १०
तन साधत फिरि भये असाधी, पांच पचीस कहु कैसे बांधी। ७१. ११
ज्यों मन देखै तत्व बिचारी, पांच बोधि तन सदा सुखारी। ७२. ३
बांधे पचास साधि कै डोरी, हुकुम सदा राखै कर जोरी। ७२. ४

एह मन काजी एह मन पाजी, एह मन करता एह दरवेस।
एह मन पांड़े एह मन पंडित, एह मन दुखिया करत नरेस॥ ७३. ०

छप लोक की अकथ कहानी, पावै अम्रित निरमल बानी। ७३. ६
बिनु जल नदी रही बढ़ि आई, विना नाव कर केवट खेवाई। ७४. ८
बिनु अनहद धुनि बहुत सोहाई, अमिमंडल जहं पुरुष बनाई। ७४. ६

सार पवन औ चौदह मंतर, लीजै ज्ञान बिचारि।
छय चक्र अठदल कंवल, कर्म काल सब जारि॥ ७७. ०

निरति सुरति में आवै जाई, जातें जोतिहि जोति समाई। ७७. २
दुइ कर पवन सूर और चन्दा, चढ़ै गगन सब कर्म निकंदा। ७७. ३
अभय नाम निजु जानै कोई, पीवै प्रेम सुधा रस सोई। ७७. ४
इंगला पिंगला सुखमनि फेरै, लाय कपाट गगन गहि घेरै। ७७. ५
छय चक्र निजु करै निमेरा, सो जोगी घर पहुँचु सबेरा। ७७. ६
सत्त सब्द जौं करै बखाना, सेत धजा निसि दिन फहराना। ७७. ७
आवै अनुभौ देखु बिचारी, आठ कंवल घर भीतर बारी। ७७. ८
नवीं नाटिका करहु निमेरा, पिवै प्रेम अस्थिर घर डेरा। ७७. ६
दसवैं द्वार रंध करु बंदा, जहां काम नित करै अनंदा। ७७. १०
ग्यरहें ज्ञान छत्र सिर धरई, पुरुष होय जग में अवतरई। ७७. ११
पढ़ि पाखंड पथल का पूजा, आतम देव अवर नहिं दूजा। ७६ १०
हिंदु तुरुक इमि दुनौं भुलाना, दुनौं बादि ही बादि बिलाना। ८३. १८
वो हरिनी वो गाइहि खाई, लोहू एक दुजा नहिं भाई। ८३. १६

दरिया भगत कहावै सोई, जाके मनि उंजियार।
अवरि भरमि भठ भठ मुए, निर्भय नाहिं गंवार॥ ८५. ०

ना कछु बोले ना कछु खाई, कहु तेहि पूजे का मिले भाई। ८६. ३
सबदै तारै सबद उबारै, सबदै चढ़ि छप लोक सिधारै। ८६. ७
सबदै घोड़ा हंस असवारा, सबदै चाबुक ज्ञान करारा। ८६. ८
सबदै पैठे मांझ मंझारा, सबदै पीयै प्रेम अधारा। ८६. ६
सतगुरु जात पांति नहिं लीजे, जातिं खोजै तेहि पातक दीजै। ८७. १४
सुरति खोजै तब निरति समाई, पूरन ब्रह्म ज्ञान होइ जाई। ८८. १२

पाएर दीप नारि ओइ रहही, मंगल चार अम्रित मुख लहही। ८८. १३
छिटिकि सुगंध हंस मुख डारी, बोलहि मंगल बहुत सुढारी। ८८. १४
सासतर गीता भागवत, पढ़ि पावै नहिं मूल।
निहचै लागै प्रेम जब, तब पावै अस्थूल॥ ९१. ०
बेदै अरुझि रहा संसारा, म्रितक अंध परलय तब डारा। ९८. ३
तब नहि करता किरतम कीन्हा, तब नहिं निगम नेति अस चीन्हा। १०२. १
तब नहिं छीत न सेस महेसू, तब नहिं सुरसरि आदि गनेसू। १०२. २
तब नहिं दया धरम परसंगा, तब नहिं उतपति तब नहिं भंगा। १०२. ४
तब नहिं जज्ञ जोग नहिं जापा, तब नहिं मुक्ती तब नहिं पापा। १०२. ५
अब कछु उतपति करन चहे, चिंता चेतनि चीन्ह।
नारि पुरुष रस रंग में, एह कछु इच्छा कीन्ह। १०३. ०
मनसा रूप कामिनि जो कीन्हा, अष्टभुजी छबि छेकै लीन्हा। १०३. १
निगम चारि उतपति भयो, चतुरानन मुख बैन।
उचरैउ सब्द अनाहदा, झंझकार मद ऐन॥ १०४. ०
सुनै स्रवन मुख अम्रित आमी, तीनि लोक महं अंतरजामी। १०५. ३
निर्गुन सर्गुन दुनहुं ते न्यारा, सत सरूप ओइ बिमल सुधारा। १०५ ८
करम जोग जम जीतै चहई, चढ़ि पिपीलका फिरि भव रहई। १०७. १
बीहंगम चढ़ि गयउ अकासा, बइठि गगन चढ़ि देखु तमासा। १०७ २
इंगला पिंगला सुखमनि घाटा, (तहं) बंकनाल रस पीवै बाटा। १०७. ५
संत रहनि भव बारिज बारी, सदा सुखी निरलेप बिचारी। १०८ ७
जलकुकुहीं जल माहिं जो रहई, पानी पर कबहीं नहिं लहई। १०८. ८.
दही मथे घ्रित बाहर आवे, फिरि के घ्रित नहि उलटि समावै। १०८. ९
फुल बासे तिल भया फुलेला, बहुरि तील तेल नहिं मेला। १०८ १०
इमि कर संत असंत गुन कहई, भौ निकलंक नाम गुन गहई। १०८. ११
माया चीन्है संत है सोई, ज्ञान भगति का करै बिलोई। १०९. ४
क्रिस्न राम मनही को रंगा, मन ते उतपति मन ते भंगा। १११. १०
मनहीं चीन्हि परम पद पावै, मन तजि जोगी जग समुझावै। १११. ११
तन सरवर मन देखु बिचारी, तामें सलिता तीन सुधारी। ११२. १
वा में मानसरोवर अहई, हंस बंस कौतुक तहं करई। ११२. २
अदुइत ब्रह्म बिराग मत, ब्रह्म ज्ञान निर्लेप।
आपु चिन्हे औरै चिन्है, आतम दरसी देव॥ ११७. ०

निर्भय-ज्ञान

अब कहौं कपूर का लेखा, एहे भेद बिरला केहु पेखा। २. ६
वह केदलि बिनु लाए न लागे, अपनी सुरती सो वह जागे। २. ७
फल फूल कबहीं नहिं होई, वह केदलि बहुधा नहि सोई। २. ८
नव कोपर सुरवाति जो आना, केदली भाग जो आन तुलाना। २. ६
वोहि अवसर स्वाती झरि लाई पहिला बूंद परा जो आई। २. १०
मास एक महं गोट बंधाना, कपुर बास जो आए तुलाना। २ ११
पारखि जन निकालि लै आवै, हाट माहं लै आनि दिखावै। २ १२
कोइ केदली नहिं करै बखाना, नाम कपूर सभै कोइ जाना। २. १३
प्रथमहि दूध सभे केहु जाना, दूध में बास जो रहा समाना। २. २०
पावक पर अच्छा जो कीन्हा, ठंढा करि जोरन तव दीन्हा। २. २६
मथनी मथी लैन जो लीन्हां, कांजी खोटा दुरिकै दीन्हां। २. २७.
लैनू लीन्हं बास नहिं पाई, बिनु पारस कांजी होए जाई। २. २८
पावक पारस दीन्ह लगाई, खरा हुआ अच्छा होए जाई। २. २६
हुआ थीर बास बिलगाना, बास सुबास सभै केहु जाना। २. ३०
जैसे चमेली फूल जो जाना, बास तील में जाए बखाना। ४. ११
तिल में बास केहु नहि जाना, कोइ अकूफ ही सो पहचाना। ४. १२
तिल पेरै तेल जब आना, बास फुलेल सभी कोइ जाना। ४. १३
चौदह जम का कीन्ह बिचारा, ज्ञान समुझि कै होए निनारा। ५. २१
प्रथमहि दूत बिसंभर जोरा, तेरह चाकर ता संग जोरा। ५. २२
मन मकरंद एक दूत कहावै, बैठे मस्तक ज्ञान डोलावै। ५. २३
नैना दूत बसै एक नाऊँ, नैनन्हि नीर चलावै ठाऊँ। ५. २४
छिनता तन में बहुतै लावै, कबहीं सुख नाहीं दुख पावै। ५. २५
चौथा दूत जो काम लगावै, कामिनि देखिकै मन ललचावै। ५. २६
पंचए भोग रस रोग बहूता, राति दीन नींद रहु सूता। ५. २७
छठए दूत खट रस भोगा, तन भौ थकित ब्यापै रोगा। ५. २८
बैठे पांजी कामिनि पासा, धै धै जिव कहं करै बिनासा। ५. २६
जोरा भंवरा आठो बारा, नारि बटोरि कै करै पुकारा। ५. ३०
गौधन कुटि कै देहि सरापा, करहीं भ्रास राखहि सभ दापा। ५. ३१
नवें दूत जलधर जो रहई, उठी प्रात जल मैं लै बोरई। ५. ३२

दुखित तन के बहुत दुखावै, रोम रोम सभ जार कंपावै। ५. ३३
दसएँ दूत रसना पर रहई, मद मासु एहि चित धरई। ५. ३४
अहार दैत को जीव खिआवै, अंत काल के नरक देखावै। ५. ३५
स्रवन दूत स्रवन में राखा, सुनै न सांच झूठ लै भाखा। ५. ३७
तामस दूत सभन्हि के पासा, नेकी देखि करहि उपहासा। ५. ३८
पचीस प्रक्रिती कीन्ह निरुआरा, ज्ञानी होए सो करै बिचारा। ६. १
सुरज उदै नहिं लेहि नेवासा, कहै दूपहर दिन परगासा। ६. २
प्रथमहिं झूठ सुबाहै भाखै, यह प्रक्रिती निस्चै दिल राखै। ६. ३
दुजे प्रक्रिति तीरथ के धावै, मन चंचल होए काल नचावै। ६. ४
तीजै प्रक्रिति के एहै सुभाऊ, पथल पानि से दील लगाऊ। ६. ५
चौथा प्रक्रिति एही लव लावै, पत्थल पर लै जीव चढ़ावै। ६. ६
पंचए प्रक्रिति बेदर्द दिल आना, निसदिन खून करै बैमाना। ६. ७
छठए प्रक्रिति खट दरसन लौ लावै, देइ अर्घ सुरुज सिरनावै। ६. ८
सतईं प्रक्रिति भूत का पूजा, निसदिन अंधदेव नहिं दूजा। ६ ९
अठईं प्रक्रिति है आठो बारा, करै बर्त सभ तन के जारा। ६ १०
नवईं प्रक्रिति सभ झूठ बराई, कहे झूठ पुन्य सभ जाई। ६. ११
दसईं प्रक्रिति दस रस माता, कामिनि संग रहै चित राता। ६. १२
एगारही प्रक्रिती झगरा लावै, निसदिन ग्रिहि में रारि बढ़ावै। ६ १३
बारहि बरबस सभ से बोलई, छोरै सांच झूठ कहं लरई। ६ १४
तेरहे चंचल कुमति होहि पासा, निसदिन काल करै गरासा। ६ १५
चौदहि भेख पाखंड देखावै, पाखंड रूप सम जग डहकावै। ६. १६
पंदरहि प्रक्रिति सत है हांसी, तातैं काल लगावै फांसी। ६. १७
सोरहे प्रक्रिति माया के धावै, बहु बिधि माया जतन करावै। ६. १८
सतरहिं प्रक्रिति एही जढ़ जानी, खाए खरचै नहि मूढ़ प्रानी। ६. १९
अठारहि प्रक्रिति मोह है फांसा, कोपि काल जो करै गरासा। ६. २०
उनइस प्रक्रिती कुल कर्म मानी, माया मद मति रहै सो प्रानी। ६ २१
बिसईं बिसमै निसदिन धरई, कबहीं ना सुख दुख सब सहई। ६. २२
एकइस प्रक्रिती काम लव लावै, कोपि काल फिरि तेहि नचावै। ६. २३
बाइसै बैठ मूढ़ के पासा, जानी जीव आपु गए नासा। ६. २४
तेइस प्रक्रिति त्रिबिध संसारा, त्रिबिध ज्ञान कथै असरारा। ६. २५
चौबिस प्रक्रिति मोह के फांसा, निसदिन ब्यापिक जमके त्रासा। ६. २६
पचीसइं नवधा भग्ति मन लावै, मनमत ज्ञान नीसदिन गावै। ६. २७

प्रेम-मूला

प्रेम कंवल जल भीतरै, प्रेम भंवर लै बास।
होत प्रात सूपट खुलै, भान तेज परगास॥ १.०

जैसे म्रिगा नाद लव लाई, सुनत स्रवन धुनि प्रेम समाई। १. ४
प्रेम बसी होय प्रानहि दीन्हा, सन्मुख जीव हाथ कै लीन्हा। १. ५
जब लगि प्रेम दिआ नहि बरई, भवन कूप अँधियारा परई। १. ६
बिना प्रेम नर जमपुर जावे, होए प्रेम अम्रित फल पावे। १. ८

प्रेम प्रीत करु नाम से, भौ जल जाय न हारि।
बिना प्रेम नहि भगति है, कंवल सुखे बिनु बारि॥ २०

जल में कुमुदिनि चंद आकासा, ऐसो प्रेम प्रीति परगासा। २. २
चात्रिक प्रीति स्वातिही लागा, जीवन जन्म सो भयउ सुभागा। २. ३
ज्यों टेक चित चात्रिक राखा, बारिसु बूंद अम्रित रस चाखा। २. ७
जैसे कनक सोहागा रासा, ऐसे प्रेम पुर्ख के पासा। ३. १
चकोर प्रीति पावक से कीन्हा, चुंगत अगिनि प्रेम रस भीना। ३. २
नैन सोइ जेहि प्रेम समाना, बिना प्रेम है सील पाषाना। ३. ४
बिना प्रेम नैना है खाली, बिना बाटिका जैसे माली। ३. ६
बिना प्रेम मानुष है कैसा, मधु काढ़ी छारै मुख जैसा। ३. ७
बिन प्रेम जन गावै कोई, भाट भांड़ गनिका मत वोई। ४. ४
प्रेम पंथ पगु दीन्हो जानी, अब तो दोसरि होए न आनी। ४. ८
लोकै लाज सकल कुल गारी, तोरि डारि सब जग परचारी। ४. ६

तोरै नाता जाति का, (जन) निजु पुर पहुँचै जाए।
आपे बूझै प्रेम है, निरखि नाम निजु पाए॥ ५.०

प्रेम पतंग दीपक महं हूला, तन सभ जरिगो लागु न सूला। ५.१
साहस नारि करै पिय लागी, भसम भया तन देखत आगी। ५.२
प्रेम प्रकास अगिनि नहि जाना, भया प्रेम जनु चढ़ी बिवाना। ५.३

प्रेम मारग बांको बड़ो, समुझि चढ़े कोइ जानि।
ज्यों खांडो की धार है, सतगुर कहा बखानि॥ ६.०

तपै धूप जो बास अमाना, धरती प्रेम जो रहा समाना। ६.४
जल लै पवन चढ़ा असमाना, बारिस बुन्द धरती पर आना। ६.५
जनमि अंकुर जिमि बहुत सोहाई, (चहुँ) दिस गुलजार रहा जो छाई। ६.७
जैसे पवन जों जलहि उड़ावै, ऐसे सब्द जीव मुकुतावै। ६.६
अब कहौं कपूर की खानी, एई भेद बिरला केहु जानी। ७.१
यह केदली बिनु लाए जो लागै, अपनी सुरती से वह जागै। ७.२
फल फूल कबहीं नाहि होई, वह केदली बहुधा नहि सोई। ७.३
नव कोपर सुरवाति जो आना, केदली भाग जो आए तुलाना। ७.४
वोहि अवसर स्वाती झरि लाई, पहिला बुंद परा जो आई। ७.५
मास एक महं गोटा बंधाना, कपुर बास जो आए तुलाना। ७.६
पारखि जन निकालि ले आवै, हाट माहं ले सभहि देखावै। ७.७
कोइ केदली नाहि करै बखाना, नाम कपूर सभै कोइ जाना। ७.८*
बहुत सेत ज्यों सुबुग सोहाई, बहुत जतन कै राखहि जाई। ७.६

सेवाती तो गुर भए, केदलि काया बंधान।
नाम सजीवनि प्रेम रस, मिला सो निर्मल ज्ञान। ८. ०

प्रथमहि दूध सबै कोइ जाना, दूध में बास जो रहा समाना। ८. ६
पावक पर अच्छा जो कीन्हा, ठंढा करि जोरन तब दीन्हा। ८.१०

जोरन जावन देइ के, दही भया सब थीर।
बास बिमल तब पाइये, मथनी मथो सरीर॥ ६.०

ज्यों लगि प्रेम जुक्ति नहि होई, तब लगि बास पावै नाहि कोई। ६. ७
है खुसबोई घट महं भाई मथो प्रेम बासना पाई। ६. ८
छीर करु छिमा दया करु दही, मन मथनी महि ध्रित सो अही। १०. १
सील संतोष खंभ करु भाई, सुरति निरति का नेता लाई। १०. २
तनु करु मटुकि प्रेम करु पानी, निकले ध्रित सुबास बखानी। १०. ३
करमहि जीव मलिन जो कीन्हा, सत्त बिना ब्रह्म भौ छीन्हा। १०. ४
पारस प्रेम जो मइलि कटाई, सतगुर सब्द खोजो चित लाई। १०. ५
आगे द्रिस्टि गगन के धावै, खोजै प्रेम मुक्ति फल पावै। ११. १
देखत झरि तहां बहुत सोहाई, परिमल अग्र बास तहां पाई। ११. २

---

* इस ग्रन्थ के ७. १—७. ८ पद्य लगभग वही है, जो 'निर्भयज्ञान' के २.६—२. १३ पद्य।

बिना प्रेम नाहि फूलै वारी, सींचत जल फूला फुलवारी। ११. ४
तिल पर फूल जो दिया बिछाई, घैंचि बासना तिलहि समाई। ११. ७

तिल को तेल फुलेल भयो, मेटा तिल का नावं।
सतगुर नाम समानेश्रो, बसेउ श्रमरपुर गावं॥ १२.०

स्वाती को जल पारस लीन्हा, भ्रिगी प्रेम जुक्ति जो कीन्हा। १२. ५
कीट कै पंख तोरि कै लीन्हा. घर अंधियार बैठ का कीन्हा। १२. ६
मुख सो पारस मुख मे दीन्हा, सात रोज में भ्रिंगी कीन्हा। १२. ७
कीट के गुरु भ्रिगा कीन्हा, मानुख के गुरु सतगुरु चीन्हा। १२. ६
सहस्र बर्ष भुअंग बिषि पासा, मानुख पांव कबहिं नाहिं ग्रासा। १३. २
जोग जुक्ति सूरज कहं बिनवै, त्रिमिरि छूटि जबै भी दिनवै। १३. ३
बिषि से माति जलाजल भएऊ, स्वाती को बुंद अम्रित पएऊ। १३. ४
मिटिगो बिषि मनि उपजी आई, भयो सिद्ध तन तपत बुझाई। १३. ५
ज्ञान जुक्ति प्रेम है मुक्ता, पाप पुन्य कबहीं नहि जुक्ता। १३. ६

कह दरिया सतगुर खोजो, (सत) सब्दहि करो बिचार।
अब गुर सस्ता जक्त में, निरमल मिला ना सार॥ १४.०

परा बुंद मस्तक पर आई, बिन चुंगल कांजी होए जाई। १४. ५
चुंगल चोच मस्तक पर दीन्हा, छूअत जल भीतर को लीन्हा। १४. ६
उपजै मुक्ता निरमल सारा, चुंगल पारस भेद निनारा। १४. ७
सतगुरु प्रेम प्रीति निज भेदा, तबहिं ज्ञान निजु करौ निखेदा। १४. ६
सीप आस सेवातिही लाई, बिनु पारस मोती नहिं पाई। १५. २
बरसि बूंद स्वातीही दीन्हा, सुपट खोलि इच्छा भरि लीन्हा। १५. ३
ऐसो मोती सिरजनहारा, सतगुरु खोजहु ज्ञान बिचारा। १६. ३
हीरानख पंछी है नाऊँ, अस्ट सिला परबत के ठांऊँ। १८. १
स्वाती जबै बरिस गो पानी, पंछी सो जल पिवै बखानी। १८. २
हीरा उपजै मनि उजियारा, बूझो पण्डित करो बिचारा। १८. ३

हीरा तो हंसा भए, पंछी सकल सरीर।
सत्त नाम के जानके, भया हिरंमर थीर॥ १६.०

जाके प्रेम बसे दिन राती, सो जन कबहिं ना परै कुभांती। १६. १
विचलै काम चलै तब हारी, दीन्हो पगु टारत नाहि टारी। २१. ५

राजा कै मधुरी बानी, रोए रोए कहै मोह की रानी। २१. ६
आठो अंग ढील के लीन्हा, नैन रोदन बहुतै जो कीन्हा। २१. ७
वासों ज्ञान कहब समुझाई, को हम को तुम्ह कहँवाँ आई। २१. ८
का कर नाती पूत परिवारा, झुठी बनीजी करै संसारा। २१. ९
तब मोहनी मुख अचल दीन्हा, सकुचै बैन बोलै तब लीन्हा। २१. १
धन्य सोई जिहि खसमहि जाना, धन्य सोई सत बरतहि ठाना। २३. ४
रांड करै मरद कै साजा, निस दिन औगुन होत अकाजा। २४. १
बिपरिति देखै औगुन होई, वाके संग बसै जनि कोई। २४. २
बैठु सभा महं सो कुलहीनीं, बेस्वा की गति ता कर चीन्ही। २४. ३
भगती करै ग्रिही में रहई, अपना स्वामी से सुख लहई। २४. ७

त्रिया भवन बिच भगति है, रहे पिया के पास।
मन उदास नहि चाहिए, चरन कंवल की आस। २५.०

ब्रह्म-चैतन्य

जारा ए मनं अमरपूर लोके।
आवा ए गमनं बहुरि नहि सोके। ३४

तिलेषू विहितं तैलं, एवं ब्रह्म प्रवर्तते।
क्षीरं च ... ... गम्यते। ६३

सत्यमी योगी जानामि, (यो) दसमी ध्याए अंसनम्।
दरिया दिल सागरस्य, कोकिलश्च मम दासकम्। १४१

दोइतं सर्ब जीवश्च, अद्वैतं सत्य पुर्षकम्।
दोइतं जगत भर्मत्यं, अदोइतं ब्रह्म उच्यते। १६३

ब्रह्म-प्रकाश *

पृ० ३– योगी लोग सर्व संकल्प से रहित होकर आत्मा से आत्मा को आत्मरूप होकर आत्मा में देखते हैं और शुद्ध चैतन्य का मनन करते हैं।

पृ० ५—सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीन गुण माया के हैं।

पृ० १२—फिर इसी पिण्ड में स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक भी हैं। कंठ से भृकुटि तक स्वर्गलोक, नाभि से कंठ तक मृत्युलोक और नाभि के नीचे पाताललोक है।

पृ० १३– प्राण से मन की उत्पत्ति है और प्राण की चंचल अवस्था ही मन है। प्राण के स्थिर होने से मन स्थिर होता है। स्थिर मन ही आत्मा है। आत्मा स्थानभ्रष्ट होकर, अधोदेश में उतर कर मन होकर जब कंठ के नीचे रजोगुण के स्थान में आता है तब कामना की उत्पत्ति होती है। मन को इन्द्रियों से हटा लेने पर मन जीवित नहीं रह सकता।

पृ० १४—गुरु द्वारा समझ कर इनका अभ्यास करना चाहिए।

पृ० १६—गुदा से एक अंगुल ऊपर और लिङ्गमूल से एक अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तार में एक कन्द है। वह कन्द, एक योनि जिसका मुख पीछे को है, उसी स्थान में है। इस कन्द से ७२००० बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकली हैं जो सारे शरीर में व्याप्त हैं। उसी स्थान में कुण्डलिनी की भी स्थिति है।

पृ० २०– इस शरीर में साढ़े तीन लक्ष नाड़ियाँ हैं जिनमें इड़ा, पिंगला और सुषमना प्रधान नाड़ियाँ हैं। ७२००० नाड़ियाँ मूलाधार से निकली हैं, वे ही शाखोपशाख होकर ३५०००० हो गई हैं।

मूलाधार पद्मस्थित एक योनि है। इस योनि के वाम दक्षिण भाग में इड़ा, पिंगला नाड़ी स्थित हैं और दोनों नाड़ियों के बीच अर्थात् मध्य योनि के मध्य सुषमना की स्थिति है। उसी सुषमना के आधारमंडल में अर्थात् उसके मध्य में ब्रह्म-रंध्र है।

इड़ा और पिंगला नाड़ियां सुषमना नाड़ी की अधोवदना हैं। इड़ा नाड़ी मूलाधार से निकलकर मेरुदण्ड से लौटकर आज्ञाचक्र की दाहिनी तरफ से होकर वाम नासापुट को गई है। वैसे ही पिंगला नाड़ी भी आज्ञाचक्र की बांयीं तरफ से होकर दाहिने नासापुट को गई है। सुषमना नाड़ी मेरुदण्ड द्वारा

पृ० २१—तालुक होकर ऊपर को त्रिवेणी घाट होते हुए शिर में जहाँ, प्रत्यक्ष केशों का मूल है, चली गई है।

इड़ा और पिंगला ये दोनों योगनाड़ियां मेरुदण्ड के वहिर्देश में वाम और दक्षिण भाग में समस्त चक्रों का वेष्ठन करके आज्ञाचक्र के अन्त तक

---

* इस पुस्तक के उद्धरणों में मूल लेखक के वाक्यविन्यासों को ज्यों-का-त्यों रखा गया है।

धनुषाकार से भ्रूमध्य के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र मुख में सङ्गति होकर नासारन्ध्र में प्रवेश करती हैं और सुषमना नाड़ी, जो मेरुदण्ड के मध्य देश में है तथा जहाँ इड़ा और पिंगला मिली हैं, वहीं पर जाकर मिली है। इस स्थान को संतजन त्रिवेणी स्थान कहते हैं।

सुषमना और मूलाधार पद्म संलग्न हैं। सुषमना का मुख दो जगहों पर आबद्ध है। एक मुख तो ब्रह्मरंध्र से अतीत होकर नासिकाछिद्र के कुछ

पृ० २२—ऊपर आबद्ध है। इस मुख को इड़ा और पिंगला इन दोनों नाड़ियों ने एकत्र सम्मिलित होकर आबद्ध करके निम्नमुखी कर दिया है और विज्ञान प्रकाश करने नहीं देते हैं। दूसरे मुख को निम्न देशकी चैतन्यमयी कुण्डलिनी त्रिकुण्ड भाव से अपने पुच्छ को उसमें प्रवेश करके आबद्ध कर रही है जिसकी वजह से सर्वत्र वायु प्रवेश नहीं होने पाती और किसी नाड़ी में कुछ भी क्रिया प्रकाशित नहीं होती। इसलिये योगी लोग इड़ा और पिंगला का निरोध करते हैं।

इड़ा नाड़ी से वायु बांयी नाक के छिद्र होकर आती-जाती है और पिंगला नाड़ी से दाहिनी नाक के छिद्र से आती-जाती है और सुषमना नाड़ी से नाक के दोनों छिद्रों से स्वांस आता-जाता है। इड़ा, पिंगला और सुषमना इन तीनों नाड़ियों के द्वारा ही प्राण, अपान आदि नाड़ियों का प्रवाह समस्त शरीर में है।

योगियों के लिए इड़ा रात्री है और पिंगला दिन है। इड़ा-पिंगला की चाल

पृ० २३—बन्द होने पर सुषमना का प्रवाह होता है। सुषमना गुप्तधारा है।

इड़ा-पिंगला-सुषमना के परे स्थितिभाव प्राप्त होता है।

संतों ने इड़ा का नाम गंगा और चन्द्र भी कहा है, पिंगला का नाम यमुना और सूर्य कहा है और सुषमना का नाम सरस्वती और अग्नि रखा है।

दिन में चन्द्रस्वर और रात्रि में सूर्यस्वर का प्रवाह रखना चाहिए तथा सुषमना का प्रवाह परमात्मा में ध्यान लगाने के समय रहना चाहिए।

पूर्वोक्त त्रिवेणी का स्नान संतजन इस रीति से करते हैं कि दृष्टि की धारों को इनके भंडार की धार शिवनेत्र अर्थात् तीसरे तिल के स्थान पर एक एक शब्द की सहायता से सुरति द्वारा स्नान हो सकता है।

पृ० २४—पूर्वोक्त वायु के भीतर और बाहर आने-जाने का रास्ता बंक नाड़ी है। यह नाड़ी

नाभि की बाईं ओर मांस में हृदय से लेकर मध्यभाग छाती में थोड़ा-सा व्यंग मारती हुई है। यह नाड़ी मूलाधार से निकल कर रुद्रग्रंथि में जाकर मिली है।

पृ० २५— मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र ये षट्चक्रों के नाम हैं। ये छः चक्र सुषमना के छः स्थान हैं। इनका स्थान पिंड में पीछे की ओर है। आगे की तरफ केवल उनकी पीठ है जो गढ़ा मात्र शरीर में दिखाई पड़ती है।

मूलाधार चक्र :—मूलाधार चक्र का स्थान मेरुमध्यस्थ लिग और
पृ० २६— गुदा के बीच में है। इसका देवता गणेश, शक्ति सिद्धि, दल चार, यंत्र चतुष्कोण, तत्त्व पृथ्वी और तत्त्वबीज लँ है। इस चक्रका नाम मूलचक्र और गुदाचक्र भी है। अपान वायु यहीं पर रहती है। मुक्तासन, अश्विनी मुद्रा और मूल बंध द्वारा अपान वायु को ऊपर की ओर किया जाता है। कुंडलिनी को यहीं से जगाया जाता है। व, श, ष, स ये चार अक्षर चार दलों में सुशोभित हैं। ब्रह्मग्रंथि और स्वयंभूलिंग भी इसी स्थान पर हैं।

स्वाधिष्ठानचक्र :—स्वाधिष्ठानचक्र का स्थान मेरुमध्यस्थ लिंगमूल में है। यह षट्दल कमल है। ब, भ, म, र, ल, इन छः वर्णों से छः दल सुशोभित हैं। वर्ण इसका सुन्दर, तत्त्व जल, तत्त्वबीज बँ, यंत्र अर्धचन्द्र, देवता ब्रह्मा, शक्ति सावित्री है।

यह षट्दल कमल लिंगमूल से ऊपर की जो मांसगुद्दी है और जो दबाने से पीछे की ओर अधिक दबती है, ऐन उसके सामने पिछली तरफ है।
पृ० २७— इसको इन्द्रिय-कमल भी कहते हैं। इसी चक्र से गुदाचक्र अर्थात् मूलाधार चक्र में पलटा जाता है। यह योगियों के योग की आरंभ भूमि है।

मणिपूरचक्र :—मणिपूरचक्र का स्थान मेरुमध्यस्थ नाभि है। यहाँ पर पहले अष्टदल कमल है, फिर दशदल कमल है। दशदल कमल ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, इन दश वर्णों से सुशोभित है। इस दशदल कमल का देवता विष्णु, शक्ति लक्ष्मी, वर्ण नील, तत्त्व अग्नि, तत्त्वबीज र, यंत्र त्रिकोण है। समान वायु का स्थान नाभि में है। विष्णुग्रन्थि और इतर लिंग भी यहीं पर है।

अनाहतचक्र :—अनाहतचक्र का स्थान मेरुमध्यस्थ हृदय में है। इसका देवता रुद्र, शक्ति गौरी, तत्त्व वायु, तत्त्व बीज यँ, वर्ण अरुण और दल द्वादश
पृ० २८— हैं। क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट और ठ ये बारह वर्ण बारहों

दलों में सुशोभित हैं। यंत्र इसका षट्कोण है। इसी पद्म में प्राण अनादि-कर्म अहंकार संयुक्त वासना से अलंकृत स्थित है। प्राण जब रुद्र रूप से हृदय में आकर बैठता है, तब मृत्यु होती है। सम्पूर्ण प्राणी के हृदय में नियन्ता रूप से, अर्थात् अन्तर्यामी रूप से सब का शासन करनेवाला होकर आत्मा स्थित है।

विशुद्धचक्र :—विशुद्धचक्र का स्थान मेरुमध्यस्थ कंठ देश में है। इसका देवता जीव, शक्ति प्राणशक्ति, वर्ण धूम्र, तत्त्व आकाशानिल, तत्त्वबीज हँ, यंत्र षट्कोण, दल षोडश हैं। अ, आ इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं अः ये सोलह वर्ण सोलह दलों में सुशोभित हैं।
पृ० २९—उदान वायु की स्थिति कंठ देश में है। रुद्र ग्रन्थि और इपान-लिंग इसी स्थान में है।

आज्ञाचक्र :—आज्ञाचक्र का स्थान भ्रूमध्य है। इसका देवता परमात्मा, शक्ति चिच्छक्ति, दल द्विदल, वर्ण श्वैत, दलों के बीच हँ-क्षँ, ध्यान फल आत्मज्ञान है। इस चक्र का नाम अग्निचक्र भी है।

इस चक्र में ध्यान करने की विधि यह है कि किसी अच्छी रमणीक बराबर जगह में, जहाँ पर कोई उपद्रव न हो, मुक्तासन से या जिस आसन से बैठने में आसानी होवे, बैठकर दोनों नेत्र को भ्रूस्थान में योगयुक्त होकर भिरावे। इसी ध्यान का नाम भ्रूध्यान भी है। यह ध्यान परमसिद्धि का दाता है। जो इसका ध्यान करते हैं, सर्व सुख को प्राप्त करते हैं, यक्ष और गन्धर्व आदि उनके वश में रहकर उनके चरणकमल की सेवा करते हैं। जो पुरुष मृत्यु के
पृ० ३०—समय इस चक्र का ध्यान करते हैं, वे परमात्मा में मिल जाते हैं।

इसी चक्र से होकर "त्रिवेणी घाट" में, जहाँ पर इड़ा, पिंगला और सुषमना का मेल है, जाया जाता है, फिर उर्ध्वगति बंकनाल द्वारा पिछवार में घुँघुकार मंडल होते हुए भंवरगुफा, जो सचखंड की दर्शनी डेवढ़ी है, में जाया जाता है। इस तरह पूर्व से अर्थात् आगे की तरफ से सुरति को पश्चिम अर्थात् पीछे की राह ऊपर को जाना होता है।

इस आज्ञाचक्र को भ्रूचक्र भी कहा जाता है। इस चक्र में गगन का ताला है। पिंड और ब्रह्मांड का जुटाव यहीं पर है। यह दशम द्वार है। यह दशम द्वारा ब्रह्माण्ड में है। नौ द्वारा पिण्ड में है। दो आँख, दो कान, दो नाक के छिद्र, मुँह, गुदा और लिंग ये नौ द्वार हैं।

पृ० ३१—इस चक्र का जब योगी लोग ध्यान करते हैं तो मन और इस चक्र के बीच में एक सूत्रवत् सम्बन्ध उत्पन्न होता है, तब वे एक चक्र से दूसरे चक्र पर आरोहण करते हैं। यह आरोहण उनका क्रमशः धैर्य के साथ परिश्रम से होता है।

सहस्रदल कमल :—सहस्रदल कमल का दूसरा नाम श्याम-श्वेत है। यह निर्मल देवस्थान नभपुर में है। दृष्टि का भण्डार तीसरा तिल (शिवनेत्र) के ऊपर यह कमल है। इस कमल में जो ज्योति है, वह नीलम रंग का महातेजोमय गोलाकार के समान प्रकाशित मण्डल देखने में आता है। यह आकाश महाकाश है और इसका नाम 'अवगत' है। इस कमल में जो यह ज्योति है सो आदि निरंजन को पूर्ण छाया है। छाया छायावान से भिन्न नहीं होती। छाया द्वारा छायावान जाना जाता है। जब सुरति का परचा

पृ० ३२—सहस्र दल कमल में जाकर होता है, तब इष्ट वस्तु आँखों में बस आती है और तब त्रिकुटी के मंडल में प्रवेश होता है। शून्य में पहुँची हुई सुरति के सामने पूर्ण निर्मलता रूप दर्पण पड़ा रहता है, उसमें अलख स्वरूप की झलक पड़ती है जिसे देखकर सुरति मग्न होकर परम सुख का अनुभव करती है। शून्य के आगे धुंधुकार है, यह सम्पूर्ण स्थल सूक्ष्म रचना का बीज है, इसके बाद भंवरगुफा है जो सचखंड की दर्शनी डेवढ़ी है।

सच खंड में निराकार का निवास है और उसके ऊपर 'अकहलोक अपरंपार' और अवाच है। इस अकहलोक का शब्द ऐसा जान पड़ता है जैसा जल का शब्दायमान वेग। वह शब्द एक अकह दशा में उड़ाकर ले जाता है जहाँ पर 'अगम' नगरी है और जहाँ पर अद्भुत परमानन्द है।

उपर्युक्त शून्यमंडल में जब सुरति बंध जाती है तो पूर्ण शान्त तेजोमण्डल से अमृत के बूंद ऐसे बरसते हैं जैसे जाड़ा के महीने पूस माघ में वर्षा के बरस जाने पर निर्मल चाँदनी रात में ओस के बूंद पड़ते हैं। इस अवस्था के अनुभव के होने पर सुरति अमर हो जाती है।

पृ० ६७ - शब्द ही ब्रह्म है। यह सृष्टि का कर्ता है। इसीसे आकाश, मृत्युलोक, पाताल-लोक इत्यादि की उत्पत्ति है।

सुरति, निरति, मन, प्राण को एकाग्र करके शून्य मण्डल में जाने पर शब्द सुनाई पड़ता है। इसका स्थान भंवरगुफा में है जो ब्रह्मण्ड के पार है। ध्वनि से शब्द प्रकट होता है और फिर उसी में लय हो जाता है। ध्वनि

सतगुर स्वरूप है। शब्द गुरु है। स्वाँस की चोट से शब्द प्रकट होता है।

ध्वनि के सुनने से बुद्धि अमल होकर परमात्मा में लीन हो जाती है।

ध्वनि से ज्योति पैदा होती है, ज्योति के अन्तर्गत मन है। मन उसी ध्वनि में लय हो जाता है।

पृ० ४६—आसन से दृढ़ता प्राप्त होती है। स्वस्तिकासन, सिंहासन, शवासन, पद्मासन, मुक्तासन, सिद्धासन और उग्रासन इन सात आसनों को महात्माओं ने विशेषकर अपनाया है। इनके साधन में विशेष कष्ट नहीं है।

पृ० ४८—मूलबंध, जालंधर बंध, उड्डियान बंध, शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा और योनि मुद्रा ये मुद्राएँ बहुत ही आवश्यक हैं।

पृ० ५१—इन्द्रियों को मन में समेट लेना यह प्रत्याहार कहलाता है।

पृ० ५२—साधक को चाहिए कि प्राणायाम आरंभ करने के पहले नाड़ी-शुद्धि कर लेवे। नाड़ीशुद्धि पूरक, रेचक और कुंभक द्वारा की जाती है। यह क्रिया सहितकुंभक और उज्जायी कुंभक विधि से की जाती है।

सहित कुंभक विधि :—नाक के बाँये छेद से सोलह बार मंत्र जपते हुए वायु को खींचे और मन से चौंसठ बार मन्त्र जपते हुए वायु को रोके रहे, फिर बत्तीस बेर मंत्र जपते हुए दाईं नाक के छेद से वायु को निकाल देवे। फिर दायें छेद से वायु को खैंचे (जिस प्रकार घड़ा खींचा जाता है) और रोके रहे तथा बाँये छेद से निकाल देवे। यह क्रिया मंत्र के साथ-साथ करनी चाहिए।

पृ० ५५—चंचल प्राण का नाम स्वांस और मन है। स्थिर प्राण ही आत्मा है, ऐसा संतों ने कहा है।

पृ० ५७—सूक्ष्म ध्यान उत्तम ध्यान है। यह ध्यान कुंडलिनी को जगा कर शांभवी मुद्रा द्वारा सिद्ध होता है। यह गुरु द्वारा मालूम कर लेना होगा। हमें यह साफ-साफ लिख देने का अधिकार नहीं है।

ब्रह्मविवेक

सत्य पुरुख निस्चै निरबाना, निर्केवल निर्लेप यह ज्ञाना ॥ १. १२
चारि चरन मुख धरिहै देहा, जारि मारि तन करिहै खेहा ॥ ३. ३
बहुत कस्ट तन सहिहै भारी, फेरि फेरि देहि गर्भ महं डारी ॥ ३. ४
पाखंड भगती जिव कर नासा, जाऐ जीव काल कै त्रासा ॥ ४. २
सहज जोग निजु सब्द बिबेखा, निअछर नाम सुरति सत देखा ॥ ४. ८
सहज जोग छपलोक सो पावै, पुहुप पलंग पर लै पौढ़ावै ॥ ५. ११
देवा देई तिरगुन फंदा, तेजि अनंत रहै निरदंदा ॥ ६. ५
झूठा जोग जुगुति नहि जाना, जुगुति बिना कहु कैसे माना ॥ ६. १६
सुमिरहु नाम चित्त गहि सोई, बेद पढ़ै का पंडित होई ॥ ८. ४
सास्तर गीता ज्ञान अर्थावै, जिव कै दया दरद नहिं आवै ॥ ८. ५
संझा तरपन करै बखाना, अम्रित तेजि बिखै रस पाना ॥ ८. ६
मंजन संजम करहि निति नेमा, छोड़ी भगति पथल से प्रेमा ॥ ८. ८
मूंदहि आँखि बजावहि घंटा, जेवं बाजीगर खेलहि बंटा ॥ ८. ८
ऐसो पाखंड करै बनाई, बाउर लोग सभ करै बड़ाई ॥ ८. १०
धर्मराय जिव करै बिनासा, बिनु चीन्है भ्रिम डारै फाँसा ॥ १३. ३
जैसे मारै गाय कसाई, बेदरद खून करै जिव जाई ॥ १३. ४
आपुहि पहरु चोर है सोई, ठग ठाकुर घर मूसे वोई ॥ १३. ५
आगि लगाए घर सूतें तानी, कैसो जरत बुतावै पानी ॥ १३. ६
जाके कारन आगी जागै, उलटी सांप संपहेरी लागै ॥ १३. ७
जाकर भछ सो करै अहारा, धीमर जाल मीन कहं डारा ॥ १३. ८
तीनि लोक है जाल जंजाला, बिरला बुझहि अबिग्ति कराला ॥ १३. ८
झुनुका जाल सकल जिव फंदा, पकरी चरन काल ने रंदा ॥ १४. १
दीबी द्रिस्टि गगन है डोरी, प्रेम प्रीति अम्रित रस बोरी ॥ १५. १०
एह सभ कीतम कियो बनाई, ताहावाँ अमल काल के भाई ॥ १६. ५
होए प्रसंग जो तप मलीना, जैसे छीर खटाई भीना ॥ २१. १०
जैसे घून काठ कह लीन्हा, सभ रस लेइ छाड़ि जौ दीन्हा ॥ २१. ११
ब्रह्म संपूरन ज्ञान उन्हिं जाना, जोगी सो जो मन पहचाना ॥ २२. १८

संत सोई संतोख में आवै, सील संतोख प्रेम रस पावै ॥ २५. १
कर्ता कीतम करहु बिचारा, सत्त पुरुख इन्हं सभ ते न्यारा ॥ २५. ६
ता महं पवन संचारा करई, अस्ट दल कमल फूल ताहाँ रहई ॥ २७. ११
कमल बीच उनमुनी दुवारा, संचरै सुरति होए उजियारा ॥ २७. १२

जो हज्रत सोइ हरी है, वोए गीता कहै कोरान।
वोह कहै मलेछ है वोह, काफिर किर्तम को ज्ञान ॥ ३१. ०

दुइ बाजी दुइ दीस लगाया, कहिं हिदू कहि तुरुक कहाया ॥ ३१. १
कहि निमाज कहि पुजां करावैं, कहीं तीर्थ कहिं बरत दिढावैं ॥ ३१. २
कहि आदम कहि ब्रम्हा होई, कहि पंडित कहि काजी सोई ॥ ३१. ३
कहि कोरान कहिं पढ़ै पुराना, कहीं पीर कहि गुरु की ज्ञाना ॥ ३१. ४
कहि मुरुगा कहिं खंसी मरावै, कहि ततबीर मुरीद दिढावै ॥ ३१. ५
कहि जन्तर सिजरा लिखि दीन्हा, कहि जादू कहि भैंरो कीन्हा ॥ ३१. ६
कहिं मंकर करि बंग पुकारा, कहि आहुति कहि संख सुधारा ॥ ३१. ७
कहि तसबी कहिं माला डाला, कहि अलफी कहि वोढ़ै दोसाला ॥ ३१. ८

भक्तिहेतु

ज्ञान भक्ति निजु सार है, सुनो स्रवन चित लाय।
बिक्ति-बिक्ति बिख्यान यह, ब्रह्म अनूप देखाय। १. ०

भक्ति हेतु यह ज्ञान के मूल, बिगसित कमल सहस्र दल फूल। १. १
ज्यों पतंग मुख मोरत ना टारी, सनमुख द्रिस्टि दिपक महं जारी। १. ८
साहस नाहि करै पिया पासा, अगिनि जरै नहि तन के त्रासा। १. ६
बिनु दिल दया धरम नहिं लोका, बिनु सतसंग मिटे नहिं सोका। २. ५

निर्मल ज्ञान बिचारहु, भक्ति करहु लव लाय।
सत्त सरन सतगुरु सेवा, आवागमन मेटाय। ३. ०

पकरि प्रान के कस्ट अति दीन्हा, तप्त सिला पर तावन लीन्हा। ४. ६
धरहि डुलावहि फेरि देहि डारी, बहुते कस्ट देही तेहि मारी। ४. ७
तहाँ कोई नहि राखनहारा, जम जिव बाँधि नरक महं डारा। ४. ८
संत द्रोह जानि जिन्हि कीन्हा, बाँधे काल नरक तेहि दीन्हा। ५. ८
अपने निरमल होहु किनारा, ज्यों जल पुरइनि रहत निनारा। ६. ४
पुरइनि पानि तासु नाहि लागी, ऐसे जन जगत से बागी। ६. ५
कामिनि कनक से रहो निनारा, त्रिगुन नाह जिव करहिं उबारा। ६. ७

सतपुरुख वोए अजर हंहीं, मरै जिवै नहिं जाय।
कहे दरिया नक मिले, (तब) जोतिहिं जोति समाय। ८ ०
ज्ञान खड़ग दिढ़ कै गहो, सतगुर चरन नेवास।
सीस पटकि जम जाइहै, छपलोक में बास। ६. ०

गज मुकुता मस्तक जेहि होई, मस्त गयंद कहावै सोई। १२. १
स्वाती भरि बरखन जब ठाना, मस्तक बूंद जो आय तुलाना। १२. २
चुंगल चिरिया तेहि अवसर आई, मस्तक पारस दीन्ह लगाई। १२. ३
उपजे मुकुता निर्मल सारा, है को पंडित करै बिचारा। १२. ४
तन के त्रास जो बहुत देखावै, पंच अगिनि में तनहि जरावै। १२. १०
उर्धमुख झूलहि दिन औ राती, जलके निकट सैन बहु भाँती। १२. ११
पय पीवहि फल करहि अहारा, लंगा फिरै तन रहे उघारा। १२. १२
प्रगट भभूति भरी मुख छारा, काम क्रोध निसु दिन बैपारा। १२. १३

म्रिग त्रिस्ना मद माया न त्यागै, अंतर कपट बिखै रस लागै। १२. १४
पाखंड कर्म करहि सभ जानी, ताते जिवन जन्म भए हानी। १२. १५
बांधहि भेख तिलक औ माला, सींगी सेली बहुत रिसाला। १३. ३
टाटी भेख ब्याधा जेवं कीन्हा, बांधहि भेख बिखै रस भीन्हा। १३. ४
तिल पेरो फेरि तेल कहावे, फूल पारस फुलेल सोहावे। १५. ६

जाति पांति नहि पूछिए, पूछहु निर्मल ज्ञान।
संत के जाति अजाति है, (जिन्हि) पावे पद निरवान॥ १६. ०

स्वाती बूंद केदलि महं आवै, पारस पाए कपूर कहावै। १६. १
खून करै खून सो पावै, बोएलक बोएल ताहि भरमावै। १७. २
बिना प्रेम नाहि भक्ति बिबेखा, होए प्रेम एह गुरगमि पेखा। १८. १
यह चंचल मन चतुर है चोरा, मन मुरीद है मन हि कठोरा। २१. ५
मन बुद्धी बल कथे यह ज्ञाना, मन अनंत रुप धरै जहाना। २१. ६
यह मन काम क्रोध रस भोगा, मन जोगी है मन है रोगा। २१. ७
मन ही त्रिगुन धरै यह छंदा, सुर नर मुनि परै मनके फंदा। २१. ८
यह मन आवे यह मन जाई, यह मन या जग जिव सभ खाई। २१. ९
ब्रह्मा बिस्न इहि मन के अंसा, मनहीं रावन भए बिधंसा। २१. १०
ब्रह्मा बिसुन महेसर देवा, सभ मिलि करहिं जोति के सेवा। २३. ४

चौथा लोक सरब ऊपरै, जहां पुर्ख निरबान।
उदित कला परगास है, करो भजन निजु ध्यान॥ २४. ०

तेहि दिन महि मंडल नहि तारा, तेहि दिन ब्रह्म ना बेद बिचारा। २४. ५
तेहि दिन कर्म धर्म नहिं जानी, तेहि दिन सीव सक्ति नहिं ज्ञानी। २४. ६
तेहि दिन नीर ना बहे बतासा, तेहि दिन इन्द्र ना मेघ परगासा। २४. ७
तेहि दिन बिस्न ना दस औतारा, तेहि दिन कर्म ना धर्म पसारा। २४. ८
तेहि दिन पुर्ख वोए रहे निनारा, निरंजन लिए चमर सिर ढारा। २४. ९
ब्रह्मलोक धोखा है भाई, इन्द्रलोक तहां काल समाई। २५. १३
एके ब्रह्म सभे घट छाया, ब्रह्म देह तुम्ह कैसे पाया। २६. २
एके पिंड एक है प्राना, एके मुख रसना है काना। २६. ३
एके हाथ पांव है पेटा, करता कैसे कै तुंह भेटा। २६. ४
को हिंदू को तुर्क कहाई, एक तै ब्रह्म मोसल्लम भाई। २६. ७

मटी एक बर्तन बहुतेरा, अलख ब्रह्म तेहि भीतर डेरा। २६. ७
होम जग सभ आहुती करावहि, बकरा खंसी जीव मरावहि। २६. १२
अपने खाहि फिरो और खियावहि, सास्त्र पोथी गीता सुनावहि। २६.१३
मन माया (ते) सुर नर मुनि मोहै, लालच कारन जीव सभ जोहै। ३६. ४
सुर नर मुनि औ तपे सन्यासी, मन माया ग्रिव डारै फाँसी। ३६. ५
नाहिं मांगो नाहिं जांचो जाई, जो भेजो सो तुम्हरो बड़ाई। ३७. ४
छवो दरसन न्यानबे पाखंडा, तामें जक्त भुला नव खंडा। ४२. २
छवो दरसन जक्त सभ लागे, पाखंड कर्म सभे मिलि जागे। ४२. ६

मूर्ति-उखाड़

पत्थल गढ़ि गढ़ि मुरति बनाया, आदि केहू नाहिं पाएउ रै जी। २०
तब हम कहा मुरति है पत्थल, चाहो तो फोरि डारैउ रै जी। २२
हाथ पांव मुख सभे बनाया, बोलता बिना न कारैउ रै जी। २३
लीन्हं उखारी दीन्हं सभन्हि कंहं, यह है आदि भवानिउ रै जी। ४१
आनि परै चहुं ओर से घेरिकं, पकरिकें तोहि बलि दीन्हों रै जी। १३७
संकरवार औ गांव कर लोगवा, सोग भयो तेहि भारिउ रै जी। १७७
भीखन खांवं औ दुंद खांवं मिलि, तइअब आनि पुकारिउ रै जी। १४७
तब एक ऐसा भयो अचंभो, सिघ ठनकि ठहरानेउ रै जी। १८६
थर थर गढ़ सभ कंपित भयऊ, भयउ त्रास सभ जानिउ रै जी। १८७
गांव रहै गंगा के तिरवा, नाम बहादुरपुर जानिउ रै जी। १६१
संकरवार ताहां रहे निहाल सिंघ, साहब जानि बोए पहुंचेउ रै जी। १६२
नाहिं कोउ आन सभै महं आपै, हिंदु तुरुक जनि आनहु रै जी। २७१
एकै आदम सकल बिराजे, एकै रुधिर औ माटिउ रै जी। २८८
एकै अस्तु मेदु है एकै, तचा तिनिउ गुन लागेउ रै जी। २८६
एकै रंग सकल सभ देखे, एकै आतम जागेउ रै जी। २६०
एकै काम क्रोध है एकै, एकै लोभ है त्रिस्नाउ रै जी। २६१
एकै माटी नाना बिघ बासन, एकै सिर्जनिहारहु रै जी। २६३
अगस्त रूप हमहीं चलि आएउ, सागर जल गंडुका लेइ राखेउ रै जी। ३५१
बलिभद्र नाम हमही कंहं कहिए, हर मुसल हथिआरैउ रै जी। ३५३
सेस रूप हमहीं होए रहिआ, लखन कछू इमि मानेउ रै जी। ३५४
कलउ कबीर होए कासी आए, कीन्हों सबद पुकारेउ रै जी। ३५५
मगहर गांव गोरखपुर नीकट, बिजुली खांवहि चेताएउ रै जी। ३५७
बीरसिघ राय बघेलहिं चेताएउ, दूनो झगड़ा मारिउ रै जी। ३५८

विवेक-सागर

जैसे बारिज बारि समेता, जल औ जुलुद दुनों निजु हेता। ७. १
जैसे त्रिगा भाव फुल माता, भव से रति बसि कतहिं न जाता। ७. २
जैसे सीव सक्ति रस भोगी, एह गुन प्रेम है सदा संजोगी। ७. ३
जैसे चात्रिक चित अनुरागा, रहत एक रस दुजा ना जागा। ७. ४
जैसे चकोर चंद चित लोभा, दीबि द्रिस्टि दिल इमि करि चोभा। ७. ५
जैसे मातु सूत हित जानी, पाले बहुबिधि पलकन्हि आनी। ७. ६
जैसे दुखी सुखी धन पावै, जेवों आवै तेवों जतन करावै। ७. ७
जैसे कीखी करै किसाना, निस बासर तेहि तत्तु समाना। ७. ८
ऐसे चित गहि करो बिचारा, गहो प्रेम सतगुरु पद सारा। ७. ९
दया बिना का धर्म बखाना, बिना दया किमि गुन पहिचाना। १४.१

शब्द

कहि चुंडित मुंडित पंडित है कहि जोग मता महं साधन साधे
कहि चंद जो सूर सुभ्रा सम खोजत कहि नेउरि नट उलटि बाँधे।
कहिं ब्रह्म निरूपनि निरगुन नीगम सर्गुन में कहि आरति राधे।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं वहु पेखन नाना सो नाचन नाचे॥ १. १०
कहीं गुर ज्ञान जो ध्यान धरे कहीं व्रत नेम पुजा बहु ठाने।
कहिं तीरथ तीर जो नीर में मंजन देवल में कहिं देवि बखाने।
कहि कावरि कान्ह करै सिव सिव कहिं जीव अम्रित में विखि साने।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं बिच कांचु के महल में स्वान भुकाने॥ १. ११
का जलसयन साधे निसु ब्याकुल का धुर्मपान धुआं द्रिग राता।
का पंच अगिनी तनहि जरावत का चढ़ि झूलि हिंडोलन्हि माता।
का तन खाक जटा फटकारत काहे के लिंग उघारत गाता।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं जमसासन सर्व अचानक घाता॥ १. १३
पुर्ख निरोगि हैं जोगि ना भोगी सो भगु नाहिं भए भगवाना।
बेद कितेब कथा बहु बानि सो जान परा नहि पुर्ख अमाना।
चली जग चाकि सो बाकि ना राखा है साखि है सांच देखो दिल माना।
दरिया जो कहैं दरै दालि भई दर देखि परा खुटवा किहा जाना॥ १. २०
राम कहे फिरि किस्न कहे फिरि बिस्न विसंभर है दल दापे।
आगर कहा उजागर कहत सो भव कर भागर के नाहि तापे।
तिर्गुन कहत सो निर्गुन नीगम ब्यापिक ब्रम्ह सबै घट आपे।
दरिया जो कहें वोए एक रहा भव नाहि बहा जेहि पुन्य न पापे॥ १. २१
चारिउ तत्तु तीनि गुन तामें सो राम निरंजन अंग में आयो।
रचेव जग सांच सो दोजक आंच सो कागज कांच में चित्र बनायो।
सो ब्रह्म कहावत भर्म सो ब्यापिक तीनिउ ताप सोई तन तापेवो।
दरिया जो कहैं सतनाम उपासि सो नास नहीं अभिनासि कहाएवो॥ १. २३
सांच के झूठ सो झूठ को सांच सो फूटि गयो हिय लोचन माहीं।
खारि के खांड सो खांड के खारि सो कंचन कांचु ना एक बिकाहीं।
पाहन में परमेस्वर कहि कभि पाहन में परमेस्वर नाहीं। ८

दरया दिल देखि बिचारि कहा जढ़ पूजत अंध सो फंद में जाहीं ॥ १. २७
है हरि नीकट बीकट नाहि जो दीपक जोति बरै घट माहीं।
अगम अगाध अगोचर सोचत चारिउ बेद बिचारत आहीं।
जौं म्रिग द्रीग भया अति सुन्दर घास में आनि के ढूंढत जाहीं।
दरिया जो कहें गुन पंडित को कर डंड कवंडल भर्मित आहीं ॥ १. २८
पेड़ पुरातम पूरि सो पावरि अरुझि रहा जग को निरुआरै।
इंदु सो एक है बिंदु अनंत सभे घट माहं काहा जल चारै।
आतम दरस दाया करु दरपन टूक करोर में एक संचारै।
दरिया जो कहें कहि दाग नहीं है धोखा सो पर्वत कहो किमि टारै ॥ १. ३५
भूलि परा गुर ज्ञान तबे जब मान मया महं आनि रते।
प्रेम गली अति सांकरि सुन्दरि तामें बात ना दूह गते।
चाषन चाहत भूखि ना लागत मांगत बासन छूंछ जते।
दरिया जो कहें फल दूरि बसे खल चाहत है बिनु साधु मते ॥ १. ३८
चतुर बिछच्छन बेद बिहिति कहि ज्ञान गिता पढ़ि कर्म ना नासी।
को हम को तुम कवन कहां ते करि खट कर्म भर्म की फांसी।
मुरलीधर मूरति हममें तुममें भोर करै स त जमपुर जा ी।
दरिया जो कहें सतनाम निरंतर नेम कहां जब प्रेम उपासी ॥ १. ४१
जोग बिना तन रोग जो व्यापिक ज्ञान बिना भव सागर भारी।
संत बिना कहिं कस्ट ना मेटत ब्रह्म चिन्हे बिनु का ब्रह्मचारी।
सूर बिना संग्राम ना सोभित लोभि के हाथ में दाम भिखारी।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं बीबेक बिना बहु भेख पसारी ॥ १. ४३
केहरि कैद कियो बिच मंदिल अएन मंद सो चन्द छपायो।
सूर सपूत कपूतन्ह के संग भंग भए गुन ते गन आयो।
मति मराल गयो कागन्हि के संग रंग जिमि में मोती नहि पायो।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा जग पाप के संग में पुन्न बोहायो ॥ १. ४५
केहरि कैद किजे नहि साहब रोर के सोर कुते धरि खाई।
सिंघ ठनके तबे मन कम्पे सो कुंजल भागि पैठा बन धाई।
सूर के साथ भली तरवार सो तर्कि किया सनमूख लराई।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा रन पैठि गए कोइ संत सिपाई ॥ १. ४६
ज्ञान घोड़ा पर जीन पलान सो लव लगाम रहो ठहराई।

चाबुक चारि चटाक दियो है कूदि परा जहंवां रन आई।
सांगि समाहि कियो सुर ऐसो टूटि परा सिर झीलम जाई।
दरिया दिल देखि विचारि कहा रन मंडि रहा कोइ संत सिपाई॥ १. ४७
गए सब राज केते जग माहं जो बांह बली बल तौलत है।
गज बाज समाज तुरंग ताजी एह पौन के गौन में दौरत है।
झरि झारि झरोखा झांकि रही ललनी ललना मुख जोहत है।
दरिया जो कहैं परे दंद के फंद में नाम विना जग भर्मत है॥ १. ५८
कोइ ईछत है बएकुंठ बासी कोई दीछत पुन्यहि जाए बरै।
कोइ जोग करै तप राज के काजहि माज पौनहीं प्रेम झरै।
कोइ देब देबी बैताल पुजे झरि झारत है परमाथ धरै।
दरिया जो कहें रहु कंज के पुंज में साधु के दरसन पाप टरै॥ १. ६१
सहर बनारस मोहनि मोहत जोहत है सब लाल रंगीने।
तपसी तौं तपन जोग टिके छुटि जात है ध्यान जो काम के चीन्हें।
जटा फटके लटके पगिआ घट ना परचो रस रहत जो भीने।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं तब भेख भिखारि भए सतहीने॥ १. ६५
तुम ते हत को कहिये जग में जरि जाउ सजीवन आन रते।
जिन्हि पानि से पिंड जो प्रान दिन्हो एह मान मनोरथ बुद्धि जते।
भूत बैताल सब जात रसातल नाम लिये सब पाप गते।
दरिया जो कहें घट दीपक है पर खोलि देखो यह साधुमते॥ १. ६६
अरब में अबदुल्लह के घर फबित नूर नबी मुख पायो।
चारो चीज चिराक है रोसन जीव जबह किमि नहि फुरमायो।
सिफ्ति कोरान बेआन कियो एह बनि परा कलिमा ठहरायो।
दरिया जो कहें दरवैस वोली दिल दर्द रखेव नहि दोजक आयो॥१. ७२
जग में जीवन काह सराहत जौ नहि भावत नाम धनीका।
तरिवर हीन भए बिनु पल्लौ (सो) मनि बिनु कवन जो कहत फनीका।
सरवर बिना कमल कहां फूलेव जल बिनु मीन न जीवै तनीका।
दरिया जो कहें चुनि सेज बिछायो सो पिया बिनु कवन सिंगार बनीका॥ १.७५
प्रेम पिवै जुग जूग जिवै जब प्रेम नहीं पसु पंछि है सोई।
जल पूजि पखान जो मान किये एह ध्यान धरै बग चातुर वोई।
देवल में एक देवि विराजित राजित नएन में भ्रिक सोई

दरिया जो कहें जब ज्ञान हुआ तबहीं दिल की दोबिधा सब खोई ॥ १. ७६
नाम के अमल जो जन माते सोई जन संत सुबूधि बखाना।
पीवत भंग जो रंग उड़ावत सो बहु बाचक नाचु देवाना।
सर्ग पताल खोजे महि मंडल खोजि रहा तब ब्रह्म दिढ़ाना।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं तबहीं जम फंद के हाथ बिकाना ॥१. ७८
तुम जर बकस जराव मोती हौ लाल जवाहिर नहिं गनता।
दीन्हौ गज बाज तुरै बहु त्रीछ्न कनक भवन में बहु बनता।
दुखी सुखी जन जो दर सेवै भोजन भाव सभे पलता।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा एक नाम अलंम सही करता ॥ १. ८२
निसु बासर ध्यान धरो कर जोरै जासो मेरी पति रहता।
तुम ते हाजिर रुजू सदा हौं जौं तुम लाज हिए धरता।
तुम पलक दरिया हौ खलक तमासा सूखी नीर नदी बहता।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा एक नाम अलंम सही करता ॥ १. ८३
जल में तुमहीं थल में तुमहीं जीव जहान सभे बरता।
साधु असाधु सभै गुन ज्ञाता जीवनिमुक्ति नहीं मरता।
तुम देहु दिआवहु दया सरूपी बूड़त नाव कियो तरता।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा एक नाम अलंम सही करता ॥ १. ८४
कादिर गनी करीमा केसो तुमहिं बिसंभर बिसु बरता।
तुम राम रहीम रमापति रवि हौ कलि मलि पाप सभै हरता।
तुम करम करीमा अलह पुर्ख हौ संतन्हि लाज सदा धरता।
दरिया दिल देखि बिचारि कहा एक नाम अलंम सही करता ॥ १. ८७
सुमिरहु सतपद आन अधार, सत्त सब्द ले उतरहु पार।
गुरु के बचन पावल जब बीरा, अचल अमर निश्चे घर धीरा।
ंसा जाय मले करतारा, बहुरि ना आवहि एहि सौंसारा।
तीनि लोक ते न्यारै डेरा, पुर्ख पुरान जहां हंस धएरा।
गुरु के बचन सीख जौं धरई, जाय सतलोक नर्क नहि परई।
कहैं दरिया जब बीरा पावै, जाए छपलोक बहुरि नहि आवै ॥ १. ९१
हो सुख सागर सभ गुन आगर नीगम नेति सभी बरनी।
जल में थल में सपत पताल में जेंव दिनेस दिन हौ धरनी।
कलि मलि भंजन मइलिहि मंजन संजन जन की की करनी।

दरिया दिल देखि बिचारि कहा जिमि सालि सुखे जल हो भरनी ॥ १. ९२
एक अलंम सो नाम सदा फल पीअत प्रेम गुंगे गुर खायो।
तींत ना मीठ खटा खटतूरस कासे कहें मानों आम्रित पायो।
सूरति मूरति नीरति नीरषि सूइ में जाए सुमेर समायो।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं कथनी कथि मूरख मूल गंवायो ॥ १. ९३
दीन दयाल दायानिधि सागर संतन्हि को प्रन राखि लियो है।
आपु निरंतर ध्यान धरो नर बुद्धि बिचार बिबेक कियो है।
नाम प्रतीति सुधा सम सागर प्रेम को मंदिल प्रीति पियो है।
दरिया जो कहें बोए जाग्रित जिंद सभे घट की सुधि द्रिष्टि दियो है ॥ १. ९७
साहब का जोर का भरोसा है हमारो दिल हमसो बर्कस करि कौन पेस पाई है।
सरग पताल व्यापे जिमि असमान कापे साहब का डरहि से (और) काल कंप खाई है।
ताहिते सरकार का दास आनि अवतरे हों जो नहि बुझे ताहि साहब बुझाई है।
कहें दरिया तीनि लोक हुआ कैद बीच छुटे गात सोई जाके साहब छोड़ाई है ॥ १. ९९
साहब हो सब संतन को पति राखि लियो अपने बल ते।
दीन दयाल क्रिपाल दया निधि कंपित काल तुम्है डरते।
जाग्रित जिद जो जिंद नहीं जनि चित्त टरे तुमही बरते।
दरयि जो कहें तेहि डर कहाँ अपने कर दान दिन्हो कर ते ॥ १. १०३
दीन दयाल दयानिधि सागर मोह के मंदिल सो धरि फारेव।
जीवन मुक्ति जो जिंद कहावत कंपित काल तुम्हैं डर हारेव।
जो तुम चित्त चेतावनि चेतनि संकट कस्ट कबे नहिं आएव।
दरिया जो कहैं तेरो नाम क्रिपाल सो दास के लाज सदा तुम धाएव ॥ १. १०४
सुलतान मिरै गलतान करै मुलतान मना नहि मानतु है।
जब आनि सकस्ट अकस्ट परै पति राखि लियो जग जानतु है।
जब आनि के बीर भराए जंजीर भिराए मतंग जो हानतु है।
दरिया जो कहें दरियाव दरैर में तोरि जंजीर के तानतु हैं ॥ १. १०८
बेबाहा बेबाक सो खाक ना बाव है, आतस आब उन्है नहिं लायो।
मादर पादर बिरादर इया जग, मामा के सीकम में आपु ना आयो।
पीर पैगंमर खोजत खूब, महबूब मियां रहिमान रहायो।
दरिया जो कहैं दल एलिमवार है, पार कहा सब सुन्न सुनायो ॥ १. ११०
सब होए रहा दुलहा दुलही (सब) फूलन्हि में भंवरा रंग रता।

सुख एक रती दुख होत घना मति दोसर भौ मद मोह मता ।
कागज की पुतरी तन जानो मानत नाहिं सो होत पता ।
दरिया जो कहें सभुरै कोइ संजन अरुझि रहा सब दुर्म लता ॥ १. ११३
झक झक्क लगा झक झक्क लगा रिमि झिमि का नुर बरसंदा है ।
दस्तगीर जो पीर रहम किया फहम दी बात कहंदा है ।
चीराक रोसन महल हुआ फुल गुल घनेरे आवंदा है ।
कहें दरिया दरस दीदंम करस मंदिल में भावंदा है ॥ २. ६
दोए खंभ खड़ा महजीद बनी बिच रब निसान को देखना है ।
पांच जहूद कफा कूफुर अवर खलक का पेखना है ।
दरवेस सोई दरगाह सेवै सोई फकर का लेखना है ।
कहें दरिया बोलि मस्त मैदान यह प्रेम लजति को चाखना है ॥ २. ११
मक्क मदीन एह दिल के बीच तहकीक करो भिस्ति जानदा है ।
गैब का चान्द चिराक हुआ आसिक मासूक मिलि आवदा है ।
गुलजार गंभीर बागीच कियो महबूब मिआं दिल भावदा है ।
कहें दरिया दरगाह दाखिल फकर हुआ दर सेवदा है ॥ २. १४
एक जोति का नुर छत्र छाया चौदह तबक गुलजार हुआ ।
खाक सो बाव है आब आतस बिच बोलता एक अजब सुआ ।
जाहि बातून जिकीरि फिकीरि हिरीसि हवा सभ दूरि मुआ ।
कहें दरिया परवर दीगार हका हर दंम फकर दुआ ॥ २. १७
गीता पुरान का बेद भने छनछेप में चीत चेतन्य हुआ ।
महल के बीच अजब मूरति पथल पूजे सेमर सुआ ।
पाखंड किए जम डंड लेवै एह जम का हाथ में हारि जुआ ।
कहें दरिया ब्रह्म भेद नहीं नीखेद कहा बीखब हुआ ॥ २. १८
कीताब कोरान का पढ़ि मुआ जिन्ह आपने आय तहकीक किया ।
दुनिया के गुलजार में चहल लगा कहर गुलजार में जान दिया ।
कबाब चखे लजत बुरा सराब पीवै सोआ हीआ ।
कहें दरिया फिट मोलना है कूटन ते भिस्त जुदा किया ॥ २. १६
प्रेम पिवै सोइ मस्त फकीरा रब गनी का इयार है रे ।
मन मोताहल भंग भरम रगरि झब्बा तइयार है रे ।
दिल साफा एह चित सो छानिए प्रेम पलक मो ढारिए रे ।

कहैं दरिया इस झूलने सूनि अवरि अमल के वारिए रे ॥ २. २१
कहिं राम रहीम करीम कहे कहिं पाक निमाज कोरान पढ़ा।
कहि बेदुआ बेद वहु वाएब के कहिं बांह उठाए के आपु ठाढ़ा।
कहिं बांधिया लोह वजर कछोट तीरथ मो जाए के रारि बाढ़ा।
एह झूलना दरिया साह कहा सतगुर बीना जम बांधु गाढ़ा ॥ २. २२
कहि बांधि जटा सिर जट रखे कहि मोट गुदर को सीवता हैं।
कहि खाकिया खाक बघंमरि है कहिं पांव उलटि के रीवता हैं।
कहि मुदरा पेन्हि स्रवन सोभा कहिं साधि पवन के पीवता हैं।
एह झूलना दरिया साह कहा सतगुर बीना भ्रिग जीवता है ॥ २. २४
कोइ झूलना झूलते भूलि गया कोइ झूलता है अझूल वोई।
तिगुन नदी त्रिबिध धारा एह देह धरे नहिं वांचु कोई।
नंद के लाल हैं वाल सखा सभ मोह के फंद में दन्द होई।
कहैं दरिया दर सेइए जो परवरदीगार बेबाक सोई ॥ २. २६
कहिं देव देवी कहिं भूत पुजे कहिं जीअता जान के मरता हैं।
कहि सीव सीव सिवबर्त करै कहिं मांसु बनाए मुख भछता हैं।
कहिं रंग महल मासूक रंडी विरह बेकार मो सानता हैं।
एह झूलना दरिया साह कहा कइर गोता नहिं मानता है ॥ २. २८
पांच यह तत्त पचीस प्रकीत तिगुन में ज्ञान के पागता हैं।
अनहद बाजा मुरली मगन गंगन की बात नहिं जानता हैं।
निगुन सगुन दोए पन्थ रचा यह बेद चतुर चित गावता हैं।
कहैं दरिया सतगुर बीना अटल मुक्ति कहां पावता हैं। २. ३१
नौगुन बिचार नौ नाटिका है संझा तरपन दरस कीजे।
अजपा जपे जीभ्या बिना यह मूल प्रगास परसि लीजे।
ब्रह्म आपु हुआ भ्रम केवं भुला नहिं ज्ञान तुले जौं प्रीति भीजे।
कहैं दरिया तेजु दूरि धोखा हरि हैं हांथे नहिं प्रेम छीजे ॥ २. ३२
जन जानि के नाम प्रतीति करो सतगुर सेवा सरन मेरे।
साफि बएन सोइ संत सदा है काल कुबुधि के मारियै रे।
रहनी रहो धरनी धरो कछोट लंगोट के वांधियै रे।
सोइ जीव जीवन छापा सनद एइ दीद दिदंम के हारियै रे।
सीधा सोइ फुरस्त फहम अलस्त आलस्त के टारियै रे।

अकीन इमान जौहर जाहीर दोजक सवाल ना डारियै रे।
हाजीर हजूर बैठे तकथ ताही कौं क्यों ना जांचियै रे।
कहें दरिया दरस सांईं दाया करे कमीना रे॥ २a. ३
कहि बेद किताब कहिं तापिया ताप कहिं जोगिया जाप एह फिरत नागा।
कहि सेवडा सेख कहिं डंड धारी कहि सेवता खंड के राज त्यागा।
कहिं पंडिता पोथिया ज्ञान गिता लिये अर्थ बिचारि के स्वाद पागा।
कहिं मौन मौनी हुआ जटा सिर भारिया जारिया तन कंहं राज मागा।
कहिं जगमा जोगिया खाक भरे कहिं पांव के बांधिके उर्ध टांगा।
कहिं दानिया दान दे दाया दिदार कहिं गर्व अभिमान में आपु जागा।
एतना भेख अलेख सभ देखियै काल के जाल में सभे दागा।
कहें दरिया कोई संत जन जौहरी सुमिर सतनाम निजु मुक्ति लागा॥ २a. ४.
कहि जोगिया जुक्ति से जोग करे कहिं लाए कपाट गगन तारी।
कहिं ध्यान प्रगट कहिं ज्ञान गावै कहि ताल म्रिदंग ले मंगल झारी।
कहिं झूलना झूलि रैसम डोरी कहि पंच अगिनि जल बांधि बोरी।
कहि कर माला तीलक दीए तीरथ भरम में आपु हारी।
कहिं भूख मारे कहि प्यास टारे कहि आपने आप से तन जारी।
बहु रंग का पेखना सभ है रे येह जानि जहान में जीव हारी।
सहज सुरति है मूल मेरे दिबि द्रिस्टि में द्रिस्टि नहीं टारी।
कहें दरिया जनि पचि मरो यह सब्द की सांगि ले जक्त झारी॥ २a. ५.
भक्ति करो भरम छोड़ो करम में मत तुम बूड़ि मरे।
माया मोह के बसि के कारने रे सतनाम से मुख तुम जनि फेरे।
दाया करो दीदारिया हो तौं नारि का फंद में मति परे।
जेंव काचु महल में स्वान भुके एह जान दिये बिनु नाहि टरे।
ऐसी माया संसार है रे बार बार के जार में जीव जरे।
फहम कीजे सब्द लीजे जेवं काटु बेरी जिव आए तरे।
एह मन बाजी चित्र है रे झाइं देखि के केहरि कूप परे।
फीटिक सील्या दरस देखे जहां जाए गयन्द दसन मरे।
एह मन बाजी तैंसी है रे सत्तनाम बिना कैसे तरे।
तुम झारि सब्द निरवान गहो तुम ढाहु भरम के मति डरे।
तुम छोड़ि दे लाज मुक्ति के खोजू अजर अमर अडोल है रे।

कहैं दरिया दिल देखु बिचार दया तख्त अनमोल है रे ॥ २a. ६-
धरु धीर गंभीर अगम में गम जेंव फूल कमल भमर भूले।
दिबि द्रिस्टि में द्रिस्टि है पीठि पीछे नहिं चन्द चकोर कि प्रीति तुले।
ईंगल पींगल अकह अपार .दरस दीदम कपाट खुले।
ऐनक अएन थकित बएन गंवन गंगन उलटि मिले।
छूटी त्रीमिर ऊदित फीटिक रइनि बिहाए बासर पेले।
सब्द अडोल ना डोल डोले गैब का चान्द ना हिलमीले।
पारख फहम रहम करम जेंव देखि भवन चीराग जले।
कहैं दरिया दरिआव अगम है मारि हेला कोइ संत खेले ॥ २a. ८
किश्न कांध बने मथुरा सहर में रंग मची चहु लागु झरी।
मुख तान के सुन बेवान लगा सोइ आइ खड़ी नहि लाज डरी।
भूखन बसन अलक छूटा खलक देखे नहि मुख फेरी।
कोकिल बयन नयन बिसाल येह काम के बान ते तानि मारी।
त्रिगुन लिला एह मोहि गया कोइ जोहि देखे यह ज्ञान करी।
माया के रंग अजब है रे जिव जाय पतंग दीपक जरी।
निर्गुन पुर्ख निर्बान सही आवे जावै नहिं देह धरी।
कहैं दरिया सुमिरू वाही समुझि परी तव रइनि खरी ॥ २a. १०
जिन्हि कंस मारि निकन्द किया चहर बाजी सोइ जानिया रे।
जिन्हि तेग गहा कर आपु लिए कीतम सोई जग मानिया रे।
अनंत कला होए बुद्धि छरै जाहां जाय बरत को टारिया रे।
बावन हुआ बलि जांचबे को ताहां बांधि पताल में डारिया रे।
यह नाच नाचे बिन्दावन में सह संग लिये सखिअन्हि को रे।
एह तान करै कीतंम बाजी मोहन माला ग्रिव डारिया रे।
ब्रह्म ज्ञान बिना कछु ध्यान नहीं त्रिगुन नदी मों हारिया रे।
कहैं दरिया करता करार वाही समुझि को पार है रे ॥ २a. ११
हरदम दारू ·हरदम दारू हरदम दारू हम जानिया रे।
एह तन कीजै इमामजिस्ता ख़मीर समै करि डारिया रे।
सबुर लीजे साफा कीजै पीवै कोई दिलदार दा रे।
एह नूर जहूर काफा कतल एह दीद झलक मो आइया रे।
दोए चस्मे दिल ऐनक सारा महरंम हुआ सभ बात मेरै

करार कमान चढ़ी रहै वलि मस्त हुआ मैदान मेरै।
खाक सो बंदा पाक हुआ है काम किया सभ आपना रै।
कहें दरिया दर्गाह दाखिल हका हका करता रहे रै॥ २a. १२
हर दंम में दंम लगाइ ले रै जहां दंम लगा तांहां गम पेखा।
ऋरध उरध के मूल में साधि ले होत भनकार सत सब्द रैखा।
जहां अष्ट दल कमल के खुले कपाट तहां सहस्र दल कमल में भ्रमर पेखा।
जहां सेत धरा चमकत छटा तहां सेत मोती अगम लेखा।
तहां चित्त चकोर चुंगन लागे गगन मगन चित चोभि राखा।
तहां बेद कितेब कि गंम नहीं निहततु सब्द सरूप देखा।
सत्त सतनाम पहचानियै रै यह सत्त बिना सभ है धोखा।
कहें दरिया कोइ संतजन जौहरि जिन्हि एह मन के तौलि राखा॥ २a. १३
खुद पाक अलाह को याद करो कोरान पढ़े इलम ईवै।
यह पंज निमाज है पंज वखत में चित्त के चोभ में बंग दीवै।
मनी मुर्दा रह रमतल खअरस के स्वाल में प्रेम पीवै। (?)
सराब कबाब फरमावता नहिं एह जीवता जानि जबह कीवै।
नबी रसूल नहिं चर्ब चखा एह सूषिया रोटिया जीव जीवै।
जाकी खून है वाकी गर्दन दोजक जार मो जाए दीवै।
ऐसे जुलुमी के बहिस्त कैसे मिले एह जुलुमी जाय के फीट पीवै।
कहै दरिया साहब धनी नजर निगाइ मो नेक लावै॥ २a. १५
सब्द की सांगि समसेर तुम पकरि ले सुरति नेजा निर्वान कीता।
रोप दुवो खम्भ धोरा भारि ले झपटि के प्रेम पाखर पहिराव दीता।
मड़ी मैदान गंगन के बीच में चित चाबुक चटकाए लीता।
सूर के मुख पर नूर झमकि समसेर सनमुख ले बारि कीता।
वाह वाह धन धन जीवन सोई जिन्ह मुक्ति मैदान में जान दीता।
फकर फारिक फरामोस नहिं दीन में लीन दरबेस सभ काम कीता।
सोई बोली साहब का पास है रै जिन्हि अपना जान हजूर कीता।
वोई दिल खास इश्रार है रै कहें दरिया पहचानि लीता॥ २a. १७
आजि नन्द के लाल है बाल सखा सभ काम कला एह रंग डारी।
बहर दरिया कहर के बीच आसिक नएन में लाज टारी।
कमला खड़ी सभ काम भरी कलोल कला गहि बांह धरी।

सुख तान के सुन बे सुन साधी सब ज्ञान गया हरि आपु हारी।
एह रंग लगा है जाल जंजाल चाखे जगत जहर भरा।
चाखे जहर राखे कवन कहर दरियाव में नाव परी।
हम वोए नहीं हम तुम नहीं हम आए जगत में ज्ञान झारी।
कहें दरिया अटल धनी त्रिगुन तेजो सतनाम तारी॥ २a. १८
छाया दम दीदार मो देखना रे हरदम दम तहकीक किया।
अगम गुलजार गंभीर है रे हम बास सुबास को बोए लिया।
एह गुल गुलजार बहु फूल है रे अम्रबास की प्रानि पहचान लिया।
मस्तहाल खुसिहाल परमानदा रे जहां नूर झमकि अंजोर किया।
हद बेहद गगन है रे जहां घेरि घटा चहुं ओर लिया।
अगम फहम जिन्ह पाइया रे हम देखि बिचारि तहकीक किया।
छाया सनंद अनन्द है रे जिन्ह रंद से दन्द निकन्द किया।
कहें दरिया दिल साफ है रे सतनाम के काम में जीव जिया॥ २a. १६
सत्त सिलाह सुरति नेजा जांहां जाए साहब से भेंट कीता।
घोड़ा ले सिर पांव समसेर हैरे तुम करू सलाम मैदान दीता।
एह सूर सहीद का काम है रे जिन्ह मंडि मैदान में खेत जीता।
एह रब हुकुम के कारने रे जहां घेरि पकरि के चोर लीता।
गलीम गवाव कुबुधि है रे पचीस फौज का बन्द कीता।
छूटा सहर अमल है रे जहां जाए महल मासूक लीता।
बीछाए पलंग खुस रंग है रे तहां बेलि चमेलि का वास लीता।
कहैं दरिया सिर ताज है रे साहब रहम से सभ कीता। २a. २०
पीर पंजा दिया जो हद जाफा किया भिश्ति की बास खुसबोए लीजे।
पंज निमाज एह पंज है वख्त में दीदंम दिदार मो दरस दीजे।
हज हावा हुआ मक मकान है महरम दिल इयार सोइ प्रेम पीजे।
कहें दरिया दिल दर्द दर्वेस है कफा सब काटि कतल कीजे। ३. ३
बेत्रास बेदीन है दर्स पावे नहीं दर्द दरगाह में रहत राजी।
हक हराम पहचानि दरबेसरा धनी के जिकिरि में फिकिरि भाजी।
वहिश्त वाकी बनी मनि मुरदार तेजु तर्क करु दिल में जो हद साजी।
कहें दरिया दर खड़ा हजूर है हज की बात तुम समुझि काजी। ३. ४
गैब है गैब वह ऐब लागे नहिं अजब जहूर खुसबोइ आवै।

इसिक के बीच जिन्ह सीस सनमुख दिया दर्द औ दाग सब जरब जावे।
रक्त औ बुंद मो जाम पैदा किया हर्फ है एक सो लिखि आवे।
कहें दरिया दर देखिये नजर में रहम में रहम है फहम धावे। ३. ५
महबूब मासूक अस नांवें मन तू ही हौ तल खतमा मेटा तल जब चाखिया।
भिश्ति में दोजक की हिरिस हवा नहीं सर्व सापुर्द है प्रेमपल राखिया।
बेबाह बेबाक बेकैद बेकीमति है इसिक के निकट है सिफ्ति जिन्ह भाखिया।
कहें दरिया दस्त पंज पीरा तूही परवर दिगार है पाक दिल राखिया। ३.७
दरिवंत्र दरिवंत्र दरिवंत्र चहुँगिर्दे गरकाब है गुमज पैदा भला जुबा तुझे दिया।
नबी है नबी जिन्हि सरा फुरमाइया खून खराब सब मना आपे किया।
किश्ति पर किश्ति है भिस्ति जाना तुझे कहर बिच बांचिया पीर पंजा दिया।
कहें दरिया जब दरद दिल में बसे, पाक है यह सीन साफा हिया। ३.८
बदी है बदी बेदीन बेददर है फर्ज पावे कहां जरब आवै।
माया मद मस्त बेकरत दिल में रहे मोम नहिं मेहर फिर कहां जावै।
नात्रास नात्रास नात्रास नातर्क है स्याह सराब बदबोए भावै।
कहें दरिया फिर दीन की छुरी है बदी को कतल करु भिश्ति पावै॥ ३. १०
जहां है तहां तू जहां दिल दीजिये जेवं गुल जाहिरा गिर्द घेरा।
हाल हजूर बातून बासीन है सफन सर्बंग है यार मेरा।
पात में पात में फूल में फूल में सालील सारंग में इसिक तेरा।
कहें दरिया दिल ऐन ऐसा बना बैन तारीफ ता नैन हेरा॥ ३ १५
बेइलि है बेइलि चमेली चहुँ गिर्द है भिश्ति की बोए बगीच बानी।
गुल गुलजार गुलाब का फूल है अत्र है अग्र खुसबोए सानी।
मोतिया मोतिया जातिया झलकिया पलक में पेखिया जलद खानी।
लाल है लाल जराव है जगमग देखि दरिया दिल दरस ज्ञानी॥ ३. १६
फूल में फूल में गुल गुलजार है लाल में लगन है इसिक तेरा।
हाल में हाल खुसिहाल खुसवख्त है मस्त महबूब है यार मेरा।
पाक है पाक बेबाक जौं बहर है संहर सांगीन है गिर्द घेरा।
ऐन में ऐन है बैन साफी बोले देखि दरिया दिल दरस हेरा॥ ३. १७
खाक में खाक है आब आतस भला पाक पैदा किया सिकिल तेरा।
जानि ले जानि ले पीर पंजा भला पलक में झलक है यार मेरा।
देखिए देखिए दरस में परस है हाल में हाल है बदन तेरा।

रहिमान रहिमान है रहम के नजर में देखि दरियाव दिल लहरि हेरा ॥ ३.२१
गिर्द है गिर्द है दरियाव दिल अंदरै यार के बदन पर वारि डारा।
फेर है फेर यह फहम फाजील हुआ रहमि के नजरि में निकट न्यारा।
कमल में कमल है भमर भूला रहे मालति मगन में डांक सारा।
पत्र में पत्र है पदुम झलकत रहै पलक दरियाव दिल जोति बारा ॥ ३.२३
बाग है बाग गुलजार संसार है अजब है गिर्द गुल अजब सानी।
बेजिनिसि बेजिनिसि एह ज्ञीम जाहिर भला भूलिया भौंर रस विविध बानी।
बोए है बोए ताफीक तमाज हैं फूलिया झिलमिल विमल ज्ञानी।
कहैं दरिया गुन गुन खुसरंग है मस्त मन मगन दिल ऐन आनी ॥ ३.२६
जहां गगन झरि अगम तहां निगम नहि नेम तहां प्रेम परगास निहतत्तु प्यारा।
तहां सब्द सतसार गुलजार गुल फूल मगु देखि मराल नीर छीर न्यारा।
तहां संत सुबुधि सरवर सारंग झरि झरत झरि बुंद एह नीर प्यारा।
जहां मूल प्रगास भौ अकह एह कमल तहां देखि दरिया कलि कर्म जारा ॥ ३.२७
रहम की करम में भरम के दाहि दे सर्ब सतनाम दिबि द्रिस्टि बाढ़े।
खुला दह कमल दल अस्ट बंक नाल की बाट सुघाट गहु गगन माढ़े।
सूर औ चन्द सब मूल में रमि रहा नूर परगास झरि रंग गाढ़े।
कहें दरिया निरपेंच निरवान सर्बंग गहु ज्ञान सनमुख ठाढ़े ॥ ३.२८
प्रेम है प्रेम एह अग्र सो बासिया नग्र मों निरति है देखि लीजे।
पीव है पीव पपीहरा इसिकदा छीर ज्यों सिंधु होय नाहि पीजे।
चंद है चंद ज्यों मंद होए पर्द में केलि जल ऊपरे कला दीजें।
कहें दरिया जल रंग जो मीलिया बिलग नहि होए जुग जुग जीजे। ३.२९
पांच है पांच पचीस प्रक्रीति है तीनि गुन देखि के द्रिस्टि रचा।
नव है नव यह नाटिका प्रगट है दसो दह द्वार जहां काम मचा।
अमी है अमी जहां प्रेम प्याला पीवै जलद में जन्तु है ब्रह्म संचा।
कहें दरिया परिपंच फंदा रचा इसिक मासूक बिनु रहत कंचा। ३.३०
लहरि पर लहरि है सिंधु सलिता मिलि खलक सब ख्याल में बिखै रेखा।
कहर में कहर है पीर पंजा दिया फीरु बेफीरु तुम उलटि देखा।
फहम में फहम फिरंग फिरता रहै रंग में रंग बेजिनिस लेखा।
बैन में बैन है नैन जाको लागा देखि दरिया दिल दरस पेखा। ३.३१
जहां कमल प्रगास हंस करत बेलास सुखराज सब राज जग जोति जौना।

जहां पलंग सुख सैन मुख बोलत निजु बैन जहां चंवर सिर छत्र अबिचल बाना।
जहां अग्र की घ्रानि सुख बास सब जानि भरि झांक चहुं ओर यहि चाखु घ्राना।
कहें दरिया थै तख्त के पास सभ हंस एक रास सुख सजन जाना। ३.३३
गरकाब गरकाब एह इसिक दरियाव है लीसिम तन को नहि वारि डारा।
रंग में रंग जिन्हि रंग ज़ाहिर किया सुरुख और स्याह सपेद सारा।
महबूब महबूब मासूक मेरा मिला बहिश्त दरवेस है पर्द फारा।
कहें दरिया दर जानिए जानिए जोति है जगमगा चित्र झारा। ३.३४
हंस के वंस ज्यों मुक्ति मुक्ता चुगै चित में चाहि के अमी पीजे।
प्रगट प्रमीन यह दीन में देखिये लेखिये सोइ जन नाहिं छीजै।
संत का मंत यह देखु द्रिश्टांत है तील के बीच ज्यों बास दीजे।
कहें दरिया जब पैठिए प्रेम में प्रगट होए पन्थ में उदित कीजै। ३.४२
भक्त है भक्त भगवंत भजन करे जक्त में भक्त जल कम्ल जैसे।
भेख है भेख यह भर्म छूटे नहि करम करता हुआ जन्म ऐसे।
बिहित है बिहित एह बिमल झलकत रहै पलक में पाक पर ब्रह्म जैसे।
देखि दरिया सरबंग साफा सही सर्ब सो एक है रदी कैसे॥ ३.४८
मुरली मुरली मैन मद जागिया राधिका राग ते नैन लागा।
कीनरि कीनरि बेनु बिद्या भली बान सभ काम ते भौन त्यागा।
कुंज में कुंज में कंज झलकत रहे पुंज है पुट रस भौंर पागा।
कहें दरिया दर खड़ा हजूर है सैल है सैन में सोवत जागा। ३.४९
सतबर्ग निर्बान निरपेच निहसंक है संत के कष्ट जिन्हि काटि काढ़ा।
सत्त का दाब ते दबे जम जालिमा पकरि कुंदी किया चीह गाढ़ा।
गबर के जबर है संत के साहबा स्वर्ग पताल निसान बाढ़ा।
कहें दरिया जब सिंघ के सरन मन मस्त गयन्द नहि रहत ठाढ़ा। ३.५३
दूर बे दुरमति दूरि खड़ा रहै निकट आवै नांह बिकट बंका।
सब्द समसेर ले जेर तुझे करौं घेरि के कोट महं देत डंका।
भागि गलीम एह गर्ब गंदा हुआ गाजि निसान तहां छोड़ संका।
कहें दरिया मन रावना क्यों बचे पलक में जाए गढ़ तोड़ लंका॥ ३.५८
काया गढ़ कनक मन रावना मद है कुमति कुंभकरन मदमस्त माता।
मेघनाद गर्ब है गरजि बाते करै सुन बे मूढ़ फिरि होत पाता।
भक्त भभीखना भरम जाके नहीं राम के काम में आप राता।

कहैं दरिया उन्हि सर्व कुल नासिया दाया मंदोदरी कहत बाता ।। ३.६०
तन तौं लंक भयो मन रावन बोले ज्ञान हनुमान गरजि दीन्हों डंका ।
झपट झारा करै पलटि पाएन परै कपट सभ काटि गढ़ चढ़ेव लंका ।
मीसि दससीस एह पीसि पंकज किया काम दल कांपि के रहत दंका ।
कहैं दरिया सोइ सूर संग्राम सतनाम के काम में बैन बंका ।। ३.६१
दूसरा दूसरा नाहि हम जानिया एक बेवाहा है इसिक मेरा ।
बंदगी बंदगी दिल बीच कीजिए दरस हर घरी है नाम तेरा ।
आफरींद आफरींद जहान पैदा किया दूसरा कौन है कहे मेरा ।
कहैं दरिया दिल अलिफ निसान है ऐन मैदान बीच दियो डेरा ।। ३.६५
मरदूद मरदूद मरदान नहि मरद है गर्द में जाएगा गर्व तेरा ।
रिंदिगी रिंदिगी बंदगी तेजिके गिदिगी परैगा प्रान जेरा ।।
सांच में आंच नहि कांच बोला करै हरैगा बुद्धि जम करै चेरा ।
कस्ट है कस्ट येह नस्ट जिव जाएगा अजहुं चित चेत सुनु काहा मेरा ।।
दरियाव दरियाव गरकाब चहुं गिर्द है पवन का फेर नहिं द्रिस्टि हेरा ।
दया है दया एह दरद दिल में धरो हरैगा दाग वड़ भाग तेरा ।।
जाएगा जाएगा रहेगा नहीं बे गहो गुर ज्ञान सत सब्द टेरा ।
कहैं दरिया जनि परो एह भरम में अपकर्म जंजाल धरि काल हेरा ।।३.६६
जोर तुम जनि करै जुलुम तुझ पर परै जुलुम के परे फिरि गर्द होए जाएगा ।
फकर सो फरक रहु फहम दिल मो नहि अलफ अलाह का धका तुम खाएगा ।
कौल करि आइया हुआ बेकौल तुम रहम की नजरि बिनु पकरि तुम जाएगा ।
कहैं दरिया दरबेस दरगाह दिल दरद बिनु बंदा तुम बहुरि पछताएगा ।।३.६७
कहर खोजता फिरै मेहर दिलमें नहीं बहर के बीच में गोता तुम खाएगा ।
करता है खून एह पीवता है सराब को सर्व रोज बंदा तुम दोजक में जाएगा ।
हक हराम पहचानि खावै नहीं कर्म सैतान फिरि बहुरि पछताएगा ।
कहैं दरिया दिल देखु बिचारि के लाल की लाली बिनु गर्द में समाएगा ।।३.६८
सतनाम तलवार जब गहा कर खैंचिके मचो मैदान दिवि द्रिस्टि ताना ।
परा है सोर सब भेख अलेख में राव और रंक जग जेते राना ।
कवन है कवन एह बिबिध वानी बोले बेद पुरान तेजि और माना ।
सिव समाधि सनकादि अनादि ले मैन के भस्म करि गर्द साना ।
जुक्ति से जोग है भोग ब्यापे नहि सोध औ साधु सब धरत ध्याना ।

चौकरि चारि यह जुग जेते कही राम को नाम सभ जक्त जाना।
हीए के बंद हो चंछु के अंध हो स्रवन में संधि नहि सब्द माना।
आतमा राम तोहि दरस दीसे नहि पर्सि परवान जढ़ टेक ठाना।
जाल अति भीन है मीन जिव बाझिआ बंचे कोइ संतजन सभे छाना।
कहें दरिया सर्बंग साहब सही मंडे तुम धोखे रस बिखै साना॥ ३अ.१
नरक है नरक एह फरक भागा फिरै सर्ब है सार एह संत सेवा।
दया है दया एह धर्म करता रहै सब सरकार का रति रैवा।
कौल है कौल बेकौल काहे हुआ करम अछा करो भक्ति भेवा।
राव है राव एह रंक केते कहि गए तन त्यागि एह तीनिउ देवा।
नाएबि नाएबि नग्र के पाइया अग्र जाने नहीं भंग भेवा।
जुलुम है जुलुम एह जबर सिर ऊपरे गर्ब के पकरि के मुसुक देवा।
वार है वार एह पार किमि जाएगा गहो गुर ज्ञान नहिं लागु खेवा।
कहें दरिया दर सेउ बेगाफिला गर्ब के दूरि करु ज्ञान मेवा॥ ३अ.५
ज्ञान को घोड़ला सून्य में दौरिया सून्य में सुरति है सब्द सारा।
एह काया तो कर्म है भर्म लागा रहै काया के अग्र दिबि द्रिस्टि बारा।
नूर जहूर खुसबोए खासा बने बास सुबास में भौंर हारा।
मुरली मगन महबूब आपे बना भींगुर भनकार तहां बाजु तारा।
गगन गरजत रहे बुन्द अखंडिता पंडिता बेद नहिं अंक न्यारा।
हद बेहद बेअंत अथाह कोइ जन जुक्ति से जाहि पारा।
जौहरि जानिया जाहिर जाके करे हीरा मनि पास है जोति सारा।
कहें दरिया कोइ बोली मस्तान है सब्द के साधि ले संत प्यारा॥ ३अ.७
मन का रंग बहु रंग है रे तुम मन का रंग बिचारु प्यारा।
मन ही राम है मन है रावना मन ही उगे असमान तारा।
एह मन ने मारिया मन ने जारिया मन ने उतपति सभे बारा।
एह माया है मन ते मन की मोहनि मन ने मंडिया जक्त सारा।
एह रीखि औ मुनी सब मन के जार में मन ने फांस सभ ग्रीव डारा।
भलक भाईं देता पलक में मारता भार के भूंजबे हाथ कारा।
ब्रह्म से छीन है चीर से लीन है हठो है काल तेहि कारि डारा।
कहें दरिया कोइ संत जन जौहरी सत्त के चीन्हि जिन्हि कदम मारा॥ ३अ.८
संत की चाल तुम समुझि बांकी बड़ी सुरति कमान कसि तीर मारा।

पांच के मेटि, पचीस के दलि मलो छव के छेदि पीउ सब्द सारा।
साधि ले मेरुडंड बैठु ब्रह्मंड. खंड पौन प.चो लिये काम जारा।
काल जंजाल ते काम निकुताए ले जोग गहि जुक्ति तुम समुझि यारा।
उलटि ले पवन तुम गौन करु गगन में साधि ले त्रिकुटि दिबि द्रिस्टि बारा।
ताहां होत झनकार सत सब्द उजियार ताहां छूटिगौ त्रिमिर उदित सारा।
ताहां रोग नहिं सोग निरदोख निरबान सर्बंग सब माहं तुम देखु न्यारा।
कहैं दरिया दिल पैठु दरियाव में पाव तुम लाल अमोल प्यारा॥ ३अ. ६
काया में जीव औ सीव संग सक्ति है काया में काम औ क्रोध छावै।
काया की खानि अनमोल नीर बाहै काया नव नाटिका बाट आवै।
काया पिंड प्रान ते भान चन्दा उगै काया की सुरति एह साफ धावै।
काया में त्रिबेनी लहरि तरंग है काया में अमर सुधार पावै।
काया में मूल एक फूल प्रगट सही काया छव चक्र दिबि द्रिस्टि लावै।
काया के अग्र एह गगन गढ़ झांक है काया कोट पैठि के बाट आवै।
सोइ सीध सोइ साधु सोइ संत जुग जुग जीवै पीवै पहचानि सत सब्द पावै।
कहैं दरिया सतबर्ग सत सोइ है मरै नहिं जीवै नहि गर्भ आवै॥ ३अ.१२
काहां ते सीव एह सक्ति तीनू जना काहां ते ब्रह्म एह जक्त सारा।
काहां ते चांद एह सुर्ज प्रगट भये काहां ते पौन एह गगन तारा।
काहां ते सेस एह सहस्र फनि जोरि के काहां ते कुंभ एह बाह टारा।
काहां ते सारदा गौरी गनेस एह काहां ते सीध नव नाथ प्यारा।
कहां ते तत्तु पचीस प्रक्रीति एह काहां ते धर्म कथि बेद न्यारा।
सून बे सून कहे रूप रेखा नहिं काहि तुम देखि के ध्यान धारा।
नैन बिहून कहे स्रवन सुने नहिं कवन उचार जन जक्त तारा।
ऐसा बिबेक सभ ज्ञान निर्गुन कथे कहैं दरिया सुनु सब्द सारा॥ ३अ.१३
पुर्ख अडोल वो सत्त सामर्थ सही क्रुह्म के कीन्ह सभ जक्त जानी।
क्रुह्म ते चांद एह सुर्ज प्रगट तारा भए आदि औ अंत सभ पवन पानी।
क्रुह्म ते सेस एह सहस्र फनि जोरि के क्रुह्म ते बाह सभ अगिनि खानी।
क्रुह्म ते भिन्य एक जक्त जननी कियो ताहि उतपन्य भए तीनि ज्ञानी।
तेज औ बेद जिन्हि उदधि मथन कियो आम्रित औ बीखि सभ आनि सानी।
हुआ मन मंत एह काम ते बसि कियो तीनि से सिस्टि एह ब्रह्म आनी।
करता उठाए के धुंध धोखा धरै कहैं दरिया सोइ मूढ़ प्रानी। ३अ.१४

कहत डरौं नहिं काम करता करै गर्ब से गर्द मिलि जाएगा रै।
गर्ब के ऊपरै जबर साहब गनी धका तुम धनी का खाएगा रै।
छोड़ि के मेहर एह कहर खोजता फिरै करम सैतान बहि जाएगा रै।
चढ़ि तुरंग एह रंग माता फिरै जीव का खून क्यों लहेगा रै।
जम का फौज यह कुफ्र काफा करै गुप्त से प्रगट दुख सहेगा रै।
चित्त चैतन्य हुआ चित्त बिचारिया संत सो बचन निजु कहेगा रै।
गया तौ गाफिला माफ एह कौन करै अगिनि में तन सो डहेगा रै।
कहें दरिया दरगाह नहिं दाखिला अमित सो भवन दुख सहेगा रै ।। ३अ.१५

मूल है मूल एह फूल देखा कहे तुले नहिं ताहि एह बेद सारा।
सुरति है सुरति एह सुरति में देखिए गगन मैं मगन है द्रिस्टि बारा।
नीरति है नीरति एह प्रीति पाएन्ह परी गया जम जीति भौ बिबिध धारा।
त्रिगुन है त्रिगुन एह त्रिबिधि तीनि ताप है त्रिमिर सभ नासिया निरखि न्यारा।
ज्ञान है ज्ञान तुम गर्ब के दूरि करु सर्ब ब्यापार है संत प्यारा।
जोग है जोग यह भोग भागा फिरै रोग ब्यापे नहिं सोग मारा।
अछै है अछै तुम प्रेम में छका रहु देखो छबि ब्रह्म एह उदै तारा।
कहें दरिया दरियाव गरकाब है गहिर गरकाब तहां जलद धारा ।।३अ.१७

अमर वोए बीछ हहि पंवरि जाकी फूलि मातिया भौंर निजु घ्रान पाई।
अमी एह प्रेम है प्रीति पीवता रहै जीति जम धार नहिं निकट आई।
उनमुनि के बीच यह चीत चुभा रहै चौक है चान्दनी देखि पाई।
अरध अमान निरबान झलकत रहै सेत सुगंध छबि छत्र पाई।
मगन मासूक एह गगन गरजत रहै झरत झरि बुन्द घन घटा आई।
आदि अनादि देखि बादि मिथ्या तेजो दरस हर घरी निजु पलक पाई।
गहो गुर ज्ञान तुम ध्यान करु धनी का तेजि दे मनी नहिं दोजक जाई।
कहें दरिया दिल दागा तुम दूरि करु डगा दे ज्ञान सुनु संत भाई ।। ३अ.१८

झूमता द्वार गज बाज सब साज है राज दरबार सब फौज भारी।
छरी बरदार चोपदार आसा लिए निकलि नाकीब सब हांक पारी।
बैठिए तख्त आम खास चहुं पास है मीर उमराव कोर्निसि गुजारी।
नौबत निसान एह गर्द बाजी करै बाजिया नीति झनकार झारी।
बेगम बेलास एह सखी चहुं पास है चित्र के बीच मानो लिखि डारी।
लाल जराव मनी मोती सब छाइया छको छबि देखि एह अछो नारी।

पकरि जबरील जब कस्ट कुंदी करे नस्ट नर जात सिर बोझ भारी।
कहें दरिया बेदरद गंदा हुआ बन्दगी बादि करि जन्म हारी॥ ३अ.२०
सुन बे मूढ़ अगूढ़ बातें करे हटा है काल तोहि काटि डारे।
गरब गुमान अभिमान माता फिरे रता कुबुधि जीव जान मारे।
सीकिल सांई किया सर्ब सुख जोग में भोग के बीच एह जक्त हारे।
प्रीति करु संत से सुखी होए अंत के दुख दागा नहिं कर्म टारे।
जन्म तौं दुर्लभ है फूल जौं कम्ल का जल के सुखने अगिनि बारे।
भौंर भरमित फिरे कमल बिनु ठवर नहिं ठगो जीव जानि कहु कौन तारे।
करम जैसा किया काम पूरा नहीं धूरिया धाम भयो तन सारे।
कहें दरिया दिल दरद नहिं साधु का सदा बिकार रहु कस्ट कारे॥ ३अ.२१
जानि ले जानि ले सत्त पहचानि ले सुरति सांचा बसे दीद दाना।
खोलु कपाट एह बाट सहजे मिले पलक परमीन दिबि द्रिस्टि ताना।
ऐन के भवन में बैन बोला करै चैन चंगा हुआ जोति घाना।
मनी माथे बरै छत्र फीरा करै जागता जिन्द है देखु ध्याना।
पीर पंजा दिया दस्त दाया किया मस्त माता फिरै आपु ज्ञाना।
हुआ बेकैद एह और सभ कैद में झूमता द्वार निसान बाना।
गगन घहरान वोए जिन्द अमान है जिन्हि एह जक्त सभ रचा खाना।
कहें दरिया सर्बंग सफा मिले फफा के काटि सभ कुफुर हाना॥ ३अ.२४
पेड़ कहं पकरि तब डारि पलो मिले डार गहि पकरि तुम पेड़ यारा।
देखु दिबि द्रिस्टि असमान में चान्द है चान्द की जोति अनगनित तारा।
आदि औ अन्त सभ मध्य है मूल में मूल का फूल कहु केतिक डारा।
नाम निर्गुन निरलेप निरमल बरै एक सो अनंत सभ जक्त सारा।
पढ़ि बेद कितेब बिस्तार बकता कहे हारि बेचुन वोह नूर न्यारा।
निरपेच निरबान निहकर्म निहभर्म वह एक सरबंग सतनाम प्यारा।
तेजु मान औ मनी करु काम के काबू एह खोजु सतगुर भरिपूर सूरा।
असमान का बुन्द गरकाब दरियाव दरियाव का लहरि कहि बहुरि मूरा॥ ३अ.२५
चौहद एह तबक तबीन जाके कहीं नीर औ पौन घट सभे घेरा।
खंड ब्रह्मंड सभ डंड एके कही चांद औ सुर्ज का एहि फेरा।
रहो छबि छाए एह छके मुनि देखि के रूप छहलत मनि कौन हेरा।
सेस के सीस पर ईस जाके कही भए जगदीस सब जीव चेरा।

बैकुंठ बिराग सब राग कथनी कथे मथे दही जानि तब प्रीत हेरा।
बेद कितेब दुनो सुन सिखर बसे हरै बुधि जानि गुन पंडित तेरा।
आदि अनादि सब बादि कथनी कथे हते जीव जानी सब प्रान मेरा।
कहें दरिया तूं उलटि के देखि ले प्रगट प्रतछ एह रछ तेरा॥ ३अ.२९
संत का मत एह दाया बिबेक है दाया बिन काया एह झूठ डोला।
मीन औ मांसु एह मुक्ति माना करै स्वान जौं जानि क्रिस्न गीता बोला।
जीव मारा करै पथल पूजा धरै हिए की आंखि कोइ आंजि डाला।
क्रिस्न का कथा एह गीता सब धर्म है बूझि बिचारि के खोलि डाला।
बेद पुरान ए बिबिध बानी कहै क्रिस्न का कहा नहिं और तूला।
जीव का हतन एह निगम साखी बोले पढ़ा जौं बिहित कै भर्म मूला।
चाल बेचाल चले उलटि निन्दा करै माया मद माति कै गर्ब फूला।
कहें दरिया जब काल कर डंड ले पकरि के प्रान उखारु मूला॥ ३अ.३०
एक है एक जौं टेक गहे कोई समुझि के पांव दे राह बांकी।
सत्त का टोप सिर सब्द के सांगि ले ज्ञान का तूर या तेज रांकी।
ताहां काम औ क्रोध का फौज सब घेरि के पैठि मैदान में देखु ताकी।
ताहां तबल निसान औ बान आगे खड़ा जक्त में सोर नहिं रही बाकी।
संत सिपाह दिन रैनि मंडा रहै काया गढ़ कोट में देत झांकी।
मन मस्त गयेंद जंजीर आपु दिए रहे ता बीन सभ बात बांकी।
जिमी असमान के बीच में सूर होए गगन में मगन धुनि कीत जाकी।
कहें दरिया दल संत सोभे सोइ सिंघ की ठवनि करु रहनि एकी॥ ३अ-३२
करोंगा सोइ जो हुकुम करते किया सब्द की सांगि समसेर बंका।
ज्ञान का घोड़ला प्रेम पाखर दिया घैंचि करि तंग चढ़ि छोड़ संका।
मगन मसूक एह गगन में कूदिया ढील करि बाग मैदान हंका।
कड़ी कमान एह घैंचिया ऐडि कै तीर बिबेक टनकार टंका।
पांच पचीस एह तीस भागे फिरै बड़े सरदार बोए राव रंका।
आड़ नाहिं अटक है कटक सभ फूटिया पटक के सीस सभ परा दंका।
जूझिया कोइ नहिं जुक्ति आपन किया मुक्ति की बात लिखि लिया अंका।
कहें दरिया एह बीर बांके बड़े मंडे मैदान मम दियो डंका॥ ३अ.३४
आपने जोग जो जुक्ति के जानि ले संत का जुक्ति का जक्त जाने।
संत का बास आम खास जहां तख्त है देखि दिबि द्रिस्टि तहां सुरत आनी।

आंखि का मूंदना बक का काम है पौन का साधना भांड़ जाने।
छोड़ि के असल एह नक़ल प्रगट करै सोइ मरदूद नहि कहा माने।
जम के हाथ जिव बेंचि खरच करै नहि गुरु ज्ञान सतगुरु जाने।
कहे बेचुन चौगुन सांईं मेरा सोइ जीव बांधि जबरील ताने।
बेद कितेब से फहम आगे करै जोग बिराग बिबेक काने।
कहें दरिया सत सब्द प्रचारि के सुमिरु सतनाम मैदान ठाने॥ ३अ. ३८
घना मोती झरै जोति जगमग बरै घटा घन घेरि चहुं ओर फेरा।
बुन्द अखंड सुर चले ब्रह्मंड के काम की फौज सब घेरि डेरा।
त्रिबेनी मध्य तहां सुरति सनमुख कियो सुखमना घाट कहं द्रिस्टि हेरा।
पलक में झलक चहुं मंदिल छबि छाइया ब्रह्म पुनीत नहिं बहुरि फेरा।
भेद बंका बड़ा काल संका नहीं ज्ञान घर खुलित सब कर्म जेरा।
ध्यान लागा रहे गगन घन गरजिया कुमति कुबुधि होए रहत चेरा।
बैन बिचारि एह लगन लागा रहे मगन सभ दिन कियो गगन डेरा।
संत सुजान जिन्हि सब्द बिचारिया कहें दरिया सोइ दास मेरा॥ ३अ. ४१
संत सिलाह संतोख साबूत तुम पहिरु सहिदान मरदान यारा।
अरध ले ढाल तुम काटु जम जाल तुम पकरु समसेर सनमुख प्यारा।
ज्ञान का घोड़ला तेज ताजन दिया चढ़ि मैदान नहिं टरत टारा।
तहां काम औ क्रोध के फौज सभ सोधि के पांच गहि चोर परचार मारा।
भया निहसंक एह चढ़ा गढ़ बंक ताहां धुंध औ धुंध भौ भर्म जारा।
ताहां गर्जि निसान अबिगति अमान अडोल अबोल पर धरनि धारा।
ताहां चौक है चान्दना मूल के साधना गगन में मगन है सब्द सारा।
कहें दरिया कोइ संत जन जौहरी ब्रह्म बिचारि के वार पारा॥ ३अ. ४४
मूल जाने बिना सूल सागर परा हरै बुधि ज्ञान बलि छरन चाहे।
बेद की उक्ति से जुक्ति दानी हुआ बांधि पताल मो दुख आहे।
हरि चंद में मंद नहि फंद बाजी रचा जीव का दान तेहि काह दाहे।
नीच घर बेंचिया काम कंचा किया सत्त में बिपति एह तन डाहे।
ठग ठाकुर एह जमि जिव ठगिया मांगिया मुक्ति नर अजब आहे।
इन्द्रजाल का ख्याल एह पेखना पालिया डारिया जाल नर सांच काहे।
माया मन माचिया बांचिया कोइ नहिं तिर्गुन के धार में जान बाहे।
कहें दरिया दिल दागा तुम छोड़ि दे गहो सतनाम सरबंग साहे॥ ३अ.४६

अगम गुर ज्ञान से ब्रह्म पहचान ले बिना पहचान का कथे ज्ञानी।
बिना पहचान अजान कहां जाइहो बिना ठहराव कहां ठवर ठानी।
बिना दिबि द्रिस्टि एह जीव कहां जाइहै उर्ध मुख ध्यान धरि बिकल बानी।
अरध अंधिआर ताहां चोर चारिउ मुसे बिना सत सब्द जिव होत हानी।
बिना मगु देखि सभ भेख भर्मंत फिरै नहि जोग जुक्ति रस रोग आनी।
खाली सभ खलक है पलक मुंदे रहे खोलु दिबि द्रिस्टि सोइ सिध्य ज्ञानी।
सोइ साधु भरि पूर है सूर सनमुख सही आपु में आपु जिन्हि उलटि आनी।
कहें दरिया सत सब्द बिनु पार नहिं वार भटकत फिरै मूढ़ प्रानी ॥ ३अ. ४७
प्रेम की खेलि फुलेल सुगंध है प्रेम की नैन नहिं औरि तूला।
कमल का फूल जौं प्रेम जल भीतरे प्रेम के कारने भंवर भूला।
प्रेमहि चन्द चकोर दिबि द्रिस्टि में प्रेम के कारने उलटि झूला।
पिया संग प्रेम बसि नारि साहस करै प्रेम के अंग अगिनि बेइलि फूला।
प्रेम से सूर एह खेत पर हेत करि प्रेम से जीव एह जानि हूला।
प्रेम से म्रीग एह नाद लौ लाइया प्रेम से संक नहि लागु सूला।
प्रेम से संत एह मोह के काटिंया प्रेम से त्यागिया कूल मूला।
कहें दरिया जन प्रेम आसिक हुआ जेंव जल कलि प्रेम पत्र खूला ३अ. ४८
राम रहीम करीम केसो कहै जीव एह कौन है बोलत बानी।
गीता पुरान कोरान को देखिके आपु तुम उलटि के समुझि आनी।
नबी और किस्न के दोए नहि जानिए कहा फुरमान सभ राह जानी।
उहां कहा कोरान इहां गीता में कहा है समुझि के घाट तुम पीव पानी।
जीव का दर्द बिनु बंदगी बादि है दया बिनु मुक्ति नहिं नर्क खानी।
हक हराम पहचान के खाइए दया और धर्म के बूझु प्रानी।
हिंदु मुसलमान दोए दीन सरहद बना असल अलाह सतपुर्ष मानी।
कहें दरिया तुम पीर पर्चे करि गुरु के ज्ञान में अकिलि आनी। ३अ.५४
सत की राह कोइ समुझि तारीफ करै सत की राह कोइ संत जाने।
हिंदु मुसलमान दोए दीन सरहद बना बेद कितेब परिपंज आने।
बेद कितेब कोरान गीता पढ़े जीव का दरद नहिं कबहिं आने।
जीव का दरद फुरमान साईं किया सोई दरबेस जो कहा माने।
जोर से जीव जो पकरि जबह करै बांधि जबरील हजूर आने।
करै इनसाफ सब साफ कागज हुआ दोजक के जार कहु कवन ठाने।

पंडित मोलना ताहां कवन बाते करै परा जिव कस्ट जमदूत ताने।
खून का खून एह वोएल दिर बना कहें दरिया दिल समुझि आने ॥ ३अ.५५
आदि हि एक औ अंत फिरि एक है मूल ते फूटि तिनि डाइ कीन्हा।
पांच औ तत्तु पचीस प्रकीति है तीनि गुन बांधि कलबूद दीन्हा।
थीत चीन्हे नहीं पथल पूजता फिरै करम अनेक करि नरक लीन्हा।
ब्रह्म सभ एक धर्म बिबरन करो ज्ञान गीता पढ़े समुझ बीना।
आपने दर्द सो औरि का दर्द है आपने प्यास पर प्यास चीन्हा।
बिद्या तिनि आंखि है फूटि फारिक हुआ मर्कट की मूठि जानि जीव दीन्हा।
जेवं बक का ध्यान मन मइल तन ऊजलो जल में पैठि के माछ लीन्हा।
कहें दरिया पढ़ा बेद जौं बिहित करि भरम की भीति नहिं नाम चीन्हा ॥ ३अ.५६
जक्त है जक्त एह जीव जहड़े गया पथल के नाव चढ़ि बुड़े केते।
भेख है भेख एह भरम टाटी किया लागी टकटकी एह माया जेते।
खेत है खेत एह बीज केते बोया परै जम हाथ में डंड देते।
झूठ है झूठ एह सांच तीता लगै प्रीति करि माया जम जुआ जीते।
जाहुगे जाहुगे जहां जम खानि है जन्म केता बिता वोएल देते।
नरक है नरक एह निरखि आवै नहिं परखु गुरु ज्ञान निजु मुक्ति हेते।
पांच ईं पांच पचीस की महल है टहल काहां करै खवर देते।
कहें दरिया दर धका बहुते परा हरैव बुधि ज्ञान जम साठ लेते ॥ ३अ.५७
मान मर्जाद कर काम कौड़ी नहिं गर्ब अभिमान ते बोलत बानी।
झूठ साखी बोले माया मद मातिया बांचिया पोथिया बेद भानी।
सतमी अठमी नवमी नेम है महिखा मारि के जज्ञ ठानी।
दरद कहां बसे दैंत दानो बना करम चंडाल करि नरक खानी।
जाहि करता कहे ताहि माने नहिं रमिता राम का दूरि जानी।
ऊपर की आंजिया भीतर की फूटिया कूटिया काल सिर बांधि तानी।
सत्त औ झूठ दोउ जाए जाने बिना भरम भुअंग धरि टेक ठानी।
कहें दरिया फिरि दोस नहिं दीजिये जोर सो मारिया करिहि कानी ॥ ३अ.५८
वोए पाक है आप वोह पाक आपे बना खलक सब पलक में नजरि आना।
नूर जहूर जमाल जाके कही कोइ दरवेस दर भिस्ति जाना।
हर दम दाना फेरो दंम दीदार में दरस हर घरी है प्रेम साना।
जरब दिल सक्त है हफ्त में जाएगा खून खराब करि दीजै माना।

सारा तौं साब नहि प्याला है प्रेम का अलफ अलाह नूर नबी जाना।
रहम रहिमान में करम बकसीस किया बैठु आम खास में दीद दाना।
छुरी तुम छुवै जनि परी खावै नहीं छुरी नाहीं बगल में दागा फाना।
कहें दरिया दरवेस दिल दरद करु मंजिल मोकाम है दूर जाना ॥ ३अ.६१
आपना मत से जक्त सभ मातिया ज्ञान का मंत बिनु दूरि ध्यानी।
देव देवी पूजे धोखाबाजी करै अम्रित औ बीखि सभ आनि सानी।
राम तौं रमि रहे बोलता ब्रह्म है पकरि के तंग जीव आनि मानी।
पथल की मुरति यह सीकिल साबुत कियो रुधिर के धार दे भये दानी।
रछ रछ्या भखे तुझे कवंन रखे गरब गुमान अभिमान सानी।
कांट का मूल येह फूल कहां मिले पाप का मूल जीव जानि ठानी।
करैगा लेख अलेख साहब मिले जीव का मूल गहु मीत मानी।
कहें दरिया एक नाम निर्मल सही प्रीति करु संत से रीति जानी ॥ ३अ.६२
भरम की मार जहडाए जीव जानि के मंडि रहा भ्रम कर्म काई।
दाया नहीं दिल में दरद बेदरद एह करता है खून नर नरक जाई।
गरब प्रहार हंकार हरदम धरै सुने नहिं स्रवन सत सब्द लाई।
गए जम द्वार के पार एह आपनो आपने आपु कीत आपु लाई।
नरक की खानि सवारि जढ़ जानिके जात है जन्म गति अगति पाई।
गए अचेत नहिं चीत चेतन्य महं आपने हाथ पशु आप खाई।
सोइ संत है सांच जो काल से बांचिहें काल मन मन्द सत सब्द पाई।
कहें दरिया वोए आपु हीं आप है आपु तुम सांच होए सांच पाई ॥ ३अ.६४
तीरथ औ ब्रत से पाप जावै नहिं दूरि धंधा करै कर्म बंधा।
भक्ति से चूकिया भौन में भूकिया ज्ञान तेहू किया नैन अंधा।
लटकि बादुर हुआ पटकि जम मारिया चरन भौ चारिया चरख नाधा।
उलटि औ पलटि एह कलपि कर काटिया बांटिया भौन में वोएल संधा।
नाहर नागा हुआ जंगल में भागिया आगि लगाए के जारि खंधा।
लहु नहिं बांचिया कर्म ते नाचिया खैंचि कर बान भरी ताहि रंधा।
मरकट मुठी हुआ कर्म काला करै लोभ में डारिया सोइ धंधा।
कहें दरिया येह लच्छ चौरासिया फांसिया काल ने प्रान कंधा ॥ ३अ.६५
मरदूद मरदूद मरदान नहिं मरद है गर्द में जाएगा गर्ब तेरा।
रिंदिगी रिंदिगी बंदगी तेजि के गिंदिगी परैगा प्रान जेरा।

सांच में आंच नहि कांच बोला करै हरैगा वुद्धि जम करै चेरा।
कस्ट है कस्ट एह नस्ट जिव जाएगा अजहुं चित चेत सुनु कहा मेरा।
दरियाव दरियाव गरकाब चहु गिर्द है पवन का फेर नहिं द्रिस्टि हेरा।
दया है दया एह दर्द दिल में धरो हरैगा दाग बड़ भाग तेरा।
जाएगा जाएगा रहेगा नहीं बे गहो गुरु ज्ञान सत सब्द टेरा।
कहैं दरिया जनि परो एह भरम में अपकर्म जंजाल धरि काल हेरा।। ३अ.६६
सोइ संत सुवुद्धि सुबैन निरबान सत सुक्रित को ध्यान नहिं औरि तूले।
दाया दिदार एह दरद दिल में धरै आपने आप से कमल फूले।
महल मोकाम एह काम काबू किए मस्त गयंद जौं आपु भूले।
ज्ञान जंजीर एह जतन जुक्ति किए सील संतोख से सब्द बोले।
सत्त कपाट एह कुलुफ कुंजी दिये रतन एह जतन करि जक्त तोले।
हाट औ बाट में गहिर गूंगा डोले सब्द अनमोल कहिं जानि खोले।
सील समूह सोइ ज्ञान गुर अगम है देखि के मूल कहिं द्रिस्टि मेले।
कहैं दरिया दरियाव में लाल है आपने आपु नहिं सत्त डोले।। ३अ.६९
काया परचे नहिं पौन के साधि करि पौन की साधि जम बांधि मारै।
इंगला पिंगला नव एह नाटिका भूख औ प्यास तेजि तन जारै।
भया तन छीन बल हीन जोग जुक्ति बिनु आपने बुड़ा कहु काहि तारै।
सांपिनि डाइनि मुसे दिन रैनि एह बिना तप तेज नहिं समुझि वारै।
पिंड औ प्रान कछु काम कैदा नहिं झूठ साखी कथे कुफुर बारै।
चाल बेचाल चले सील संतोख नहिं औरि से औरि कहि औरि टारै।
छोड़ परिपंच तुम फन्द काहे रचे फन्द जंजाल का काम सारै।
काया के अग्र एह अगम पहचानि ले कहैं दरिया सत सब्द प्यारै।। ३अ.७०
घट पर घट परमीन परवान दिबि द्रिस्टि की बात का दूरि जानी।
धुंध धोखा धरै भर्मि काहे मरै निकट निसान नहिं फहम आनी।
दीद पर दीद प्रतछ निरबान है निरखि निजु नाम चढ़ु गगन ज्ञानी।
गगन की डोरि एह सुरति छुटे नहिं अजब आचर्ज सभ दरस बानी।
दरस में परस एह ज्ञान गंभीर है गहिर गरकाब रस प्रेम सानी।
छव औ आठ का भेद वंका मिला महल मोकाम का भेद जानी।
भेद ब्रह्मज्ञान ते भर्म पर्बत ढहा रहा निजु नाम सो जानु प्रानी।
कहैं दरिया गढ़ चढ़ो गुर ज्ञान ते नाम निसान मैदान ठानी।। ३अ.७१

खंड ब्रह्मंड सेइ कंद खाए कहां अंन के त्यागि के दूध धारी।
पौन के खैंचि के ब्रह्म पीवै सोइ जीवै नहि जुग कोइ लाए तारी।
मौन मौनी हुआ पवन परिपंच करि अस्टंग एह जोग कसि कया जारी।
पांच एह अग्नि जल सैन साधे सोइ पांव के टांगि उर्ध अग्नि बारी।
काम के जारि एह बजर कछोट कसि बुद्धि सुबुद्धि धरि क्रोध मारी।
चोर चीन्हें नहि मुक्ति पावै कहां तप से राज फिरि नरक डारी।
राज सभ तेजि के काज जोगी करै खाक मुख लाए के लाज टारी।
कहें दरिया वह जुक्ति जाने बिना ज्ञान प्रकास निजु नाम तारी॥ ३अ.७३
धुंध धोखा धरै अंध पूजा करै घंट बजाए सिर चौर ढारै।
तोरि सजीव निरजीव पूजा करै देव दूजा कीन्हो कपट कारै।
जीव औ सीव सभ आतमा राम है पकरि के तेग धरि ताहि मारै।
ब्रह्म चीन्हें नहि भर्म भटका फिरै गया जमद्वार सो नरक नारै।
सुक्रित रैखा नहिं भक्ति देखा नहि धरम दाया नहिं जनम हारै।
छोड़ि बैकुंठ एह मूढ़ माता फिरै नस्ट जिव जाए धरि तप्त जारै।
छोड़ि दे टेक अलेख साहब मिले जीव का मूल गहु सब्द सारै।
कहें दरिया चढ़ दाया के महल पर गहो परचारि काटि त्रिगुन धारै॥ ३अ.७४
सुमिरु सतनाम निजु काम है जाहि ते तेजु रसभोग सुख भौन छाजे।
ल्याउ दिल दाया तुम दरद की नजरि में तेजु कुल कर्म सभ लोक लाजे।
होए निहकर्म सभ भर्म के ढाहिं दे गहो सत चरन सुख अचल राजे।
तेजु दुख दंद तुम फंद निकंद करु धरो दिढ़ ध्यान सोइ काम काजे।
जाहां अमी परगास भौ कमल फूल फूलित तहां खूलित धुनि गगन सुनि काल भाजे।
ताहां झलक झलकार सत सब्द उजियार ताहां अगम अघ काटि सिर छत्र छाजे।
ताहां भाग्य बड़ भक्ति के जक्त के जोतिया जानि एह जुक्ति ताहां जोग गाजे।
कहें दरिया है गगन में मगन ताहां अगम निसान धुनि तार बाजे॥ ३अ.७६
जीकिर करु जीकिर करु जीकिर करु जीयरा जीकिर करु धनी जुबां सानी।
मनी है मनी मुर्दा के दूरि करू सोइ दरबेस दरगाह जानी।
पंज है पंज एह पीर पंजा दिया पंज निमाज करु जार कानी।
दंम है दंम दीदार मो दर्स है अर्स प्याला पिवै मेहरबानी।
नूर है नूर एह फूल झलकत रहै गुल गुलजार झरि अमिय बानी।
भिस्ति है भिस्ति खसबोए साफा मिला बास सुबास दिल ऐन आनी।

बेबाहा बेबाहा एह बाहा जाके नहीं कीमति काहां करै सिफ्ति जानी।
कहैं दरिया दरबेस कोइ इसिकदा महल मासूक महबूब जानी ॥ ३अ.८२
जीकिरि करु जीकिरि करु जीकिरि करु जीयरा जीकिरि करु धनी का जुबां तेरा।
उजू को साफ करु दिल दरियाव में पीर पंजा पकरि आउ प्यारा।
अलफ निसान एह पलक देखा करै खलक के ख्याल नहि काम तेरा।
महजीद मोकाम करु दंम दिदार में छोड़ि दे गाफिलि मनि मेरा।
आएत कोरान का समुझि दरबेसरा बहुरि नहिं दोजक में करत फेरा।
भिस्ति तुझको मिला सिफ्ति करता रहै करम अलाह का रहम यारा।
फहम में फहम एह फकर फारिक हुआ ऐन अमान बिच किया डेरा।
कहैं दरिया तहां बेइलि चमेलि है जगमगी झलक है जोति सारा॥ ३अ.८३
धनी है धनी है धनी है सोइ जिन्हि पिंड औ प्रान एह दीदम कीन्हा।
पाक है पाक अलाह सिर ऊपरै दूजा है कवन जाहि दिल दीन्हा।
जीकिरि हनोज करु रोज राजी रहै साफ होए आपु तू राह चीन्हा।
पढ़ि क्रोरान दरबेस तू समुझि ले हुकुम नहिं दीन का खून कीन्हा।
हुकुम फरमान एह जीव का दरद है आपने खुद होए जबह कीन्हा।
जीव और जान सब मारि बजम किया दाया नहि दोस कहु काह कीन्हा।
पकरि जबरील जब हुकुम हाजिर करै कठिन की जार सिर बोझ लीन्हा।
कहैं दरिया दरबेस तुम समुझि ले दीन की छुरी एह अदब दीन्हा ॥ ३अ.८४
लाल हिरामन मोती मुकुता जोति प्रगास भान छबि छायो।
फनि मनि बरत रहत मनि मस्तक जोग बिराग ज्ञान पद पायो।
केदलि कपूर कर्म कहं नासेव दास पास फल अम्रित पायो।
म्रिगा भाव भरम सब नासेव प्रेम पागि सब जुक्ति बनायो।
चुमक चुमेव लोहा महं जैसे चंचल चित अस्थिर घर पायो।
कहैं दरिया सतगुर की महिमा म्रिग मद प्रानि घन बिबिध सोहायो ॥ ४.२
बेद पढ़ा पर भेद न जाना पर जिव घात पाप नहि चीन्हेव।
जीव एक सभ ब्रह्म बियापिक प्रगट कला छबि इमि रंग भीन्हेव।
जेंव प्रतिबेम्बु जावत जल जहंवां आवत सभ घट परगट कीन्हेव।
टूक टूक जेंव फूटु प्रकाला पारब्रह्म को प्रतिमा दीन्हेव।
त्रिबिध ताप तन ज्ञान ना व्यापेव बिखि तेजि बेयाल अम्रित नहि लीन्हेव।
कहैं दरिया दर अछै अंक है मारग बांक कमल दल चीन्हेव ॥ ४.३

ज्ञान ना गुरु गोपाल लाल भजु भरम बिकार तिरथ करि भूलेव।
चन्द मन्द सुर गरहन ग्रासेव दिनमनि बिना कमल कहां फूलेव।
मुन्द्रा चारि चतुर दल तहंवां उनिमुनि गगन मगन नहिं मीलेव।
त्रिकुटि तीनि संगम जहां सलिता मिलेव ना प्रेम पर्बत धरि खीलेव।
सिखर सुखमना चढ़ेव मीन जहां मन फिरंग करि काल ना हीलेव।
कहें दरिया सभ भेख भक्ति करि सत्तपंथ बिनु डगमग ढीलेव ॥ ४.४
मन मस्त मगन जब चढ़ेव गगन तब ज्ञानहिं टारेव।
तब धरेव धर्म नहिं धीर सो फौज बिडारेव।
गहि संभरि तेग रबि ज्ञान मदन कहं मारेव।
तब धीरज धर्म दवरि के फौज हंकारेव।
तब बाजेव नौबति नया निसान तबल झनकारेव।
तब भएवो अमल सब सहर बहर जाहां लगि झारेव।
कहें दरिया धन्य ज्ञानबान मन बाजी आपु संभारेव ॥ ४.१२
तब भएवो अमरपुर राज जबहिं घट निर्मल बारेव।
घटा घनघोर अदोर भयो तब सो तन तारेव।
गिरिवर पिहिकत मोर झींगुर झनकारेव।
चमकेव छटा घटा तम तड़केव कड़केव बुन्द अखंडित झपटि मंडल ताहां झारेव।
डगमग भौ दल कंद्रप मोह मंदिल धरि फारेव।
तरिवर चढ़ेव बिहंगम गगन मगन जहां द्रिस्टि पसारेव।
उमगेव सलिता चले स्वर्ग कहं जाहां कमल को मूल सो भौंर गुंजारेव।
डाहं पात फूल फल फलेव जोति सर्भनि में बारेव।
कहें दरिया दल सत अंत जिन्हि मंत मगन होए पंथ सुधारेव ॥ ४.१३
कंदर्प काहि ना काबू कीन्ह जक्त में जला ब्यापि तन मुनि मत रंजेव।
संकर सक्ति बिसारि तप साधे बाधे पवन नाम दल भंजेव।
जब लगेव पुहुपसर निपट निरंतर खुलि गौ नेत्र काम तन छीजेव।
सिंगी रिषी कुंज बन बैठे ऐंठि मेटेव गनिका प्रिय पगेव।
स्वारथ स्वाद जानु तन आपन मन के फन्द बिरला जन जगेव।
कहें दरिया जग कनक कामिनी हाथ पसारि कहु कीन्ह नहिं मगेव ॥ ४.१४
सुरपुर नरपुर नागपुर कला काम बान सर संजेव।
सनकादि आदि औ ब्रह्म राम सभ जल थल जीव काहि नहि भंजेव।

अनल अंगार बारि त्रेन तन मन के लपट काहि नहिं रंजेव।
जुक्ती जोग भोग जिन्हि लागेव निरमल ज्ञान दिपक ताहां दीजेव।
त्रिविधि बिकार बारि समुन्द्र सम लहरि उतग तरनि ताहां संजेव।
कहें दरिया सतगुर प्रताप जीति निसान ज्ञान धुनि बजेव ॥ ४.१७
अचरज सोई बांचु जन जग में जम जालिम कंद्रप तन जगेव।
बाम काम सभ स्वाद स्वारथ रमित राम कानन्ह त्रिय लगेव।
नीमी रिषि निमी जिन्हि भखेव कसेव काम कसमर दुरि भगेव।
सोभा सुभग सुन्द्र अति गनिका ज्ञान बिछुच्छुन छन महं डगेव।
सहज सरुप जनि जानहु ज्ञानी काल निरंजन सब चित रंजेव।
कहें दरिया धन जाग्रित जिन्दा फंद काटि नाम निजु पगेव ॥ ४.१९
कर्म भर्म सभ जारैव भएव ब्रह्म भरिपूर सूर सर लीजे।
तब ताहां तबल निसान ज्ञान धुनि दुंदुभि दीजे।
तब टारैव फौज कहर की मैन मारि गढ़ लीजे।
चढ़ि गएउ गगन में मगन अमी रस पीजे।
ब्रह्मंड खंड निहकलंक नाम सो प्रेम ना छीजे।
कहें दरिया सोइ संत मंत निहलेप पात पुरइनि नहिं भीजे ॥ ४.२०
चलु मन मगन गगन धुनि सुनेवो अनहद तान तार ताहां बाजेव।
झरि झरि परत सुरंग रंग ताहां परिमल अग्र बास छबि छाजेव।
महल मोकाम लाल जाहां लटकेव मन मधुकर लपटि प्रेम पद कंजेव।
जागेव ब्रह्म भर्म सभ जारैव जगमग जोति भर्म औ भंजेव।
मेटि गयो कफा करम करता भौ कलि मलि सभे साफ मन मंजेव।
दिल दरिया दरस नाम निजु परसेव परमहंस सुख सागर संजेव ॥ ४.२१
जब चलेव पवन ब्रह्मंड खंड तब काल डंड डगमग कीन्हा।
तब धरैव धरनि पर धीर बीर एह सिंघ झपटि कुंजल हीना।
तब भौ प्रचंड अखंड खंडित नहिं मेरु मंडल परगट कीन्हा।
तब कंदर्प कंद मंद तन त्रीमिर त्रिगुन पार पगु इमि दीन्हा।
तब झरत झरी झनकार झलकत पलक प्रेम अग्रित चीन्हा।
तब तबल निसान बान कर कसि के कठिन कमान दर दरियै लीन्हा ॥ ४.२२
जब दिनमनि दिन परकास कमल दल फूलेव।
तब खुलि गौ सकल कपाट भंवर रस भूलेव।

उछिलेव प्रेम प्रवाह सघन ते सलिल सेंधु महं मीलेव।
भौ झनकार उचार गगन में मनि मानिक झरि झूलेव।
हंस बंस गुन गहिर ज्ञान भौ इमि करि बग नहिं तूलेव।
दरिया दरस परस रस अम्रित मेटु सकल सभ सूलेव॥ ४.२७
सकुच मीन बिनु सीप ना मोती सतगुर बिना मुक्ति पद छीजे।
नख बिनु हीरा संख समुंद्र बिनु पुहुमि पात काहां कीजे।
कपुर बिनु केदली दधि बिनु प्रीत घ्रानि बिनु भमर बास काहां लीजे।
सक्ति सीव बिनु जीव बिनु ब्रह्म हंस बिनु बिबरन छीर सम पीजे।
सत बिनु संत मता निरगुन बिनु नट बिनु कला कवन कहु कीजे।
कहें दरिया अंकुर बिनु बीज बिना करम करता फल दीजे॥ ४.३१
गुरु बिनु ज्ञान दीप बिनु मन्दिल दाया दरस बिनु मिलहि ना संजन।
भाव बिनु भक्ति प्रेम बिनु ज्ञानी जल बिनु त्रिखा भूख बिनु भोजन।
जल बिनु पदुम घ्रानि बिनु चंपा बिद्या चतुर घोड़ बिनु तंजन।
हंस बिनु सरवर सभा पंडित बिनु बिना तेग दुरजन दल भंजन।
गुन बिनु धनुख प्रात बिनु दान पिया बिनु सेज लोचन बिनु अंजन।
दरिया दरस जोग बिनु जागे भोग पान नहिं प्रीति पंथ नाम बिनु भंजन॥ ४.३३
झरि झरत कनी फनि मनि जब बरेव हरेव सभे कलि मलि चहि चीतं।
एह ब्रह्म सपूरन बरखत अम्रित हरखि चुमेव चात्रिक नए नीतं।
कै करम गया सभ कला सपूरन भला भया नहिं मल रहि रीतं।
लै लपट लगा निरगुन झरि निरमल झपटि चढ़ा गगन जेहि जीतं।
छै छोड़ु पपीलक गहे बिहंगम तरिवर तम मन सौ पिव प्रीतं।
दै दरिया बन्दे सदा भै भंजन मंजन नाम सजन जन जीतं॥ ४.३५
मनि झलक पलक जल जुलुद जबें अलि भौंर भाव रस रीतं।
बिलगि बिहरि फिरि उलटि कंज पर सजल सुखद दिन बीतं।
बासर पलटि उलटि फिरि रजनी बसत सजल जल नीतं।
जो जन जानि भजे सतनामहि औरि कहां कोइ मीतं।
चरन सरोज सकल भ्रम नासेवं अम्रित तेजि पीवे जनि सीतं।
दिल दरिया दरस परस पद पावन कर्म काटि जम जालिम जीतं॥ ४.३६
पदुम पत्र झलकत मनि मुकुता जुगुता जीवन जन्म सुधं।
कनक कलस ताहां कंवला पूरन सूर चन्द मनि गनि उरधं।

सलिल सेत पर उदैजीत है सहस्रमुखी दरसंत अरधं।
झरि झरि परत अमी घन घेरै टेरि कहा सबहीं सरधं।
सीध साधु जग जन्म जहां ले जीवन सोइ जिन्हि गहा सुधं।
दिल दरिया दरस सुगंध कली जाहां निर्मल निरखत सोहंग मधं। ४.३७
जब घरैव ध्यान तब गरजि ज्ञान ज्ञान सर्व झल झलकत चन्देव।
पांच तत्तु गुन तीनि पचीसो तेंतिस तौलि काटि कलि कन्देव।
चारि अवस्था तीनि गून है तूरि तेल बरि ब्रह्म अनन्देव।
भएव पुनीत पाए परम पद ज्ञान दीपक त्रीमिर सभ रन्देव।
संसे रहित सारपद अम्रित जाग्रित जिन्द काटि जम फन्देव।
कहें दरिया तेहि तरनि ताहि चढ़ि गएवो अमरपुर ब्रह्म अनन्देव। ४.३८
झरि झरि परत सुरंग रंग ताहां त्रिबिधि ताप तन कबहिं न तापेव।
अमी सघन घन बुंद अखंडित मंडित चहुं ओर भर्म ना ब्यापेव।
अमर लोक ताहां सोग ना सागर आगर सभ ते दुरमति कांपेव।
चंद ना सूर ना गनपति गौरी फनपति ताहां न बेद अलापेव।
पुहुप बेवान अमान छत्र सिर छाए रहेव छबि अपने आपेव।
कहें दरिया भौ मति मराल गति ज्ञान गमी करु पुन्य न पापेव॥ ४.३६
खालिक बिनु खलक खलक बिनु खालिक मालिक महरम प्याला पीजै।
द्रिस्टि में स्रिस्टि स्रिस्टि में सागर सागर में सलिता सम कीजै।
फुल बिन बाग बाग बिनु माली मेहदी पात लाल सम लीजै।
माया बिनु ब्रह्म ब्रह्म बिनु जीव ज्ञान बिनु अजपा किमि कीजै।
घन बिनु घटा घटा बिनु चमके चित बिनु चतुर ज्ञान बिनु भीजै।
दरिया दरस परस बिनु कंचन द्रुम बिनु लता ठवरि काहां कीजै॥ ४.४१
भक्ति बिनु भंग रंग केसर बिनु द्रुम बिनु फल अम्रित किमि पीजै।
पिया बिनु 'त्रिया तेल बिनु बाती प्रान बिनु नाता नेह किमि कीजै।
चुंगल बिनु मुकता गज मस्तक बिनु सीध साधु बिनु संत मत किमि लीजै।
काया निरोग जोग बिनु जागेव बिना प्रेम राग किमि कीजै।
दाया बिनु धर्म धर्म बिनु पसुआ सत बिनु मुक्ति ज्ञान बिनु भीजै।
दरिया दरस पारस बिनु देखे भेष अलेख नाम बिनु छीजै॥ ४.४२
जर जराव जवाहिर फनि मनि उदित पति की गति कबि नहिं जाना।
हीरा लाल जवाहिर मोती जोति प्रगासत बहि कहि ज्ञाना।

सखा पंख जल जहर जहां ले सांच कहे तबहीं दिल माना।
दरिया दाया दिदारि दीनता मिनत सदए सुनु संत सुजाना ॥ ४.४३
पंडित देखु मनहि बिचारि।
निगम बोलता ब्रह्म बियापिक दोसरो नहिं लारि।
पढ़ि बेद बीमल ज्ञान गीता मीन मांसुहि खात।
खट कर्म करि सभ भर्म जानहि आतमा करि घात।
बलि देत जीव एह धर्म कैसे पुन्यको उपचार।
एक पशु कर जोरि ठाढ़े रछ्या करु घर बार।
निकट फंदा चिन्हत नाहीं परे जमके धार।
बबुर बोएव जानिके जिमि कांट को एह सार।
काहांवां पशु देहुगे जन सासना बड़ि आह।
पथल नौका चढ़न चाहत महा भौ अवगाह।
गुरू सिख दुवो बुड़त देखेव कवन पकरी बांह।
संतगुर चरन सनेह बीना बुड़े भवजल माह।
तेजि अम्रित बिखै भाजन जानि खाएव मीच।
कहैं दरिया दरद बीना भर्मित भव के बीच ॥ ५.२
पंडित बूझो सब्द बिचारी।
राजगुरू राजन्हि सिख कीन्हो बोझ लिए सिर भारी।
जो जो खून करै वह राजा सो तोहरै ग्रिव डारी।
जैसे बधिक सावज के मारै इमि करि काल पछारी।
लोह के नाव पखान का भारा चले केवट जल हारी।
बूड़त भौजल थाह ना पावे सीख करैं नरनारी।
नहिं परमारथ स्वारथ नीका आतम घात बिगारी।
झूठि बचन मन मगन रहत है सत्त बचन है गारी।
निगम नेति एह बिमल पुनीता रचि रचि पवन संवारी।
गीता अरथ गुपुत करि राखहि मुनि मत फंद पसारी।
सतगुर सब्द सत्त एह मानहु बांधहु गांठि संभारी।
भौ के बीच कवहि नहि बुड़िहौ दरिया कहै पुकारी ॥ ५.३
पंडित बूझो सब्द बिचारा।
अपनहि पढ़ो बुझो नहिं भोंदू करि षट कर्म अचारा।

पांचतत्त का छुति नाहि कहिए छुतिहां देह तुम्हारा।
एकै ब्रह्म नाना बिधि बानी कर्म कराही जारा
चारि बेद है तोहरे पासे सर्वन नयन सुधारा।
छुछुमबेद मुख होत ना बानी किमि करि लिखो पसारा।
भगवत मथि के गीता कीन्हौ गीता मथि के सारा।
दही मही माखन जब लीन्हा वरा दिपक उजियारा।
हमरे तन रूधिर जो कहिये तोहरे दूध के धारा।
हाड़ चाम हमरे जो कहिए तोहरे कंनक बोखारा।
आपन बरन चिन्हे नहिं मूरख कहे तीन बरन ते न्यारा।
तीनि बरन कवने दे आया तुम कवने पगु ढारा।
पाखंड धर्म तेजहु बहु करमा है सत कर्म करारा।
कहें दरिया सुनु पंडित ज्ञानी जाहि ते होए उजियारा॥ ५.४
पंडित छुति कैसे छितरानी।
गोरा अंग हुआ नहि काला तिंता भया नहि पानी।
अछा प्रसाद छुवत नहि बिनसे यह सभ मन के भरमा।
हममें तुममें एके बिराजे एह पांचो निहकर्मा।
मीन मांसु जो सिझे रसोई अरपन बहु बिधि लाया।
वाके संत छुवै नहिं कबही सो अम्रित करि पाया।
हंस दसा का गीध कर्म है का लघुपतनक नीका।
सतगुर बचन माने नहिं मूरख एहि बिधि जमघर बीका।
को मलेछ मल काको लागा कवन बिप्र को जाया।
रहा असाधु साधु मैं कैसे तिलक जनेऊ लाया।
करि असनान डिम्भ धरि बैठे पूजा बहु बिधि लाई।
कहें दरिया द्रिस्टान्त अपावन सो पावन करि पाई॥ ५५
पंडित छूति से नरक ना परई।
रज औ बिन्द सभनि की काया नवो नाटिका झरई।
छुतिहा अन ना छुतिहा पानी छुतिहा करम बिकारा।
मासु मछरि की हांड़ी छुतिहा एहि बिधि ज्ञान बिचारा।
मक्खी उड़ि बीगिन्धि पर बैठी सो थारी पर आई।
हमके तुमके सबके छूई एह खटकर्म बनाई।

बिल्ली एक सहर में पइठी सब के हांड़ी चाटी।
अन्दर के कोइ मरम ना जाने नेम करत हम बांटी।
एक अछूत सतनाम सही है भर्म भूत धरि खाई।
कहें दरिया जिन्हि तत्तु बिचारा दुरमति सभ दूरि जाई॥ ५.६
पंडित भीतर पैठा कि बहरा।
एक एक कलप बिता ब्रह्मंडे उभे घरी एक पहरा।
अगम अगोचर बाट में बूड़े उड़ि कतहीं नाहि गएऊ।
जैसे बावन बलि के छुरिया एहि बिधि भरम भुलएऊ।
इंद्रजाल एह जुलुम जक्त में सभ की मति भौ उलटा।
चढ़ी चर्ख पर घूमन लागा फिरि बुधि भौ गौ सुलटा।
मन के चरित चिन्हे नहि कोई कहि कबि जन भौ ज्ञाता।
प्रबल माया कोइ अन्त ना पावै एहिं बिधि भौ भ्रम राता।
मानुष दिल जब फिरै फिरंगा उलटा गंगा बहई।
पुर्ब के भान पछिम जनु अहई उतर दखिन के कहई।
बिनु उपदेस दूरि की कहनी कहि कहि कथा सुनावें।
कहें दरिया सपने की सम्पति हाथ किछू नहिं आवैं॥ ५.७
बेद पढ़े का एह गुन पंडित।
एक ब्रह्म सकल घट भाषत अब कहिए किमि खंडित।
ब्राह्मण छत्री बैस सुद्र सभ हिंदु तुरुक किमि कहिए।
मटी एक नाना बिधि बासन एक जिमी पर रहिए।
एके जल पुरइनि है एके एके पांवरि बहु भांती।
एके कंवल भंवर है एके को कहि जाति अजाती।
एके अस्ति मेद है एके तचा तीनि गुन लागा।
एके रंग रुधिर है एके एके आतमा जागा।
एके भूख प्यास है एके एके दुख सुख ब्यापा।
एके दया धर्म है एके एके पुन्य औ पापा।
एके कलम कागद है एके एके कोरान पुराना।
कहें दरिया जब दोबिधा तेजिहौ तब प्रभु को मन माना॥ ५.८
पंडित सत्त पुर्ख है भींना।
जो बिनसे सो सत ना कहिऐ सो पद तुम लवलीना।

ना वह आया गया नहिं कबहीं जोइनि संकट नहि भरमा।
कर गहि बान रावन नहिं मारेव एह माया को धरमा।
नहिं मुरलीधर नंद को लाला नहिं गोपिनि संग खेला।
नहीं केस गहि कंस पछारैव एह तिर्गुन का मेला।
निकलंकी काहु लखी में ऐऊ उन्ह भी तेग उबाहा।
मच्छ कच्छ बराह सरूपी उन्ह भी दंत समाहा।
राम क्रिस्न हंहि मन से करता बावन होए बलि जांचेवो।
प्रबल माया कोइ अन्त ना पावै एहि बिधि सब मिलि नाचेवो।
क्रोध छेमा सो काम छेमा है अम्रित पिवै सो धीरा।
कहें दरिया एह उपजनि बिनसनि खपे जक्त बहु बीरा॥ ५.११
पंडित तेजहु संसे सूला।
एकै ब्रह्म सकल घट भीतर सत्त पुर्ख हहि मूला।
माता के रुधिर पिता के नीरा काया सिजि बनाई।
हिंदु तुर्क दुइ कर्म लगाया एकरा हदे आई।
जब तुम होते माता गर्भ में राम जनेऊ दीन्हा।
जो फुरमान खोदाई होते गर्भ सुंनती कीन्हा।
आदिहि एक अंत फिरि एके बीचे गया सो फाटी।
इन्ह पक्करि के कान्ह छेदाया उन्हि छूरा सो काटी।
एक हिंदू वोह तूरुक कहिये दूनों सगे भाई।
वोए हिदुइनि वोए तुरुकिनि कैसे सो ना कहो समुझाई।
एक घाट पिवे सभ पानी सूघट भरि के आना।
नदिया एक धार बहुतेरी जलहिं में जल समाना।
का तुम पन्डित बेद पढ़त हो तेजहु एह खट कर्मा।
हिंदू तुरुक से वोह नहिं राजी एह पाखंड नहि धर्मा।
पूर्व जाव तौ हिन्दु बखाने पछिम तुर्क की पांती।
कहें दरिया वोए हिन्दु तुर्क नहिं साहब जाति अजाती॥ ५.१२
पंडित बेद कितेबहिं देखो।
आपुस में झगरा नहिं करिए अगम अगोचर पेखो।
वोए निमाज वोए पूजा करते हिन्दु तुरुक का मेला।
दुइ पर्बत हम बूड़त देखा बिरला जन कोइ खेला।

नाक झकोरहि पानी तर्पन बहुत करायां ।
भूंद वोए बंग सुनवाते उन भी सोर लगाया ।
वोए रोजा राजी दिल राखे लजति कबाब बनाया ।
वो भी बरत एकादसी करते बहुत सगौती खाया ।
मुसलमीन रहिमान हमारे ए भी कहर खोदाई ।
हिंदू राम राम सभ कहते दया बिना दुख पाई ।
बिसमीला करि जबह करत है पढ़ि कोरान दिल राखा ।
तेग पकरि वोए मारहिं झटका इन्ह गीता गुन भाखा ।
वोए गुरू वोए मोरसिद कहते महरम बाते कसबी ।
आसक होना दील सफाई वोए माला वोए तसबी ।
दुनो दीन सरहद्द बना है मुसलमीन औ हिंदू ।
कहें दरिया दोए पिन्ड रचा है एक लोह एक बिंदू ॥ ५.१३
पंडित बूझो सब्द बिचारं ।
आवे जाए खपे सो दूजा माया के विस्तारं ।
वोए दसरथ कुल नहिं अवतरिया नहिं सीता पति प्यारं ।
बावन रूप नहिं बलि के छारे नहिं हरिनाकुस फारं ।
नहिं गोपिन के नाच नचावे नहिं मुरली मुख धारे ।
नहिं गोबर्धन कर गहि लीन्हों नाहीं कंस पछारे ।
जल पखान कबहिं नहि बंधिया नहि लंका के जारं ।
कवन बुड़ा कहु काके तरिया कवन भया भवपारं ।
वोह जीता हारा नहिं कबहीं नहिं धावै नहिं धारं ।
है जेहू तेहू भरिपूरा परहित है हितकारं ।
मातु पिता कुल वाके नहिं कहिए नहिं कर लीन्हों सारं ।
कहें दरिया वोए मरे ना जीवे निर्गुन पुर्ख निनारं ॥ ५.१८
पंडित सार सब्द एक होई ।
बुद्धि बिचार देखो हिदया में क्रोध छेमा करु सोई ।
सास्त्र गीता बेद पुरान ढुंढ़हि संगति सभ लोई ।
जौं लगि सार सब्द नहिं पावें पढ़ि गुनि सभे बिगोई ।
कर कागद लिखनी का लिखिए प्रेम मगन नहिं होई ।
जल पैठि मंजन का करिये अन्दर मइलि ना धोई ।

संझा तरपन औ गाइत्री अजपा जपे मन लाई।
कपट कपाट खोलि नहिं पैठे आवागमन मेटाई॥
कहें दरिया सूनो भाइ पंडित बूझै बिरला कोई।
होए दास दासन्हि में आवै ब्रह्म पुनीतं सोई॥ ५. १६
चारि बेद बिचारु पंडित काया मद्धे सार।
पढ़ा सास्तर बेद महिमा भेद इन्हते पार॥
चारि नारी षोडस दल है चक्र छवो निखेद।
पांच मुद्रा जुक्ति जानहि जोगिया निजु भेद॥
महामुंद्रा सुंन में जाहां सुरति सुखमनि घाट।
सहस्र दल के खूलबे ताहां मुक्ति को निजु घाट॥
सेंधु सर्ग में जोति जगमग उदित मद्धे चंद।
कहें दरिया भेद एतना काल करम ना दंद॥ ५. २१
पंडित सर्बमयी भगवाना।
भगते आव ना भग में जाते ऐसी सिफ्ति बखाना॥
पुरान अठारह पढ़ि के पंडित ब्याकरन की संधे।
आतमा राम दिवाकर जैसे ए भी है परबंधे॥
जीव कहो फिरि सीव सक्ति है एह द्रिस्टान्त सोहावन।
सबै मासु मीन के कहिए गीता कहे अपावन॥
सो तुम भोजन भाव से करते अति पुनीत परसीधं।
मति मराल की कागा कहिऐ महीं देखा है गीधं॥
मलेछ सोई जो मल के खावै सो मल कबहिं ना धोवं।
दीछा लेत मगन सब कोई दोनों घर के खोवं॥
दया नहीं तब धर्म कहां है किमि करि होंहि पुनीतं।
कहें दरिया जब बुद्धि भुलानी जाए पढ़ो तुम गीतं॥ ५.२५
पंडित पढ़ि गुन भए बिलाई।
जौं मजार चूहा के पावे पकरि तुरंतहि खाई॥
जब अज्या की मूड़ी आई लड़िकन घुंघ मचाई।
तनिक तनिक लड़िकन कर दीन्हैं सर्ब सगौती खाई॥
येह अचरज कहवे जोग नाहीं को ब्राह्मन को अहै कसाई।
दोबिधा करि करि दूनो मारहिं यह लहुरो वोह जेठे भाई॥

दुर्गा पाठ के घर घर बांचहिं गीता अरथ छपाई।
कहें दरिया तब कैद करेगा मारहिं मुसुक चढ़ाई॥ ५.२६
पंडित क्रोध करहु मति भाई।
क्रोधे सुर मुनि नष्ट गए है बांधे जमपुर जाई॥
तंतर बूझो ज्ञान बिचारो बेद कहे सो कीजै।
धरम कहो अधरम किमि कहियै जीव दया जो दीजै॥
माहा पुनीत भए कुल अपने छतिस बरन को राजा।
नौ ग्रह लाइ ठगौरी भाषा कीन्हे पढ़े का लाजा॥
रज औ बिंद देह की उतपनि ऐसो सुंदर नाहिं जाना।
अंकुर भछ सब देव करम है मासु स्वान को खाना॥
गीता पढ़ि पढ़ि अरथ बिचारहु प्रेम भक्ति नहिं राता।
अठई दसईं पांव पुजावहिं करहिं जिवन को घाता॥
बड़ा पुन्य कीएहु पुबिल में भए ब्राह्मन औतारा।
अबरिक बार संभारहु पंडित बूड़त हौ मझधारा॥
चारि बेद ब्रह्म मुख भाखा सो निहकम है ज्ञाना।
कहें दरिया का बेद पढ़े भौ जौ नहिं नाम समाना॥ ५.२७
पंडित सांच कहे जग मारै।
झूठ कहे सबे हितकारी बांधि नरक में डारै॥
घर घर पांडे दीछा देवहिं बोझ लिए सिर भारी।
है जेहूं तेहूं का सिखवा पर हित है हितकारी॥
करि असनान तिलक सिर देवहि रोज बजावहि घांटी।
आतम मारि पखाने पूजे लिए भरम की टाटी॥
आंख मूंदि मौनी होए बैठे कर में माला फेरै।
जौं बकुला जल रहे किनारै टप दे मछरी हेरै॥
निगम नेति सादा जग माहीं सर्ब मासु के खावे।
अपने अंधा आगु ना सूझे आनहि आंगुरि लावे॥
ऐसे बुड़े बहुत अभिमानी सतगुर चरन बिसारै।
कहें दरिया सतनाम भजन बिनु गए जबाना हारै॥ ५.२८
पंडित कहे बचन सब सूधो।
चीकन चिहुलो सुन्दर पथरी अगिनि प्रकासे रूधो॥

जल में रहे भिजे नहिं कबहीं अनल सदा तेहि होई।
बाहर कहे भीतर नहि चूभे चकमक की गति सोई।।
अरथ कहे परमारथ कहावे स्वारथ सभ कहं नीका।
माया के संग रंग में माते साधु बचन है फीका।।
रमिता राम रमा सब माहीं दरसत है पसुघाता।
आतम मारि पाहन का पूजा एहि बिधि भव मे जाता।।
पथल की नाव बूड़ि जल माहीं अगम अगूढ़े जाई।
एह भौ सागर आगर आगे अविगित गति नहि आई।।
नीगम पढ़े नेति भल जाने मीन मासु रस भोगा।
कहें दरिया अघ पातख पर्बल भक्ति बिना सभ रोगा।। ५.२८
बुझु बुझु पंडित पद है उलटा। डार पताल सोर है सुलटा।।
चिब्या चारि डाई छितनारा। सुर नर मुनि महि खोजत हारा।।
उलटा बेद पंडित कहं खाई। ता के पाप परोसिया जाई।
बिनु दह कंवल फुले बहु भांती। तामें भंवर बसे दिन राती।।
साहु के माल चोरि धरि साधा। साहुनि कूदि साहु कहं बांधा।।
सिंघ सियार कहे दुनो भाई। दरिया बीच लरहु जनि आई।। ५.३१
जा नर सतगुर सब्द ना माना।
सो जढ़ स्वान सुकर जग माहीं कर्म अनेग लपटाना।।
दाया सो हीन मलीन सदा नर बिखै सरोबर जाना।
जम जालिम धरि मरिहैं जरिहैं उर्ध मुख सदा झुलाना।।
जैसे सूआ सेमर सेवत मुरझि परा छुपटाना।
तैसे मदपी गांठि के गंथ दे घर की अकिलि भुलाना।।
अति गरूर मगरूर माया मद चढ़ि तुरे अभिमाना।
अपने भवन करे अलबेसी फेरि पाछे पछताना।।
जीव बधन तौं अधरम कहिए करै बिषै रस पाना।
कुमति कांट सुमति के घेरे बिखै बेइलि तन साना।।
आए उलटि फिरि जाए पलटिके कतहिं ना मिले ठिकाना।
कहें दरिया एह नाम भजन बिनु जमके हाथ बिकाना।। ६१
नर तुम दुनिया में दीन गंवायो।
मन मूरख किछु बूझत नाहीं गच बिच गोता खायो।।

झूठ कहन के चौगुन जिभ्या सांच सुने दुरि जायो।
साधु दरस के महा आलसी गनिका देखि उठि धायो ॥
मीन मांसु पोखन के काया पापे पुन्य दुरायो।
पाहन परसि दाया नहि दरसेव करसित काल देखायो ॥
जेंव बग ध्यान धरे जल भीतर एहि बिधि द्रिस्टि लगायो।
मीन मासु बिन चंचल चित है मदपी मदहि मतायो ॥
कागज के पुतरी तन जानो बुन्द परे मिहिलायो ॥
हाड़ मास रूधिर की मोटरी एह कलबुद्ध बनायो।
संत नकीब साहब को चाकर बहुबिधि बचन सुनायो।
कहें दरिया दर चलो सिताबी बेगहि दूत पठायो ॥ ६.२
नर तुम एता गरब ना कीजे ।
केता गर्बी गर्द मिला है रावन सम्पट दीजे ॥
बादल तड़पे धरती कड़के लोग सबे डर खाई।
जा पर परे रसातल जावे कहां तेरी प्रभुताई ॥
बहे समीर जो बीछ उपारे छाया छपर उड़ि जाई।
ताहि उपर जो परे पखाना कीषी सब गलि जाई ॥
धरती डोले डगमग होखे करे बहुत नर चिन्ता।
दुइ पर्बत बिच झोपरा छाया जेंव कुसल होए बीता ॥
सतगुर निन्दहि बन्दहि काल के मूरति मइलि समाई।
लोह क नाव पखान क भारा जल में कहां तराई ॥
कंचा पिंड महल है कंचा मदपी मद बौराना।
कहें दरिया एह काल सिकारी पहुंचा कसे कमाना ॥ ६.४
नर तुम जन्म जगत में हारि।
गर्भ में दस मास बीतेव लीन्ह पिंड संवारि ॥
ऊपर मटुक लाल लागेव तामें बारिज बारि।
दसन सुन्दर रसन दीन्हौ बोलत बैन सुधारि ॥
बालक के मुख छीर दीन्हौ नीर अनवा डारि।
आतमा एह सर्ब सुन्दर चलत पंथ बिचारि ॥
निमक खाए हराम कीन्हौ कौल दीन्हौ बिसारि।
साज बाज बनाए के एह संग सुंदरि नारि ॥

गर्ब ते एह गर्जि बोलत कहत बात बिगारि।
जैसे मदपी मातु मद ते देत सभके गारि॥
पकरि जम जब मुसुक कीन्हौ तप्त सीला डारि।
कहें दरिया उलटि पलटी प्रान एहि बिधि जारि॥ ६.५
रे मन सुमिरि ले सतनाम के फिरि जात औसर टरी।
काया कागज हाथ हरि जनि जासि अवघट मरी॥
समुझि लीजे चरन सतगुर काटु जम के सरी।
निहलंक तन निरबान पद भौ प्रेम बाती बरी॥
ब्रह्म जागेव भर्म भागेव कर्म काटेव करी।
अमी सर✱ पिवन लागा मिला निरमल जरी॥
तप्त तन के त्रिमिर छूटेव फूटि जम जुथ डरी।
दरस दे प्रतिपाल कीन्हो सक्ति पाएन परी॥
गुप्त मंतर जंतर कीन्हौ ज्ञान गुंगा गरी।
त्रिखा बुतानेव प्रेम रस बसि रहत गागरि भरी॥
दीन के दुख तुंरत मेटेव कष्ट कागज फरी।
कहें दरिया दाया सिर पर क्रिपा करि जन तरी॥ ६.६
नर तुम सतगुर सत ना चीन्हा।
घन सम्पति एह तप का बल है दाया सभनि ते भीना॥
घर में जोरु जबर है बाघिनि वोए कबहीं नाहिं डरती।
जबे सुने परमारथ की गति तबे झपटि के लरती॥
तासों प्रीति करहु निसि बासर बसन झलाझलि गहना।
वोए तुम्हें है प्रान पियारो वोए हाकिम तुम सहना॥
सलिता सोखि समुन्द्रहि सोखी और सोखिसि मुनि ज्ञाता।
पीवत रुधिर अवात ना कबहीं एह अचरज किमि बाता॥
मैन मजीठ महल के भीतर बिखै बेइलि तन फूला।
तापर लता बहुत लपटाना बढ़ि ब्याधी जम सूला॥
येह मन मूरख ममिता मद है चढ़ी चरख चौरासी।
कहें दरिया अजहूं चित चेतहु काटि कर्म की फांसी॥ ६.८
रे नर ऐसा गुरु ना कीजै।
दोजक कारन करै खुसामद धोती पैसा लीजै॥

सास्तर साथ बगल तर राखहि गीता को मति ऐसा ।
खोलि सिकार जंगल जिव मारहिं अठई दसई भैंसा ॥
संझा तरपन औ गाइत्री या का भेद बतावै ।
दिल में दोबिधा दाया ना भाखे हरिनी खंसी खिआवै ॥
गुरू सीख के एक मता भौ दुई पाखंड भौ भारी ।
नाव पथल के चले ना जल में दुइ कनहरिया हारी ॥
ज्ञान होए तौं मन के चीन्हे तन मन धन सभ वारी ।
होए मुक्ति दाया को सागर भौ से लेत निकारी ॥
बेद पढ़ी पढ़ि भेद ना जाने मरि मरि फेरि अवतरिया ।
कहें दरिया बिनु दाया उबर नहिं समुझि के बांह पकरिया ॥ ६.६
नर तुम देह चीन्ह गुरु कीन्हा ।
भीतर भरी भंगार भरम की हरि बातों में बीना ।
बाहर मुरति पथल का रचिया ता पर पाती दीना ।
सजीव तोरि निरजीव के पूजा जबर से भए अधीना ॥
महिखा मारि देवल को भीतर पर आतम कहे भीना ।
जीव सीव एह राम सभनि में भान कला छबि दीना ॥
तीलक चर्चेव कान्ह जनेऊ अज्या को सिर छीना ।
जैसे स्वान अपावन राते और भछहिं बहु मीना ॥
गर्बी माते गबे काया ते और दइत बल कीन्हा ।
काल सिकारी खेदि के मारै जाल परा खग झीना ॥
मरकट मुठि नीके गहि लागी बुद्धि परा मति हीना ।
कहें दरिया नहिं दर्द काल के दाया बिना दुख लीन्हा ॥ ६.१०
नर तुम साधु कहन के हूआ ।
गया न साध स्वाद सब चाहे कंदर्प कबहिं ना मूआ ॥
जाहां ले द्रिस्टि नीचे के देखो कनक कामिनी सोभा ।
नींद परे बोए गरसि लेत है मन माया ते लोभा ॥
तिलक माला सुन्दर बहु सोभा सुन्दर गुरिया लाया ।
सुन्दर गुदरी ज्ञान एह पेखो तब मराल गति आया ॥
उलटा कुंभ नीर नहिं भरिया सिधा भए भरि आई ।
कुंभ के जोग राग ते रहित है आनंद मंगल गाई ॥

पूरब लहरि काल के देखो पछिम द्रिस्टि है चंदा।
तव कनहरिया खेवन लागे लहरि परि गौ मंदा॥
पारस बिना कंचन नहि होखे फूल बिनु तील न बासा।
कहैं दरिया परिमल है पारस इमि सतगुर को दासा॥ ६.१४
जग में कर्म कीखी बाम।
सक्ति माया सोक सागर बड़ो मीठो काम॥
तिलक माला सइज कीन्हो हर बएल औ खेत।
जीव बघन तौ बर्त प्रानी आदमी से प्रेत॥
दिवस रजनी निरति करते झाल झारहि प्रीति।
भेख बहु बिधि भर्म बाजी वाहि की परतीति॥
लेवा देई बहुत करते आपु मल कह खात।
सांच छोड़ि के झूठ कहते ऐसही मरि जात॥
कहत मेरो तेरो कछु नहि दाम लीन्हो हाथ।
जासु घर मे बोलत डोलत सो ना जैहें साथ॥
देह तौ तोर खेह होइहै नेह नाता मेह।
कमल सूखे भौंर उड़ि गो बहुत धरिहैं देह॥
बांधिया जम मुसुक कसि के तर्तसिल्या डारि।
काल करता करम देखे बिबिध दीहें मारि॥
साधु कहते स्वाद भीतर कष्ट का है मोट।
कहें दरिया अहे ही परखिया या खोंट॥ ७.१
मथुरा किस्न जो भेख बनाया।
सोई भेख भक्तन्हि रचि लीन्हा सतगुर मत नहिं आया॥
मोर पच्छ चंदा एह माथे ग्रिव बैजन्त्री माला।
केसरि को एह तिलक बिराजे पीतंमर दोसाला॥
मुरली बेनु किनर एह बाजे गोपिन्ह रग मताया।
रति औ काम मगन मन नाचे राधे के मन भाया॥
बिंदाबन में रंग मचो है ग्वाल बाल संग सोभा।
अनंत रूप होए सब घट बोले एहि बिधि सब जग लोभा॥
नारद सारद करहि बिंचारा आदि सनातन वोई।
है कंवलापति कंवला के बस कबि सब कथा समोई॥

लागि ठगौरी ठग ठाकुर एह ठगा जक्त नर लोई।
कहें दरिया दर वा दर दरवे या दर सब कहं होई ।। ७.२
साधो धोखा के जग धावै।
पाहन पानीपति एह कीन्हा अजहूं गति नहिं आवै ॥
भेख बनाए सोभा बढ़ि सुन्दरि सेली गूंथि ग्रिव नावै।
नाचे गावे ताल बजावै नट को कला दिखावै।
कथनी कथि के मथनी मथि के प्रीत कबहि नहि पावै।
छाछि पिवे सो मन मतवाला बांधा जमपुर जावै ॥
छोड़ि सांच एह झूठ मिठाई रसना स्वाद न पावै।
पाप पुन्य के मोटरि सिर पर ऐहु जीव जहडावै ॥
आंधर गुरू बहिर है चेला चतुराई से खावें।
दूनो पगु में बेरी भरि के काल घसेटे जावें ॥
कहत फिरै भाला गुरु मेरा चारो फल घर आवै।
कहें दरिया तब समुझि पड़ेगा जब जम मुसुक चढ़ावै ॥ ७.३
भगतों सुनो अमर की बानी।
अमर सदा है मरे ना कबहीं वाकी सिफ्ति बखानी ॥
सीता सती जती है केते इन्हि सभनि कहं खोया।
माया सांपिनि नागहि खाइसि बांचहिं काहां तक पाया ॥
महादेव के संग बसतु है ऐसी गुन को ज्ञाता।
बाघिनि रूप होए बसे खाइसि जाके कहो बिधाता ॥
काल गोसाईं जग में आया गोपिनि के रंग राता।
ब्रिदाबन में रंग रचो है एहि बिधि सब केहु माता ॥
तन छूटे फिरि कहवां जइहो जरा मरन है साथा।
कहत फिरैव बड़ा गुर ज्ञानी माया के गुन गाथा ॥
बेबाहा वोए पुर्ख पुराना दुजा अवर नहि कोई।
कहें दरिया हम निश्चै देखा या जग जात बिगोई ॥ ७.४
भक्तो सुनो बचन एह सांचा।
देह माया है महि माया है माया में सभ नाचा ॥
सीता माया है बिस्न माया है माया जग जनमाया।
राम माया है क्रिस्न माया है माया सब जग खाया।

काया में तुम पुर्ख बताया सो माया से बंधा।
माया ते एह कवन बिलग है कुआं परहुगे अंधा॥
जाके कहो कबीर गोसाईं सो माया में आया।
माया सभ जग घुनि घुनि खाया मए हाट लगाया॥
माया से दया दया से माया मए बांधि मगाया।
जल थल जीव सभनि में माया मए कौतुक लाया॥
बेवाहा बेकीमति जो कहिए वोए माया ते भीना।
कहें दरिया एह काल चपेटा ऐसा मन है छीना ॥ ७. ७

एह सभ कहत आपे आप।
अमर की नहिं मरम जानहिं त्रिविध तीनो ताप॥
अंन खावहिं पिवहिं पानी मसक ऐसी देह।
हफ्त में चलि जाएगा फिरि मरै या तन खेह॥
सात सागर नवो नारी निर्मल जल है पास।
ईहई भरि पियो भाजन काहां जाते प्यास॥
घट में साहब मंदिल छायो बनी बाती बाट।
ईहई सब करो सौदा काहां जाते हाट॥
कवन लघु यह दीर्घ कीन्हों गुरू सिख की वात।
स्वान सूकठ सब में साहब काहें सीतल तात॥
लाल तेजि एह काल सुमिरहिं फंद दीन्हो डारि।
कहें दरिया ज्ञान बिना जात भौ जल हारि ॥ ७. ११

साधो एह भक्तो की बाते।
भग नहिं चीन्हहि भाव सब करहि मोहनि माया से घाते॥
काया कोट कागज की पुतरी बून्द परै भिहिलाई।
बिलेमान होइ जैहों कहवाँ गुरु सिख काले खाई॥
कंदर्प कहे निकंद ना होई सपने बिंद सो झरना।
नैन रूप में रहे लोभाई उलटा कुंभे भरना॥
छेरी उलटि बिगे घरि पकरा बिखै सरोवर साथा।
मन मकरंद का दोख है भाई बसे सभनि के माथा॥
भौ सागर है भ्रम की मोटरी उभि चुभि गोता खाता।
नाव भला पर केवट नाहीं एहि बिधि भव में राता॥

नीर छीर का मरम ना जानहि केहि बिधि होए निमेरा।
कहें दरिया तुम भाजु भजनते बूड़े भेख घनेरा॥ ७.१३
अब तुम भली ठगौरी डारी।
दुनो ओर झुनका झुन झुन बाजे ताहां दीपक ले बारी॥
आपु ठगो फिरि औरि ठगाया भक्त ठगा है काले।
छुटका परे छुटकि कहां जइहो मीन बझा है जाले॥
भले साधु है राम दोहाई साधु बएल का पीछा।
गावहि बनडरी बन नहिं सूझे देहिं सभनि कहं दीछा॥
आपे थापे जम से कांपे घरहीं पुर्ष बतावे।
घर जरे तौं घूर बुतावे बांधा जमपुर जावे॥
मम में करता जगमें बरता दूजा काहां है साईं।
कष्ट परे छपटाने लागे छेरि छेरि मरे गोसाईं॥
बेरा फूटा सब कल छूटा जम ने फंद पसारी।
कहें दरिया एह काल तमाचा अपने आपु बिसारी॥ ७.१५
ऐसो सुनो भक्त एह बाते।
हर बएल नहिं तुमको चहिए वोएल परेगा घाते॥
हर के पीछे बएल सिराने नहीं दरद है वाते।
केता जीव तुम दहन किया है सो तुम अंन कह खाते॥
छोड़ि सांच येह झूठ मिठाई मद मायाते माते।
चिन्हे बिना तुम बहुत भुलाने चौरासी में जाते॥
लेवा देई ब्याज घटा है ऐसा गुन में राते।
भीतर भरी भेंगार भरम की ऊपर मांजहि गाते॥
मोर पच्छ एह बहुत सुन्द्र है ऐसा भेख सोहाते।
झाल मदरिया झाफे बाजे एहू सब दुराते॥
साधु कहां बहु स्वाद ना छोड़हु मुख तमूलहि राते।
कहें दरिया औरति को रंग है जव मेहदी के पाते॥ ७.१७
ऐसो बड़े भक्त है पाजी।
भग के त्यागि माया को त्यागो साहब को करु राजी॥
गांठी माया जतन करि राखहिं गिहि तेजि भए उदासी।
हर बएल के संग्रह करते हम सुमिरहि अबिनासी॥

रोग हुआ लोहा से दागे दागा हुआ सिर भारी।
आन बएल बेसाहि ले आवे कौअन्हि खोदि खोदि मारी ॥
पुरातम पेड़ बिनसे नहिं कबहीं एह द्रुम होत निपाता।
आवत जात बिगुर्चनि ऐसे मन माया ते माता ॥
प्रसाद मिले आतम के पोखे कपरा तन भरि दीजे।
फका फकर फकीर सोइ है एहि बिधि अम्रित पीजे ॥
झूठ जाने झूठा है सोई सांच जाने सो सांचा।
कहें दरिया एह काल चपेटा फुटि गौ बासन कांचा ॥ ७.२०

अब तुम दिल का मुरुचा धोवो।
एह तो प्रान बहर भै खेले फिरि पाछे जनि रोवो ॥
तेजि गांठि कपट का चोटा अवघट पैठि नहाई।
तिर्बेनी जाहां निरमल जल है मंजन मइलि सफाई ॥
मन मजीठ रंग सभ छूटे सत का साबुन लइहो।
करो काग भया जब सेता तब हंसा गति पइहो ॥
माहा चित्र में चित्त चुभावा अब चित मेलि ना होई।
झिनि झिनि जंतर तहवां बाजे सब्द अनाहद होई ॥
ऐना सिकिल करो निरुबासर निर्मल जोति लगैहो।
अगम निगम सभ समुझि परेगा बहुरि ना भौजल ऐहो ॥
सतगुर पदुम पदारथ पद है वाही पद अनुरागी।
कहें दरिया दर देखि परैगा प्रेम जुक्ति निजु पागी ॥ ७.२४

सुनि लीजे अमहक पाजी।
अपने मतलब का तुम माते साहब क्यों कर राजी ॥
पांच पचीस काया गढ़ भीतर ता पर मन है काजी।
राव राजा के परबस डारे माया मोह दल साजी ॥
काम क्रोध का बान ना चुकिहै भौहें कमाने साजी।
मोहनी सोहनी ऐनक जावै जौनक सुंदर नाजी ॥
ज्ञान घोड़ा पर जीन पलाना लव लगाम दे दाजी।
ताजन मारु चटाक चटक्का सनमुख नेजा भांजी ॥
मडि रहै मैदान के बीच में देखत फौजे भाँजी।
कहें दरिया तेहि सिर पर साहब अनहद बाजा बाजी ॥ ७.२६

जोग जागे काल भागे करम कलि कवलेस छूटे जुक्ति जोगी जानि।
मेरुडंड के साधि साधे अरध लेके उरध बांधे जाप अजपा ठानि ॥
उनमुनि मुंद्रा सून्य मेले पाप पुन ते न्यार खेले तेजि जम की खानि।
गगन गोफा मंदिल छावै त्रिकुटी के महल आवै सुरति सुखमनि जानि ले तू ब्रह्म के पहचानि ॥
मोह त्रिस्ना काटि डारै सूर सनमुख तेग झारै नाम नर्मल निरखि के एह तेजु कुल की कानि।
सत्त सेली संतोख झोरी कर कवंडल सीध पूरा बोलत अम्रित बानि ॥
गहि ज्ञान डड नव खंड डोले अबोल भिक्षा सत्त बोले दरस दाया मानि।
कहें दरिया ऐसो जोग जागे जुक्ति जाने अचेत चेते समुझि बूझै आनि ॥ ८.१
त्रिवैनी त्रिकुटी भंवर गोंफा में द्वादस उलटि चलावंता।
छव चक्र का (भेद) प्रगट है सुखमनि सुरति जगावंता ॥
अस्टदल कंवल भंवर तेहि भीतर उनमुनि प्रेम लगावंता।
जगमग जोति झलामलि झलके गंगन मगन झरि झावंता ॥
मोती मनि मुक्ताहल मगु में सेंधु लहरि तांहां आवंता।
हंसा चुगहिं चोंच मोती गहि सरवर में सुख पावंता ॥
अटल धनी ताहां मनि उजिआरा निरभे पद के गावंता।
कहें दरिया सुख सागर बासां बहुरि ना भव जल आवंता ॥ ८.२
निरगुन भेद लखे कोइ साधो सर्ब संसे बिसरावै।
नेम धर्म खट कर्मा पूजा छन में सभे दुरावैं ॥
इंगला पिंगला सूर चन्द्रमा मूल गगन में छावै।
देखि दरस मन मगन हुआ बिनु दीपक जोति बरावें ॥
जपि माला माली नाह डारै पल पल अमी दुहावै।
तै मैं जाति मेटि मन ममिता दोबिधा सकल बोहावै ॥
गुर के बचन सिरताज न राखे राजित अनभौ गावै।
अनहद मुरली कीनर बाजे बेहद मता बतावै ॥
अखंडित ब्रह्म पंडित सो ज्ञाता सोहंग सुरति समावै।
ज्ञान रतन लिए चलता फिरता अचल मुक्ति सो पावै ॥
ज्ञानी ज्ञाता सतगुर खोजो निरखि निरंतर धावै।
कहें दरिया दधि मथे जो माखन बास सुबासित पावै ॥ ८.६
धन सतगुर जिन्हि अलख लखाई।
सो मन मनसा ध्यान लगाई ॥

उलटा पवन चढ़ा ब्रह्मंडे अनहद धुनि सुनि मोहै।
पांच पचीस मिलि गोहने लागे पाप जुदा भए रोहै॥
उलटा बुंद चुवै अंमी को हंसा जो मुख जोहै।
मूल फूल सींचे नव नारी माली के वर सोहै॥
तिल भर चौकी दाने दरवाजा चित्रगुप्त मो वोहै।
कहैं दरिया प्रेम परगट देखैं ऐसो पंडित को है॥ ८.७
जोगिया जो जुक्ति जानहि भजहि निर्मल ज्ञान।
सुनत धुनि उनुमुनी पलटी बिमल ब्रह्म अमान॥
जाप अजंपा जपहु प्रानी सुरति सुखमनि तान।
इंगला पिंगला सुखमना सुधि रहत एक ठेकान॥
बंक नाल है खोडस कमल ताहां भौंर बास समान।
झलकत अमी ताहां जोति जगमग भौंर गोफा ध्यान॥
झरत झरि तहां अगम निर्मल प्रेम पद निरबान।
अरध ऊरध गगन गरजित बुंद सेंधु समान॥
फूले फूल सुबास परिमल दीवि द्रिस्टि मकान।
कहैं दरिया भेद सतगुर हंस पहुँचे अमान॥ ८.८
संतो सिफ्ति काहां तक कीजै।
गुंगा होए गुंगा सो बूझे सोइ अमी रस पीजे॥
सोई चांद सुर्ज है अंमुज सोइ उनुमुनी फूला।
सोई अजपा दरसन कहिए दरपन दरस है मूला॥
सोई त्रिकुटी भं'र गोफा है सहस्र पंखुरी लागा।
सोई इंगला पिंगला कहिए सोई सुखमना जागा॥
सोई छव चक्र परगट है जोगी खोजि खोजि डारें।
सोई नवो नाटिका कहिए दसए काम पुकारें॥
प्रेम पत्र अमी जहां चूवै खटरस बीजन चाखे।
का भौ बेद पढ़े बहु बानी जब तक सांच ना भाखै॥
जल में डाहै फूल है बाहर मन मधुकर जा बासा।
कहैं दरिया जन निश्चे जाने मेटि गया जम त्रासा॥ ८.६
एहि बिधि रमे अकेला जोगी।
सिद्ध हुआ तब साधक खोजे दुख सुख व्यापे रोगी॥

आसन बासन पासे राखे झोरी झारग साफा।
जग में डोले आपे बोले कतल करै सब काफा॥
दस बिस घुंघुर बांधे कोई झुन झुन बाजन लागा।
तुरते तुरते एक रहा तब बिखि तेजि अम्रित पागा॥
बासर सोवे रइनि में जागे चोर मूसु नहि गोटी।
कुंजी ताला लागु केवारी कसि के बांधु लंगोटी॥
जाहां बैठे ताहां सिध ठवनि होए चले सुरति के साथा।
अस्त हुआ तब रस्त छुटा है ज्ञान गुरू गहि हाथा॥
जोगी जुक्ति मुक्ति है साथे जब चाहे तब पावै।
कहें दरिया कोइ वोली फकीरा रन जीते सो जावै॥ ८.१०
है कोइ जोगी जग में जुक्ता।
पांजी देखि बाजीगर चीन्हे बिनु चीन्हे नहि मुकुता॥
पहिले चीन्हे काया गढ़ भीतर को मौनी को बकता।
तब चीन्हें फिरि दसो दुआरा चीन्हि परे तब भगता॥
ढ़ाल बंद कर कसे कमाने तीर अचूक ना होई।
चढ़ि मैदान खोवे ममिता के वा मद पिवै न सोई॥
सुरति सांगि एह ज्ञान घोड़ा पर मंद कबहि नहि होई।
चाबुक चाक चारि है सुंदर लांघि परा भव सोई॥
सादा हजूरी निकट दूरि नहि बिकट कबहिं नहि जावै।
जागत सोवत जिकिर धनी का एहि बिधि पद के पावै॥
मगु में मगन आनन्द सदा है मंद कबहि नहि होई।
कहें दरिया सोइ वोली फकीरा जिन्हि दुरमति कहं खोई॥ ८.११
जोगी तेजु निग्रह जोग।
ज्ञान भक्ति बिचारि देखो मीन मासु ना भोग॥
पिवो बारुन बुड़न चाहो बिखम सागर सोए।
कहर है दरियाव आगे बहुरि चलिहौ रोए॥
नैन तौं दुरबिन्द करि ले चिन्हहु देवता प्रेत।
खंड-खंड ब्रह्मंड जेते सबै सर्ग है सेत॥
ज्ञान आंकुस हाथ करि जंजीर जकरै बांधु।
पांच के परबोधि के तब ज्ञान सतगुर साधु॥

हंस की गति निरमल दासा मान सरवर खानि।
चोंच खोलहि जाहां मुक्ता नीर छीरहि छानि॥
जुक्ति जाने मुक्ति सोई मुक्ति सादा साथ।
कहें दरिया दरस कीजे परखि हीरा हाथ॥ ८.१३
जोगी तौल तखनी पूर।
चारि मुंद्रा नीन्द चारो हरफ है ममूर॥
मेरु एके डंड एके खंभ दुइ है रूप।
अजपा में अजब देखो बड़ठु गोफा चूप॥
बाएं के तुम उलटि पेखो वीर बांके बांधु।
सपने नहिं बिन्द झरते नींन्द के तुम साधु॥
खाक ते एह पाक हूआ नूर झलके फूल।
फूल फूले भंवर भूले सब्द है समतूल॥
तेजि गोफा बाहर खेलो जैसे रन में सूर।
हद में बेहद देखो जहां बाजे तूर॥
नहिं वोह जोगी नहिं वोह भोगी भेख नहि भगवान।
कहें दरिया दरस देखो पुर्ख है अमान॥ ८.१४
जोगी मो से पूछहु आई।
जो तोहरे घर ज्ञान नहीं है झूठे जोग कमाई॥
मन के उक्ति काम नहिं आवे उलटा पलटा जोरै।
बिनु कनहंरियै नाव चलावे अवघट लेके बोरै॥
पांच तत्तु का भेद बतावों जल थल अगिनि आकासा।
कायापरचे सोधि देखावों तब तुम होइहौ दासा॥
सुखमनि सांपिनि भेद बतावों कहौं अर्मीका घाटा।
ऊपर मूल साखा है नीचे ताकर कहिं देउं बाटा॥
कहें दरिया एह जोग जुक्ति है सतगुर भेद बताया।
सूई अग्र द्वार जहंवां है तहवां सुरति समाया॥ ८.१७
है कोइ जोगी एह मत पावै। प्रेम पिवे अलिमस्त कहावै।
मेरु मंडल आसन कहं साधे। पांच भुअंगम बिखिघर राधे॥
गगन मंडल में आसिक यारा।
जोग न जाए तेरो जुक्ति पियारा॥

मन गयंद ज्ञान करु आंकुस जुक्ति जंजीर लगावै।
नाम अमल ते भौ मतवाला झोक में झोक सो आवै॥
अगम पंथु पगु धीरे-धीरे ज्ञान रतन लिए आवै।
काम क्रोध दुस्ट भौ हीना जग जीते सो जावै॥
सतगुर सनदी लखै जों कोई सोवत जागत पावै।
कहें दरिया किछु संसे नाहीं बहुरि ना भौ जल आवै॥ ८.१८
अवधू ऐसो ज्ञान समोई।
जो कोई गुर ज्ञानी मीले सो यह सब्द बिलोई॥
सिंघ सियारे प्रीति भई है दादुल सर्प सहाई।
सुगना पोसि बीलि घर राखै एह अचरज नहि भाई॥
छागर एक साधु ने खाया ब्राह्मन खाया गाई।
चरुई के भात चूल्हि ने खाया दालि जो हंसी ठठाई॥
परबत बुड़े भूमि नहिं भीजे कादो बकुलहि खाई।
माछा एक छपर पर कूदे अगिनि चली बढ़िआई॥
सुमेर सुई में आनि समानी थाके कछु नहिं संका।
नदी सुखानी प्यास ओरानी टूटि गया गढ़ लंका॥
जो एह बुझे परम पद पावै पर्बत गया बिहराई।
कहें दरिया गुन टूटि परा है तीर लगा सभ आई॥ ६.१
अवधू ऐसो सोक के सागर।
आगर सभ ते ज्ञान बिचारै एह तो है भव भागर॥
जोग करंते जोगी थाके भोग करंते भोगी।
ज्ञान बिना मुनिवर सब थाके भए गए सब रोगी॥
दान करंते दानी थाके राज करंते राजा।
बेद पढ़ंते पंडित थाके गनिका के नहि लाजा॥
बैल थाक हरवाहा थाके धरती हंसि के बोले।
सब घर काल कलोलह खेले बिनु पगु जग में डोले॥
ब्रह्मा बिस्नु महेसर थाके तिगुन राम कन्हाई।
तीनि लोक में आगि लगाया भागि कहां अब जाई॥
सतगुर खोज करै जौ कोई सत के नाव बिराजे।
कहें दरिया टूटे ना फाटे बिनु गुन जल में छाजे॥ ६.२

अवधू एह मुरदे का गांवँ।
जोगी जती तपे सन्यासी मरि गये सभ टांवँ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेसर मरि गयो सनकादिक जेहि कहिए।
गौरी गनपति फनपति मरिगो अचल ब्रह्म को लहिए॥
मच्छ कच्छ बराह सरूपी बावन सो मरि गएऊ।
राम क्रिश्न सीतापति कहिए मरि मरि या जग भएऊ॥
कोटि पैगंमर पीर अउलिया गोर कफन में भएऊ।
नेकी बदी कागज जग माहीं मरि मरि या सभ गएऊ॥
मुआ सभे खोजो तुम काके ऐसा जग है बवरा।
आपन थीत चिन्हें नहि मूरख तीरथ मंक्का दवरा॥
धोखे सभ जग मारि उड़ाया धोखे काहु न मारा।
बेद कितेब देखा दिल दरिया उतपति परले डारा॥ ६.३

अवधू सब्दहि करो बिचारा।
सो पद गहौं सरन रहो अस्थित पार ब्रह्म ते न्यारा॥
पार ब्रह्म वारे एह लटका अंचुता चुत में लूटा।
अबिनासी बिनसत हम देखा अचल नाहिं चलि फूटा॥
बिंदरी कहे बीधि तेहि लूटा अवर जाहां तक पोया।
नाथ नाथि के कैद कियो है इन्द्र महेसहि खोया॥
बड़ बड़ गीध पकरिं के साधा किमि करि पर फहरायो।
चुंगत चारा जिमी पर रहेऊ उड़ि कांहां तुम धायो॥
एक सरन सतगुर का जानो सो म किमि करि जावै।
वार पार एह रहट लगा है एक बूड़े एक आवै।
सतगुर सब्द साधि जौ आवे वार पार ते भीना।
कहें दरिया कोइ संत बिबेकी निकलि गया परमीना॥ ६७

अवधू वोए साहब है एका।
जाके हद बेहद है थंभा सब्दहि करो बिबेका॥
वोह नहिं आया गया नहिं कबहीं नहीं गर्भ औतारा।
वोह तौ जिद मुआ नहिं कबहीं मूआ एह संसारा॥
सक्ति स्वाद उन्ह के नहिं ब्यापे भग ते है भगवाना।
इन्ह तो मुरली बेन बजाया वोह तौं पुर्ख अमाना॥

संहस्र भगु इन्द्र के भएऊ जानत है सब कोई।
माया रंग रंगा सभन्हि के उजला मैला होई॥
इन्ह के तौं कमलापति कहिए वोए तो पति है सबका।
लाख चौकरी जुग एह बीता एह तो बेद है अबका॥
जाके रेष रूप उजिआरा बिना रूप सभ गावै।
कहें दरिया मन अनंत कला है भेद कोई जन पावै॥ ६.६
संतो लाल फूल बिसवासी।
सेमर सेइ सुगा पछताना सोइ तीरथ है कासी॥
जाके फन्द अनन्त बान है पाहन परसि उपासी।
उपर जोग भीतर दहु कैसा तपसी औ सन्यासी॥
मन नहिं हटके तन नहिं छुटके घट में सक्ति नेवासी।
टक टक मौनी महा सिद्ध है कठिन कर्म की फांसी॥
बनिता बनी बनारस की एह नैन बान सर गांसी।
भेख अलेख घायल सब घुरमहिं नैन लगी नौलासी॥
ऐसा बहर कहर दरिया है कनहरि बिनु किमि जासी।
ममिता बेइलि लता लपटाना भटकि परै चौरासी॥
सर्बस हरहिं सोक नहि हरहीं मिहि तेजि होहिं उदासी।
कहें दरियां नहिं इत ते उत हैं आगिलि पाछिलि नासी॥ १०१
संतो एहुं अमर घर जैयै।
तन मन वारि चढ़ो सरधा से सो फल आम्रित पइयै॥
काम क्रोध लोभ मद त्रिस्ना एह सभ मेलि अडइयै।
नारी पुर्ख स्वाद बिसरावै सतगुर सब्द समइयै॥
बंकनाल उलटि अजपा के गगन गोफा घर छइयै।
अरंध उरघ मध्य सोहंग सुरती दीबि द्रिस्टि गहि लइयै॥
सेत घटा घन मोती झरि है निर्मल जोति बरइयै।
पूरन ब्रह्म पुनीत उदित भौ बहुरि ना भौ जल अइयै॥
तहां सुखराज बेलास पलंग पर आम्रित माखन पइयै।
कहें दरिया दाया सतगुर की पास पुर्ख के रहियै॥ १०. २
संतो गर्ब करै सो झूठा।
सोना रूपा सहन भंडारा ले ना गए भरि मूठा॥

हरिनाकस जो गर्व कियो हैं गर्व गर्द मिले जाई।
नख ते फारा वोदर विदारा हाथ के हाथे पाई॥
रावन गर्बी गर्व कियो हैं बांधेव सुर सब जानीं।
नाती पूत परिवार समेता ताकी कहां निसानी॥
कंस कसाई कर्म बेकारा भगिनी बांधेव छेरी।
काल रूप किरन तेहि मारा कहि कहि ममिता मेरी॥
राजा प्रिथु प्रिथमी सब लीन्हा सागर सात समेता।
छत्र चक्र वे साफा करिके बहुतो गए निखेता॥
छोहनी अठारह जिन्हि दल साजेव हय हाथी बहुतेरा।
सो जुरजोधन गरद मिलि गौ बहुरि किन्हौं नहिं फेरा॥
सोई साधु सांच जो भाखे करै भक्ति बिबेखा।
कहें दरिया काया गढ़ ऊपर है सुक्रित का रेखा। १०.३
संत मंत जनि जानहु ऐसा।
कंदर्प उलटि टिका बहमंडे जोति प्रकासे तैसा॥
झरै अमी एह पिये प्रेम से पलक बिते भरि आवै।
हुआ मस्त मतवाला या मद ममिता गढ़ी ढहावै॥
मन गयन्द ज्ञान करु आंकुस जुक्ति जंजीर लगावै।
सिंह ठवनि होए बोले ठनकि के रन जीते फिरि आवै॥
राव रंक बीर होए बांके कड़ी कमान चढ़ावै।
लरै लराक लाख महं एका तीर अचूक चलावै॥
तन मन वारी लगन लाल से भाल झमके नूरै।
छाए रहा छबि छकित चहूं ओर ज्ञान भया भरि पूरै॥
बाजा तबल सोहले गगन में एह साधुन की बाते।
कहें दरिया तब भौंर कमल में उड़ि कतहीं नहिं जाते॥ १०.४
संतो साधु लछन निजु बरना।
बिगसित नैन बोलु सत बानी देखु कमल दल चरना॥
ऊंचे नीचे चलब संभारै समुझि समुझि पगु धरना।
परमारथ पर पीर जो जाने पर आतम के भरना॥
सिंह ठवनि धरि जुथ जेहि नाहीं जियतहिं भोजन करना।
भ्रीतक मंद दूरि परित्यागहु ऐसो पेट ना भरना॥

दया दीनता लीन चरन में एक दसा निजु धरना।
कहें दरिया सुक्रित दिल सांचो भवसागर में तरना ॥ १०.६
संतो देखा ज्ञान बिचारी।
आपु सवारथ सभके मीठा परमारथ है भारी ॥
पंडित ज्ञाता पोथी पढ़ि पढ़ि मांगहिं हाथ पसारी।
सर्बस लेइ मंदिल में डारहिं करम कांडि बिसतारी ॥
काजी मोलना पढ़े कोराना करि ततबीर संवारी।
करि मुरीद दिल दर्द ना जाने नाहक गाय पछारी ॥
बड़े ब्रह्म औ कांध जनेऊ अज्यासुत कहं मारी।
आनि भगवती भरि पेट खावहिं उन्हं बैकुंठ बिसारी ॥
करि बैराग तिलक औ माला एता भेख भिखारी।
जटा बढ़ाए बघंमर वोढ़े उन भी बात बिगारी ॥
माथ मुड़ाय घोटावहि नीके ग्रिहि त्यागहि औ नारी।
मन के कारन डीभ ना छूटा बोझ लिये सिर भारी ॥
तपसी मौनी दूधा धारी ऐहु कलपना कारी।
पाखंड छुटे ना मिले गोपाला जन्म जुआ उन्हि हारी ॥
बूड़े भेख अलेख स्वांग धरि बिरला सके संभारी।
कहें दरिया कोई जन सुधरै सतगुर गमी बिचारी ॥ १०८
तुम ते कवन बड़ी येह बाते।
सकलो मैलि समानी तन में मैलि निकालो वा ते ॥
मनि मुक्ता कुंजल के मस्तक चुंगल पारस पाया।
पारस लागे धातु फिरि गएऊ सोना सुगंध बनाया ॥
जैसे भ्रिंग कीट प्रतिपालेव आपु बरोबरी कीन्हा।
सीप सिंधु में बुंद सर्ग के उन्ह मोती रचि लीन्हा ॥
केदली पारस महि के ऊपर जले कपूर बनाया।
केदली वा के कहें न कोई महंगे मोल बिकाया ॥
जैसे फूल तीलि के ऊपर घैंचि बासना आया।
तिलि को तेल फुलेल हुआ है तिलि को जाति मेटाया ॥
यह निजु बैन सुनो सरवन दे अरजी लिखी पठाया।
कहें दरिया मन दास तेहारो पारस को गुन गाया ॥ ११.३

साहब मै गुलाम हौं तेरा।
लिखि लीजे एह कागज कोरे जनम जनम का चेरा॥
रज औ बिंद की कंची काया तुम ते बने निमेरा।
बहु साधुन के कष्ट मेटा है तनिक कटाछ न हेरा।
बन्दी-छोर है नाम तुम्हारा अवनि पताले फेरा।
जो जन निश्चै प्रेम में चूभे ता हि्दए बिच डेरा॥
तुमके जाचों हिर्दे नाचो कबहु न रहौं अनेरा।
एह सब कुदरति अहै तुम्हारा अन कपड़ा का डेरा॥
जो निजु होवै दास तुम्हारा जम जालिम का चेरा।
नष्ट कष्ट कबहूं नहि जावै भव जल लांघु सवेरा॥
गुन ऐगुन का खोज न करिये गुनहगार बहुतेरा।
कहें दरिया जब सिंध सरन में कुंजल भाजु घनेरा॥ १२.१०
साहब मैं गुलाम हौं तेरा।
लिखि लीजे एह कागज कोरे जनम जनम का चेरा॥
जैसे पूत कपूत जो होवै पिता करै प्रतिपाला।
बहुत प्रेम मोद मन भरि के नजरन्हि कीन्ह निहाला॥
अन कपरा तुम आगे दीन्हा दया कीन्ह बहु भांती।
रहौं असोच सोच कछु नाहीं बिता दिवस औ राती॥
एहि धरनी पर दइत केता है महि के कहत जो मेरा।
बेबाहा के देई . दोहाई ता कर करहु निमेरा॥
जिवके गुन ऐगुन जनि खोजियै ऐसी रहनि न आई।
ऊठत बैठत नाम तुम्हारा सरन सरन गोहराई॥
एही अरज सुनो सरवन में हंस बिगोइ न जाई।
कहें दरिया ले नाम तुम्हारा मुक्ति सदा फल पाई॥ १२.११
ए साहब तुम गरिबनेवाज।
गरब गरीबी खाकी बंदा तुम जिन्दा सभकों सिरताज॥
मेहर करो मासूक के ऊपर बांह गहे की करि लेहु लाज।
एवों साफा सरबंग सभन्हि में हौ तुमही तुमही सौ काज॥
सीकिलि कियो सिकम के भीतर अच्छा तन मन दीन्हौ साज।
काल कुबुद्धिहि दलि मलि डारो जौं तित्तर पर झपटे बाज॥

दरदवंद के दारू दीजे दरद गए तुम नाम है सांच।
कहें दरिया दिल अंदर जिकरि है लगे कबहुं नहि दोजक आंच ।। १२.१३

बेबाहा तुम जाग्रित जिन्द।
जहां देखो तहां तुमहिं नजरि में ऊठत बैठत सोवत निन्द ।।
हौ गाफिल गाफिल तुम नाहीं कंची काया रज औ बिंद।
पल पल मेहर किया तुम साहब सभ घट व्यापिक परगट चन्द ।।
अजर अमान अमर पद दीन्हौ सिर न उठावत पांचो रीन्द।
हुकुम तुम्हार जहान जहां ले काल कुबुद्धिहि कीन्हौ छीन्द ।।
जैसे भंवर पुहुप पर आसिक दरस देवै तो सदा आनन्द।
जब बिगसे तब बास अनूपा कहें दरिया मेटा दुख दन्द ।। १२.१४

तुम मेरो साहब मैं तेरो दास। चरन कंवल चित मेरो पास ।।
जीवन जग में देखो दास। पल पल सुमिरो नाम सुवास ।।
जल में कुमुदिनि चन्द अकास। छाए रहा छबि पुहुप बेलास ।।
उनुमुनि गगन भया परकास। कहें दरिया मेटा जम के त्रास ।। १२.१५

अबिगति तेरि गति लखि न परै।
निगम सो चारि पुकारि थकित भए बिमल सो बिहित करै ।।
सिव बिरंचि सुकदेव सारदा सुर सभ ध्यान धरै।
सेस सहस्र फनि थकित भए हैं को कबि कहि के सरै ।।
गोरख दत बासिष्ट ब्यास मुनि नारद नाद भरै।
सलिता सरब मिली सागर में सो गमि अगम झरै ।।
संत मंत गुन ज्ञान गमी जेहि प्रेम प्रतीति तरै।
कहें दरिया दाया सतगुर का सकलो भरम जरै ।। १२.१६

तुम बिनु सरन राखे कवन।
भक्त जन सब तुमहिं जानत दनुज दानव दवन ।।
भानु की छबि छाए जग में काह दीपक भवन।
जम की त्रास न तन में आवत जानु जगपति रवन ।।
सोच मोचेव निकट नाहीं बिकट तन में तवन।
चक्र धरि वोए अत्र केते पतित पावन पवन ।।

अजर अंग सो भंग नाहीं सबे व्यापिक तवन।
जक्त जीवन सर्व जोगी सोग भोग न भवन॥
दर्द दारू दया जुगता जिद जाग्रित गवन।
सत्त सब्द सरूप आगर आवत अवनी अवन॥
प्रहलाद के जब दंत तड़पेव काढ़ि स्वर्गहिं जवन।
कहें दरिया गयवध का बीर बिजली पवन॥ १४.१

तुम प्रभु दीन के दुख हरन।
समुझि भजु निर्बान पद के चरन चित में ढरन॥
दीन के दुख तुरति मेटेव काल भंजन करन।
सर्व व्यापिक दया सागर पाप अघ सभ जरन॥
भर्म औ दालिद्रता सभ नेकु नजरिन्ह हरन।
टूटि मेढ़िया कनक कलसा सिद्धि नव निधि भरन॥
प्रहलाद ध्रुव तुम सरन आयो नामदेव को ढरन।
अचल पद तोहि जानि दीन्हौ जोति जगमग बरन॥
चीर खैंचत बीर ठाढ़े राखि लीन्हो सरन।
द्रोपती पति प्रगट कीन्हौ जक्त में जन तरन॥
जिवन मुक्ति जो जिन्द जाहिर कबहिं नाहीं मरन।
कहें दरिया सरन तेरी सालि सूखत भरन॥ १४.२

जिवन मुक्ति अमान जग में हरत हो पर पीर।
सात सागर चरन जाके अवरि कोटिन्ह नीर॥
बान धनुष न हाथ देखा काया सामुथ धीर।
जम डरत है सभ परत पाएन्ह अनंत में एक बीर॥
जन के निकट दूरि नाहीं हरत है भौ भीर।
द्रोपती कहं नगन चाहे सहस बाढ़ेव चीर॥
हरिनाकसा हरि भक्त ते प्रहलाद संकट तीर।
खंभ ते फारि बोदारि दीन्हौ नख से डारेव चीर॥
पंडवनि जो जग्य कीन्हौ सेष भेष खमीर।
सुपच्छ के प्रसाद पाए जै जै मंगल थीर॥
नामदेव हरि दरस पायो पकरि कीन्ह अमीर।
उलटि कहर पुनि तासु पर सुलतान नाएवो सीर॥

मुनि पंडित जो जोग जागेव चरन चित जाहि थीर।
बुड़त जल में काढ़ि लीन्हौ प्रगट कीन्ह कबीर॥
जाहां देखो ताहां तुम ही गगन मंडल खमीर।
कहें दरिया दरस दीजै कपट कागद कीर॥ १४.३

तेरो बल देखि दनुज डेराय।
बिना धनुष अलेख मारेव किमति बरनि न जाय॥
पुहुमि कांपि पताल कांपेव सिंधु रहि अकुलाय।
चलेव सुरपति धनुष हाथे पांव नहिं ठहराय॥
संसे ग्रासेव जम को फौजें त्रासे चलहि पराय।
दइत दलिमलि मइजि डारेव रोवहि मुख गोआय॥
कमठ सेस को स्रवन धुनि सुन पुर्ख अवनी आय।
जग में जीव मुकुताय लीन्हौ अमर लोक ले जाय॥
अछै असोक निरलेप निरमल देखि मन पतियाय।
सिंघ को जब सरन आए जु मूसि किमि करि खाय॥
संत असतुति करहिं निसु दिन धन्य धन्य सहाय।
कहें दरिया दास को अए कवन राखेव आय॥ १४.४

तेरो दरस के सुभ घरी।
धन्य सभाग सोहाग जन को प्रेम मंदिल भरी॥
जो जो आए सरन तेरी नाम की गति तरी।
अमुज नैन में द्रिस्टि पेखेव जोति जग मग बरी॥
गंग जमुन मिलि स्रोसती एह बुन्द अबिगति झरी।
मीलि सलिता सागर के बिच लहरि उलटी परी॥
मान सरवर मनी मुकुता चुंगत हंस न टरी।
उड़न चाहत मन सो इहें प्रेम की बसि परी॥
थकित सेस महेस ब्रह्मा बेद की गति धरी।
संत को मति निर्मल दासा सकल दोबिधा जरी॥
अटल ब्रह्म बिचारि के एह धरनि धीरज धरी।
कहें दरिया दाया सतगुर देखि जमजुथ डरी॥ १४.७

मेरी अरज करू मंजूर।
दस्त जोरे खड़ा रहना सांच है सबूर॥

तलबी को तलब देना मेहर कीजै जानि।
दूसरा नाहि मेरा कोई एक के पहचानि॥
दील दान न मम दान न दूसरी नहिं बात।
हंमा चीज बजार बसिया र्ख्ख रोटी खात॥
बर्कसि दीजे बखत मेरी सखातिया नहि होए।
भुखे को अनाज देना वासना खुसबोए॥
फका ते येइ फकर कहिये दरद ते दरबस।
जान तुझ पर वारिया पनाह में है पेस॥
बन्दा हौं गुनहगार तेरा लीजना सौ बार।
कहें दरिया गून बेचौं कातिया होय पार॥ १४६

साधो सतगुर काके कहियै।
बूझि बिचार पढ़ो नर प्रानी भव सागर नहि बहिये॥
की कोइ ज्ञानी ज्ञाता कहियै की हरि पद अनुरागी।
की बेद पढ़ा कोइ भेद में राता की माया के त्यागी॥
की कोइ जोग जुक्ति से जागे भोग भसम करि दावै।
की निति नेउरी नेम करै की प्रीति पवन में लावै॥
की धुमपान पावता नीके मौनी मगन अकासा।
की दया धरम करै तीर्थ बर्त में त्यागे भूख पियासा॥
की लाए भभूत जटा सिर राखे काम क्रोध बिसरावै।
की जंगम जोगी सेवड़ा कहिये की वह घंट बजावै॥
की ग्रिहि तेजि सेवै बनखंडे कंदमुल करै अहारा।
की डंड कमंडल फिरै उदासी करमे बहु बिसतारा॥
की ब्रह्मचारी ब्रह्म बिचारै की बहु करै अचारा।
की ब्रह्म ज्ञान होए मेथुन मथन करै साधि अखाधि सनचारा॥
की निरगुन सरगुन सर्बंग मता है की कोई बैरागी।
की ताल म्रिदंग सब्द बहु गावै की रसना रस पागी॥
इन्ह में नहीं कर्म करता है भरम करम घट छावै।
जाके रूप न जाके रेखा ताके गुन सभ गावै॥
एह सब भेख अलेख मता है बहु परिपंच सुनावै।
जैसे दरपन दरसन देखे प्रतिमा द्रिस्टि लगावै॥

सतगुर सो सत सब्द सनेही निगम नेति नहि गावै।
कहें दरिया दर सभते न्यारा जो कोइ भेद बतावे॥ १५.१

साधो सतगुर महिमा बेद बखाना।
सिव बिरंचि नारद मुनि सुकदेव कुंभज मथि के आना॥
खट दरसन औ जंगम जोगी भेख बिबिधि है बाना।
ढूंढ़त फिरै भरम नहिं जाने पारख बिना भुलाना॥
कोइ निरगुन सरगुन के धावै कोइ कत्रि करै अपाना।
कोइ गोंफा सोफा मैं पैठे कोइ मौनी मुख ठाना॥
कोइ ग्रिहि तेजि सेवे बनखंडे कोइ धुमंपान झुलाना।
कोइ डंड कवंडल फिरै उदासी भेख बने भगवाना॥
कोइ तीरथ बर्त करै भुइ सेज्या खाधि अखाधि न जाना।
कोइ परमारथ आतम दरसी दाया कथै गुर ज्ञाना॥
वोए जीवन मुक्ति है ब्रह्म सपूरन अछै असोग अमाना।
कहें दरिया दर खुले केवारी तब वा पदहि समाना॥ १५.२

साधो सतगुर काहा उपकारा।
जामें आड़ अटक नहिं कबहीं उग्र ज्ञान है सारा॥
सीकिलि बिना साफ नहिं होवै चकमक चित गहि झारा।
जगमग जोति बरै ताहां निर्मल पुर्ख सभन्हि ते न्यारा॥
कगा कछिया हंस होत है तेजे बुद्धि बिकारा।
बिना हुकुम पशु कतहिं ना ढारै उतरै भी जल पार॥
जाकी छबि एह छाए जक्त में देखो सुर्ज अंकारा।
निर्गुन सर्गुन से न्यारा कहिए खासा खसम तुम्हारा॥
केते ज्ञानी ज्ञान कथन है जौमिन्हि जुक्ति संवारा।
हाड़ चाम रूधिर की मोटरी ता में कहु करतारा॥
करै बिबेक बिचार जो आवै मन का सकल पसारा।
कहें दरिया दर खोजहु प्रानी कहि दिन्ह बारंबारा॥ १५.३

साधो सतगुर की बलिहारी।
जो कोई गुर ज्ञानी बूझे ता पर तन मन वारी॥
कागा ते एह हंस करे जो भौ से लेत निकारी।
मंजन करै मइलि सभ छूटे अघ पातख सभ जारी॥

काल जाल एह फिरै जक्त में बीखम बेइलि बिकारी।
होए चेतनि जब चित में चितवै चुंमक सब्द समारी ॥
भीतर हाड़ रुधिर है माना ऊपर चाम बोखारी।
पल में परलै जीव घात है छूटि जैहैं नरनारी ॥
गुर जौ कहे सीख जो बूझे रसना सब्द संभारी।
है एक मूल फूल संजीवन पलकन्हि में उजियारी ॥
मति मराल की गति जब आवै काग कुबुधि दुरि डारी।
कहें दरिया सोई हंस बंस है भव जल जात ना हारी ॥ १५.४

साधो सतगुर गुर हितकारी।
धरि के बांह छोड़े नहिं कबही भौ से लेत निकारी ॥
ब्राह्मन छत्री बैस सूद्र सभनि के ज्ञान बिचारी।
जाति के गर्ब करै जनि कोई जो जन भक्ति पियारी ॥
को हम को तुम देह सकल सभ एके रुधिर संवारी।
एके जोइनि सकल जनमाया तुम कवने पगु ढारी ॥
निरखि परखि गुरु नीके कीजे बेरा बांधु संवारी।
एह कलि गुरू बड़े परपंची डारि ठगौरी मारी ॥
अवघट घाट चिन्हे नाहिं मूरख कैसे खेइ उतारी।
अटकी नाव परी भंवचक्र में कठिन कलपना कारी ॥
आवत जात रहट की घरिया एक बूड़े एक ढारी।
दरिया दरस दया सतगुर के होखे मुक्ति करारी ॥ १५.५

धन्य सतगुर सत सब्द बिचारा।
मानुष से देवता जिन्ह कीन्हौ मेटेव सकल बिकारा ॥
मोचेव पाप सकल अघ मेटो टूटा गरब हंकारा।
जागेव ब्रह्म जोति भौ निर्मल बरखत अम्रित धारा ॥
एहि भव माहं बुड़त जिन्हि राखेव भौ जन के कंड़हारा।
एह तन तप्त जारा भौ नासेव उतरैव भव जल पारा ॥
वोए गुरदेव दयानिधि सागर कोटि कलपना जारा।
भौ निकलंकी तत्तु बिचारैव जम जालिम पचि हारा ॥
अंमर काया सोक जाहां नाहीं पोषेव अम्रित सारा।
पुहुप पलंग पर सो रमि रहिए वोहंग मनि उजियारा ॥

नीष काहां तक दीजै सांई निजु गति प्राण अधारा।
कहैं दरिया चरण चित लागेव जिन्दा सत करतारा॥ १५.६

सतगुर तुम ज्ञानी मम दासा।
एक सीध एक साधक कहिये तब गुण होत प्रकासा॥
सुरति निरति का नेता घैंचौ दधि मथनी तुम पासा।
अगिनि प्रकास ताव येह दीजे तब घ्रित होत सुबासा॥
ऐसी रहनी राग रहित है मन ते सदा निरासा।
ज्ञान सिकारी मन पंछी है धनुष पनच तुव पासा॥
द्रिग नहिं देखे म्रिग सिर ऊपर नाहि बिटप बन घासा।
कहैं दरिया मन चंचल चतुरा ताको का बिसवासा॥ १५.७

साधो बेदहि करो बिचारा।
तसकर दिन पूछे पंडित से ताको का इतबारा॥
बेदे गनक ज्ञान इमि कहिये बेदे जुधी करावै।
बेद कहै हनिये दुरजन के बेदे दगा बतावै॥
मारकंडे मुनि बेदे भाषा दुरगा पाठ सुनाया।
सजिव तोरि निरजिव का पूजा अज्या सुत हनवाया॥
बेदे कहै पर तिरिया हरिये मदिरा पान करावै।
बेद कहे जो ब्याजहि लीजै मूर सो मलहि बढ़ावै॥
बेदे साभा चतुर बिछच्छन गुन ऐगुन बिलगावै।
बेद बिचारि भाखे मिति अछरा बेदे सुरी दियावै॥
बेदे तीरथ बरत करावै अन बोले किहां धावै।
चलते चलते पांव पिराना रोवत घर के आवै॥
बेदे होम जग्यं एह भाखे औ किरिसी घर बारा।
बेदे पूछि चले सभ प्राणी हानि से होए उबारा॥
एतना महिमा बेद में कहिये जौ खारो जल तीता।
कहैं दरिया जब दया न भापे काह पढ़े गुण हीता॥ १६.१

साधो बेद कहे नाहि जिव कर घाता।
को एह लिखा पढ़ा एह किन्हने पाप करम तेहि राता॥
बेद सोइ जेहि दया दरद है दरसन से फल होई।
दुधी मथे एह घ्रीत आति भौ ऐगुन जात बिगोई॥

पंथ सोई जो सतगुर भाखा मुक्ति मंद नाहि होई।
संत सोई जो सांच बसत है सदा बिमल मल धोई॥
पंडित सोइ जो पढ़ि के बूझै जाति जनेऊ सोई।
ब्रह्मचर्ज ते ब्राह्मन कहिये बरण अठारह होई॥
मीन मांसु जो सिझै रसोई बिजन सुगंध ना भावै।
करि असनान पुजा पर बैठे एहि बिधि अरपन लावै॥
पुराण कहे पर ब्रह्म है व्यापिक तीनिउ गुन तिनि देवा।
जो एह बधे बधिक है सोई अम्रित तेजि बिषि मेवा॥
हिसा सर्ब धर्म जो कहिये क्रिस्न कहा सत बाता।
जाके दया दरद दिल नाहीं एह बिधि भौ में जाता॥
तब का कहों कि अबकी कहिये कहों सोइ फल होई।
कहें दरिया एक सांच साधु कहे मिथ्या जात बिगोई॥ १६२
साधो परबत देत हिलोरा।
ऊपर धुरी निचे बहे सलिता सागर को जल थोरा॥
काठ बिना सुंदर एक तरनी कनहरिया गुन सांचा।
जल का लेप लागे नहिं कबहीं जोरै चढ़ा सो बांचा॥
कंचन कांचु एक मोल बीके खाक भया अनमोला।
सौदा करते बैल बिकाना घर घर बकता बोला॥
मिरगा चरै दुर्म नहि पतई पद अनुरागहि ज्ञाता।
चले सिकारी सावज मारन उलटा सावज खाता॥
झीनि जाल बाझै जिव मीना जोरै बिना सो छूटा।
बिननिहार के चिन्है न कोई ताते जम जिव लूटा॥
गुंगा रहा सो गमि के पहुंचा बहिरै सब्द बिचारा।
गुरू रहा घर छोड़ि के भागा सीष भया करतारा॥
बिनु गगरी पानी भरि आने ले जुरि कुंइयां समानी।
तीनि जना मिलि झगरा लागा बूझहु पंडित ज्ञानी॥
दाव खेले तेहि ज्ञाता कहिये निरदावै भौ भूला।
कहें दरिया कोइ सब्द बिचारै मेटि जाए जम के सूला॥ १७६
साधो एक बन झाकर झउआ।
लावा तितिर तेहि माहं भुलाने सान बुझावत कौआ॥

बीली नाचे मुस मिरदंगी खरहा ताल बजावै।
दवकत छपकत चीता आवै तीनु जने धरि खावै॥
गदहा बेद उचारण लागे रोरनः तान सुनाया।
भंइस पदुमनी सूनन लागी भैंसा जुगल बंधाया॥
सर्पा त्रिप के सिखवन लागा लेहु न मम उपदेसा।
डैन पसारी गरुरा आया लिलिस पकरि धरि केसा॥
घर जरै तब घूर बतावै आगी खाया पानी।
तीनि लोक में ढूंढ़न लागे घर में बैठी रानी॥
मोटरी फाटी टाटी उड़ि गइ टंडा गाया बिलाई।
कहें दरिया एह जग का कौतुक जल देखि मीन पराई॥ १७.६

साधो निर छिर दही जमाया।
अगिनि क जावन ता में दीन्हौ निर्मल बाती आया॥
चारि मसाला ता में लागा या घट परगट देखो।
ज्ञान बिचारै निर्मल भै गौ वाही जन के लेखो॥
परिमल अम बास ताहां आथा निजु अपने घर टीका।
तीता पानी अम्रित भै गौ हरिबाता महं नीका॥
कीट परा भ्रिंगा के पाले कीट सो भ्रिंगा होई।
गाफिल गंदा रंदा जम ने वाके पुछै ना कोई॥
आपन रंग रंगा अरुझाने लील क दाग जो दीन्हा।
कागा तें एह हंसा भै गौ मैन मजीठहि चीन्हा॥
अनेग नदी मिली सागर में खारो जल भौ कैसे।
कहें दरिया पारस को गुन एह तांबा कंचन जैसे॥ १७.१६

बन में सिंघ चरावै गाई।
ईघर ऊधर लीए फीरै सांझहि देत ढुकाई॥
बकरी लेके बीगे सौंपा जतन करो जनि चीटो।
एको रोंवा जो बिस्तुर होइहैं धरि धरि मुगरिन्ह पीटो॥
मूस मजारहि घर में राखा नित उठि खेलो धमारी।
मूस गावै तुम अरथ बिचारो ऐसी भक्ति हमारी॥
मासु की मोटरी गीधहिं सौंपा आइ तुम्हारी पारी।
तौलि देउं जो घटिहै कबहीं फारो चोंच पझारी॥

मेंढुक लेई भुअंगहि सौंपा राखहु माल हमारी।
मंद नजरि जो कबहीं तकिहौ गहुबन्हि दांत उपारी॥
उलटा पलटा सब्द हमारा साधु का महिमा ऐसा।
कहैं दरिया उलटा सो सुलटा है जैसे का तैसा॥ १७. २०

साधो गल चमरा है गाधू।
धोबिया के घर धरम खोजतु है प्रभु आए घर साधू॥
मोर पच्छ पर भौंरा भूले गवने भैं गौ बौरी।
उलटा कुंभ भरे जल नाहीं बगुला खोजै झौरी॥
मूस मंजारहि भंइस गाई मिलि जुलि मंगल गाई।
सरपा आगे नेउरी नाचे चीलिह सो नेवते आई॥
ब्याघर के घर पढ़े पुरानो दादुल भैं गौ बक्ता।
कीचस आगे चिखुर बियानी भालु भई है भक्ता॥
आगि लगा के घर में पैठा बाहर पहरू बोले।
नवो नारि बहत्तर कोठा मूल दुआरा खोले॥
हंसि के पैठे रोएके निकले ऐसी हरि की बाजी।
कहें दरिया कोइ सब्द बिचारै होए पंडित भाइ काजी॥ १७. २१

संतो सुनि लेहु राम दोहाई।
पोथी पत्रा पांड़े लीए ताल मछरिये खाई॥
पंडित का एक गइआ होती कान खूरि नहिं पोंछी।
कंटिया दूध देवै नहिं कबहीं ठोर चलावै गोंछी॥
मीयां ने एक मुरगी पालिसि सीस पांव नहिं ठोरी।
अलह नाम लेवें नहिं देवै ठोर चलावै चोरी॥
काजी कहै जो हद हम कीन्हा मति कोइ झगरा लावैं।
झगरा झांकत बगरा उड़ि गौ सीस बिहूना खावै॥
भक्ता भक्तिन्हि धंधल बाटे खाट अछो बिनि ल्यावै।
वोहि खटिया पर सुते ना कबहीं हाट तमासे धावै॥
हिंदू कहे ज्ञान हम सीखा मुसलमीन कहे महरम।
कहें दरिया येह कहर खोदाई चलो सितावी चहरम॥ १७. २३

साधो कोइ ना रहा बिनु दांत निपोरै।
सेस नाग देव बरिसन लागा दही जमाया घोरै॥

रजगुन तुमगुन सतगुन कहिऐ तीनिउ गुण अनीता।
बाम काम सभ दाम बटोरहिं सक्ति सभनि के जीता॥
नौ नाथ चौरासी सिध्या ऐसी बिधि की घरनी।
मोहनि माया राम घर सोभे ज्यों पावक में अरनी॥
सपेद गाया रंगरेज के घर में सैन माट में बोरै।
वा का रंग छुटै नाहिं कबहीं नौ मन साबुन घोरै॥
माहा माहासे बीर धीर सभ धनुष पनाचे राखा।
टूटा धनुष देखा यह ज्ञाने कबि सभ ऐसे भाखा॥
पुर्ख एक है माया जक्त सभ वोह साहब अबिनासी।
कहें दरिया हम आंखों देखा वोए काटहिं जम फांसी॥
साधो सुनु अबिगति की बाते।
गति से आया गतिहि समाना फिरि वोए भव में राते॥
गढ़ ते गढ़ुआ भेंड़ि भई है भें भें करने लागी।
काम कोध एह सभ में ब्यापे बिरला जन कोइ त्यागी॥
गइया एक जो फरै सहर में एहूं जुग जुग जीवै।
छांद बांध वाके कछु नाहीं रूधिर जल के पीवै॥
बिरछा कहे मगर हम मारब मंगर बिरिछा खाते।
डारा पात फुल सभे सुखाना एहू मरि मरि जाते॥
एक से अनंत अनंत एक है एक में अनंत समाना।
रूप रेख वा के किछु नाहीं ब्रह्मे बेद बखाना॥
करै अकूफ जो हंस हमारा जढ़ से काहू बसाई।
कहें दरिया एह ज्ञान गांसि है पाहन में मुरि जाई॥
कहां कुसल जब भव में आवै।
कुसल परे जब सिफ्ति धनी का सतगुर पद के पावै॥
काया कोट कागद की पुतरी वामें कल छतीसा।
आठ जाम एह बतिस घरी है जब चाहे जगदीसा॥
काम कोध एह लोभ माया बसि ममिता बेइलि कुगंधा।
एक बुड़े एक चले जात है सूझि परे नहि अंधा॥
बाम काम अब दाम जतन करि या सुख बहुत सोहाई।
पल में परले बांधि जाहुगे जब रूठे जदुराई॥

साधु संगति नहिं भीषभ की गति वा मति सभ बिसराई।
चारि चरण दुइ सिंघ गुंगा मुख तब कैसे गुण गाई॥
साखि पुरान सभे कोइ जाने निगम काहा समुझाई।
कहें दरिया चतुराई चुल्हा तब अम्रित फल पाई॥ १८.३

साधो तीनि लोक भग जाल पसारा।
स्वर्ग पताल औ म्रितू लोक ले दुर्गा पाठ हमारा॥
ब्रह्मे बियाही बिस्न कहं ब्याहिसि शिव के सक्ति पियारी।
सुर नर मुनि के कैद कियो है अब बन में बनवारी॥
बाम काम अब पलंग बिछवना ऊंचा महल अटारी।
ताहि पलंग पर हम बिराजहिं लोहिं लिया फुलवारी॥
बेद पढ़ि पढ़ि पंडित भूले चंदन चरचि संवारा।
दूनो पशु में बेरी भरि के गए जमन के द्वारा॥
सीष के सिषवैं राजस तामस बन में खेलु सिकारा।
जीव मारै के महा पाप है बांधि नर्क महं डारा॥
एक पुर्ख है अजर अमाना मन का सकल पसारा।
कहें दरिया मैं बहुत पुकारा भूले मूढ़ गंवारा॥ १८.५

साधो धोखे सब जग मारा।
गुरू सिष्टि के ब्रह्मा भूले चारो बेद बिचारा॥
अछै बीछ सुख सागर छोड़ि के त्रीगुण फंद पसारा।
तेहि फंदा में या जग बांधा किमि करि होए उबारा॥
जौ करता एह सभ घट बरता जरा मरन सौ बारा।
नरक स्वर्ग कहु काके कहिये दुख सुख कीन्ह पसारा॥
कवन गुरू है कवन चेला है कवन बूढ़ को बारा।
आपे नाव केवट है आपे आपे खेवनिहारा॥
गूर देखाए ईंट मुख मारै भूले मूढ़ गंवारा।
ऋषिब चारि चरण जब होइहैं बोझ परा सिर भारा॥
सतगुर सब्द सत्य येह मानो निसु बासर हुसियारा।
कहें दरिया चित चेतु अचेते उतरहु भव जल पारा॥ १८.८

कवि ने रस की कथा सुनाई।
सांच कहन को मारन धावै अनभौ आगि लगाई॥

सब्द अनाहद गगन में गरजे तन महं त्रीविध सोभा।
सुर नर मुनि औ पंडित ज्ञाता याही में सब लोभा॥
सेस नाग है भले गोसाईं बरिसन लागा पानी।
बुन्दे बुन्दे गागरि भरिया सोखि लिया सभ रानी॥
वोए रानी राजहिं धरि बांधा काहां चले पराई।
हम से तुम से लगी सगाई जुगल प्रेम बंधाई॥
फीकी बात वा की नहिं होवै जौ गढ़ि बहुत बनाई।
पानी माहं कागद की पुतरी सो तन जात बिलाई॥
गजबेइलि है ज्ञान की गांसी गीदर उठि के भागा।
कहें दरिया कोइ संत सिपाही वा के चोट ना लागा॥ १८.६

साधो सोइ चलन येह चलिए।
जा सो खुसी रहे सतगुर का कंदर्प दल कहं दलिये॥
कहन सुनन बग बड़े चातुरै हवले जल में जावै।
देखि के मीन मगन मन नाचे चिहुकि चपल होय धावै॥
कहनी कहे कहन नहिं जाने जब कथनी बनि आवै।
ताल म्रिदंग समाज राग को रघुपति का गुन गावै॥
सभ में जीव ब्रह्म किमि कहिये कमला को पद परसे।
उलटि सुरति जब चढ़े गगन के तब चन्दा घन दरसे॥
कामिनि की छबि छेके न कबहीं छकित हुआ मतवाला।
मति मराल एह लाल सोहावन बोलत बैन रिसाला॥
काचु महल में कची पकी है भुकि भुकि प्रान गंवावै।
कहें दरिया अब अटल ज्ञान गढ़ तबै बिमल पद पावै॥ १८.१२

साधो हरिजन हरिपद राता।
हरि की बात सुनहु रे संतो तीनो गुन मदमाता॥
मन की प्रभुता जग्त ईस है सो मन अगम अनंता।
राम माते रावन भी माते मनिता बेद भनंता॥
मने सुर मुनि बन्दि किया एह मन अतीत अनंगा।
जल की लहरि जलहि मिलि जावै भौ मन बिबिध तरंगा॥
सो मन पैठा सक्ति सिया में दसकंधर धरि आया।
मन की डोरि बंधा मन मूरुख लंका तुरित ढहाया॥

मने पैठि रावन कहं मारा राम भये जग करता।
इन्ह के मारा उन्ह के मारा एहि बिधि जग में बरता॥
एह मन अनल अनिल समेता झुलुहा झीन लगाया।
कहें दरिया मन भौ परमेसर सभ मिलि सीस नवाया॥ १८.१३

साधो भवजल सिंधु अपारा।
कहि कहि कबि सभ ता में पैठे करता को गुन न्यारा॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस्वर पैठे जक्ता भक्ता जोगी।
देखा देखी सभ मिलि पैठे राव रंक औ भोगी॥
राम पैठे रावन भी पैठे पैठे क्रिस्न कंधाई।
ग्वाल बाल गोपी सभ पैठे पैठे कंस कसाई॥
बेद पढ़ी पढ़ि पंडित पैठे कागद को घर कीन्हा।
आवत जात बिचे महराना करता काल ना चीन्हा॥
वार ना जाते पार ना जाते बीच परा मझधारा।
चिन्हौ केवट जिन्हि जाल बनाया माछा धरि धरि मारा॥
केता कहौं कहा नहि माने मन के फन्द बिकारा।
कहें दरिया दर देखि भुलाना एक नहिं दुइ संसारा॥ १८.१४

साधो नारि नैन सर बंका।
भौहें बान कमान चढ़ावति देति नगर में डंका॥
कंदर्प कसि कसि सभ मिलि थाके ऐन झरोखे झंका।
बिरला भागि गए सरनागत बांचे राव ना रंका॥
लीन्ह लपेटि जोग नहिं लाए भोग भया भौ भंका।
सुर सुरापति इंद्र बापुरे तिन्हि के परि गौ शंका॥
गोरख के गुरु महा मछीन्द्रा तिन्है पकरि सिर ठंका।
सिघल दीप में दरस पदुमनी वाके बदन मयंका॥
ब्रह्मा बिस्नु के उर में बेधेव नारद कहं धरि हंका।
महादेव संग कंवला रानी उन्ह के परि गौ दंका॥
मैन मनोरथ सभ का दिल में का के कहौं निरंका।
कहें दरिया एह मुरलि मनोहर दम्पति प्रेम हिय हंका॥ १८.१५

ऐसी नारि हराफ हेवानी।
आपन बात खिछि करि राखे है गरबी गैआनी॥

पहिले राधे क्रिस्न तब कहिया साधुन्ह एह मति ठानी।
उलटी चाल जो चली जगत में औ कबि बहुत बखानी॥
पहिले सिया राम तब कहिया उलटि नाव गुण तानी।
जहं वक धार ताहां लै मेलिहै ऐसा तेज तिछन है पानी॥
आपन बाहन सिंघ बनाया खसम के बैल पलानी।
है नट नागरि बुधि की आगरि सागर को जल थाह ना आनी॥
गरब गुमानी मद की माती भौंहे कमाने तानी।
जैसे कुमुदिनि जल के भीतर चन्दा से बिगसानी॥
तीता लागे भा मीठा लागे साधुन्ह काहा कहानी।
कहें दरिया कोइ बोली फकीरा वाकी बात अमानी॥ १८.१६

साधो एह कबितों की बातें।
कबिता करता काम बखाने कामिनि को रंग राते॥
कची दिवाल मिटिहा मंदिर कंचन कलई लागा।
खोदत षाक जाक सब भूलेव पाक भया नहिं कागा॥
छाट पाट होए परे भवन में गीता पढ़ि बग ध्याना।
पिंगल बिना कब्य किमि कहते गिता बिना किमि ज्ञाना॥
गनिकह गनहिं ज्ञान नहिं मानहिं ध्यान वाहि को राता।
स्वर्ग नर्क की गमि सब जानहिं चढ़े भवन बड़ ज्ञाता॥
रस के कहते निरस हुआ है पाहन परसि भुलाना।
फटिक सिला गज दसनन्हि अरिके प्रतिमा पत होए जाना॥
साधु से छल करै बल बांधे कोइ कलपे बहुत असाधी।
चारि चरण दुइ सीधे होइहैं फिरि कोल्हू धरि नाधी॥
साधु असाधु दुनो जग माहीं पारखि जन बिलगावै।
मन मैला बग उजलो देखो जल में माछा खावै॥
सतगुर निन्दहिं बन्दहिं काल के बांधि परे पगु बेरी।
कहें दरिया चित चेतु अचेते बचन कहों मैं टेरी॥ १८.१७

साधो बांकी बात कही।
माया बड़ी जग्त में जालिम इन्हि सों को निमही॥
ब्रह्मा बिस्नु महेसर आदी देव इन्द्रहीं जाए छरी।
तपसी अवर सन्यासी जोगी इन्हिं सहजें पकरी॥

राम जन्म दसरथ ग्रिह भयऊ त्रीगुन रूप धरी।
भयेउ मोह वसि सिया बियाहेव प्रबला नाहिं टरी॥
लागी आगि ऊंचे होए देखा एह सभ सूझि परी।
बाजे माल जाल संग जरि गौ बाजे बिपति परी॥
क्रिस्न कान्ह मुरली मुख बोले गोपिन्ह रंग भरी।
भोग बिलास कियो गोपिन्हि से तिन्ह भी व्याह करी॥
बिरला जन कोइ ठाढ़े रहि गौ पल छन वतिस घरी।
सोई ब्रह्म भये मुक्ता मनि समुझि के पाव धरी॥
द्रिस्टि करै दया के सागर कड़ी कमान गही।
भंजेव मोह माया को मंदिल प्रेम प्रवाह वही॥
अबिनासी सभ के सिर ऊपर जारै नाहिं जरी।
कहैं दरिया समुझो मन मूरख ऐसो ज्ञान करी॥ १८.१८

साधो तीनी गुन बिनसि गौ।
ब्रह्मा बिस्न महेस्वर कहिये अमर कवन येह रहिगौ॥
नीरंजन अंजन जेहि नाहीं मंजन केहि में करियै।
निरंकार अंकार नहीं कहु भव में केहि बिधि तरियै॥
निराअलंम अलंम नहीं लै लगन कहां ते आवै।
सरगुन बिनसि निरगुन गुन रहितं गुन बिनु ज्ञान न भावै॥
बेद कहे वाके रूप ना रैखा पायो तत्तु कहां ते।
उपजि बिनसि फिरि कहां सपाने लखि नहिं परै जहां ते॥
मूल नहीं तब फूल कहाँ ते फुल बिनु फल ना हौवै।
बीज नहीं कहु कैसे जनमे पत्र बिना काहां सोहै॥
अगम कहे फिरि निगम कहत है निर्गुन सर्गुन बिचारी।
अचरज बात अचंभो भाखहिं बुधि बिधि बचन संवारी॥
जोगी जती तपे सन्यासी सभ के भयो अनुरागा।
देखि परा कि अदेख कहत है सुनो ना संत सुभागा॥
परिमल पुर्ख मुआ नहिं कबहीं नहीं हुआ नहिं होगा।
कहैं दरिया पारस बिनु चन्दन करि करि थाकु सभ जोगा॥ १८.१९

जाहां तक द्रिस्टि देखन में आवै सो माया का चीन्हा।
का निर्गुन का सर्गुन कहियै वोए तौं दुइ से भीना॥

चिराक जरै प्रकास कहां ते बाती तेल मिलाया।
जाकी जोति जक्त में जाहिर सो भेद बिरलन्हि पाया ।।
पर्स पखान पारस जो कहियै सोना जुक्ति बनाया।
जेहि पारस से पारस भएऊ सोई संतन्हि गाया ।।
परिमल बास परास हि बेधेयो कहबे को चन्दन हूआ।
जेहि परिमल पारस से भएऊ सो कबहीं नहिं मूआ ।।
जो पारस भ्रिंगा येह जाने कीट से भ्रिंग बनावै।
वा का भेद लखे नाह कोई अपनी जाति मिलावै ।।
सनदि परा सतगुर के पाले भरमि रहा सब कोई।
बिरले उलटि आपु के चीन्हा हंस बिमल मल धोई ।।
जल थल जीव जहां लहि ब्यापक बेद कितेबें भाखा।
वा की सनदि कबहु नहिं आई गुप्त अमने राखा ।।
सो गुर ज्ञान सदा सिर ऊपर वा दर भेद बतावै।
कहें दरिया एह कथनी मथनी बहु प्रकार सो गावै ।। १८.२०

साधो बड़ा बंधन है भारी।
माया लता एह दुर्म गिर्द है बिबिधि रचा फुलवारी ।।
ऊपर मूल हेठ डार्हे पात एह छाया सघन है सोभा।
जिव पंछी एह मन मधूक है याहि भ्रानि में लोभा ।।
बिज से बिज एह फैल परा है बुन्द बुला जिमि आई।
चले जात फिरि बिलेमान होए रचि के फेरि बनाई ।।
मैं मैं करै माया है मेरी कवतुक कल एह लाई।
छल बल ते एह छीनि लेतु है कर मिजि सभ पछुताई ।।
आया काहां फेरि गया कहां एह भरमित भौ में अटका।
बाजीगर के हाथ डोरी है जब साटिन ते सटका ।।
गया अचेत चेत कछु नाहीं साहब सुरति बिसारी।
कहें दरिया दाया एह जा पर भव से लेत निकारी ।। १८.२२

साधो केहि बिधि जग में तरते।
सतगुर ज्ञान गंमी नहिं आवै भौ सागर में परते ।।
एक हाड़ दुइ कुत्ता लागे घींचाघींची करते।
गुरू सीख के माया बीच में झगरा करि करि मरते ।।

जैसे आगि दबी है राखे हाथ पसारे जरते।
कपट कतरनी कतरै वा के जिन्हि के जइसा बरते॥
झूठी बात जीभि में राखहि माले ले ले घरते।
छीनि लेइ तब छेके न कोई हाय हाय काहे करते॥
बैल हुआ तब बड़ दुख भारी हर के पीछे बहते।
घास भुसा कई ध्यान लगावहिं दांत खियाने चरते॥
ज्ञान कहें तब अनते चितवै झका झुकी करते।
कहें दरिया पन चारो बीता बीच भया तब गलते॥ १८.२३

साधो एह मन रहा पुर्ख के पासा।
इन्हि सभ लीला रचेव जग्त में गया सक्ति के पासा॥
अस्टभुजी वह सिष्टि आदि ही जाके कहहु भवानी।
ब्रह्मा बिस्न महेसर भयऊ वा गति काहु न जानी॥
का से मता पिता कहु का से जिन्हि जनमायो जाया।
कहत सुनत नाहीं बनि आवै जब निरखे तब माया॥
पहिले मूल डारि तब भयऊ सखा पत्र घन छाया।
जीव से जीव बिन्द बहु भयऊ छकित हुआ सब काया॥
दस अवतार एह मन का लीला बहु परिपंच बनाई।
धोखा देइ जीव सब राखा ममिता अदल चलाई॥
वोह करता नहि बाम काम ते एह किरतम की बाजी।
ऐसा दंद फंद सभ डारेव बूझहु पंडित काजी॥
नरसिंह आपु हरिनाकुस आपे अपना वोदर बिदारा।
कहें दरिया एह चरित अगम है बूझे बिना बेकारा॥ १८.२७

साधो हरि निन्दा केहि कहिये।
बूझि बिचारि देखो नर ग्यानी भव सागर नहि बहिये॥
आतमघात करै पर चोरी ब्रह्म एक नहिं जाना।
दया धरम नहिं संत के सेवा ऐंठे फिरहि गुमाना॥
मच्छ कच्छ औ बाह सरूपी हरि निजु धरा सरीरा।
निगम साखि ताही का बोले मारहि जल का कीरा॥
मासु बनाइ भोजन जो अर्पहि चंदन चरचि सरीरा।
राम राम कहि मुख में डारहि समुझे नहि पर पीरा॥

ब्रह्म बेद पढ़ा अति नीका नौ गुन कांध जनेऊ।
पाव पुजाए घात करि डारहि स्वारथ कारन सेऊ॥
एता पाप करै जग माहीं ताहि हंसे नहि कोई।
जौ सत्य बर्त करै सत्य बर्ता निन्दहि जन्म बिगोई॥
ऐसा बूझ जक्त का उलटा हम को कहे दिवाना।
कहें दरिया सतनाम सनेही सो मेरो मन माना॥ १८.३०

हमके आतम राम पियारा।
अबुझा लोग कहां तक बूझे बूझे हंस हमारा॥
मच्छ कच्छ अरु बाह सरूपी निगम कहे अवतारा।
जानि बूझि नर खून करत है परै नरक के धारा॥
महिषा मारि के चरण पुजावहिं पूजा मान तोहारा।
लेके खरग ताहि सिर झारहि ऐगुन भै गौ सारा॥
आन के राम हैं हंस खेलवना मेरो प्राण अधारा।
अज्या घैंचि पथल पर मारहि पाप भया सिर भारा॥
सांच कहे नर क्रोध करत है गरबा गरब हंकारा।
सांचे झूठ का करो बिचारा जा ते भला तुम्हारा॥
केता कहौं कहा नहिं माने भूले मूढ़ गंवारा।
कहें दरिया दर जम ने छेंका मुदगर सिर पर मारा॥ १८.३२

साधो राम सकल घट बरता।
करता धरता सभ कोइ जाने मूस बिलारी लरता॥
कहीं गाय कहिं बाघ हुआ है कहिं धीमर कहिं मीना।
कहिं अज्या कहिं चीक हुआ है बुझे सजन कोइ बीना॥
कहीं भुअंग कहिं मेढुक हुआ है सींघ सियारहि खेती।
कहीं गोह कहि भालु बना है एह गुन देत न सेती॥
कहिं दाता कहिं भिछुक हुआ है कहिं पंडित कहि जढ़ता।
कहिं मया का फूल बगैचा माली होए होए हरता॥
कहीं ऊंच कहिं नीच हुआ है कहीं राव कहि रंका।
कहीं जोग कहिं भोग बना है तेग गहे कहिं बंका॥
एहि बिधि राम सकल घट ब्यापेव साधुन की मति ऐसी।
कहें दरिया जो जैसा बूझे ताकी मति भौ तैसी॥ १८.३३

साधो कबहीं ना भव परिये।
सांचा साहब रहनि सांचा है दुरमति दूरी करिये॥
काल्हि करो सो आजु करो एह सुनो नर अव नारी।
सर्बस त्यागि चलोगे बन्दे हाथ जुआरी भारी॥
एक मुआ एक मरने चाहे जम ने फंद पसारी।
अमर कोस मिरगा मद माता पाव कुल्हारिन मारी॥
लेन देन एह झूठा झगरा सौदा बहुत पसारी।
नरद अकेला जम ने मारा जिन्हि निजु खसम बिसारी॥
जम के सांट सहोगे मूरख बड़ा कलपना कारी।
चारि चरण दुइ सींधें होइहैं बोझ परा सिर भारी॥
माहा नरक एह अंध कूप में अब कहु कवन निकारी।
कहां हमारा गांठी बंधिहौ दरिया कहा पुकारी॥ १८.३५

साधो पापी सो डरिये।
सांच बरोबरि धरम नहीं है झूठे भसु भरियै॥
जहाँ सांच ताहाँ आपु बसतु है दुरमति दुरि करियै।
झूठ कहै तेहि काल कुचेगा अवघट में परिये॥
सांच गोसइंयहि बिच कछु नाहीं जौ हित के धरियै।
झूठ पछी रे फाफी उड़ानी का झगरा करियै॥
सांचा खरचे खाय खियावै एक दिन फिरि मरियै।
झूठा मूठा मरकंट की गात वा सिष सौ बरियै॥
गुरू सिखावै सीख को निसु दिन सो गुरु भव तरियै।
झूठा गुरु झूठा है चेला कनफूँका करियै॥
जइसे कलंदर बंदर बांधे एहि बिधि भव परियें।
कहें दरिया तेहि काल नचावै बिनु आगी जरियैं॥ १८.३६

साधो पाखंडी का जीवै।
पाखंड करते जनम सिराना निति उठि बिष्या पीवै॥
दधि सोहारी सकर समेता दूध पिवै भरि कूजा।
आपे सरस अव निरस सभे है दूजे पाहन पूजा॥
ऊपर हंस भितर है कागा कर्म कमावै खोट॥
आगे नाथ ना पाछे पगहा एहि बिधि गदहा मोटा॥

मासु मछरिया भोजन करते रसने स्वाद बखाना
आपु खाय अव सीष समेता एहि भक्ती मनमाना ॥
काम क्रोध हंकार भरा है जैसे मदपी माता ।
आन सुने फुहकार करत है झूठी बातन्हि ज्ञाता ॥
बोलन ते जग मारन धावै अनबोले बनि आवै ।
कहें दरिया चढ़ि नाव पथल की बूड़त जल में जावै ॥ १८.३७

साधो ऐसा ज्ञान प्रकासी ।
आतम राम जाहां तक कहियै सभे पुर्ख की दासी ॥
एह सभ जोति पुर्ष है निमल नहिं ताहां काल नेवासी ।
हंस बंस जो होए निरदागा जाए मिले अभिनासी ॥
सदा अमर है मरै ना कबहीं नहिं ताहां सक्ति उपासी ।
आवै जाए खपे सो दूजा सो तन काले नासी ॥
तेजे स्वर्ग नरक की आसा या तन बेबिसवासी ।
है छप लोक सभन्हि ते न्यारा नहिं एहं भूख पियासी ॥
केता कहै कबि कहै न जाने वाके रूप न रासी ।
उह गुन रहित तौ एह गुन कैसे ढूंढ़त फिरै उदासी ॥
सांचे कहा झूठ जनि जाने सांच कहै दुरि जासी ।
कहें दरिया दिल दागा दूरि करु काटहु जम की फांसी ॥ १८.३८

साधो ऐसा ज्ञान सुधारा ।
पीयत प्रेम सुधा रस बानी कहि एह कथा पसारा ॥
जौं मकरी मही तार लगावै सुरति बांधि महि सीरा ।
आवत जात दिसे पल माहीं कनक पत्र में हीरा ॥
से तौ देखि द्रिष्टि अगम कहं धावै वोए तो पुर्ख निनारा ।
वोए निरगुन गुन रहित अचल है पार ब्रह्म वोए पारा ॥
है तौ सेत फिटिक निरबाना उनुमुनि दीसे तारा ।
सेत घटा धन मोती झलके बिन दीपक उजियारा ॥
है अकह कहबे को नाहीं या कहि कहि कथा पसारा ।
कहें दरिया गुर ज्ञान पलीता चकमक चित गहि झारा ॥ १८.४०

साधो अगम निगम गुन गाएवो ।
लिखत पढ़त सब सेवक थाके एह निजु बचन सुनाएवो ॥

कलम न गहो नहीं कर कागद लिखनी लिखे सो दूजा।
तोला तौल दुनो दिसि तषनी निरति न घटे सो पूजा ॥
सेस सहस्त्र फनि द्रिष्टि स्रिष्टि जेहि सम मुख बोले बानी।
कथि मथि कहेव सो छंद प्रबंदे अविगति जेहि पहिचानी ॥
बिसिष्ट ब्यास मुनि नारद सुखदेव इन्हि मिलि कथा बखानी।
गनो और मुनि केते जक्त में जथा जेते गुरु ज्ञानी ॥
आदि अंत औ मध्य मनोहर मन सभ लीला बनाई।
लगी खुमारी एवं मद माते मुरली मधुर सुनाई ॥
साधु के महिमा सिंधु बरोबरि लच्छ कहा नहिं जाई।
सो जाने जो मत में आवै खोजत अंत न पाई ॥
अब नग लाल हिरामन मोती सभ कहं पारख आई।
साधु पारष बिरला जन जग में जाके सुमति समाई ॥
कलि में कबि सभ मन ते मगन है सत पद नाहिं बिबेका।
कहें दरिया मन अनंत कला है जब सुधरै तब एका ॥ १८.४२
साधो आदि कहाँ की अंता।
आदि अंत के पार बिराजहिं वा के सुमिरहि संता ॥
आदि भी कहिये अंत भी कहियै वोह तौ पुर्ख अमाना।
वा की छबि छिनरानी जग में निरगुन बेद बखाना ॥
सर्गुण सरूपी सिंधु के भीतर ऊठत बिबिध तरंगा।
उलटा लहरि पैठु जल भीतर जाबेहु केकरा संगा ॥
बुन्द बुला तन बिलेमान भौ सदा बिलग है एका।
तिर्गुन ताप सभन्हि मिलि तापेव करहु ना सब्द बिबेका ॥
अमर सदा है मरे न कबहीं अमर दोलैचा बैठा।
आवे जाए खपे सो दूजा जोइनि संकट नहिं पैठा ॥
है सतबर्ग साधु वोह जाने वा फुल अजब अनूपा।
कहें दरिया वोह झरै न मरै सो तौ सत्य सरूपा ॥ १८.४३
साधो वोह अजीत है जितै न कोई।
आवे जाए खपे सो दूजा हारि जीति में सोई ॥
उन्हि नहिं लंका सैन चलाया नहिं सागर कहं बांधा।
बान धनुष कर कबहिं न देखा बिना धनुष सर सांधा ॥

उन्हि नहि बली पतालहि दीया नहिं वोए बावन होते।
सीव सक्ति कबहीं नहिं जूगल नहि माया संग सोते॥
हिंद राम तख्त सब ऊपर उहंवां ते पगु ढाग।
बार पार नहिं उनके कहियै सर्ब द्रिष्टि उजियारा॥
छीर छुपा नहि उनके कहिये छीर पिवे नहिं खाता।
केते बीर धीर धरती पर एहूं मरि मरि जाता॥
है सांच झूठ जनि जानो चतुराई दुरि कीजै।
कहें दरिया सो हंस हमारा बहुरि न भव में भीजै॥ १८.४५
साधो दरपन नौबति बाजै।
गगन मगन जाहां तख्त अनूठा आम खास मे छाजै॥
बादसाह वोए अछे दुलह है दुलहिनि को मन भावै।
वा वर छोड़ि दुजा नहि बरिहों मेरि महल जो आवै॥
ब्रह्मा विस्न महेसर दर पर नारद बेनु बजावै।
पीर अउलिया केते गनिए बेद कितेब सुनावै॥
बेइलि चमेली सेहरा सिर पर अग्र छत्र छबि छाजै।
जगमग जगमग मोती झलकै मनि मानिक तहाँ भ्राजै॥
कोटि देबि जाके चेरी चात्रिक सोहंग चंवर डोलावै।
मनसफदार खड़े कर जोरें दरस दादनी पावैं॥
सादा अमर है मरै न कबहीं जीवन जिन्द कहावै।
कहें दरिया बेबाहा सोई है सिफ्ति काहां गुन गावैं। १८.४७
साधो सुनि लीजे एक बाता।
सौंहु सोई जो पूरा तउले रहै मगन मन माता॥
उनमूनी की दंडी कीजै त्रीबेनी की तानी।
एक मन पांच सेर तउलन लागा ज्ञान की राशि लदानी॥
गगन मंडल बिच रचो चउतरा भँवर गोफा की घाटे।
अजपा जाप जहाँ है दूलह बिकिरी लावो वोहि हाटे॥
आंखि मूँदि आंधर जनि होवो चोर माल लै जाही।
चकमक झारि दिपक ताहां लेसो चेतन्य रहो मन माहीं॥
सौदा सुलुफ करहु बहु भांती जाते जाहु न डंडा।
कहें दरिया सोई बुधि बनिया कबहिं ना करै पाखंडा॥ १८.४६

साधो ममिता मद है बवरा ।
समुझाए समुझे नहिं मूरख दे धक्का दुइ अवरा ॥
चारि चरन दुइ सींघे होइहै घास भुसा के दवरा ।
हाटे बाटे मिले बटोही लया बरद है नवरा ॥
मन की डोरी मोहकम बांधे भला बरद है चवरा ।
प्रात भया तब खोलि दिया है जाए पसुअन्हि में जवरा ॥
कांध जुआठे रसरी लाए हरिसा बना सुडवरा ।
कर गहि परिहथ चापन लागे वड़ा गबर है धवरा ॥
बीध भया तन दांत खियाना पुजे काहां तक कवरा ।
अरइन्हि खोदे पैनन्हि पीटे चलहु काहे नहिं दवरा ॥
फिरै अकेला कौआ खोदे बड़ी बिपति है तवरा ।
कहें दरिया नर भक्ति बिहूना अब तन भया मरवरा ॥ १८.५१
साधो दोहरी धक्का दीजै ।
बहते को बहि जाने दीजै एह चौरासी भीजै ॥
द्रीग दिया निजु नाम पेठान के पेठो बेस्वा नारी ।
सर्वन में एह झूठ समाना जम के परै बेगारी ॥
नासा बास अग्र येह कहिये सांच सुगन्ध जो भावै ।
भीतर भरी मेगार भरम की वाका बास जो धावै ॥
रसना अम्रित खटा मिठा है मीन मासु रस चाखे ।
हरि के दूत फिरहि हरकारा प्राण छुटे को राखे ॥
दस्त किया इहां देन लेन को उसरा बीजहि बोवै ।
साधु पुजा नहि भोजन भवन में एहूँ सर्वस खोवै ॥
संत नकीब नेक जग्त में सार शब्द गोहरावै ।
कहें दरिया भौ जारा मरण में फिरि पाछे पछतावै ॥ १८.५२
साधो कनक बेरी सो बांधा ।
सक्ति भक्ति कछु कारण नाहीं कोइ जन ज्ञानहिं साधा ॥
माया के बंधुआ आंधर अंधुआ साधु जाने एह बाते ।
जेंव तेली का बैल बेचारा भार पेट भूसा खाते ॥
डेढ़ा सवाई ब्याज बटा एह घटता बढ़ता आवै ।
ब्याज बढ़ावै मल के खावे झूठी बातन्ह धावै ॥

माया भली पर दर्द ब्यापे काया पोखन करते।
जो कोइ आवै साधु संगति में निन्दा करि करि मरते॥
बुद्धि छतीसा जेंव गुन कीसा बीसंभर नहिं जाना।
करम कमाते करता बिसरै आम्रित तेजि बिषि साना॥
मैं मैं करै सो मेरी तेरी मेरी तेरी झूठा।
कहें दरिया दर जम ने छेंका अब करुनामे रूठा॥ १८.५३
साधो ऐसही जम सूल।
झूठ मूठि मरकट की गति कीर सेमर फूल॥
जौं कुरंग रंग देखि रंक की दुखित जल बिनु पीर।
उलटि अवटि न पलटि देखहि निकट नाहीं नीर॥
म्रीग द्रीग से दिल न देखत भरमित ढूंढ़त घास।
ऐसही नर भ्रमित फीरै जात जम के त्रास॥
दर्पटि केहरि कूप झांकेवो प्रतिमा ते चूर।
ऐसे जड़ जन जात जग में केते कहिए कूर॥
चारि बेद बिचारु पंडित चाहिए गुन सील।
पाहन परसे दरस कहंवां बासना बिनु तील॥
रूप रेख बिबेक बिनु सभ भेख भरमित भवन।
कहें दरिया ऐन घर भुकि स्वान प्रानहिं गवन॥ १८.५५
साधो अबरा के बल साहब।
जो कोइ गरबी बड़े जक्त में ता पर हुकुमी नाएब॥
कंचन कोटरा बन बड़ गरबी भयो गरब अभिमाना।
वोह राम एह रावन कहिये भया गरब पिसिमाना॥
हरिनाकस जो गरब कियो है भया जक्त में बीरा।
जो कोइ गरबी बड़ा जग्त में पकड़ि वोद्र धरि चीरा॥
कंस अंस येह का के कहिये काले काले झगरा।
झपटेव क्रिस्न बाज की नाई पकरि पछारेव बगरा॥
जुरजोधन जोर बहुत कियो है ऐसा कटक हिलाया।
छल बल क्रिस्न पंडो से कीन्हा वा कहं गर्द मिलाया॥
नाहक गर्ब करै नर लोई उपजि बिनसि फिरि जावै।
कहें दरिया तब समुझि परैगा जब जम मुसुक चढ़ावै॥ १८.५६

सुनु रे सुनु रे जीव बेचारा।
कहा हमार काहे नहि मानसि पकरि जइहौं जम द्वारा॥
नहिं हम ब्राह्मन नहि हम छत्री नहिं हम हिन्दु तुर्क का चेला।
नहि हम जोगी नहिं वैरागी तिर्थ बर्त नहिं मेला॥
काम बीज से जिव जनमाया फैलि परा जग केता।
जोतते जोतते जन्म सिराना वोइ किसान वोह खेता॥
छोड़हु गांठी मूठी जनि बांधहु मर्कट का गुन ऐसा।
ऐसी प्रीती लागी माया से निकट लिये जम फांसा॥
उपर की फूटी भितर की फूटी चारो फूटि बिलाना।
सरवन की तेरि संधि मुद नी रसना झूठ बखाना॥
हमरा सहर मुवे नहि कोई जहंवां से हम आई।
कहें दरिया दर देखि बिचारो जम से लेउं छोड़ाई॥ १८.५७

सकल मिलि सीता सक्ति बखाना।
जनकपुरी औ नग्र अयोध्या याही में अरुझाना॥
आगे राम पीछे है लछमण बिच माया परधाना।
वाकी छबि छितरानी जग में भौंहें कमाने ताना॥
सिया लहरि है सेंधु बरोबरि रावन परि पछताना।
एह सुलछनी जेहि ग्रिहि पैठी दसकंधर पिसिमाना॥
आदि भवानी सोक के सागर एक है पुर्ख अमाना।
कहें दरिया एह लपट गिर्द है बिरले पद पहचाना॥ १९.२

दिल बिच माया सासी लागा।
चोखे तीर पाहन पर मूरा मन मूरख नहि जागा॥
कामिनि कनक सोभा बड़ि सुन्दर बांकी नैन बिसाला।
चंचल चपल चतुर अति नागरि बान बिरह उर साला॥
गिरह गांठि माया ते अटकी घट में जालिम पैठा।
जैसे स्वान जिमी लपटानो उलटि परा जब ऐंठा॥
ऐंचा ऐंची खैंचा खैंची जब निकले दुख पावै।
ऊपर उजल भितर है करिया लगिया लपकन लावै॥
छूटा दरब भाजन जब फूटा टूटा नेह सगाई।
चारि जना मिलि खाट उठाया घाट तुरंतहि जाई॥

दाह कीन्ह तिल आजुर दीन्हो अब करुनामे रूठा।
कहैं दरिया दर जम ने छेका ले ना गया भरि मूठा॥ १९.५
माया कवन कवन रंग खेले।
सुरुख स्याह औ जरद जहां तक सबुज सफेदा मेले॥
एक हुआ तब दुइ के धावै तीजे त्रिबिध लागा।
तीनि पांच पन्द्रह जब भैऊ मदन महल में जागा॥
पन्द्रह दुना तीस जब भैऊ तीस दुना भयो साठी।
साठि हुआ तब सै के धावै मोहकम बांधे गाठी॥
सए होत ना लागे बारा अब घर भया हजारी।
हाटे बाटे टेढ़ी पगिया संग संग चले बजारी॥
निसु दिन बढ़े घटे नहिं कबहीं सौदा सकल पसारा।
लाख हुआ लाखपती कहाया एह बड़ भाग हमारा॥
बड़े साहु साहुनि रंग माते मीन मासु रस भोगा।
नाना रंग करै ग्रीही में भक्ति भाव नहिं जोगा॥
सो धन चोर हाकिम ने लूटा अब प्रभु कीन्ह अनाथा।
अगिनि जरै औ जाए बिगोई धुनि-धुनि ठोके माथा॥
प्रान निकालन कालू पैठा काल पकरि के दाबा।
राम नाम मुख कछुवो न आवै हाय हाय करते बाबा॥
रोदन करै सब्र बदन निरेखे अब घर कहवां छूटा।
चारि जना मिलि खाट उठाया ले न गया भरि मूठा॥
आवत जात परा भौचक में रहट लगा जग केता।
कहैं दरिया एह गीध ज्ञान बिनु मरि मरि भौ जग प्रेता॥ १९.७
माया केहि की बसि येह कहियै।
सुर नर मुनि औ तपे सन्यासी गन गंध्रप संग रहियै॥
संकर के संग सदा सोहागिनि बिस्नू के संग सोभा।
ब्रह्मा के घर बहुत दुलारी एहि बिधि जग सब लोभा॥
धनुख तोरा जिन्हि सिया बिआहेब तिन्हें किया बन बासी।
दूनो पुरइन्हि गरद मिलाया लंकापति कहं नासी॥
गोपिन्ह के बिच कांध बिराजे राधा रूप की रासी।
कुबरी कर में माला जपति है बनी रैसम की फांसी॥

ऐसा मोह मंदिल एह छाया राजा के घर रानी।
घूंघुट पट के कपे कमाने भौंहें बान संधानी॥
एक पुर्ख हहि अजर अमाना माया कैद करि राखा।
कहें दरिया कोइ ज्ञान बिचारै सांच बचन एह भाखा॥ १६.८
दुरमति दूरि. खड़ी रहु ऐसी।
इहां आवे त दासी होइके प्रेम मगन रहु बइसी॥
जाहु जहां है पाट पटंमर चंदन बहु बिधि करना।
जरी बफ्त औ ओढ़े तासे ताहि समुझि के धरना॥
जाहु जहां है पुहुप बिछवना भोगे पान बिरंजे।
जहंवां दौलति माल खजाना बहुत परा है गंजे॥
जहंवां गनिका नटे नचावै चट ताली म्रीदंगे।
ताको पांव पकरि के बांधहु झूठे बहुत तरंगे॥
मीन मासु रसना पर देवै औ रस बहुत रसीले।
सो है जेर गुलाम तुम्हारे वो भी बहुत बखीले॥
तेरी गति मति हम सब जानइिं है तें छैल छबीली।
कहें दरिया कर कसे कमाने ते कबहीं नाहिं हीली॥ १६.६
निद्रा तुम के हम पहचानी।
जोगी जती कहा नाह माने उलटा पवनहि तानी॥
ब्रह्मा सोवे बिस्न भी सोवै संकर ऐसा जोगी।
राम सोवे क्रिस्न भी सोवै जगता भगता भोगी॥
ब्यास सोवै सुकदेव भी सोवै बासीस्ट सोवै दिन राती।
नवो नाथ चौरासी सिध्या इन्ह के डसि डंसि जाती॥
ऐसा जाल है जुलुम जक्त में कवने गुनते गाथा।
बाझे मीन जहाँ तक पानी परै धीमर के हाथा॥
राव रंक औ पंडित ज्ञाता भाव भोग सब भागा।
मीन मासु पोखन की काया सोवै अचेत अभागा॥
एक पुर्ख है अजर अमाना उन्ह के कबहिं न ग्रासा।
कहें दरिया हम आँखों देखा अबिगति अजब तमासा॥ १६.१०
साधो नीन्द जक्त में जननी।
दाया करै औ पोसे पाले वा की गति हम बरनी॥

अन्न खिआवे पानी पिआवे ले पलंगे पौढ़ावे।
तरे बिछवना उपर ओढ़वना बिना बोलाए आवै॥
आसन बांधे नीन्द के साधे बहुत बिगुरचे जोगी।
बहुत गोफा में पचि के मूआ केते परे हैं रोगी॥
सुर नर मुनिगन पीर अउलिया काहुके राखा न साधा।
कहें दरिया एह माया प्रचंड है इन्हके काहु ना बांधा॥ १६.११
जग में परा धारी सूला।
अछै बीछ के मरम न जाने डारें पातें फूला॥
मूल एक डार छितरानो वा के पत्र अनंता।
ता में भंवरा भरमन लागे वा फुल नाहिं जनंता॥
निरंकार बीकार ना चीन्हा भौ सागर में भीना।
धीमर जाल झीन एह डारा बाझे मंगुर मीना॥
रा रीं राम रमा सभ माहीं वोह साहब नहिं रमिता।
वोह तौ न्यारे न्यारे रहता जिव मन सभ में बरता॥
ए बढ़ए एक मदिल बनाया बिपरित भाँतिन्ह छाया।
बुन्द बुला सो बिलेमान होए घर घर आगि लगाया॥
तब कहा सो अब कहा है बेद बनौरी गाया।
कहें दरिया दरपन की सुंदरि को कहि पकरि ले आया॥ २०. २
जग में सुख कीजै दिन चारी।
कैसा दाया बिबेक है कैसा धन बित सुत औ नारी॥
कैसा मूल डाड़ है कैसा बीज फूल फल पाता।
कैसा भक्ति ज्ञान है कैसा मीन मांसु रस भाता॥
अछो गज बाज है अछो साजत तन एह सोभा।
अछो पलंग बिछवना अछो गनिका को चित लोभा॥
अछो राग रस की खानी अब रस प्रिय है नीका।
कैसा साधु संत है कैसा लगे बचन सभ फीका॥
उठि प्रात तन मंजन करिये औ खट कर्म है पूजा।
सुरसरि को जल अचवन कीजे मेरे देव नहिं दूजा॥
अछो कबी एह कथा कहत है आदि अंत कुल सांचे।
कहें दरिया जम कसे कमाने एहि बिधि भौ में राचे॥ २०. ४

जग में सुमिरु जाग्रित जींद।
मोह माया सकल ब्यापेव सोइ रहा सभ नींद॥
अगम आपुहि निगम बेद है डारि दीन्हौ जाल।
अनंत फंदा भरम बाजी जीव जीतेव काल॥
पथल पानी देवा दई धरम दाया नाहि।
पूजहु पांडे पांडित होइ के बहि गये भव माहिं॥
अजहु मूरख मुरति तेजहु या में करता नाहिं।
इतौं पाहन काटि काढ़ेव जइबहु के करि बांहिं॥
चारि बेद है चौदह बिद्या फंद दीन्हो डारि।
चतुर जन चौमुखी ब्रह्मा सोउ गए भव हारि॥
रोवहि जमपुर सीस धुनि धुनि जहर खाएहु जानि।
कहैं दरिया दुर्ग दानी करत जिव के हानि॥ २०. १०
जैसे हार वाहै पोति।
टूटि के छितराइ परै मानिका बिनु जोति॥
जोरु कहे खसम मेरा बेटी कहे बाप।
माय कहे सूत मेरा त्रिबिधि तीनउ ताप॥
बेगदरी मों बन्द हुआ जोरुआ सुख रंग।
खाना दाना दीजिए तौं मेरे तेरे संग॥
सजन औ कूटूम कहते भली मेरी पांति।
झूठी बाते गांठि बांधे दिवस बीती राति॥
काल तेरो निकट आयो कोई न तेरो साथ।
जेहु आना तेहु जाना देखि लीजे हाथ॥
तरक किये भीजे नाहीं काटि दीजे जाल।
कहैं दरिया दरस कीजे वाहं वाही लाल॥ २०. ११
तेरो कपरा नहीं अनाज।
दया करहि जब बरिसे पानी तबे बने सब साज॥
कंचा पिंड कंचन में लागा बचन परा सभ भोरा।
कठिन काल आवे सर साजे अब नहिं फौज बटोरा॥
खरचहु खाहु दाया करु प्रानी परसहु सतगुर पाव।
मानुख जन्म दुरलभ है भाई फिरि ऐसो नहिं दाव॥

मैं मैं करत महल के भीतर ममता बेइलि कुगंधा।
छीनिलेइ तबे छेके ना कोई कलपि मरहुगे अंधा ॥
बहि बहि मुआ बैल की नाई घरही कोस पचासा।
फिरे फिरंग फहम नहि आवै जेंव नर करै तमासा ॥
संत नकीब कहे निसु बासर सुनहु स्रवन सत बाता।
कहें दरिया दर खोजहु प्रानी जौं द्रुन होत निपाता ॥ २०.

जग में मोह जालिम जोर।
पलकहु नहि रहने देता घैंचि आपनि ओर ॥
सक्ति सोभा नैन देखा ज्ञान कीन्हो भोर।
घैंचि के एह कैद कीन्हौ जिनिस मूसेवो चोर ॥
भेख तो अलेख कहिये गनत नाहीं थोर।
घेरि कैसे हांकि लीन्हों जीव जंगली मोर ॥
राज काज में मगन बैठा दरब है करोर।
धका ऊपर धका खाते भीक जीवन तोर ॥
सोक सागर रोग व्यापे भोग है निचोर।
माया झिलमिलि चांदनी नहिं चौक वैसा तोर ॥
चूक ते एह मूकि मूआ बहुत कीन्हौ सोर।
कहें दरिया बांधि डारैव महा नरक अघोर ॥ २०.

जग में कियो भलो नहिं काम।
मंदिल मोह मदन तन व्यापेवो बिसरि गये निजु नाम ॥
सुत कलंत्र काया के साथी है हाथी औ बाम।
जब आए तब का ले आए ले ना जैहौ कुछ दाम ॥
संत सेवा न चरन चित लाएव कियो न निजु बिसराम।
दाया समेत जो दरसित दिल में सभ में रमिता राम ॥
निगम नेति जो सुनत स्रवन में सुझत न आठो जाम।
कहें दरिया तन ममिता माजित इहो रंगीनो चाम ॥ २०.

जग में मरन कहिये सांच।
मरना सो जो फेरि ना मरिये तीनि तापे कांच ॥
एह जन्म जरा मरन की बेरी किछू ना जाते साथ।
हेम हीरा बाजि गज सब घैंचि लीन्हो नाथ ॥

गाड़िया धन गहिर गाड़े बधन करते नीति।
मीन मासु येह भोग भलाई याही जग की रीति॥
आहि आहि चिकार छोड़ते कहां सुत ग्रिहि नारि।
रोदन करि करि बदन देखहिं चलो हाथ पसारि॥
बारि अनल लागाए दीन्हो भसम सरबो अंग।
बहुरि लोई मंदिल के येह कोइ न लागा संग॥
सुर नर मुनी ज्ञान केते कोइ जन भए दास।
कहें दरिया भक्ति बीना डारु जम ग्रिव फांस॥ २०.१८
एह मन देखू सब्द विचारि।
ज्ञान सतगुर मानिये ते भरम भारी डारि।
निगम बोलता ब्रह्म ब्यापिक दोसरो नहिं लागि।
पढ़ि बेद बीमल ज्ञान गीता मीन मासु न त्यागि॥
खट कर्म करि सब भर्म जानहिं आतमा करि घात।
बलि देत जीव एह धर्म कैसा पुन्य को उतपात॥
एक पशु कर जोरि ठाढ़े रछ्या करु घर बार।
निकट फंदा चिन्हत नाहीं परत जम के धार॥
बबुर बोवे जिमि जानि ऐसे कांट को एह साल।
काहांवां पशु देहुगे जम सासना एह हाल॥
पथल नौका चढ़न चाहे महा भौ जल मांह।
गुरू सीख दुवो बुड़त देखों कवन पकरी बांह॥
तेजि आम्रित बिखै भाजन जानि खाएव मीच।
कहें दरिया दरद बीना भर्म भारी बीच॥ २१. ५
संतो एह मन के निरुआरी।
सनकादिक ब्रह्मादिक नारद कहत भया जुग चारी॥
दस औतार लीला एह कहियैं चरित्र रचा चित्रसारी।
बाल ब्रीध अव तरुन सरूपी देह बिदेह मुरारी॥
बावन रुप होए बलिहि नचाएव येह माया बिसतारी।
बाजी सांच बाजी नर भूठा नट होए नाच पसारी॥
फिरै फिरंग फहम नहिं आवे एक अनंत होए डारी।
जेंव पेखना पुतली कल घैंचे मची रहे नर नारी॥

सुर नर मुनि गन पीर अउलिया जोगी जती सभ झारी।
रुग जुग स्याम अथरबन थाके सेस सहस्र फनि धारी॥
पंडित पढ़ि पढ़ि अर्थ बिचारहि खग मिन पंथ दुवो भारी।
अगम अपार थाह नहिं पावे दरिया काहा पुकारी॥ २१.
निरंजन अरुझन जाल बनएऊ।
बड़ बड़ माछ मगुर सभ बाझे झींगा निकलि न गएऊ॥
मन बिदेह देह में खेले पारख बिरलन्हि पैऊ।
जेंव प्रतिबेम्बु सभनि में भासे प्रतिमा को गुन गैऊ॥
सीव समान जोगि मुनि ज्ञाता ज्ञान बिराग सुनएऊ।
मोहनी मगन गगन में आई उलटत ब.र न लएऊ।
बीस भुजा दससीस रावना ऐसी सिस्ति लगएऊ।
भै गौ अंध मंद दसकंधर जगजननी किहां धएऊ॥
भेख अलेख सेख सभ सेवड़ा इन ते कब बिलगएऊ।
कुंज गली में पुंज अगिनि का जरि मरि भस्म उड़एऊ॥
जो एह सब्द साधुजन बूझे परिमल को गति ऐऊ।
कहें दरिया जिन्हि पिया प्रेम रस समुंद्र घने घन छएऊ॥ २१.
निरंजन धुंध तेरी दरबार।
दुखिया दुख में सुखिया सुख में नाहिं बिबेक बिचार॥
झूठ के कोठी मे दाम भरायो नाम ना लेत तोहार।
संत रमे निसु बासर ना ले ताको एह बेवहार॥
रंग महल में संग पहेली द्वार खड़े चोपदार।
धूरि धूप में सेत बिराजहिं काहे के करतार॥
बेस्वा पहिरै मलमल खासा मोती मनि ग्रिव हार।
पतिबरता के गजी देतु हो सूखा रुखा अहार॥
पाखंडी के आदर जग में सांच न मानु गंवार।
सांच कहे एक संत सिपाही जा के जाना पार॥
एता कस्ट सहे जग माही सो तौ भक्ति तोहार।
धन बोए साहब संत बिराजहि दरिया दिल ततुसार॥ २१.
जम तोर कवन इहवां काम।
जाहु जाहां खून खाता बड़ो ऊंचो धाम॥

रोग रोगी बएद बैठे घीव सक्कर खात।
मीन मासु जहां बिजन केते ताहां तेरो बात॥
इहां सेत दासा बिमल बिहरत नाहि मइलो मंठ।
तेल फुलेल सुगंध जहंवां मोति माला कंठ॥
दरब धरते गरब करते हरहि पर त्रिय माल।
इहां फाका फक्कर फराक दिल है सुंद्र दीसत लाल॥
कोटि कोटि येह जम जालिम संत सतगुर प्रीति।
हंस बंस के निकट नाहीं जाहि भौ जल जीति॥
इहां हुकुम है सरकार का वह जिंद जाग्रत जोर।
कहैं दरिया कैद करिके बांध जैहो चोर॥ २१. ८

रह सब साएरी कवि कथा।
दधी मथि ध्रित साधु लीन्हो छाछि को गुन गथा॥
बेद मथि बेदान्त कीन्हो भागवत मथि गीता।
गीता मथि के सार कीन्हो ताहि जग नहि हीता॥
नीर छीर दुवो संग संश्रित भेद ता बिच रखा।
करहिं बिबरन हंस की गति घैंचि जल कहं चखा॥
जीव बुधि बेकार ब्यापिक संगम सलिता अहा।
पारखी जन जौहर जानहिं घैंच ज्ञानहि गहा॥
कुंजल मस्तक होत मुकुता चुंगल पारस लगा।
बिना पारस मनि ना उपजे ऐसही जन जगा॥
खोजहु सतगुरु जुक्ति जानहि मुक्ति की गति सोय।
कहैं दरिया सब्द चुंमक कर्म गांसी खोय॥ २१. १

साधो नीन्द दीन्हो दगा।
खाए भरि पेट सोवन चाहत ऊठि प्रातहि लगा॥
अंन पानी भसम करते मल मूतर होय।
साढ़े तीनि में कहत करता निगम खोजत रोय॥
पांच इन्द्री सूख चाहे बीर बांके साथ।
इन्हि ते लरते जन्म बीता कबहिं न आए हाथ॥
सीब जोगी जुक्ति जानहिं संग सक्तिहिं भोग।
तिनहुं के एह पतन कीन्हो मुनिन्ह की मति सोग॥

राम को तन चाम कहिये सक्ति के सुख लागि।
सहस्र गोपी मूख मुरली कहां जाते भागि॥
एक पुर्ख हंहि अजर अंमर जुगल सक्ति ना संग।
कहें दरिया ज्ञान देखो त्रिगुन माया रंग॥ २२. ३
वोए तौं ऐसही गुन सार।
रमित राम जो रमित सभ में द्रिस्टि गगने तार॥
सखा सघन घन पत्र केते जीव सिव संसार।
वोए तो अमर मरै न कबहीं अछै पुर्ख नीनार॥
वोए तो जिद जाग्रित जग में ऐसही करतार।
काढ़ भौ से बाहर कीन्हौ घैंचि तरनी पार॥
दस सीस बिस भुजा जाके गरद मिलि गयो छार।
दू दू भूजा केते गनियै झोंकि दीन्हौ भार॥
सरब हत्या पसू घातं निगम साखी वार।
वोएल का एह वोएल दीन्हो खड़ा है दरबार॥
संत सुमिरहिं पलक प्रेमहिं निसा सातो बार।
कहें दरिया अरज एता मेटिये जमजार॥ २२. ६
जिव के दरद कीजे जानि।
आपुने में आपु देखो साल की पहचानि॥
पांव में जब कांट चूभेव चिहुकि दीन्हौ रोय।
ऐसही पर दरद जानो जन्म बादी खोय॥
हीत बालक जानि आपन हरखि हीए लाय।
औरि का जब खाल घैंचो परा आगे आय॥
औरि का जब दूख देखे खुसी बहुत आनन्द।
उलटि परा तासु ऊपर ऐसही दुख दंद॥
गरब ते येह गरद मिलिगौ दरद बीना काल।
गै बध का परा सिर पर अजब है जमजाल॥
सत्त सब्द नकीब है एह नेक कहना बात।
कहें दरिया दरद ऐसा चिन्हो सीतल तात॥ २२. ८

अब तुम चेंउ चेंउ करने लागा।
जेव बग ध्यान धरै जल भीतर हलुगे पगु के पागा॥

बहुत माछ तुम धरि धरि खाया कर में जपते माला।
जम का फौज बड़ा जुलवाना पकरि मरोरै काला॥
करि बदफैल सो गये बदी में सम मिलि बदन निहारा।
रोदन करि करि हाथ मरोरै बहुरी चीपर जारा॥
करि सराध किया साकूर्ला बिप्र जेंवहि बहु भांती।
सजन कुटुम बहुत बदुराने बोध करै दिन राती॥
महा नर्क है अंध कूप में तहंवां पकरि झुलावै।
तरें सीस है पांव उपरि करि बहु बिधि गोता खावै॥
भक्ति बिहूना दाया हीना जनम जनम का चेरा।
कहें दरिया जम सासन एता अब का करहु निहोरा॥ २२. १२
अब तुम चेह चेह करने लागा।
चंगुल छुटे तो उड़ि के भागे काल कर्म का दागा॥
मरकट मुठी गही कर लागा कटक हाए के रोवा।
बाजीगर का मरम ना जाने एहि बिधि प्रानहि खोवा॥
ऐसा सुख सपने का सम्पति एक जगा एक सोवा।
अमर कोस भीगा मद माते गीरि परा तब रोवा॥
केहरि कूप में प्रतिमा देखा कूदि परा अरुझाना।
फटिक सिल्या गज दसनन्हि अरि के मुह टूटा पछताना॥
ऐन भवन में स्वान जो परिके भुकि भुकि प्रानहि दीया।
भरमत फिरै भरम के लागे पाहन जल के पीया॥
आम्रित पीके अमर हुआ मीच पिया सो मूआ।
कहें दरिया दर भूलि परा है जीति लिया जम जूआ॥ २२. १३
अब तुम टेढ़े टेढ़े चलता।
साधु द्रोह एह मोह माया बसि जमके धक्के परता॥
नहिं बूझे तौ फेरि बूझेगा अघ-पातख में भीना।
काल जाल तेरो सिर पर फीरै बाझि गया जल मीना॥
मीन मासु एह काया धोखे जीव घात करि खावै।
दूर बेदर्दी दरद कहां है बांधा जमपुर जावै॥
बहु बिधि माल बिरानी हरिया पैसा लाख बटोरै।
जाकर माल तें छीनि लीन्हौ घैंचन लागे कोरै॥

झूठी बात मुठी में राखे सांच सुने दुरि जावै।
हरि के दूत फिरहि हरकारा मरकट बांधि न पावै॥
रे मन मूरख निगम साषी है सुनि ले सतगुर बानी।
कहें दरिया धन धन वोए प्रानी जिन्हि एह गुरमत ठानी २२. १४
चलो सिताब देवानखाना से आया जंम जरूरे।
कागज साफ करो तुम अपना बाकी है भरिपूरे॥
का तुम खाया खरचा जमे मुंढे गरब गरूरे।
अबरिक बार छुटे नहि पैहो टुटिहैं चाबुक चूरे॥
बिनती करे सुनो जमदूतौं तुम ते बनी निमेरे।
किछु किछु काज तुम्हारे सरिहौं करिहौं भक्ति सबेरे॥
एतना सुनि कोपे जमदूते मुस्टकन्हि मारि करेरे।
चले सिताब ताहाँ ले पहुंचे चित्रगुप्त के डेरे॥
छूटा महल खजाना घोरा बहुरि कन्हौ नहिं फेरे।
सीर धुनि धुनि रानी रोवे चाकर बहुत घनेरे॥
जो कछु अमल कमाया जग में पाया दरब दरेरे।
कहें दरिया छूटा जग दावा भक्ति बिना जम चेरे॥ २२.१६
मुगदर लिये सदा सिर ताने जिव जम हाथ बिकाना।
पंडित गर्भ नरक में डारिहि कहु के परिहि जबाना॥
सुत बित नारि सजन समधी के मातु पिता हितजाना।
जठर अगिनि में जिन्हि प्रतिपालेव ताकी सुधी भुलाना॥
तन साजे माजे नहि बनिहें चिकने चाम बिकाना।
अंठ कठ काठ जबें कल छुटि है पल में धुरी धमाना॥
तन मीही ते बेगि निकलिहें खाट पकरि परमाना।
करवन तोरि अगिनि में जरिहें रोवहि सब परधाना॥
तिल आंजुरि दे गंदा करिहें फिरि धंधे लपटाना।
करिहें दूध सराध कर्म सब बेद बिहिति मनमाना॥
ऐहूं जड़ जन मरि गए बरबस करि करि गरब गुमाना।
कहें दरिया कोइ दास धनी का निर्भे लोक पियाना॥ २२.१७
है कोइ संत बिबेकी सब्द बिचारा।
नाम अमल ते भयो मतवारा प्रेम पिवै सो खारा॥

अरध उरध के मद्धे मानिक करै द्रिस्टि उजियारा।
बंक नाल नाभी में लागा भंवर गोफा के राह सुधारा॥
खिचरी भोंचरी चचरी अगोचरी उनमुनि मुंद्रा धारा।
सलिता तीनि मिली एक संगम सुभ्र भरि भरि सारा॥
निरा अलंम निरबान मई है निरबिकार निरधारा।
बरै मनी अमि झरै पत्र में पिवै प्रेम रस प्यारा॥
अनहद ताल पखाउज कीनर सोता सुमति बिचारा।
झीं झीं जंतर तहवां बाजे जम जालिम पचि हारा॥
सोवत जागत ऊठत बैठत टूटु कबहिं नहि तारा।
कहैं दरिया कोइ संत बिबेकी निर्भए लोक सिधारा॥ २२.१६
अब कहु कैसे परदा फाटी।
दर के ऊपर चौकी बैठी अछा बिछवना खाटी॥
नख सिख ले सभ भुखन बनाया पेन्हे जरकसी खसा।
पान फूल औ मीन मासु है जम सभ देखे तमासा॥
अति है गर्ब गरजि के बोले भौंहें कमाने तानी।
अपना पिया के नाच नचावै भली सोहागिनि रानी॥
या तन तेजि दोसर तन होइहौ चौरासी की पाती।
सुंदर देह खेह होइ जैहें स्वान सुकर की जाती॥
तन उघारै लाज नेवारै बहुत बियानी गेदा।
घर अंधियारे पैठन लागी सिर पर बाजु लबेदा॥
खोरि खोरि फिरै दवरि होए ठाढ़ी जूठी पातरि धाई।
कहैं दरिया जिव जम ने लूटा कहे कवन पतिआई॥ २२.२०
जाके महल करकसा नारी।
नवो नाटिका कोठा बहत्तर पल पल सुरति बिसारी॥
पांचो और पचीसो मिलिके आपु भई घरनारी।
राजहि बांधि पलंग पवढाइसि फांस दीन्हौ गिव डारी॥
जतना भोग है ततना रोग है भोगें जोग बिगारी।
मीन मासु रसना को स्वादिक काम कला अधिकारी॥
रोगिया चाहे सो बैद बतावे बैठे मांझ मझारी।
मूल घटा तन बीध ब्याध भयो सूल परा तन भारी॥

आंधर बधिर दुनो एक मिलिके गुरु सिख बहुत अनारी।
जरी सजीवन सो नहि खोजहिं ब्याध सकल तन जारी॥
गज औ बाज साथ कछु नाहीं चलि भौ हाथ पसारी।
कहें दरिया दर भूलि परा है अब का रोवहु पुकारी॥ २२.२१

साधो बांधि करकसहि मारी।
जिव जनि मारहु मुसुक चढ़ावहु एह सभ बात बिगारी॥
ज्ञान ना भावे रस के धावे जम की साट सहारी।
नैनन्हि काजर नख सिख अभरन झमकि झमकि पगु ढारी॥
निति उठि झगरा करै खसम से रगरा सांझ सकारी।
पिया से पिठ दे रुठि के बैठी दुजा कवन घरुवारी॥
पांच पचीस सखी सभ मिलिके एह तौं महल हमारी।
तुहुं पिया हारि बारि के बैठो कवन चरित्र निरुवारी॥
स्वादिक स्वाद एह सभ हमरै पान फूल रस डारी।
भोग करहि हम जोग ना जानहि तेल फुलेल संवारी॥
भली ठगिनि है ठगी एह सबके ठगा सकल संवसारी।
कहें दरिया फेरि नाक दरहुगे दासी भली हमारी॥ २२. २२

भक्ति बिनु चारो पन गुजरै।
बाल कुमाल तरुनापन बीते बीधो ना सुधरै॥
अज्या पालहिं जीभ के स्वारथ खाहि भले बपुरै।
रइन बिते बेसवा संग राते इन्ह ते एहु जरै॥
पहिरि पोसाक खास खिजमतिया संग संग बहुत जुरै।
साथ लेहि स्वान दुइ चारी जंगली जीव तुरै॥
चढ़ि तुरंग माया मद माते बोलत बैन करै।
जब जब सुने साधु के महिमा जरि जरि सो बिगरै॥
झूठी बातें पोथी बांचे बकि बकि ऐहुं मरै।
सो त्रिसूल लागा तन भीतर कांटन्ह सो अझुरै॥
सपने कबहि न दाया दरद अब सो तन अगिनि जरै।
कहें दरिया दिल दागा जगातिक जम के हाथ परै॥ २२. २३

जाके ऐंव गगन झरि लागी।
बिना घटा घन बरिसन लागा सुरति सुखमना जागी॥

अजपा जाप जपे निसु बासर रहे जक्त से बागी।
मूल्य अकह में तत्तु बिचारो सोइ सादा जन भागी॥
अस्टदल कमल झरोखा जहवां नाम बिमल रस पागी।
तिल भरि चौकी दानो दरवाजा ताहि खोजु अनुरागी॥
जोरै जोरै सब्द बनावे राग गावे सो रागी।
अलख लखे कोइ पलक बिचारै सोई संत बैरागी॥
थकित भए मन गीत कबीते भौ बिष्या कहं त्यागी।
सब्द सजीवन पारस परसे सितल कया तन आगी॥
इत उत कहे काम नहिं आवे सार सब्द लेहु मागी।
कहें दरिया सतगुर का महिमा मेटा कर्म का दागी॥ २३. १

जाके अनभो आगि लगी।
कसमर सकल जरो तन भीतर ऐसो प्रेम पगी।
बिन मसि लिखे कलम बिनु कागज अगम निगम ततुसारा।
ब्रह्म निरूपनि भेद बिचारो ज्ञान रतन के धारा॥
जेंवं मराल निर छिर बिबरन कियो वोइसी बुद्धि सरीरा।
हंस दसा कुल बंस बापुरे सभ मति मैं गौ थीरा॥
अम्रित बुंद परै फुहकारा परिमल बास सुबासा।
गंगन मधे सूरति रोपो देखो अजब तमासा॥
बिमल बिमल पद करो बिचारा निरमल निरखत मोती।
कहें दरिया सतगुर की महिमा जगमग झलके जोती॥ २३. २

हंसा कोइ सतगुर गमि पावै।
तेजे मान पिवे ममिता के तब छपलोक सिधावै॥
उजल दसा निसु बासर दीसे सीस पदुम झलकावै।
राव रक सभ एक सम जाने संत प्रगट गुन गावै॥
रमे जक्त में जेंव जल पुरइनि एहि बिधि लेप ना लावै।
जल के पार कमल बिगसाना मधुकर आनि लोभावै॥
अति सुख सागर स्वर्ग नर्क नहिं दुरमति दूरि बोहवावै।
आड अटक भटके नहि कबहीं घट फूटे मिलि जावै॥
बरन बिबेक भेद नहिं जाने अबरन सभहि मिलावै।
जहां देखो तहां दरसित चंदा फनि मनि जोति बरावै॥

आसो मिलना अब मिलि रहिए बिछुरत दूरि देखावै।
कहें दरिया दरपन का मुरुचा सिर्किलि किये बनि आवै॥ २३. ८

हंसा चलहु अमरपुर नीका।
जरा मरन से रहित होहुंगे सतगुर के कर बीका॥
इहां दुख सुख है सोग संतापा कुसुम रंग है फीका।
जन्म जन्म का बिछुरा साथी मिले खसम जो नीका॥
सत के नाव सुकित कनहरिया सब बिधि बात बनीका।
धन्य सभाग सोहाग ताहि को कहि नहिं जात गनीका॥
जहां सुख सागर अमी अनूपा छुधा बुतानी जी का।
पुहुप पलंग पर पुहुप बिछवना बिगसित अमी कनीका॥
अति बेलास ताहां रूप रासि है को कबि सके भनीका।
एक मुख कहे सहस्र मुख जाके कहि नहि सके फनीका॥
मानहु सत धोखा जनि बूझहु तेजहु मान मनीका।
दरिया दरस पुरुषं पति जाके पर दुख दूरि अनीका॥ २३. ९

हम कहं चीन्हहु रे मन बावरे।
भेख कहा कबहीं जनि मानहु काहां फिरत हौ दवरे॥
आपन थित चीन्हो घर माहीं ब्राहर देखो सांचा।
छापा सनदि हमारा राखो सो जिव जम से बांचा॥
है वह सेत फिटिक जौं हीरा वाके दाग ना लागा।
छोटा खोंटा महलि समाना काह कथे अनुरागा॥
झूठा रूठा पिठि दे बैठा मकर सकर खावै।
फारिक हुआ फकर के हूए प्रेम प्याला पावै॥
भेख अलेख कहां तक कहिए आपुस में अरुझाना।
जैसे खाता गाता द्रुम में कहे कहां सभुराना॥
यह माया जैसे कलवारिनि मदपी सभैं मतावै।
कहें दरिया दर छेंकि परैगा भरि मुख छार लगावै॥ २३. १०

हमने देखा बहुत तमासा।
जाहां जाहां जनमे ताहां ताहां देखा बहु दासी औ दासा॥
राव हुए फेरि रंक कहाए बहुरि भए सुलतान।
बैठि तख्त पर सोभा सुंदर सो नाहीं मनमाना॥

कहि पंडित होए बेद बिचारा ब्याकरन कहं साधा।
जोग करम में जोगी होते पांच पचीसहि बांधा॥
कहि देगें कहि तेगे पकरा इन्ह बातों में भनते।
एता कौतुक हम ने कीया वहु दुर्जन कहं हनते॥
कहीं भक्त कहिं दास कहाया कहि निर्मल गुन गाया।
चारि बरन हम इमि करि आए देह धरि जग समुझाया॥
अंधरन्हि हाथे आरसि दीन्हो चच्छु बिहूना हीना।
कहें दरिया नर बहुत भुलाना मानुख हम कहं चीन्हा॥ २३. ११
एहि बिधि संत है निरमल मोती।
काया प्रसिध एह हंस दसा है लोचन झलके जोती॥
मल रहित है पाप ना पुन्य है नाहिं निगम लिए हाथा।
सतगुर ज्ञान जो गमी बिचारहि भौ में भए सनाथा॥
झूठ पछोरे सांच बटोरे सांच सोई जन ज्ञाता।
पूरा घट डोले नहिं कबहीं प्रेम मगन मगु जाता॥
छुछुम इंद्री छेमा छकित भौ मनसा डाइनि नासा।
चौथा पहर जागे जो जोगी देखो अजब तमासा॥
जाके लगन लाल सो लागी जरी रगरि पिआया।
लहा अमोल मोल ना बीका भाग भला जिन्हि पाया॥
भक्ति बिहूना मरि मरि जावै बुंद बुला जग एता।
कहें दरिया धन्य संत जिवन है महिमा गनियै केता॥ २३. १२
एहि बिधि सब्दहिं करो बिचारा।
जो आया सो गया ना कोई मर मरि फेरि अवतारा॥
कहां वोए राम कहां वोए रावन कंचन काट उजारा।
कहां वोए ग्वाल कहां वोए गोपी कहां वोए नंदकुमारा॥
कहां वोए चकवै चक्रवर्ति है तिनहुं के मारि पछारा।
कहां वोए कंस कहां जुरजोधन सगरे सैन संघारा॥
कहां वोए मीर मलिक जो केते गोर कफन में डारा।
बैठा काजी करे अदालति अपने ना आपु संभारा॥
केते दरब दानी भै केते छलि छलि सभ कहं मारा।
उतपति परले आदि अंत ले सुधरै हंस हमारा॥

करहु अकूफ साधु एह ऐसे मेटि जाए जम जारा।
कहें दरिया कोइ संत बिबेकी निकलि गया भव पारा॥ २३. १४

जो कोइ साधु दरस के जावै।
पगु पगु तीरथ दान पुन्य है कोटि तिरथ भ्रमि आवै॥
दरसन से फेरि परसन हुआ है तंमा पारस पावै।
वाका भेद जाने नहिं कोई सोना सुगंध बनावै॥
जन्म सूल है सील को सागर आगर मुक्ति बतावै।
संत के सेवा असंत करतु है भक्ति महातम पावै॥
अरथ मिले तब धरम कथत है काम चिन्हे मोच्छ पावै।
चारो फल का एहि महि महिमा जो कोई अरथ लगावै॥
जढ़ नहि जानहि एह भौ भरमा चढ़ी चरख पछतावै।
जैसे लगी रहट की घरिया षक बूड़े एक आवै॥
पसुअत ज्ञान साधु नाहिं चीन्हहि सुनि के मुंदहिं काना।
कहें दरिया जेहि दया दरद नहिं जम के हाथ बिकाना॥ २३. १५

हरिजन प्रेम जुक्ति ललचाना।
सतगुर सब्द हिए जब दीसे सेत धजा फहराना॥
हिदै कमल अनुराग उठे जब गरजि घुमरि घहराना।
आंम्रित बुन्द बिमल ताहां झलके रिमिझिमि सघन सोहाना॥
बिगसित कमल सहस्र दल तहवां मन मधुकर लपटाना।
बील बिहरि फिरि रहत एक रस गगन मधे ठहराना॥
उछलित असंख सेंधु स्वर्ग लहि लहरि अनेग समाना।
लाल जवाहिर मुक्ता तामें कों कबि करै बखाना॥
बिबरन बिलगि हंस गुन राजित मानसरोवर जाना।
मंजन मइलि भया तन निर्मल बहुरि न मैलि समाना॥
एक से अनंत अनंत एक है एक में अनंत समाना।
कहें दरिया दिल चस्मा करि ले रतंन झोखे जाना॥ २४. १

हरिजन करहु बिबेक बिचारी।
नहिं कछु आया न साथ चलन के धन बित सुत जग नारी॥
साज बाज औ रंथ बहल सभ कंचन कलस संवारी।
परा कष्ट जब अष्ट कया में नष्ट भया तन सारी॥

लाल फूल एहं सूल के सागर सुगना की मति मारी।
उड़ि गौ सुआ भरम की ढेरी मुरछित भया दुखारी॥
मरकट मूठि गांठि जब लागी जम ने फंद पसारी।
माल जाल औ भूमि भवन सभ अब किमि कहो हमारी॥
श्रीग दवनि दाया नहिं चीन्हे जल बिनु लागी कारी।
भक्ति बिना जो भ्रमित भवन में जम जिव बांधि पछारी॥
सर्बस हारि जी। जहंडा एव हाय जुआरी झारी।
कहें दरिया एह निपट नागा है सतगुर सब्द बिचारी॥ २४. ४
हरिजन करहु बिबेक बिचारी।
मरना सांच जिवन है झूठा मरकट मूठि बेकारी॥
अमर कोंस कहूं दोस ना लागा भ्रिगा आपु तन त्यागी।
एक मुआ एक मरने चाहत एक लपकि के लागी॥
माया दोस देइ जनि कोई सक्ति के संग सुख जागा।
अपनहिं खैंचि कर्म में बंधा काह कथे अनुरागा॥
पाहन गहा कि तुम गहि राखा इमि खट कर्म बधा।
तीरथ तीर में नीर बखानत आपने दवरत अंधा॥
झूठा तीरथ बरत है झूठा झूठा सो जो धावै।
जाहां जाए ताहां बोले ना बानी रोवत घर के आवै॥
है एह आम्रित बिखि जनि जानेहु बिमल ज्ञान निजु सोई।
कहें दरिया पद पंकज गहियै आनंद मंगल होई॥ २४. ५
हरि तुम ऐसो रंग मचिन्दा।
देखि नेउरिया नाचना लागी सिंघ बजाउ सरिन्दा॥
झींगुर झाल भ्रिदंग बजावैं मेढुक ताल भरिन्दा।
बीली कूदि सिंगासन बैठी सुगना चंवर ढरिन्दा॥
हरिनि पदुमनी पांव परतु है पदुम झलके बिन्दा।
ज्ञान गित्ता पढ़ि ऊंट कबेस्वर गदहा बेद भनिन्दा॥
एह मति जानहु अहे बनौरी एह पद झूठा ना किन्दा।
कहें दरिया दरपन बिच दागा बिनु पर काग परिन्दा॥ २४. १०
हरिजन हरि के कहत एगाना।
है हरि निकट बिकट है माया सो हित नाहिं बेगाना॥

ब्रह्मादिक सनकादिक कहियें मख पुरान कहि दीना ।
जप तप संजम जाल बड़ि झीनी बाझे बहुत प्रमीना ॥
एक पुर्ख एक माया कहियै नीरंजन भगवाना ।
ढूंढत फिरै भरम नहिं जाने सभ घट रहे समाना ॥
सोइ बिमल मल जाके नाहीं मल सरूप में साना ।
जंगम जोगी भेख बिबिध है आपुस में अरुझाना ॥
पार्वार एक भावरि बहुतेरी वा फुल रहित अभाना ।
मधुकर मालति घ्रानि ना छोड़े आश्रित तेजि बिखि पाना ॥
वा दर छोड़ि दोसर दर देखे दम्पति प्रेम बखाना ।
कहें दरिया जग कनक कामिनी कर मिजि सब पछताना ॥ २४. ११
हरिजन हरि बाजी पहचानो ।
एक भुलवना आगे आया सब्द हमारा मानो ॥
बावन रूप होए बलि किहां गैऊ जग्य बिधंस सब कियऊ ।
तीनि लोक तीनि पगु कीन्हा आधा पीठि नपैऊ ॥
बावन का बावन वोह राहगौ नाहिं बढ़ि लागु अकासा ।
वाका कटक घुमन सभ लागा देखा अजब तमासा ॥
बलि के पकरि जौं चाक घुमेऊ ले सुरसरि में डारा ।
इन्द्रलोक इन्द्र के दीन्हा बांधि पताले मारा ॥
हरिचंद मंद एह पल में भैऊ बहुत सासना कीन्हा ।
राजा रानी सुत समेता पवँस लेके दीन्हा ॥
लच्छ गाए त्रीग ने दीन्हा सो फल मिला तुरंता ।
अंध कूप में झूलन लागा भली भक्ति भगवंता ॥
अपने नाग आपु कहं नाथा जौं नट करै तमासा ।
इन्द्र जाल के जिते न कोई नर देखे चहुं पासा ॥
एह मन आवै एह मन जावै मन का दस औतारा ।
सुर नर मुनि के सभे नचाइसि डारिसि फंद बिकारा ॥
अजर अमान पुर्ख जो आए परगट कथा सुनाई ।
है छपलोक छापा एह जानो गुन गहि ज्ञान देखाई ॥
मन के चीन्हि सभनि के चीन्हा एह मन आपु अनंता ।
कहें दरिया कोइ सब्द बिबेकी उधरे बिरला संता ॥ २४.१२

राधै तुम चंचल अति बीना।
खंज मीन देखन कह छोटी अनंत कला रस भीना॥
तन समुंद्र मन लहरि बना है नैन कइर बहे पानी।
हरि कनहरिया है भक्तन्हि के तिन्हे पकरि धरि तानी॥
फिरै फिरंग फहम नहि आवे लहरि लहरि पर दीन्हा।
ज्ञान के दीप मंद करि डारेव माया दीपक लेसि लीन्हा॥
एवं कल खैंचे लखे न कोई इन्द्रजाल रचि लीन्हा।
एह नटबाजी नट जेंव नाचे किमि करि या गति चीन्हा॥
एही मता जक्त सभ माते कहि कबि बहुत बखानी।
ब्रह्मा के घर बेद भनतु है इन्द्रन के घर रानी॥
तिरगुन तीनि सखा बहु पत्र है लता लपटि बहु बानी।
कहैं दरिया बिरला जन बांचे सतगुर पद पहचानी॥ २४. १५

हरि तुम बिंदाबन बसु राधे।
माया धुंध मची जग माहीं वाहि ते सुर नर बांधे॥
चंचल बिसाल लोचन दुनो बिनु पंखे उड़ि धावैं।
वाका बान अचूक चक है आड कोई जन पावैं॥
चिखुर मोती मनि माथे टीका मनहुं दिपक धरि बारी।
परे पतंग देखि एह जगमग प्रान पिंड सब हारी॥
कनक बेइलि तमाल ते अरुझे ललकि लपटि करि अवै।
उर पर सांगि सोध के बैठी छेदत बार ना लावै॥
कटि केहरी पर किंकिनि बाजे कंद्रप सोर लगावै।
लाल गोपाल मदन के आसिक एह रस गोपिअन्हि भावै॥
जंघ केदली पगु में पावट झमकि झमकि ललचावै।
कहैं दरिया कोइ संत बिबेकी वा के निकट न जावै॥ २४. १६

जक्त हिंडोलना झूलत है चौजुग।
मेरु मंडल खंभ लागेवो दसो दीसा तानि॥
चंद सूर दोए भए मचवा भूलहि सांझ बिहान।
गंगन उडिगन घटा छाएवो पवन को परगास॥
निगम चारी बुंद बरिसे पाप पुन्य नेवास।

प्रथम झूले सीव सारदा नारदा सुकदेव।
सनकादि आदि जो ब्रह्म झूले ज्ञान गनपति देव॥
झूले अहिपति सहस्र बानी ब्यास बेद बखान।
मारकंडे कल्प झूले अकथ कीन्हौ जानि॥
राम झूले नव बार नीकें सक्ति सिया के पास।
झूले रावन गरब गामी जक्त कीन्ह उपहास॥
गोपिन्ह संग कान्ह झूले मूख मुरली रंग।
काया धरि कबीर झूले ज्ञान को प्रसंग॥
बालमीक बासष्ट झूले मुनि को मत आए।
और मुनि सभ सकल झूले कोइ नाहि ठहराए॥
भेख सेख अलेख झूले आपनो मत ठानि।
कहें दरिया दाया सतगुर ज्ञान लीजे मानि॥ २७ १

मुक्ति हिडोलना झूलो बिबेक बिचारि॥

सत्त सुकित खंभ गाड़ेव सुरति डोरी लाए।
म पटरी बइठि के एह झूलहु संत समाए॥
इंगल पिंगल सुखमना जाहां चले पवन सुधारि।
अरध ऊरध द्वादस आवै चरन चित्त संभारि॥
जाहां जलद झंकित पुहुप बिगसित भंवर बास समाए।
ताहां मोह माया निकट नहि भ्रम ग्रानि रहु छाए॥
फुहीं झम झम झरत निरगुन रहो गगन समाए।
ताहां मनी मुक्ता निरखु निर्मल प्रेम पंथ सोहाए॥
ताहां रहत कह कह अकथ कथ है कहेको पतिआए।
ताहां झूलि है जन प्रेम बसि होए आवागवन नसाए॥
छोड़िहें सब भर्म कर्महि नाम निस्चे पाए।
अटल पद कहं लागिहें सब सकल भर्म नसाए॥
सुरति बेद पुरान पंडित पूजा कर्म बखानि।
भर्म कर्म ले झूलन लागे अंत बिगुर्चनि हानि॥
आदि अंत औ मध्य मंडल झूलहिं मुनी महेस।
कहें दरिया सत्त महिमा ज्ञान गुर उपदेस॥ २७ २

कवन रे झुलावे कवन झुलहि हो कवन बैठली पाट।
कवन पुर्ख नहि झूलहि संतो कवन रोकतु है बाट। हिंडोलवा हो॥
मन रे झुलावे जीव झुलहि हो सक्ति बैठली पाट।
सत्त पुर्ख नहि झूलहि सन्तो कुमति रोकतु है बाट। हिंडोलवा हो॥
सुर नर मुनि सभ झूलहि हो झूलहि तीनिउ देव।
गनपति फनपति झूलहि सन्तो जोगिय जति सुखदेव। हिंडोलवा हो॥
जिया रे जन्तु सभ झूलहिं हो झूलहि आदि गनेस।
कल्प कोटि ले झूलहिं सन्तो कोउ नहिं कहत उपदेस। हिंडोलवा हो॥
सत्त सब्द जिन्हि पावल हो भए सो निर्मल दास।
कहें दरिया दर देखिये सन्तो जाय पुर्ख के पास। हिंडोलवा हो॥ २७.४

श्रवन पवन दुनो मचिया हो कुमति की लागिहै डोरी।
माया मदन संग झूलहिं सखी अंम्रित तेजि बिषि घोरी। हिंडोलवा हो॥
पांच पचीस केरि झालरि हो गहे. चंग दुनो हाथ।
पल पल छन छन डोलहि सखी मन मकरन्द जेहि साथ। हिंडोलवा हो॥
ऐगुन आठ उर बसहिं हो बलम गहे कर पास।
आपन चरित्र बिचारहिं सखी पिया कहं लिखहीं तास। हिंडोलवा हो॥
पिया के पीठि दे बैठी हो मनहि करावल रोस।
आपन गुन सभ गावहि सखी प्रभु कहं लावहि दोस। हिंडोलवा हो॥
आपन पति हित जाहु हो पर पति कवने काम।
कहें दरिया सुनु कामिनी सखि सुमिरहु आठो जाम। हिंडोलवा हो॥ २७.६

कोटिन्हि कामिनि गावहीं रंग बहुत सोहाए।
पुर्ख पुरान ताहां बैठहीं सिंगासन बरनि न जाए॥
ताहि देसे चलो संतो जहंवां धूप न छाए।
तहंवहिं सतगुर सीतल सीतल सब्द सोहाए॥
हंसा करहिं कलोलह आम्रित पिवहिं अघाए।
अनहद धुनि ताहां बाजहीं सेत धजा फहराए॥
छूटिहि या जग संसे कहें दरिया समुझाए।
अजर अमरपुर जाइबि बहुरि ना या जग आए॥ २८. २

सुनु पंछी उड़ि काहां तुम जैहो।
बिना बीछ एह ठौर कहां है फिरि एहि दुमंहि ऐहो॥
सब मिलि चले जो सुन्य स्वर्ग के अंहे बेगम्य अथाहा।
टूटेव नेह खसे घमसाने परि गौं अंगम अगाहा॥
पच्छिम पूर्ब दच्छिन उत्तर है ताहां अमरपुर अहई।
सादा अमर है मरै ना कबहीं सतगुर पद जो गहई॥
है छपलोक छपा है बेदें भेद कोई जन पावै।
आखर एक मुक्ति का मुल्या बिनु आखर भौ आवै॥
है बेकीमति वह सिफ्ति काहां तक सत्त पुर्ष निर्माया।
एह सभ जाल जक्त में बंधन त्रा गुन बिरलन्हि पाया॥
याहि पेड़ के सब मिलि लागे सुर नर मुनि की रीती।
कहें दरिया गुर ज्ञान बिचारो सतगुर पद ते प्रीती॥ २६. १
सुनु पंछी चलु अछै बीछ करु बासा।
चोचन्हि चुगि चुगि आम्रित खैहो चोर न मुसे चौमासा॥
बावरि बीलि बैठि दरवाजा ए जम उड़े अकासा।
पल पल परले जीवघात है एहि बिधि सब कहें नासा॥
कबहि के रुखा सुखा बदि रहियै कबहिं के भोजन सुबासा।
कबहि पलंग सुपेति दोलैचा कबहि पुहुमि पर घासा॥
भर्म कर्म कबहीं जनि राखहु सतगुर चरन नेवासा।
ऊड़त अंख पंख नहि लगिहैं कहें दरिया सुनु दासा॥ २६. २
सुनु सुगना सुफल बचन निजु दाखहि चाखो।
छोड़ो सेमर भुआ लपटइहौ टेक टवनि गहि राखो॥
ललनी ललचि कबहि जनि बैठो उलटि जैहें पर पाखो।
बिनु सर जोरै तुमहि धरि लैहें बधिक भवन में नाखो॥
निसु बासर में जागत रहिहौ बिखै कबहि जनि माखो।
या बन माहें जबर बसतु है चटपट पलकहि आंखो॥
आठ काठ के पिंजरा तेरो ता में दस सुलाखो।
प्रेम मगन उड़ि अछै बीछ में कहें दरिया सत भाखो॥ २६. ४
बिहंगम बोलु बचन बनबासी।
उड़ि उड़ि आय तरिवर पर बैठो निस दिन रहत उदासी॥

अति चीकन तरिवर सुठि सुंदर ताहां अमी फल आसी।
पिय पिय प्रेम मगन तन भरो तब वा फलहि गरासी॥
डोरिअहिं डोरियें गगन चढ़ि जैहो परिमल मलहिं निकासी।
अति सुगंध गंगन घन बरिसे सकल भर्म भौ नासी॥
व्याधा वधिक ताहां नहि जैहें काटु कर्म की फांसी।
कहें दरिया तू दायापुर बसि ले होए रहु नाम उपासी॥ २६. ६

बुधि जन चलहु अगम पथ भारी।
तुम ते कहों समुझि जब आवै अबरिक बार संभारी॥
कांट कुस पाहन नहि तहवां नाहिं बिटप बन झारी।
बेद कितेब पंडित नहि तहवां बिनु मसि अंक संवारी॥
नहि ताहां सलिता समुंद्र ना गङ्गा ज्ञान कि गमि उजियारी।
नहि ताहां गनपति फनपति ज्ञाता नहिं ताहां स्रिष्टि संवारी॥
स्वर्ग पताल म्रितु लोक के बाहर ताहां पुर्ख मठधारी।
कहें दरिया ताहां दरसन सत है संतनि लेहु बिचारी॥ २६. ७

संतो भजन बिहूना अभागा।
बिनु जल कंवल सुखित भयो मुल से भंवर भरमि भव लागा॥
मिन जल बिछुरि बिलग होए कलपैव कठिन कर्म का दागा।
बांस घरी अगिनी तेहि भीतर बिखम बिकल होए जागा॥
जरत बुतावनिहारा ना कोई मोह लइरि तन लागा।
म्रिग मद माति आपनें पै खोवै गीरि परा पशु डागा॥
काल बधिक बधन तेहि लागे। ऐसे तन कहं त्यागा।
बिनु सतगुर मुक्ती फल नाहीं जैंव सगुन बतावत कागा॥
कहें दरिया सोई जन बचिहें गहि ले नाम सुभागा॥ ३३. १

नाम ना जाना रे अभागा तें।
पानी को ऐसो बून्द बुला छन मांह बिलाना रे॥
कोठा महल अटारिया बहु सुख बखाना रे।
जेंव आया तेंव जाएगा बिखिया लपटाना रे॥
हाथी घोड़ा बहल खजाना सभ गर्द समाना रे।
छन में परले होत है पीछे पछताना रे॥

मातु पिता सुत बंधवा सभ कहत एगाना रे।
कहें दरिया सतगुर बिना जम हाथ बिकाना रे ॥ ३३. २

साहेब बिनु कवन मेटे दुख दंदा।
जिवन मुक्ति सत पुर्ख सोई है जाग्रित जग में जिन्दा ॥
कहें दरिया दरसन फल दीन्हो मेटि गया जम फंदा ॥ ३७. १

वाह वाह लगी है डोरी गगन में।
झलकत नूर झलाझलि देखो वाहि दिदारि है दम में।
कहें दरिया एक फूल सजीवनि मूल सदा है घन में ॥ ३७.१७

जग में जीवन थोरा थोरा थोरा वो इयार जी।
एह संसार हम जाते देखा जी ताते भयो जग सोरा सोरा वो इयार जी ॥
सतगुर ध्यान धरहु नर लोई करहु बचन जनि भोरा भोरा भोरा वो इयार जी।
सुर नर मुनि गन गंध्रप लोटे काल कठिन बड़ रोरा रोरा रोरा वो इयार जी ॥
आवत जात रहट की घरिया भौ सागर झकझोरा झोरा-झोरा वो इयार जी।
कहें दरिया सोई जन बचिहैं जिन्हि चरन कमल रस बोरा-बोरा-बोरा वो इयार जी ॥ ३८.१

सखि हे धिग धिग जिवन जिवेला जग मांह।
बिनु गुर ज्ञान फिरैला बन मांह ॥
जो अति कामिनि कनक उरेह।
भुखन बसन फिरि तन होइहें खेह ॥
तरुनी के तेज फिरि हीन भेले गात।
सुखि गैले तरिवर छीन भेले पात ॥
बुंद बुला तन उपजि बिलाए।
देह धरि धरि सभ मरि मरि जाए ॥
सासुर सभ सुख गुन के रास।
बिनु पिया पंथ एह फिरत उदास ॥
तेजु देहु मान मंगन पुर जाहु।
कहें दरिया फल अम्रित खाहु। ३९. २

मोहि ना भावै नैहरा ससुरवा जैबों हो।
नैहर के लोगवा बड़ अरिआर। पिया के बचन सुनि लागेला बिकार ॥

पिया एक डोलिया दिहल भेजाय। पांच पचीस तेहि लागेला कंहार।
नैहरा में दुख सुख सहलों बहूत। सासुर में सुनलों खसम मजबूत॥
नैहरा में बाली भोली समुरा दुलार। सत के सेनुरा अमर भतार।
कहें दरिया धन्य भाग सोहाग। पिया केरि सेजिया मिलल बड़ि भाग॥ ३६. ६

संतो नीके गहो सतनाम हंस अमरपुर जाय।
फिरि फिरि आवै फिरि फिरि जावै फिरि फिरि धरिया देह।
जारि मारि तन कोइला करिहैं उड़ी गगन में खेह॥
जम दारुन दावा राखे हो डारै फांस अनंत।
चेतहु चीत चेतावनि नीके तोरहु काल को दंत॥
भौ जल अगम अथाह प्रबल है सतगुर करु कन्हार।
सत्त सुकित के नाव रि चढ़ि के उतरहु भौ जल पार॥
पुहुप पलंग पर पुहुप बिछवना पुहुप कि लागल आनि।
उजल दसा मन मैला ना कबहीं सोइ बिमल की खानि॥
पल पल प्रेम गहो पद पंकज देखहु अरध निसान।
कहें दरिया जाके आड़ अटक नहि रामहहि संत सुजान॥ ३६. ८
बेगि गहो गुरु चरन पीछे पछुतेबहु हे।
संतो नाहक फिरि मरि जैबे कहां घर छैबहु हे॥
उलटि पलटि भवसागर रहटा नधैबहु हे।
संतो चारि चरन दुइ सींघ भुसा खर खैबहु हे॥
नाहीं रही कुल कर्म सो आपु बंधैबहु हे।
संतो बाजीगर के हाथ पलक नहिं पैबहु हे॥
जंगल माहं के रोर से सोर लगैबहु हे।
संतो स्वान सुकर कर देह बहुत दुख पैबहु हे॥
सतगुर चरन सुधा सभ प्रेम लगैबहु हे।
संतो कहें दरिया सुनु दास मुक्ति फल पैबहु हे॥ ४३.१
आजु मोरा घर आनंद मंगल गाइ ले हे।
संतो दुलह दुलहिनी ब्याह से माड़ो छाइ ले हे॥
कलसा चित्र लिखाइ चिराक जराइ ले हे।
संतो पांच सखी मिली मंगल हरदि चढ़ाइ ले हे॥

होइहि नहछु नहावन नउनिया बोलाइ ले हे।
संतो पांव पखारे मंजन संजम लाइ ले हे॥
बैठु सजन सब लोग बरात बनाइ ले हे।
संतो अजर अमर पिय मोर अमरपुर जाइ ले हे॥
दरिया साहब गुन गावल गाइ सुनावल हे।
सखि मोरा तोरा बनेला बनाव बहुरि नहि आइबि हे॥ ४३ २
आनंद आनंद आनंद मंगल गाइ ले हे।
संतो प्रेम से प्रेम लगाइ मुक्ति फल पाइ ले हे॥
भाव भक्ति जेहि मंदिल मद बिसराइ ले हे।
संतो उदित कला परगास गंगन झरि लाइ ले हे॥
एहि भव में दुख दारुन दर बिसराइ ले हे।
संतो वा दर देखि निहाल नैन सुख पाइ ले हे॥
सतगुर चरन सुधा सम लोचन लाइ ले हे।
संतो जारा मरन तिनि ताप से दूरि बोहवाइ ले हे॥
बिनु गुरु होइ ना ज्ञान से ध्यान समोइ ले हे।
संतो सतगुर से सुख सागर भागर खेइ ले हे॥
वाही अजर अमान से ध्यान लगाइ ले हे।
संतो कहें दरिया दर देखि अमरपुर जाइ ले हे॥ ४३. ३
सुनु समधिनि सुवर पियारी री। तु तौं मोहलू सुर मुनि झारी री॥
अत लस लहंगा जरद रंग सारी। चोलि अन्हि बंद संवारी री॥
नैनन्हि काजर सिर सेंदुर बिराजित। टिकुली मनि उजियारी री॥
कानन्हि तरिवन तरकि बिराजित। बेसरि मोती गुहि डारी री॥
गले तिलु मनिया पहुँचि बिराजित। बाजुबन फुदन सुधारी री॥
पगु में पावट बिछिया बिराजित। झमक चले दे तारी री॥
सहस्र गोपी में एक मन मोहन। एह रंग रचु बनवारी री॥
सिंगि रिषि संग बन कौतुक कीन्हा। निमि रिषि बात बिगारी री॥
पीर अउलिया सब रंग राते। महादेव प्रान पियारी री॥
काजी के घर बिबिया होती। ब्राह्मन के घर बारी री॥
कहें दरिया तु त सब रस भोगी। बिनु घर की घर नारी री॥ ४७. १

सुमिरहु काहे ना नाम के सुख परम निधानी।
आवत सभ मिलि देखिया केहू जात ना जानी॥
कंचन कोट लंका बनी रची पची बहु बानी।
सोऊ गरबी औ गर्द मीले नाहीं रहा निसानी॥
जर जराव हाथी घोड़ा बहल रजधानी।
संग सैना जुरजोधना पल माहं बिलानी॥
बहुतो गर्बी गर्द मिले एह सभे अज्ञानी।
कहें दरिया सोइ बांचिहें सत्त सब्द जो मानी॥ ४९. ७
रावन सम माया नहीं समुझो नर लोई।
कंचन कोट उरेहिया औ गर्द समोई॥
पाटी महल बनाइ के थोरे धन ऐंठा।
टेढ़ी चाल टेढ़ी बोले करता होए बैठा॥
दुइ भुजा नर पाइ के कहे मेरो मेरो।
बीस भुजा दस सीस सो औ खाक के ढेरो॥
बीस औ तीस पचास है सौ बखें ना जीवै।
चारिउ पन बिति जातु है बिष्या रस पीवै॥
माछी मधु कहं संचिया पख जात अंधेरो।
डांक परे लूटे गइ पछताहिं घनेरो॥
एहुं जढ़ जीव जात है खरचे नाहिं खावै।
कहें दरिया जम बांधिहै पीछे पछतावै॥ ४९. ८
छोड़ि देते मान गुमान भ्रिथा जन्म हारी।
भक्ति बीनू जरा मरन कवन बिधिनि टारी॥
लोभी लंपट कपट कूटिल बिखम दूरि डारी।
पार ब्रह्म सेवो संतो अघ पाप जारी॥
धरो दाया करो बिबेक नाम हितकारी।
जीवन सुफल साधुसेवा हिदऐं बिचारी॥
आवागवन गर्भ बास मेटिहीं जम कारी।
जनम जनम दास तेरो सतगुर बलिहारी॥
अचल अमर रहित घर जोति दीपक बारी।
पुहुप सेज्या चंवर छत्र ताहांवां पगु ढारी॥

दाया सिंधू सुख सरोज आपनो जन तारी।
कहें दरिया बार बार भक्ति है पियारी ॥ ५०. २
आदि अंत मन अरुझन अझुरा। न मन सून न सझुरत सझुरा ॥
पहिले अरुझे बिरंचि बिधाता। जिन्हि एह बेद कथा बड ज्ञाता ॥
अरुझे किस्न बिस्न देखि सोभा। सहस्र गोपिन्हि से चित लोभा ॥
अरुझे सीव साधि बड़ जोगी। संग भवानी से रस भोगी ॥
अरुझे कवि सभ कहि कहि गाई। झीनि जाल मन निकलि न जाई ॥
सतगुर ज्ञान गंमि जौ बूझे। कहें दरिया गति अबिगति सूझे ॥ ५०. ६
तुहु पिया तुहु पिया तुहु पिया मेरो। हौं पतनी पति नैननि हेरो ॥
नैहर नेह नहि त्रेन तन तोरो। पुष्प पलंग पर प्रेमप्रिति जोरो ॥
जाति नहि पाति कोइ निमिखि निमेरो। तेरो मगु जोइत सो पहुँच सबेरो ॥
जैव चित चात्रिक निस दिन टेरो। कहें दरिया धन्य भाग भौ मेरो ॥ ५०. ८
खेलहि बसंत सब संत समाज। बिनु कीनर धुनि बाजन बाज ॥
बिनु तूरे जाहां जोतिहि रंथ। बिनु पगु चलहिं सो अगम पंथ ॥
बिनु दीपक जाहां बरही जोति। बिनु सीपन्हि के मोती होति ॥
बिनु फूलन्हि जाहां गूथे हार। बिनु मुख होंहि सो मंगल चार ॥
बिनु सखि अन्हि जाहां गावहिं गीति। निर्गुन नाम सो करहीं प्रीति ॥
बिनु असे जाहां अधर बास। बिनु परिमल जाहां आवे सुबास ॥
बिनु झालरि जाहां सेत निसान। बिनु घटे जाहां झरै अमान ॥
बिनु बिद्या जाहां भनहीं बेद। है कोइ पंडित करै निखेद ॥
कहें दरिया एह अगंम ज्ञान। बूझि बिचार कोइ संत सुजान ॥ ५३. १
सुमिरहु निरगुन अजर नाम। सब बिधि पूजिहि सुफल काम।
निरगुन नाह से करहु प्रीति। लेहु काया गढ़ काम जीति ॥
ऐनक मूल्य है सब्द सार। चहुं ओर दीसे रंग करार ॥
झरत झरी ताहां झमकू नूर। चित चकमक गहि बाजू तूर ॥
झलकत पदुम गंगन उजिआर। दीवि द्रिष्टि गहु मकर तार ॥
द्वादस इंगल पिंगल जाए। परिमल अग्र बास सो पाए ॥
बंक कमल मधे हिरा अमान। सेत बरन भौंरा सो जान ॥
खोजहु सतगुर सत्त निसान। जुक्ति जानि जिन्हि कथहीं ज्ञान ॥
कहें दरिया एह अकह मूल। आवागवन के मेटे सूल ॥ ५३. २

सोइ बसंत खेलहि हंसराज। जाहां नभ कौतुक सुर समाज॥
अछै बीछ जाहां दुर्म पात। सखा सघन घन लपट जात॥
मधुर मनोहर राग रंग। अनहद धुनि नहि ताल भंग॥
बेइलि चमेली बिबिध फूल। सोधा अग्र गुलाब मूल॥
भंवर कमल में भाव भोग। पदुम पदारथ करिए जोग॥
बुंद अखंडित बर्खु नूर। गंगन गरजि घन बाजु तूर॥
चमके छटा चहुं होए अंजोर। झिंगुर की झनकार सोर॥
दीन दिवाकर रइनि चंद। कला संपूरन होत न मंद॥
उडिगन मनि ताहां द्रिष्टि पेखु। आदि अंत मध्य मूल देखु॥
उदित उजागर हंस सार। नहिं दुख दारुण भौ को जार॥
मुक्ति महातम सतगुर मंत। दरिया दरसन मिलेव कंत। ५३. ८

सुख सागर जियरा करु अनन्द। प्रेम मंगन खेलु तेजु दन्द॥
छुटि गौ त्रिमिर उदित भान। सेत मंडल बिच सोहु निसान॥
गंगन गरजि घन होत तरंग। सिंचत गुलाब सीतल भौ अंग॥
बिगसित कुमुदिनि उदित चंद। भूलि भंवर ताहां खुलित रंग॥
गंगन मंडल बिच भै है बास। चित चकोर ताहां चुगु सुवास॥
अकह कंवल के ऊपर मूल। सहस्र कंवल ताहावां रहु फूल॥
झरि झरि परत सुरंग रंग फूल। प्रेम अंगम गमि होए समतूल॥
भयो निरमल पायो सब्द सार। सत्त सरन गहि होहु पार॥
अजर अमर पुर भैहैं बास। कहैं दरिया मेटु जम के त्रास॥ ५३. ९

चलु चलु रे भंवरी भंवर संग। चितु रे भंवर तोर कवन रंग॥
काया कवल वन फूल सुवास। दवनामरुआ चंपा बास॥
बेइलि चमेलि बिब गुथिए हार। सोधा चरचित करु सिंगार॥
सेज सुपेदी सुख बनेव बेवान। नाना रंग जाहां किया निधान॥
प्रेम आनंद सुख भयव बेलास। सोइ सोहागिनि पिया के पास॥
अजर अमर बर मीलेव कंत। मेटेउ कलपना दुख अनंत॥
भंवरा भंवरी भैउ अनंद। जेंव जल कुमुदिनि उदित चंद॥
कुसुम फुले बन बिबिध फूल। दुर्म लता फूले प्रेम मूल॥
भंवरा भंवरी करु अनद। परसु पिया पद तेजु दंद॥

नाम सुमिरु जग अमर सार । बेद बिहिति सब करु बिचार ॥
ज्ञान पुर्ख है भक्ति नारि । कहैं दरिया तन मनहि वारि ॥ ५३७
जाहां जैहो ताहां झूठि बात । सांच कहे मन टूटि जात ॥
झूठा हाकिम हुकुम जोर । झूठा काएस्थ आपु चोर ॥
लिखनी लिखि लिखि करहि घात । अपने आपु से बाधि जात ॥
माया बादर झूठा लोग । झूठा पंडित गनहीं जोग ॥
कहते कहते भैगो अंत । झूठा कामिनि झूठा कंत ॥
झूठा मीत मिताई कीन्ह । रुइ लपेटी आगी दीन्ह ॥
झूठा धीमर जाल झीन । ता में बाझेव मगुर मीन ॥
झूठा लेना देना झूठ । मूर ना मिले ब्याज खूट ॥
झूठा तीरथ पाहन पास । मन परचे बिनु भयो निरास ॥
अपने सांचे साहब सांच । थित चिन्हे बिनु बोलत कांच ॥
कहैं दरिया कोई साधू होए । पापहि पुन्यहि बैठी खोए ॥ ५३८
जाहां जैएहो उहां तीरथ तीर । इहां गंगन जमुना निकट नीर ॥
इहां निर्मल जल है अमी संग । झरत सरोसति होत न भंग ॥
मंजन करहि संजन जो सोए । अघ पातख सभ बैठु खोए ॥
इहां लहरि उतंग है सेंधु समाय । उलटि आवै फिरि पलटि जाए ॥
इहां चंद सूर सभ गन है साथ । ज्ञान दीपक जब आउ हाथ ॥
इहां पांच पचीस संग मन है भूप । देवल देवी अजब रूप ॥
इहां भूख प्यास है दाया समेत । बोइये बीज जो मिले सुखेत ॥
सुरसरि माह जो बसहि जीव । दरद बिना कहु का कर पीव ॥
ता की सरन कहु कैसे जाए । धीमर सो जिव धै के खाए ॥
सतगुर काह्या सब्द उपदेस । अगम निगम सब सुनु संदेस ॥
सत्त तरनि भव सेंधु पार । दरिया दरसन गुन है सार ॥ ५३१०
धन मद माते सो करते जोर । छाड़ि भक्ति एह ममिता मोर ॥
हरिनाकस माते परचारी । कीन्हौ बैर सुत से रारि ॥
छाडु भक्ति ना त हतों प्रान । नरसिंघ रूप धरि कीन्ह निदान ॥
रावन माते कंचन कोट । मन की ममिता हिदया खोट ॥
सीतहि ल्याएउ करन राज । मारेव राम तेहि सैन साज ॥
ध्रुव चक्कवे माते चक्रवर्ती । मातेव कंस ना जानू गती ॥

भगिनी बांधेव धरि हंकार। देवकी सुत होए कीन्ह संघार ॥
जुरजोधन मातेव दल के जोर। साजेव सैना हाथी घोर ॥
छन में छोहनी गए बिलाए। मारेव क्रिस्न तेहि रन चढ़ाए ॥
राव रंक माते सभ जानि। मन बाजी जिव होत हानि ॥
कहें दरिया मन माया है बीर। सत्त सरन गहि लागू तीर ॥ ५३.११
साधु मिले सभ सुफल काम। आनंद मंगल तीरथ धाम ॥
धन सो ग्राम धन्य वोर लोग। धन्य सोई जेहि पूरन जोग ॥
धन्य सतगुर जिन्हि कथहीं ज्ञान। धन्य सोइ जो धरहीं ध्यान ॥
कोटि तीरथ जाहां साधू होए। उछिलत प्रेम प्रवाह सोए ॥
मंजन करहिं सीतल सभ अंग। दुर्मति दुर तिनि ताप भंग ॥
जैसे मनि आगे दीपक छीन। उदित उजागर भानु दीन ॥
एह सुख काहये संतन्हि पास। छुटि गौ त्रीमर तम को नास ॥
अस्तुति करहि सो सेस महेस। नारद ब्रह्मा गुर गणेस ॥
साधु महिमा नहिं सिंधु समाए। निगम थाकि गुन कहा न जाए ॥
प्रीत प्रीनि सभ मल भौ दूर। पीवहि अम्रित जन कोइ सूर ॥
साधु दरस अघ पातक खोए। दरिया दरसन अमिय सोए ॥ ५३.१२
मन चिन्हि खेलहु रितु बसंत। बिनु चिन्हे किमि मिलहिं कंत ॥
गिरिवर चढ़ि गौ मिन बिनु जल। सिघ सियार कर देखिए बल ॥
कवन लरै कवन छोड़े खेत। सिघ उनकु भाजु कुंजल केत ॥
सुखि गौ सागर अंग न नीर। सिघरी सभ सुख मेटि गौ भीर ॥
बगुला रोवै सीस तानि। किमि करि जीवै मैं गौ हानि ॥
बेद बाट कथि कहनी जान। ताके जग में बहुत मान ॥
गुरू सीष संग बाजी भाव। अवसर परिगौ जम को दाव ॥
जोगी जती सभ भेख अलेख। सुमिरहिं सभ मिलि रूप न रेख ॥
एह तन तेजिं जिव चलिहे भागि। तीनि लोक में लागी आगि ॥
कर्म काटि खोजू सब्द सार। सूझि परी तब वार पार ॥
मनि दियरा नहि होत छीन। कहें दरिया छप लोक है भीन ॥ ५३.१३
जढ़ जन करहिं साधु से रारि। गए हरनाकस नख से फारि ॥
साधु महिमा गुन कीत अपार। दीप दीप सभ वार पार ॥
दो दो भुजा नर क्रूर जोर। गर्ब प्रहारी बान तोर।

जब जुरजोधन चढ़े हैं खेत । लीन्ह लपेटि सभ सखा समेत ॥
उग्रसेन सुत कंस काल । धरि के पटकेउ जबर माल ॥
औ त्रिप केते गए निखेत । बहुबिधि मरि गौ गानए केत ॥
एह सब सांच झूठ नहि होए । साखी पुरातम सब्द बिलोए ॥
साधु से द्रोह करत जब कोए । माहा नर्क तन पाप होए ॥
मीठा फल किमि लागत तीत । कहें दरिया गुर ज्ञान हीत ॥ ५३.१८

साहब तुम गति अगम अपार दाया बहु कीन्हौ जी ।
प्रथम बंदि सत चरन सीस साहब कहं नाया ।
एह लीला अगम अपार भेद बिरला कहु पाया ॥
अगम पुर्ख सतबर्ग है हो सोइ मिले हमें आए ।
हंसन्हि के सुख कारने हो हद दियो है पाए ॥
झलकत पदुम बहुत उजियार बदन छबि सुंदर रेखा ।
अबिगति जोती अधं प्रगासित ज्ञान अगम गमि पेखा ॥
बिरला जन कोइ चीन्ह के हो सत्त चरन सिर नाए ।
रहे प्रेम लौ लाइ के हो नाम सजीवनि पाए ॥
वोए जिन्दा रूप अजर मनि निर्मल जोति अमान ।
कहें अकूफ सर्बज्ञ सभनि ते सुनो सबन दे ज्ञान ॥
बिगसित कमल सितल होए आए सूनि बचन निर्बान ।
हंसन्हि बंद छोड़ावहिं हो जम के मरदहि मान ॥
काल रोर एह चोर जीव जहंड़ावहीं ।
जो करे सुरति लव लाए ताहि बिलमावहीं ॥
करे बिबेक बिचारि के हो निर्मल धरि सो ध्यान ।
खुलित कमल गगन झरि लागी झलकत सेत निसान ॥
जो बूझे एह भेद सोइ है संत सुजान ।
भौ निर्मल जेंव परिमल बास सुबास समान ॥
पारस पाए जन उधरे हो निर्मल भजि सो ज्ञान ।
जाए छपलोक रहित घर पावे जाहां सब हंस सुजान ॥
जो करे पारख लव लाए नाम बिलगावहीं ।
एह ब्रह्मा बिस्न महेस अंत नहि पावहीं ॥

धरि धरि ध्यान समाधि करै हो सपने सो नहि पाए।
दीन दयाल क्रिपाल दयानिधि लियो हैं हंस बोलाए॥
करहु भक्ति बे भर्म कर्म बिसरावहु भाई।
एह भए ब्रह्म भरिपूर सो नाम अचल पद पाई॥
अम्रित पोखन पावहि हो भक्ति करहि लौं लाए।
धन्य भाग्य तेहि जीव के हो साहब लियो है छोड़ाए॥
कहें दरिया सुनु सत्त सब्द एह बानी।
काहां छापा एह मूल अगम सहिदानी।
सत्त सुक्रित दिल लाए ले हो गहिर जो गहि लेहु ज्ञान।
सो जन के प्रतिपालहि हो जम से राखि अमान॥ ५४.१
सतगुर एह परसाद तुम्हारा।
तन मन धन जिन्हिं अरपन कीन्हो हंस उतारहु पारा।
दधी सोहारी औ घ्रित मेवा खांर भरो है थार।
अमर सेत ताहां एह सोभे एही भक्ति ततुसार।
खुसबोए मंदिल खुस नर नारी सतगुर खुस सौ बार।
सेवा मांह कसूर ना करिहें छूटि जाय जम जारा॥
धन्य धन्य साहब धन्य भक्त हे धन्य है दास तुम्हारा।
कहें दरिया दरसन को फल है द्रिष्टि भई उजियार॥ ५४.२
अबरिक बार बकसु मेरो साहब, तुमहिं लाएक सभ जोग हे।
गुनहु बकसिहहु सभ भर्म नसिहहु रखिहो अपने पास हे॥
अछै ब्रीछ तर लेइ बइठइहहु जहवां धूप न छांह हे।
चांद ना सुर्ज दिवस नहिं तहवां नहि निसु होहि बिहान हे॥
अंम्रित फल मुख चाखन दिहहू सेज सुगंध सोहाइ हे।
जुग जुग अचल अमर पद दिहहू एतना बिनति हमार हे॥
भौ सागर दुख दारुन मेटिहें छुटि जैहें कुल परिवार हे।
कहें दरिया एह मंगल मूला अनुप फुलेला ताहां फूल हे॥ ५५.१
अबरिक बार बकसु पिया मेरो जनम जनम को चेरि हे।
चरन कमल हम हिदै लगाइब कष्ट कागज सब फारि हे॥
मैं अबल बल कछुवो न जानों परपंचिन के साथ हे।
पिया मिलन बेरि इन्ह मोहिं रोकल तब जिव भइले अनाथ हे॥

जब दिल में हम निस्चे जानल सूझि परल जम फन्द हे।
खूलल द्रिस्टि दिया मनि लेसल मानो सरद के चंद हे॥
सुख के सागर अम्रित फल मुख सुक्रित नाम सहाइ हे।
कहें दरिया दरसन सुख उपिजल दुख सब दूरि बोहाइ हे॥ ५५. २
सभ हंसा सजन समाज होरी खेलहीं।
अग्र कुमकुमा नाम सुगंध है प्रेम भक्ति निजु सार।
सेत बरन सिर छत्र बिराजे बाजत अनहद तार॥
परिमल बास प्रेम रंग छिरकहिं कामिनि कर लिए छाज।
कोटि कामिनि जाके चंवर डोलावहिं वै है हंसा राज॥
एक रूप सब हंस बिराजहिं बरनि कवनि अब साज।
धन्य धन्य फागु खेलहिं एह दरिया तेजि सकल भ्रम लाज॥ ५६. ३
कोइ हंसा चतुर सुजान होरी खेलही।
जाके नाम प्रेम रंग उपजे लागे हिर्दै बान।
सीव सक्ति मन मगन भयो है सहजे सुरति समान॥
चंदन चर्चित चित चुभुकायो प्रेम अग्र लिए ज्ञान।
बुकवा भर्म भसम करि डारो मांगत है मोक्ष दान॥
अनहद ताल पखाउज बाजत सून्य सहज में ध्यान।
कहें दरिया कोइ संत बिबेकी फगुआ गम जान॥ ५६. ४
एही होरी को दाव गाव खुसरंग है।
मन मथुरा है तन बिंदाबन पांच सखी लिए संग है॥
अनहद ताल पखाउज बाजे ताल कबहिं नाहि भंग है॥
राधे राग रबाब उधौ लिए कांध किनरि मुख चंग है।
गोपी ग्वाल थार लिए थिरकत छिरिकि सुगंध भरि अंग है॥
जल जमुना हैं त्रिकुटी के तट उठि उठि लहरि उतंग है।
कहें दरिया सोइ संत गुन राजति कोकिल बैन सुगंध है॥ ५६. ८
चलहु अमर पुर धाम होरी खेलिए हो।
पंडित जप तप ध्यान लगावहिं त्रिय संध्या एक जाम।
पांच तलबिया संग बसतु हैं दीन्ह चौगुन दाम॥
काया महल में जोति बिराजे सोइ सुंदर सुख बाम।
जोगी जोग करत सभ हारे चीन्हि परा नहिं ग्राम॥

जोग करै फिरि भोग में आवे बीर बड़ो है काम।
कहें दरिया झरि लागु गुलाव की काया अम्र निजु नाम॥ ५६.१०

होरी खेलियै एह तन मन लाज बिसारी।
जूथ जूथ बर नारी बनी है नख सिख भुखन संवारी।
लाल जरद पेन्हे सभ सारी घुंघट को पट फारी॥
एक से एक बनी ब्रिजबासी खेलि रही ब्रिजनारी।
धाए धरै झकझोरत झांकत देत है आनंद गारी॥
ब्रिदाबन में रास मंडल है गोपी ग्वाल मुरारी।
कहें दरिया ऐसो रंग परसपर दम्पति रचहिं धमारी॥ ५६.१४

खेलत मोहन रंग होरी, जल कैसे में लावों अरि दैया।
भांति भांति बनिता बनि आई लाल जरद पेन्हे डोरी॥
बनमाली बन बीच रोके है फिचिकारी धरि धरि बोरी।
धै झकझोरत बांह मरोरत चोलिया बंद घइंचि तोरी॥
होत परसपर आनंद गारी दवरि धरै ब्रिखभानकिसोरी।
कहें दरिया एह सहर कहर है त्रिगुन लिला है जोरी॥ ५६.१८

कुबुद्धि कलवारिनि बसेले नगरिया हो रै।
उन्हि रै मोरे मनुआं मतावल हो रै॥
भूलि गैले पिया पंथवा द्रिस्टिया हो रै।
अवघट परली भुलाए हो रै॥
भवजल नदिया भेआवन हो रै।
कवने रै विधि उतरब पार हो रै॥
दरिया साहब गुन गावल हो रै।
सतगुर सब्द सजीवन पावल हो रै॥ ५७.१

कुमति बेइलि बन फूलल हो रै।
फुले रै फुले भंवरा रंग रातल हो रै॥
जिन्हि जिन्हि एह फुल लोल्हल हो रै।
तिन्हि रै तिन्हि आपन आपन मद मातल हो रै॥
दुमें दुमें लता छवि छावल हो रै।
जैसन गुन तैसन सीतल तातल हो रै॥
एक पवरी जग पसरल हो रै।
पवरी रै पवरी भवरी मेहीं सुत कातल हो रै॥

सतगुर सब्द चिन्है बिना, जेंव पंछिन्ह महं काग ॥ १६१
कायर कूमत कुटिल नर, औ क्रोधी बहु खोट ।
एतना औगुन छुपत है, लछमी तेरी ओट ॥ १६४
धन सपति ताहां बिपति है, हिदयो बड़ा कठोर ।
परत बुंद पाहन पर, तनिक करत नहि तोर ॥ १६६
यह माया है बेसवा, बिसनी मिलै त खूब ।
साधुन्ह से भागी फिरै, केते परै मजूब ॥ २१६ ।
यह माया है चूहड़ी, औ चुहड़े की जोए ।
बीच में झगरा लाय कै, आपु किनारे होए॥ २२१ ।
माया काली नागिनी, बसै सो नग के पास ।
डंसे सकल संसार कहं, पांचु धनी के दास ॥ २२२ ।
पपिलक और विहंगम, भेद परा यह बच ।
चले बिहंगम पवन यह, परा पपीलक नीच ॥ २२६ ।
अनत कही तौं अनत है, एक कही तब एक ।
जागत सपन सुखोपती, तुरिया तेल बिबेक ॥ २५१ ।
भग्ति शक्ति गुन एक है, ज्ञान पुर्ख है सोय ।
भग्ति शक्ति रति चाहही, चला जगत सब रोय ॥ २६१ ।
मरना मरना सब कहे, मरिगौ बिरला कोय ।
एक बेरि एह ना मुआ, जो बहुरि ना मर्ना होय ॥ २६६ ।
सुरति निरति नेता हुआ, मटुकी हुआ शरीर ।
दाया दधी बिचारिए, निकला घ्रित तब थीर ॥ २७७ ।
जल किया तब मीन किया, पंछी द्रुम के पास ।
यह सोभा संवसार का, जल थल किया निवास ॥ २८६ ।
मीन मांसु जो खात है, सो राछस को काम ।
देवता हैं तहि चीन्हि, का लछुमन का राम ॥ २६१ ॥
कनहरिया सतगुर कही, सुकित जाको नावं ।
सील संतोख नरकी भई, गया अमरपुर गांव ॥ ३१० ॥
कहो हमारे गुर हए, सो गुर ब्याधर जाति ।
मांसु बिना जीवै नाहीं, मारि करै उतपाति ॥ ३१२

साधू जन मांगे नहीं, मांगि खाय सो भांड़।
सती पिसावनि ना करे, पीसि खाय सो रांड़॥ ३१६॥
जाति जाति सब जाति कही, अजाति जाति सो भीन्ह।
नाहिं ब्राह्मण राजपूत है, बैस सूद्र का चीन्ह॥ ३२०॥
बिना प्रेम नहिं पंथ है, पंथ प्रेम के पास।
बिनु सतगुर नहि दर्स है, का कहि कथैं उदास॥ ३२४॥
मन आंटे ते राज, मन चीन्है ते संत।
मन है जीव के साथ में, बिसरि गया निज मंत॥ ३३४॥
अगुन कहै सरगुन कहै, कहै निरंजन देव।
त्रिगुन सगुन तें भीन है, ता करता के सेव॥ ३५१॥
काटि कपट पट प्रम है, सब घट चित्र अनूप।
वा चित में चित चूभिया, दरसन यहां सरूप॥ ४१३॥
सितल सर्वदा साधु मत, गुण गामी सोइ संत।
ऐगुन सबै बिहाय के, बिमल भया निजुमंत॥ ४२३॥
कर्मकांडि कहता फिरै, लरते साधु के बीच।
अवघट में मरि जाहुगे, या घट डारैव मीच॥ ४३६॥
करै खंडित तेहि डंडेव काल ने, पंडित को गुन एत।
बिना दया औ भक्ति बिनु, मरि मरि होइहौ प्रेत॥ ४६६॥
मुद्रा चारिउ चौ ज्ञान है उनुमुनि करू प्रकास।
एक पपीलक पवन है, बीछ बिहंगम पास॥ ४६८॥
जाति पांति नहि पूछिए, पूछहु निर्मल ज्ञान।
संत की जाति अजाति है, (जिन्हि) पायो पद निर्बान॥ ४८३॥
जलकुकुहीं जल में बसे, बुड़े गिरे उतराए।
पानी पर लागै नहीं, बड़ो अचंभो आए॥ ५२०॥
सहस्र दल औ सहस्र पंखुरी, फुला गगन में एत।
सदा सर्बदा बुंद घन, मनि मोती तहां सेत॥ ५४७॥
घर घर सतगुर ना कही, (जो) ज्ञान कथै बिसतार।
सुकित के सतगुर कही, हंस उतारहि पार॥ ५६४॥
तीर्थ गये फल एक है, साधु मिलै फल दोय।
सतगुर मीलै मुक्ति फल, आवागमन ना होय॥ ७१०॥

पांचो और पचीस संग, तीनि मीलि एक नांव ।
बिपरिति लागी बीच मह, मूल ऊपर हेठ ठांव ॥ ७२४ ॥
कर्म पहार यह नाहि टरै, टारि सकै कोइ संत ।
ज्ञान छेनी से काटिए, यह सतगुर का मंत ॥ ८१६ ॥
कपट काटि कंटा काटेव, काटि बेइलि भौ पात ।
ज्ञान कुल्हारी कर्म बन, काटि दिया सब गात ॥ ८१७ ॥
टेरि टेरि बहु बचन कही, बहु बिधि कहेउ पुकार ।
धरमराय कागज देखै दिहें कोड़न्ह की मार ॥ ८४६ ।
सेंधु सोई निरगुन हुआ, सगुन सो लहरि उतंग ।
सत्तनाम तरनी तरी, तरत होखै नाहिं भंग ॥ ८८६ ॥
ब्राह्मन छत्री बैस है, सुद्र समेता जाति ।
अबिगति जिन्ह पहचानिया, नाहि काहु की पांति ॥ ६०३ ॥
आखर एकै अंक है, बंक कमल के पास ।
चक्र छवो परगट ताहां, एहि बिधि करु परगास ॥ ६१८ ॥
रामुराय हिंदू भए, हिंदू ना पतियाए ।
अपावन पावन भए, रघुवर को गुन गाय ॥ ६३३ ॥
एह करता को काम नहिं, (जो) एक पछ करै सहाए ।
दुओ पछ के यह बीच महं, हिंदु तुरुक गुन गाए ॥ ६३४ ॥
वोए काफर कहै मलेछ, यह बातन्ह मै बादि है ।
हिंदु तुरुक कै लच्छ, बादिहिं जन्म गंवाइया ॥ ६३८ ।

परिशिष्ट

अलंकार-निरूपण

शब्दालंकार:—

(अ) अनुप्रास

झकझक्क लगा झकझक्क लगा एह द्वारि झरोखे झाँकिया रे
झरि झरि परा झरि झरि परा एह फूल गुलाब कि आँखिया रे ॥ —श० २.७

अर्थालंकार:—

(अ) रूपक

बहे अनल मन घटा समीरा। पाप पुन्य बुंद दुइ गीरा ॥
जामें मंजन या जग करई। दुइ सरिता जल इमि करि बहई ॥
निगम नदी दुइ रचि के राखा। तामें बढ़ेव अनेगन्हि साखा ॥
... .
तप के तेज फुले फुलवारी। दुर्म एक लागा फल चारी ॥ ज्ञा० र० १०५.६–११
भवसिंधु त्रिबिधि बिकार जल, बोहित सुकिरति साथ।
गुरु सतगुरु करु कनहरि, खेवनि वाके हाथ ॥—ज्ञा० दी० १०२.०

(आ) उपमा

यह नासिका जनु कीर। सुगंध बहुत समीर ॥
यह स्रवन उड्गिन भाव। मनि जोति सोभा पाव ॥
यह दसन दारिम बीज। निजु रसन प्रेमहिं पीज ॥
... ...
यह भुजा जनु मृगनाल। नख दसो लागे लाल ॥ ज्ञा० दी० ५४.४-६
संत मंत मम अंतर कैसे। हिदै कमल मम भंमर जैसे ॥ ज्ञा० र० ५७.१६

(इ) उत्प्रेक्षा

भई अनंद कोसिल्या रानी।...
जैसे गाँसी तन की काढ़ी। मेटि गौ पिरा प्रीति अति बाढ़ी ॥
रानी सभै अनंदित भयऊ। बिसरी मनी हाथ जनु अयऊ ॥ ज्ञा० र० १५.७.६
सुनत प्रेम निजु हिदया जागा। चच्छु बिहून देखन जनु लागा ॥ ज्ञा० र० ३१.५

(ई) अतिशयोक्ति

(उ) अप्रस्तुतप्रशंसा

(ऊ) विभावना—दरिया साहब ने इन अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता के साथ अपनी 'उलटवाँसियों' और अटपटी 'बानियों' में किया है। एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

पंडित अचरज बात अनूपा।
बाघिन एक तिनि हँवरु बियानी, तीनिउ तीनि सरूपा ॥

तीनु जने तिनु साँपिन राखा बिनु पंखे उड़ि धावै।
तीनि के खाय अवरि के खाइसि भेद कोई जन पावै ॥ —श. ५. १.

[इस पद्य में 'बाधिनि' से तात्पर्य आदिशक्ति से है; तीन 'डँवरू' से मतलब ब्रह्मा, विष्णु, महेश से है; और 'साँपिन' से अभिप्राय सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती से है। उपमेय-पक्ष के लोप और उपमान-पक्ष के स्थापन से यहाँ अतिशयोक्ति है। अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत के कथन की दृष्टि से अप्रस्तुतप्रशंसा भी है। 'बिनु पंखे उड़ी धावै' में कारण के बिना कार्योत्पत्ति होने से विभावना भी है। इसी प्रकार विशेषोक्ति, विरोधाभास आदि के उदाहरण भी ऐसे पदों में भरे पड़े हैं।]

अब सुगना तुम्हं करो उपासा, बहुरि गए सेमर के पासा ॥ —ज्ञा. मू. १६.३

[अप्रस्तुत 'सुगना' के द्वारा प्रस्तुत 'जीव' की ओर संकेत है। अतः यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा है।]

(ॠ) दृष्टान्त

सुनि के राम सितल तन भयऊ। खुलि गौ कँवल भँवर रस पयऊ॥ ज्ञा. र. ४६.६

अधिक लंगूर बढ़ाइसि भारी । नर कै पाग राँड़ कै सारी ॥—ज्ञा. र. ४५.६

(ॠ) अर्थान्तरन्यास

अब तो निकट निपठ भइ बाता। अब लंका होइ हैं उतपाता ॥
नव मन सूत कबहिं सझुरा। अब तो रावन रामहिं अझुरा ॥
—ज्ञा. र. ५६.२४,२५.

(क) परिकर

अचरज कौतुक अजब अनूपा। रघुवर बोलै भभीखन भूपा ॥—ज्ञा. र. ५६ ६

[यहाँ राजतिलक होने के पहले ही रामचन्द्र ने विभीषण को 'भूप' शब्द से संबोधित किया है। अतः 'साभिप्राय विशेषण' होने से यहाँ परिकर अलंकार है।

(ऐ) विनोक्ति

गिरि बिनु ओछ ओछ बिनु चंदन काया बिनु चरचि पिया बिनु भूलेव।
सुर्ज बिनु किरिन किरिन बिनु काला बिना कर्म कर्ता कहि तूलेव ॥ श. ४. ३०

—ये कुछ उदाहरण स्थालीपुलाकन्याय से यहाँ प्रदर्शित कर दिये गये हैं। ऐसा करने का उद्देश्य यह बता देना है कि दरिया साहब की कविता की माला में भिन्न भिन्न शब्दार्थालंकार अनायास ही रंगबिरंगे फूलों के समान पिरोये हुए हैं।

(अ) 'घेरण्डसंहिता' की मूल प्रति से आसनों के उद्धरण—

१. उग्रासनम् अथवा पश्चिमोत्तानासनम्—
प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ
संन्यस्तभालं चितियुग्ममध्ये।
यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां
योगीन्द्रपीठं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥ २.२४ ॥

२. पद्मासनम्—
वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा।
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम्।
अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये—
देतद् व्याधिविनाशनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥२.८॥

३. मुक्तासनम्—
पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि।
समकायशिरोग्रीवं मुक्तासनं तु सिद्धिदम् ॥ २.११ ॥

४. शवासनम्—
उत्तानं शववद् भूमौ शयनन्तु शवासनम्।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥२.१९॥

५. सिंहासनम्—
गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतौ।
चितिमूलौ भूमिसंस्थौ कृत्वा च जानुनोपरि ॥
व्यक्तवक्त्रो जलन्ध्रं च नासाग्रमवलोकयेत्।
सिंहासनम् भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ॥२.१४-१५॥

६. सिद्धासनम्—
योनिस्थानकमंघ्रिमूलधटितं संपीड्य गुल्फेतरं।
मेढ्रोपर्यथ सन्निधाय चिबुकं कृत्वा हृदि स्थापितम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन् भ्रुवोरन्तर
मेवं मोक्षविधायकं फलकरं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥२.८॥

७. स्वस्तिकासनम्—
जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वास्तिकं तत्प्रचक्षते ॥२.१३॥

(आ) 'घेरण्डसंहिता' की मूल प्रति से मुद्राओं के उद्धरण—

१. अश्विनीमुद्रा—
आकुञ्चयेद् गुदद्वारं प्रकाशयेत् पुनः पुनः।
सा भवेदश्विनी मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥३.८२॥

२. उड्डीयानबंध—
उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत्।
उड्डानं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥३.१०॥

१. *खेचरी मुद्रा*— जिह्वाधो नाडीं संछिन्नां रसनां चालयेत् सदा ।
दोहयेन्नवनीतेन लौहयन्त्रेण कर्षयेत् ॥
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ।
यावद्गच्छेद् भ्रुवोर्मध्ये तदा गच्छति खेचरी ॥
रसनां तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत् ।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥३.२६॥

३. *जालंधरबंधः* — कंठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत् ।
जालंधरे कृते बन्धे षोडशाधारबंधनम् ।
जालंधरमहामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणी ॥३.१२॥

४. *मूलबंधः* — पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः ।
नाभिग्रन्थिं मेरुदंडे संपीड्य यत्नतः सुधीः ॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत् ।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबंधो निगद्यते ॥३.१४-१५॥

६. *योनिमुद्रा*— सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्नसोमुखम् ।
अंगुष्ठतर्जनीमध्यानामादिभिश्च साधयेत् ॥
काकीभिः प्राणं संकृष्यापाने योजयेत्ततः ।
षट् चक्राणि क्रमाद् ध्यात्वा हुं हंसमनुना सुधीः ॥
चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रितां वा भुजंगिनीं ।
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य कराम्बुजे ॥
शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम् ।
नानासुखं विहारञ्च चिन्तयेत् परमं सुखम् ॥
शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुवि भावयेत् ।
आनन्दमानसो भूत्वा 'अहं ब्रह्मेति संभवेत् ॥
योनिमुद्रा परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ।
सकृत्तु लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि ॥३.३७-४२॥

७. *शाम्भवी मुद्रा*— नेत्राञ्जनं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत् ।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥३.६४॥



साधु चतुरी दास
(जिन्होंने पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करने में मेरी सहायता की है)

शासक उनके सम्बन्धी थे। एक बार बक्सर के कुँवरधीर सिंह की रानी उत्तर से तीर्थ-यात्रा कर लौट रही थीं। उनकी पालकी कर्मनासा नदी के सायर घाट पर रोक ली गई; क्योंकि सेवराईं के शासक कुतुलू खाँ ने एक नियम-सा बना दिया था कि घाट पर रात-भर रुके बिना कोई भी डोला नदी के पार नहीं जा सकता। रानी ने इसका विरोध किया; लेकिन वह व्यर्थ सिद्ध हुआ और पालकी सेवराईं के कुतुलू खाँ के किले में लाई गई। उसे वहां से तभी जाने दिया गया जब रानी ने अपनी मुक्ति के लिए दो ऊँट और तीन घोड़े दंड के रूप में देना स्वीकार किया। बक्सर पहुँचने पर रानी ने शपथ ली कि जब तक कुतुलू खाँ पराजित नहीं होगा तबतक वह राजकीय वेशभूषा धारण नहीं करेंगी। सायर घाट में एक कवीश्वर भी थे जिन्होंने कुतुलू के अत्याचार के प्रति विद्रोह किया था और जो बक्सर में कुँवरधीर सिंह के दरबार में चले गये थे। वहाँ से वह धरकंधा के निहाल सिंह, मनियार सिंह और वख्तावर सिंह के पास गये और उन्हें कुतुलू के विरुद्ध भड़काया। तदनुसार वे एक सेना लेकर बक्सर की ओर बढ़े, जहाँ उन्हें और भी सैन्यदल मिला, और इस प्रकार सुसज्जित होकर उन्होंने सेरवाईं पर आक्रमण किया, कुतुलू खां को मार डाला और उसके किले तथा राज्यक्षेत्र को अधिकृत कर लिया। विजयी निहाल सिंह ने कुतुलू खां के परिवार को एक सौ बीघे जमीन निर्वाह-भत्ता के रूप में दी, जो अब बहुत घट गई है। अब कुतुलू खां के वंश में जहीद नामक एक लड़का बच गया है जो सेवराईं से एक मील दूर गोरेसरा गाँव में रहता है।"

अब हमें यह विचारना है कि दरिया साहब के काल्पनिक सैन्यदल के प्रकट होने पर निहाल सिंह अपने दल के साथ धरकंधा से चले गये, अथवा इन ऐतिहासिक कारणों से, जिनका उल्लेख पंडित लालजी उपाध्याय द्वारा किया गया है और जिनका सारांश ऊपर दिया जा चुका है। यद्यपि मैं पं० लालजी उपाध्याय की व्याख्या से सहमत हूँ, फिर भी मैं काल्पनिक सैन्यदल की वार्त्ता को निरा निराधार कह कर नहीं टाल सकता हूँ। जब यह सिद्ध है कि दरियासाहब और निहाल सिंह में कई बार मुठभेड़ हुई तब यह बहुत संभव है कि संत की बढ़ती लोकप्रियता और अलौकिक प्रभुता के कारण निहालसिंह को अपने पिछले शत्रुतापूर्ण कृत्यों के लिए पश्चत्ताप हुआ हो और उन्होंने उन कृत्यों को पारिवारिक दुर्घटनाओं और विपत्तियों का कारण समझा हो तथा प्रेतबाधा से ग्रस्त रहे हों। यह भी संभव है कि उन दिनों उन्होंने दरिया साहब की सेना को मनोवैज्ञानिक कारणों से इस प्रकार साक्षात् देखा हो तथा धरकंधा से तंग आकर वहां से चले जाने का अवसर ढूँढ़ते हों। जब कवीश्वर ने आकर कुतुलू खाँ के अत्याचार तथा रानी के अपमान की कहानी सुनाई तब उन्हें उपयुक्त अवसर मिला हो और अत्याचारी पर आक्रमण कर उसके राज्यक्षेत्र पर आधिपत्य जमाया हो। ऐसा भी संभव है कि निहाल सिंह का अपने दल के साथ चले जाने का कारण नवाब कासिम अली का अत्याचार रहा हो, जिसने भोजपुर के शक्तिशाली जमीदारों को दबाने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा।

(२) गणेश पंडित—गणेश पंडित कदाचित् निहाल सिंह के कुल-पुरोहित और दरबारी पंडित थे। दरिया साहब के पदों में वह सनातनवादी हिंदुओं के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं और सुधारवादी संत से बहुधा शास्त्रीय विवाद करते दीखते हैं। किंवदन्ती है कि जब निहालसिंह सपरिवार धरकंधा से चले गये, तब गणेश पंडित भी उनके साथ गये और सेवराईं में बस गये। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है जब मैं सेवराईं गया तब वहाँ पंडित लालजी उपाध्याय ने मुझे गाँव का एक संक्षिप्त इतिहास दिया। उन्होंने अपनेको सुप्रसिद्ध गणेश पंडित, या यों कहें कि पंडित गणेश उपाध्याय, का वंशज बताया। उन्होंने मुझे अपने परिवार की वंशावली दिखलाई जिससे उपयुक्त उद्धरण नीचे दिया जाता है।

गणेश उपाध्याय
|
रामदिहल उपाध्याय
|
हितू राम उपाध्याय
|
आत्माराम उपाध्याय
|
परमेश्वर उपाध्याय
|
महादेव उपध्याय
|
लालजी उपाध्याय (अवस्था लगभग ४५ वर्ष)

इस प्रकार गणेश पंडित की छठी पीढ़ी में लालजी उपाध्याय उनके वंशज हैं। यदि संवत् १८०० उस वर्ष के आसपास माना जाय, जब निहालसिंह धरकंधा से चले गये हों, तो स्पष्ट है कि सात पीढ़ियाँ २०० वर्षों तक चलती रहीं। और ऐसी स्थिति में लालजी उपाध्याय को गणेश पंडित का वंशधर मानना विश्वसनीय होगा।

(३) नोखागढ़ के शुजाशाह—यह असंदिग्ध है कि शुजाशाह एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। यह भी सिद्ध है कि वे अपने समय में एक अत्यधिक प्रभावशाली जमींदार थे; क्योंकि सरकार शाहाबाद के जमींदार विक्रमाजीत सिंह तथा बाबू अरिमर्दन सिंह के एक मुकदमे में वे पंच थे। महाराज-कुमारी शिवराज कुँवरी उज्जैनी, रीवा की महारानी, तथा महाराज केशव प्रसाद सिंह बहादुर के बीच मुकदमे (शाहाबाद के जिला-जज के न्यायालय में १९१४ की संख्या ९०/३) में पेश किया गया था, जिसका पंचनामा नीचे दिया जाता है।

"ता० २० असाढ़, ११६६ फसली, ५ असाढ़ सुदी, ११६६ फसली महाराज विक्रमाजीत सिंह और बाबू अरिमर्दन सिंह के बीच पंचनामा।"

शासक उनके सम्बन्धी थे। एक बार बक्सर के कुँवरधीर सिंह की रानी उत्तर से तीर्थ-यात्रा कर लौट रही थीं। उनकी पालकी कर्मनासा नदी के सायर घाट पर रोक ली गई; क्योंकि सेवराईं के शासक कुतुलू खाँ ने एक नियम-सा बना दिया था कि घाट पर रात-भर रुके बिना कोई भी डोला नदी के पार नहीं जा सकता। रानी ने इसका विरोध किया; लेकिन वह व्यर्थ सिद्ध हुआ और पालकी सेवराईं के कुतुलू खाँ के किले में लाई गई। उसे वहां से तभी जाने दिया गया जब रानी ने अपनी मुक्ति के लिए दो ऊँट और तीन घोड़े दंड के रूप में देना स्वीकार किया। बक्सर पहुँचने पर रानी ने शपथ ली कि जब तक कुतुलू खाँ पराजित नहीं होगा तबतक वह राजकीय वेशभूषा धारण नहीं करेंगी। सायर घाट में एक कवीश्वर भी थे जिन्होंने कुतुलू के अत्याचार के प्रति विद्रोह किया था और जो बक्सर में कुँवरधीर सिंह के दरबार में चले गये थे। वहाँ से वह धरकंधा के निहाल सिंह, मनियार सिंह और बख्तावर सिंह के पास गये और उन्हें कुतुलू के विरुद्ध भड़काया। तदनुसार वे एक सेना लेकर बक्सर की ओर बढ़े, जहाँ उन्हें और भी सैन्यदल मिला, और इस प्रकार सुसज्जित होकर उन्होंने सेरवाईं पर आक्रमण किया, कुतुलू खां को मार डाला और उसके किले तथा राज्यक्षेत्र को अधिकृत कर लिया। विजयी निहाल सिंह ने कुतुलू खां के परिवार को एक सौ बीघे जमीन निर्वाह-भत्ता के रूप में दी, जो अब बहुत घट गई है। अब कुनुलू खां के वंश में जहीद नामक एक लड़का बच गया है जो सेवराईं से एक मील दूर गोरैसरा गाँव में रहता है।"

अब हमें यह विचारना है कि दरिया साहब के काल्पनिक सैन्यदल के प्रकट होने पर निहाल सिंह अपने दल के साथ धरकंधा से चले गये, अथवा इन ऐतिहासिक कारणों से, जिनका उल्लेख पंडित लालजी उपाध्याय द्वारा किया गया है और जिनका सारांश ऊपर दिया जा चुका है। यद्यपि मैं पं० लालजी उपाध्याय की व्याख्या से सहमत हूँ, फिर भी मैं काल्पनिक सैन्यदल की वार्त्ता को निरा निराधार कह कर नहीं टाल सकता हूँ। जब यह सिद्ध है कि दरियासाहब और निहाल सिंह में कई बार मुठभेड़ हुई तब यह बहुत संभव है कि संत की बढ़ती लोकप्रियता और अलौकिक प्रभुता के कारण निहालसिंह को अपने पिछले शत्रुतापूर्ण कृत्यों के लिए पश्चत्ताप हुआ हो और उन्होंने उन कृत्यों को पारिवारिक दुर्घटनाओं और विपत्तियों का कारण समझा हो तथा प्रेतबाधा से ग्रस्त रहे हों। यह भी संभव है कि उन दिनों उन्होंने दरिया साहब की सेना को मनोवैज्ञानिक कारणों से इस प्रकार साक्षात् देखा हो तथा धरकंधा से तंग आकर वहां से चले जाने का अवसर ढूँढ़ते हों। जब कवीश्वर ने आकर कुतुलू खाँ के अत्याचार तथा रानी के अपमान की कहानी सुनाई तब उन्हें उपयुक्त अवसर मिला हो और अत्याचारी पर आक्रमण कर उसके राज्यक्षेत्र पर आधिपत्य जमाया हो। ऐसा भी संभव है कि निहाल सिंह का अपने दल के साथ चले जाने का कारण नवाब कासिम अली का अत्याचार रहा हो, जिसने भोजपुर के शक्तिशाली जमीदारों को दबाने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा।

(२) गणेश पंडित—गणेश पंडित कदाचित् निहाल सिंह के कुल-पुरोहित और दरबारी पंडित थे। दरिया साहब के पदों में वह सनातनवादी हिंदुओं के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं और सुधारवादी संत से बहुधा शास्त्रीय विवाद करते दीखते हैं। किंवदन्ती है कि जब निहालसिंह सपरिवार धरकंधा से चले गये, तब गणेश पंडित भी उनके साथ गये और सेवराई में बस गये। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है जब मैं सेवराई गया तब वहाँ पंडित लालजी उपाध्याय ने मुझे गाँव का एक संक्षिप्त इतिहास दिया। उन्होंने अपनेको सुप्रसिद्ध गणेश पंडित, या यों कहें कि पंडित गणेश उपाध्याय, का वंशज बताया। उन्होंने मुझे अपने परिवार की वंशावली दिखलाई जिससे उपयुक्त उद्धरण नीचे दिया जाता है।

गणेश उपाध्याय
|
रामदिहल उपाध्याय
|
हिंदू राम उपाध्याय
|
आत्माराम उपाध्याय
|
परमेश्वर उपाध्याय
|
महादेव उपध्याय
|
लालजी उपाध्याय (अवस्था लगभग ४५ वर्ष)

इस प्रकार गणेश पंडित की छठी पीढ़ी में लालजी उपाध्याय उनके वंशज हैं। यदि संवत् १८०० उस वर्ष के आसपास माना जाय, जब निहालसिंह धरकंधा से चले गये हों, तो स्पष्ट है कि सात पीढ़ियाँ २०० वर्षों तक चलती रहीं। और ऐसी स्थिति में लालजी उपाध्याय को गणेश पंडित का वंशधर मानना विश्वसनीय होगा।

(३) नोखागढ़ के शुजाशाह—यह असंदिग्ध है कि शुजाशाह एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। यह भी सिद्ध है कि वे अपने समय में एक अत्यधिक प्रभावशाली जमींदार थे; क्योंकि सरकार शाहाबाद के जमींदार विक्रमाजीत सिंह तथा बाबू अरिमर्दन सिंह के एक मुकदमे में वे पंच थे। महाराज-कुमारी शिवराज कुँवरी उज्जैनी, रीवा की महारानी, तथा महाराज केशव प्रसाद सिंह बहादुर के बीच मुकदमे (शाहाबाद के जिला-जज के न्यायालय में १९१४ की संख्या ६०) में पेश किया गया था, जिसका पंचनामा नीचे दिया जाता है।

"ता० २० असाढ़, ११६६ फसली, ५ असाढ़ सुदी, १६६६ फसली महाराज विक्रमाजीत सिंह और बाबू अरिमर्दन सिंह के बीच पंचनामा।"

......"हम, शुजा सिंह इलाकादार, राय बलराम सिंह, सूबा बंगाल के नायब, गंगाधार चौधरी, जयपाल सिंह, हरवल्लभ सिंह, दामोदर राम जैन और संगम मिसर वैद्य ने, जिन्हें दोनों पक्ष ने पंच नियुक्त किया है, सरकार शाहाबाद के जमींदार राजा विक्रमाजीत सिंह तथा अरिमर्दन सिंह के मुकद्दमे पर जिसका निर्णय उच्च न्यायालय में हुआ था, रामेश्वर नाथ जी, सुमेश्वरनाथ जी तथा गौरी शंकर महाराज के तीर्थ बक्सर के चरित्तर वन में बाजाब्ता विचार किया है। हमारी राय है कि राजा को पुराने इलाके का बन्दोबस्त मिलना चाहिए जैसा सरकारी बही में दर्ज है, और १२०० रु० के जमा की सम्पत्ति मोकरीं में बाबूजी के साथ बन्दोबस्त होनी चाहिए; और विवाह, मृत्यु तथा अच्छी-बुरी घटनाओं एवं ईश्वरीय तथा सरकारी कार्यों का खर्च रियासत से दिया जाना चाहिए, अन्यथा उक्त कार्यों के लिए उतने मूल्य की सम्पत्ति दी जानी चाहिए।

ह० संगम मिसर

ह० हरिवल्लभ सिंह

ह० शुजा सिंह इलाकादार

ह० दामोदर राय

ह० गंगाधर चौधरी

ह० जयपाल सिंह

इस पंचनामा से सिद्ध होता है कि शुजा सिंह या शुजा साह फसली ११९६ (११९६ + ६४६ = १८४५ संवत्) में रहते थे। इस तारीख का दरिया साहब के उनके शिष्यत्व की बात से मेल खाता है; क्योंकि दरिया साहब की मृत्यु संवत् १८३७ में हुई थी।

स्पष्ट है कि शुजा सिंह नोखा के पहलवान सिंह के वंशज थे, जिनके संबंध में बुकानन साहब ने लिखा है—

"नोखा में मिट्टी और ईंट का एक विशाल अनगढ़ दुर्ग है, जिसके स्वामी परमारक शासक राजा पहलवान सिंह थे। उनके आक्रमण से देश वीरान हो गया। इस दुर्ग पर अभी तक उनके वंशजों का अधिकार है, यद्यपि कुप्रबंध से उनकी भूसम्पत्ति बहुत घट गई है।" [1]

बुकानन ने उपर्युक्त विध्वंस के विषय में अन्यत्र भी लिखा है—

"कासिम अली, जो बाद में बंगाल और बिहार का सूबेदार हुआ, कभी जिले में निम्न सरकारी अधिकारी के रूप में रहता था। उस समय नोखा के पहलवान सिंह का लड़ाकू जातियों पर काफी प्रभाव था। कहते हैं, वे बहुत उग्र थे। उन्हें हरवल के रूप में काम करने से अलीवर्दी खाँ से मुफ्त और लगानवाली बहुत जमीन मिली थी...। एक बार कासिम अली, जो उस समय एक मुसाहब

---

१. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० ८५, पहलवान सिंह का उल्लेख देखिए—शाहाबाद गजेटियर पृ० २५।



संत चित्तर साहब

मात्र था, घोड़े पर सवारी कर कहीं जा रहा था। संयोग कि पहलवान सिंह भी पालकी पर कहीं जा रहे थे। कासिम अली को घोड़े पर सवार देखकर यह उग्र हिन्दू इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने पालकी से कूदकर घोड़े की जांघ तोड़ दी। उस समय मुसलमान इस आघात पर क्षोभ नहीं प्रगट कर सका, किंतु जब वह वायसराय हुआ और इस जिले के निकट सेना लेकर आया तब उसने बदला लेने की धमकी दी। सभी परमारक अपने सगे-सम्बन्धियों से मिल गये और वायसराय का आक्रमण रोकने के लिए सोन की ओर बढ़े। लेकिन उसके निकट जाने पर उनका साहस जाता रहा...कुछ गंगा के पार भाग गए, कुछ दक्षिण पहाड़ी की गुफाओं में छिप गए, और उधर क्रुद्ध वायसराय ने उनकी सारी भू-सम्पत्ति नष्ट कर डाली...परमारको ने तबतक लौटने का साहस नहीं किया जबतक क़ासिम अली की सारी आशाएँ मिट्टी में न मिल गईं और जब तक साम्राज्य के उस वजीर तथा राजकुमार को मुट्ठी-भर अंग्रेजी फौज ने पराजित नहीं कर दिया।"[२]

आरा-सहसराम लाइट रेलवे में गढ़ नोखा गाँव उक्त रेलवे का स्टेशन भी है।

४. भगवान दास—ये उस धर्मदास के वंशज माने गये हैं, जो कबीर के 'अवतार कहे गये हैं।' कहते हैं, कबीर के २०० वर्ष बाद धर्मदास का जन्म हुआ[३]। हिंदी-साहित्य[४] के अध्येता अच्छी तरह जानते हैं कि धर्मदास बांधवगढ़ के निवासी थे। बाद में वे कबीर के प्रमुख शिष्य हुए और अपने गुरु की मृत्यु के बाद कबीरपंथ की गद्दी पर आसीन हुए। लेकिन यह बात मान्य नहीं है कि वे कबीर के २०० वर्ष बाद हुए; क्योंकि वे कबीर के निकटतम उत्तराधिकारी थे और उनका जीवनकाल संवत् १५०० और १६०० के बीच रखा जाता है। दरिया साहब ने आदरपूर्वक उनकी चर्चा की है।

भगवान दास एक साधारण व्यक्ति हैं। उनका संबंध छतीसगढ़ में स्थापित धर्मदास की गद्दी से है। वे दरियासाहब के समकालीन थे और विरोधी दल के थे।

(ख) स्थान

(१) धरकंधा—धरकंधा गाँव दिनार थाने के अन्तर्गत है। यहाँ दरिया साहब की समाधि है। यह डुमराँव से करीब २६ मील, सूरजपूरा से ६ मील (पैदल यात्रा करनेवालों के लिए) और 'जखनी भवानी' देवी के स्थान से ४ मील दूर है। डुमरांव से सूरजपूरा तक अच्छी सड़क गई है। सूरजपूरा से धरकंधा मोटर से जाने में मुझे ११ मील की दूरी तय करनी पड़ी। शायद इसका कारण टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता था जो सुगमता की दृष्टि से ग्रहण करना पड़ा। मोटर से यात्रा करने में सीधे पटना से आरा, विक्रमगंज और सूरजपूरा होते हुए धरकंधा जा सकते हैं। यात्रा की दूरी इस प्रकार

२. शाहाबाद रिपोर्ट पृ० ५०-५१।

३. जेडी १५९. १-६।

४. रामकुमार वर्मा—हिंदी-साहित्य का आलोचनामक इतिहास ५-२६०।

है—३८ (पटना-आरा)+४० (आरा-बिक्रमगंज)+६ (बिक्रमगंज—सूरजपूरा+१०(सूरजपूरा धरकंधा) ६४ मील। इसके अलावा रेल-यात्रा में बिक्रमगंज (आरा-सहसराम लाइट रेलवे) जाना होता है और वहाँ से धरकंधा के लिए कोई सवारी करनी पड़ती है। बुकानन साहब ने करञ्जा डिवीजन में धरकंधा का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"यहां दरिया साहब ने कुछवर्ष पूर्व एक पंथ चलाया, जिसके अनुयायी इस डिवीजन के २०० घरों में हैं। मुख्य प्रवर्त्तक का घर धरकंधा में है, जहां उन्हें देशी नाप से १०१ बीघा जमीन है।" ५

"इस पंथ के पास कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे मंदिर कहा जा सके, लेकिन करञ्जा डिवीजन के धरकंधा में जिस घर में वे रहते थे, उसे उनका तख्त कहते हैं। उस पर उन दर्जी संत के प्रिय शिष्य गुनादास के उत्तराधिकारी टेकादास विराजमान हैं।" ६

ध्यान देने की बात है कि उक्त घर में अब केवल दरिया साहब के परिवार के वंशज रहते हैं। मठ, जो धरकंधा के महंथ का स्थान है, दरिया साहब की समाधि के निकट ही एक फर्लांग की दूरी पर है। अनुमानतः मठ की स्थापना पीछे में हुई; क्योंकि बुकानन का कहना है कि उनके समय कोई मठ नहीं था।

धरकंधा के महंथ—धरकंधा मठ की महंथी की परम्परा नीचे दी जाती है।

दरिया साहब
|
गुना साहब
|
भोरा साहब (बहुत थोड़े समय के लिए)
|
* टेका साहब
|
चित्तर साहब
|
छत्रपति साहब
|
उम्मर साहब
|
अच्छैवर साहब
|

५. शाहाबाद रिपोर्ट, पृ० ७८।

६. वही, पृ० २२१।



बाईं ओर—निहाल सिंह के उत्तराधिकारी
दाईं ओर—गणेश उपाध्याय के उत्तराधिकारी, पंडित लालजी उपाध्याय



कुतलू खां के किले का भग्नावशेष

राम दास साहब
|
गोकुल दास साहब
|
* चतुरीदास साहब (थोड़े समय के लिए)
|
* जानकी दास साहब („)
|
ज्ञान दास साहब (क्रमशः)
|

महात्मा ज्ञानदास बूढ़े हैं; किन्तु क्रियाशील। जब मैंने धरकंधा का भ्रमण किया था और उनका अभिवादन किया, उस समय उन्होंने मेरा भावपूर्ण आतिथ्य किया था।

अब मठ से संबद्ध भूमि को लीजिए। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, बुकानन के समय (१८१० ई०) यह भूमि १०१ बीघा थी और कासिम अली से दान के रूप में मिली थी। टेका साहब के समय दरिया साहब के भाई फक्कड़ साहब ने, जो गाजीपुर में करीब २७ वर्षों तक रहे और जिनके एक पुत्री हुई, धरकंधा लौटने पर भू-सम्पत्ति पर टेका साहब का अधिकार नहीं माना। यह मामला जमात (दरियापंथियों की समिति) में पेश किया गया। जमात का यह निर्णय हुआ कि जिसे फक्कड़ साहब की पुत्री चादर अर्पित कर देगी, वह भूमि का उचित स्वामी माना जायगा। आश्चर्य यह कि छोटी लड़की ने टेका साहब को चादर दे दी। फक्कड़ दास को २०-२५ बीघे से ही संतोष करना पड़ा जो उन्हें रियायती तौर पर दी गई। बाद में उन्होंने अपनी जमीन एक स्थानीय क्षत्रिय के हाथ बेच दी। लेकिन कालान्तर में छत्रपति साहब ने उनसे यह जमीन खरीद ली और उसका समूचा रकबा उनके कब्जे में चला आया...छत्रपति साहब के जीवन-काल में ही किसी ने दरिया साहब के तत्कालीन कुटुंबी नौरतन दास, निधि दास तथा दूसरों को भूमि की 'सनद' दे देने का षड्यंत्र किया। उसके बाद झगड़ा हुआ और छत्रपति साहब को पूरी जमीन का आधा हिस्सा नौरतन दास तथा दूसरों को देना पड़ा। बाद में, नौरतन के वंशजों ने धरकंधा के निकट बनपुरा गाँव के बच्चा सिंह नामक व्यक्ति के हाथ अपनी जमीन बेच दी। १३१०-११ फसली के आसपास रामदास साहब ने, बच्चा सिंह के साथ बहुत दिनों तक दीवानी तथा फौजदारी मुकदमों के बाद, १७०० रु० में करीब ३४ बीघा जमीन फिर खरीदी। मुकदमेबाजी में मठ का करीब २२०००, रु० खर्च हो गया। उसके बाद १३१४-१५ फसली के आसपास गोकुलदास साहब ने शेष १७ बीघा जमीन खरीद ली और फिर कुल १०१ बीघा हासिल

* ताराङ्कित चिह्नवाले व्यक्ति विधि-विहित महंथ नहीं थे, यद्यपि वे कुछ काल के लिए गद्दी पर आसीन हुए थे।

हो गई। आज कल इससे भी अधिक जमीन मठ से संबद्ध है, जो कालक्रम में हासिल की गई है और जिसका कुल रकबा २०० बीघा है। ७

अन्य स्थान जहाँ दरिया साहब ने भ्रमण किया था जिनकी चर्चा उन्होंने की है:—

(१) **बहादुरपुर**—यहाँ धरकंधा के जमींदार निहाल सिंह के आश्रित गणेश पंडित और दरिया साहब में विवाद हुआ था; यह गाँव गंगा के किनारे शाहाबाद में है। इसके सामने गंगा के पार हरदी है जो बलिया जिले में है

(२) **हरदी**—यहाँ दरिया साहब पश्चिम की ओर पर्यटन करते समय आये थे। वहाँ के तत्कालीन प्रमुख जमींदार शोभा सिंह ने उनका हार्दिक स्वागत किया था। यह गाँव बलिया से करीब १२ मील दूर गंगा के किनारे बसा है।

(३) **केसठ**—यह गाँव धरकंधा से करीब १२ मील दूर नवानगर थाने में है।

(४) **लहठान**—यह गाँव आरा-सासाराम लाइट रेलवे की 'पीरो' स्टेशन से थोड़ी दूर पश्चिम है। यहाँ संत दरिया के सुप्रसिद्ध शिष्य भीखम दुबे रहते थे।

(५) **मगहर**—यह कबीर के मृत्यु-स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। दरिया साहब अपने भ्रमण के सिलसिले में यहाँ भी आये थे।

(६) **राजपुर**—यह गाँव गढ़नोखा से पूरब बसा है। यहाँ भंडा दुबे नामक ब्राह्मण संत दरिया साहब के विशेष प्रिय थे।

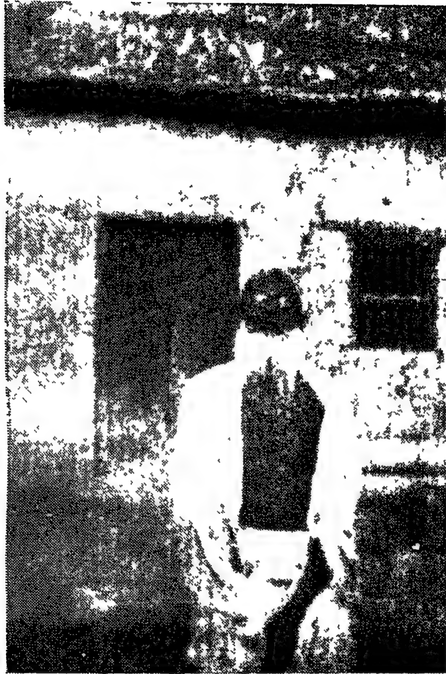
(७) **राजापुर**—यह गाजीपुर जिले में है। यहाँ एक प्रसिद्ध शिष्य हीरामन रहते थे।

(८) **काशी**—या **बनारस**—दरिया साहब इस पावन नगर में प्रचलित पापों का बहुधा कुत्सापूर्ण चित्रण करते हैं। यहाँ रामेश्वर नामक एक ब्राह्मण पंडित से उनका वाद-विवाद हुआ था। वादविवाद का सारांश 'रामेश्वर गोष्ठी' में है जो 'शब्द' का एक अंश है।

(९) **तंतागिर**—यह छत्तीसगढ़ का दूसरा नाम है, जो धर्मदास के अनुयायियों की गद्दी है।

---

७. मुझे इसकी जानकारी साधु चतुरीदास से प्राप्त हुई।



धरकँधा मठ के महन्त ज्ञान दास

अनुक्रमणिका

ध

य